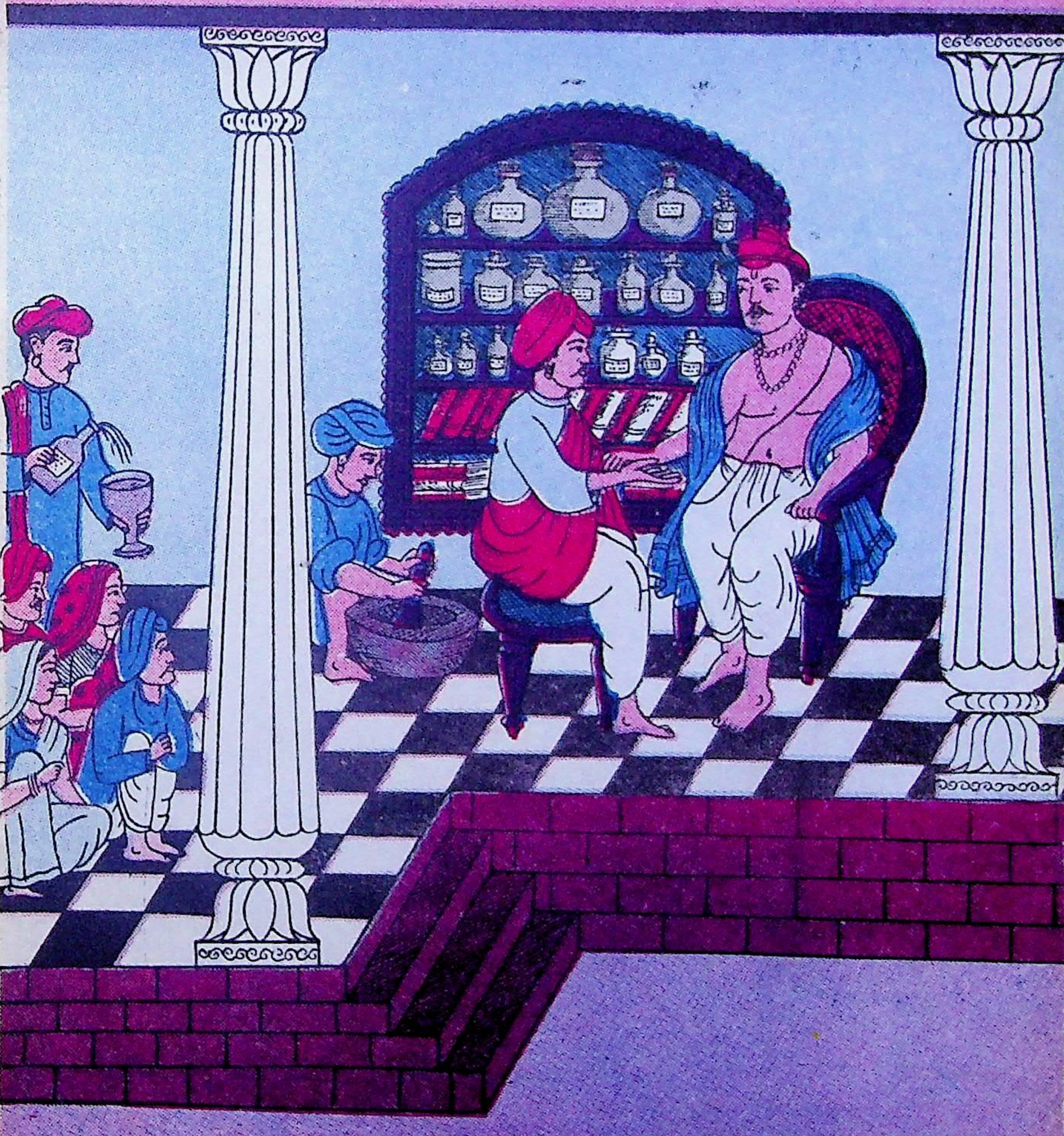
माधवनिदान



खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई प्रकाशन

विद्वद्वरमाधवप्रणीतं-रुग्विनिश्चयापरनामकम्

माधवनिदानम्

श्रीकृष्णलालात्मजदत्तरामेण कृतया हिन्दीटीकया समलंकृतम्

खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई प्रकाशन

संस्करण- जुलाई २००७, सम्वत् २०६४ मूल्य १२५ रुपये मात्र।

प्रस्तावना.

भरतखंडमें वैद्यशास्त्रमें रोगके निदान, वैद्य, रोगी, औषध इत्यादिकोंका वर्णन, आचार, गुणागुण जिनमें वर्णन किये ऐसे सूत्रस्थान, चिकित्सा, शारीरक इत्यादिकोंका विस्तारसे अच्छे तरहका विचार जिनमें किया ऐसे बहुत ग्रंथ एकएक विषयकरके प्रसिद्ध हैं तैसे निदानोंमें और रुग्विनिश्चय जिसको ''माधवनिदान'' कहते हैं वोही प्रसिद्ध है. जैसे-

"निदाने माधवः प्रोक्तः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः।
शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तश्चरकस्तु चिकित्सिते"॥

सब निदानग्रंथोंमें ''माधवनिदान'' श्रेष्ठ है, सूत्रस्थानमें 'वाग्भट' अच्छा. शारीरस्थानमें 'सुश्रुत' उत्तम और चिकित्सा नाम औषधविचारमें 'चरक' बहुत अच्छा है। इस ग्रंथका कर्ता ग्रंथनामसेही माधव मालूम पडता है। पंडितमाधवके सब शास्त्रोंमें ग्रंथ हैं. इस ग्रंथकी भाषा काशीआदि नगरोंमें भई है, परंतु ऐसी कहींभी नहीं. इस टीकामें सब शब्द प्रसिद्ध बालकोंकेभी समझमें जल्दी आजायँ ऐसे हैं और इसमें ''मधुकोश, आतंकदर्पण'' इत्यादि टीकाके आशयकीभी पंक्तिकी भाषा बनाई और शंकासमाधान लिखा है और बहुतसे निदान जो आजतक किसी टीकाकारने नहीं लिखे सो प्रसंगवशसे इसमें लिखदीनेहैं-जैसे चरकके मतसे क्लीबका निदान इत्यादि. और अँग्रेजी मतसे हकीमके मतसे जो निदान हैं वेभी लिखे हैं और परिशिष्टमेंभी शुक्र, आर्तव, गर्भ, स्नायु इत्यादि निदानका अन्य ग्रंथोंसे प्रमाण लेके इसकी भाषा बनाई है.

इस भाषाके बनानेवाले प्रसिद्ध आयुर्वेदोद्धारक माथुरपंडित दत्तरामजी हैं इन्होंने भाषाकरके दो आवृत्तियें दिल्लीमें और मथुरामें छपायीथीं अब इनसे कृपापूर्वक सब हक लेके यहाँ उक्त पंडितसेही शुद्ध कराके और बढाके हमने छापी सो इस ग्रंथकूं इस प्रतिसे और दिल्ली और मथुरामें छपे पुस्तकसेभी कोई छापनेका अधिकारी नहीं है. इति प्रार्थना.

भवदीयशुभाकांक्षी-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् यन्त्रालयाध्यक्ष-बंबई.

श्रीः ।

माधवनिदानकी-विषयानुक्रमाणिका ।

इंग्रेजीमतानुसार ज्वरनिदान ।

अतिसारनिदानम् ।

ग्रहणीनिदानम् ।

अर्शोरोगनिदानम् ।

मन्दाग्निरोगनिदानम् ।

फिरंगरोगनिदानम्।

शूकदोषनिदानम्।

कुष्ठनिदानम्।

शीतपित्तोदर्दकोठनिदानम्।

अम्लपित्तनिदानम्।

विसर्पनिदानम्।

विस्फोटकनिदानम्।

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता॥

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass Prop: Shri Venkateshwar Press, Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013

ॐ श्रीशं वन्दे ।

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ।

माधवनिदानम् ।

भाषाटीकासमेतम् ।

प्रथम भाग ।

नरवरवपुधारी गोकुलानंदकारी
व्रजयुवतिविहारी रासलीलाप्रचारी ।
प्रणवहुँ वनवारी कंसको मानमारी
सकलविघनटारी लीजिये सुधि हमारी ॥

तथा च—कर्ता भर्त्ता तथा हर्त्ता भोगमोक्षैकदायिनम् ।
वन्दे श्रीगिरिजाकान्तं शंकरं लोकशंकरम् ॥

परमकारुणिक श्रीसदाशिवचरणाब्जचंचरीक श्रीमाधवाचार्य निरशेषविघ्नविघातार्थ और ग्रन्थकी निर्विघ्नपरिसमाप्तिके निमित्त ग्रन्थके आदिमें मंगलाचरण करते हैं—

(युग्मम्)

प्रणम्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम् ।
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं त्रैलोक्यशरणं शिवम् ॥ १ ॥

ग्रन्थकर्ताकी प्रतिज्ञा ।

नानामुनीनां वचनैरिदानीं समासतः सद्भिषजां नियोगात् ।
सोपद्रवारिष्टनिदानलिङ्गो निबध्यते रोगविनिश्चयोऽयम् ॥ २ ॥

मया अयं रोगविनिश्चयो ग्रन्थः इदानीं समासतः निबध्यते, किं कृत्वा, शिवं प्रणम्य, कथंभूतं शिवं जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम्, पुनः कथंभूतं शिवं स्वर्गापवर्गयोर्द्वारम्, पुनः त्रैलोक्यशरणम्, किंविशिष्टो ग्रन्थः सोपद्रवारिष्टनिदानलिंगः, कैः नानामुनीनां वचनैः, कस्मात् सद्भिषजां नियोगात् इत्यन्वयः ॥

जगत्की उत्पत्ति, पालन और प्रलयके प्रधान कारण, स्वर्ग (सुख) अपवर्ग (मोक्षके) द्वार अर्थात् दाता तथा त्रिलोकीके रक्षक शिवको प्रणाम कर अनेक सुश्रुतादि मुनीश्वरोंके वचनोंके अनुसार उत्तम वैद्योंकी आज्ञासे अब मैं संक्षेपसे

रोगविनिश्चय नाम ग्रन्थकी रचना करता हूँ। जिसमें उपद्रव, अरिष्ट, निदान और लिंग (चिह्न) इनका लक्षण अच्छी रीतिसे किया गया है ॥

शिष्य–यह अतिसूक्ष्म निदानपंचक सर्वज्ञ ऋषिमुनियोंके जानने योग्य है उनके वाक्योंका निरादर कर मनुष्यकृत तुम्हारे ग्रन्थमें मनुष्योंकी कैसे प्रवृत्ति होवेगी ? इस कारण माधवाचार्यने–" नानामुनीनां वचनैः " इस पदको धरा अर्थात् अनेक मुनीश्वरोंके वचनोंका आशय ले मैंने यह ग्रन्थ निर्माण किया है, किंतु मेरे मनकी उक्तिसे कल्पित नहीं है। शंका–पहले ही बहुत ग्रन्थ निर्माण करे उपस्थित हैं फिर तुम्हारे इस ग्रन्थको कौन पढेगा ? इस कारण माधवाचार्यने " इदानीम् " पद मूलमें धरा। इस पदका यह आशय है कि, हम ही अनेक मुनीश्वरोंके वचनोंसे अब ऐसा अलौकिक ग्रन्थ रचते हैं कि, पहिले किसी आचार्यने अद्यापि नहीं निर्माण करा। कोई वादी शंका करे कि, तुमने ग्रन्थ रचा भी परन्तु किसीने नहीं पढा तो आपका ग्रन्थ निर्माण करना व्यर्थ होगा, इस कारण माधवाचार्यने " सद्भिषजां नियोगात् " यह पद धरा. इस पदका आशय यह है कि, हमारे पढनेके निमित्त कोई निदानग्रन्थ निर्माण करो ऐसे बुद्धिमान् वैद्योंके कहनेसे इस ग्रन्थकी रचना की है। शंका–श्रीमहादेवजीके हर मृड रुद्र शम्भु इत्यादि नामोंको त्यागकर शिव इस नामको क्यों प्रणाम करा ? उत्तर–इस रोगविनिश्चय ग्रन्थके पठन पाठन करनेवालोंके कल्याणकी इच्छा कर सब कामना देनेवाला कल्याणवाचक शिवनाम विचार इसीको ग्रन्थके आदिमें माधवाचार्यने प्रणाम करा ॥

अन्य निदानग्रन्थोंसे इसकी उत्तमता दिखाते हैं–

नानातंत्रविहीनानां भिषजामल्पमेधसाम् ।
सुखं विज्ञातुमातङ्कमयमेव भविष्यति ॥ ३ ॥

अयमेव (ग्रन्थः) अल्पमेधसां भिषजां सुखं यथा भवति तथा आतङ्कं विज्ञातुं भविष्यति। किंविशिष्टानां भिषजां नानातन्त्रविहीनानामित्यन्वयः ॥

अनेक ग्रन्थोंके विचार करनेमें असमर्थ ऐसे मन्दबुद्धिवाले वैद्योंको सुखपूर्वक रोगज्ञानके निमित्त यही ग्रन्थ कारण होवेगा. क्योंकि, रोगके जाननाही मुख्य है सो ग्रन्थान्तरोंमें लिखा भी है ॥

---

१ उपद्रवः–रोगारम्भदोषप्रकोपजन्योऽन्यविकारः। २ अरिष्टम्–नियतमरणख्यापकं लिंगम्। ३ निदानम्–रोगोत्पादको हेतुः। ४ लिङ्गम्–रोगख्यापको हेतुः तेन लिंग्यते ज्ञायते व्याधिरनेनेति व्युत्पत्त्या पूर्वरूपरूपोपशयसंप्राप्तयो विज्ञायन्ते। ५ रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्। ततः कर्म भिषक्पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ १ ॥ रोगज्ञानार्थमवादौ यत्नः कार्यो भिषग्वरैः। सति तस्मिन्क्रियारम्भः पुण्याय यशसे श्रिये ॥ २ ॥

रोग जाननेके पांच उपाय हैं उनको कहते हैं–

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।
संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम् ॥ ४ ॥

रोगाणां विज्ञानं पञ्चधा स्मृतम् इत्यन्वयः ॥

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति ये पांच प्रकार पृथक् पृथक् और समस्त व्याधियोंके बोधक होते हैं । इस प्रकार रोगोंका जानना मुनीश्वरोंने पांच प्रकारका कहा है ॥

इस श्लोकमें "उपशयस्तथा" यह जो पद धरा इसका यह आशय है कि, जैसे निदान, पूर्वरूप और रूपसे रोग जाना जाता है उसी प्रकार उपशयसे और संप्राप्तिसे भी रोग जाना जाता है "सम्प्राप्तिश्चेति" इस पदमें च और इतिके धरनेसे यह प्रयोजन है कि, रोग जाननेके इन पांचोंसे विशेष और उपाय नहीं है । अब कहते हैं कि, रोगोंका निदान संनिकृष्ट (समीप) और विप्रकृष्ट (दूर) इन भेदोंसे दो प्रकारका है । संनिकृष्ट–उसे कहते हैं कि, जैसे कुपित वातादिक ज्वरादिक रोगोंको प्रकट करे हैं और विप्रकृष्ट–उसे कहते हैं, हेमन्तऋतुमें संचित हुआ कफ वसन्तऋतुमें कुपित होता है । पूर्वरूप–उसे कहते हैं जैसे ज्वरमें आलस्यादि धर्म । रूप–उसे कहते हैं जैसे १८ वें श्लोकमें लिखा है–"स्वेदावरोध" इति अर्थात्–पसीनोंका अवरोध होना इत्यादिक । उपशय–उसे कहते हैं जैसे वातरोग तैल आदिके लगानेसे शान्त होता है । सम्प्राप्ति–उसे कहते हैं जैसे १० वें श्लोकमें लिखा है–"यथा दुष्टेन दोषेण" इत्यादि । शंका—क्यों जी ! ये पांच जो व्याधि जाननेके उपाय कहे इनमें एकहीसे रोगका निश्चय हो सकता है फिर माधवाचार्यने पांच प्रकार व्यर्थ क्यों लिखे ? क्योंकि पांचोंका प्रयोजन केवल रोगका जानना है । उत्तर–तुमने कहा सो ठीक है परन्तु इन पांचोंका पृथक् पृथक् प्रयोजन है, जैसे–निदानसे यह प्रयोजन है कि, जिस वस्तुके खानेसे या लगानेसे रोग प्रगट हो उसका त्याग करनेसे रोग नहीं बढे किन्तु उलटा शान्त ही होता है और पूर्वरूपके जाननेसे यह प्रयोजन है, जैसे–सुश्रुतमें लिखा है कि, वातज्वरके पूर्वमें घृतपान करानेसे वातज्वरकी उत्पत्ति नहीं हो । रूपके जाननेसे प्रयोजन है कि, व्याधि अर्थात् रोगका साध्यासाध्य और कष्टसाध्यत्वं निश्चय होता है जैसे जिस रोगका अल्प रूप होवे वह

---

१ अर्थात् नाडी नेत्र जिह्वा मलमूत्रआदिकी परीक्षाओंसे रोगोंका ज्ञान यथार्थ नहीं होता ।
२ वातिकज्वरपूर्वरूपे घृतपानमिति तथा च साध्यासाध्यत्वमपि ज्ञायते । ३ कष्टसाध्यके लक्षण चरकमें लिखे हैं । यथा–निमित्तपूर्वरूपाणां रूपाणां मध्यमे बले । इति ।

सुखसाध्य और मध्यरूप कष्टसाध्य और सम्पूर्णरूप असाध्य है इनको जाननेसें असाध्यका परित्याग करना और कष्टसाध्य तथा सुखसाध्यकी औषधि करानी उचित है । उपशयके जाननेसे यह प्रयोजन है कि सुपरीक्षित व्याधिके सम्पूर्ण लक्षण न मिलनेसे व्याधिका यथार्थ ज्ञान नहीं हो, उसको उपशयके द्वारा निश्चय करे । सो चरकमें लिखा है कि, जिस व्याधिके लक्षण प्रगट न होयँ उसकी उपशय और अनुशयके द्वारा परीक्षा करे उसी प्रकार सुश्रुतमें[२] लिखा है जैसे–उबटना तेल लगाना स्वेदनविधि इत्यादि कर्म करनेसे वातरोग शान्त न हो तो उसके रुधिरका विकार जाने और सम्प्राप्तिके जाननेसे यह प्रयोजन है कि, सम्प्राप्तिके बिना जानें पूर्वरूपादिकोंकरके जानी हुई व्याधि चिकित्साके योग्य भी है परन्तु अंशांश विकल्प बल काल आदिको जबतक नहीं जाने तबतक चिकित्सा यथार्थ नहीं हो सकती इसीसे वैद्य निदानपञ्चकका अवश्यही परिचय करें ॥

अब निदानके पर्यायवाचक शब्दोंको कहते हैं–

निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ।
निदानमाहुः पर्यायैः प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ ५ ॥

निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण ये निदानके पर्यायवाचक शब्द शास्त्र व्यवहारके अर्थ मुनीश्वरोंने कहे हैं, इनके कहनेका कारण यह है कि, व्यवहारके वास्ते अर्थात् शास्त्रमें इन छहों शब्दोंमेंसे कोई शब्द आवे उसको निदानवाचकही जानें ॥

व्याधिके प्राग्रूपका लक्षण ।

उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणाऽनधिष्ठितः ।
लिंगमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम् ॥ ६ ॥

येन उत्पित्सुः आमयो लक्ष्यते तत्प्राग्रूपम्–किंभूतः आमयः दोषविशेषेणाऽनधिष्ठितः । अतः एव ज्वरादिव्याधीनाम् अल्पत्वात् अव्यक्तं लिंगं तत् यथायथं यस्य व्याधेर्यद्रूपं तदेवाव्यक्तं पूर्वरूपम् इत्यन्वयः ॥

जिस जम्भाई आलस्य आदि करके उत्पत्ति होनेवाली व्याधिका ज्ञान होवें उसको प्राग्रूप अर्थात् पूर्वरूप कहते हैं, फिर वह व्याधि दोष (वात पित्त कफ) से बहुधा अप्रगट होवे । शंका–यदि वातादिक दोषोंसे अप्रगट होवेगी तो व्याधिका प्रगट होना असम्भव है क्योंकि कारण तो वातादिक दोष हैं । जब दोषहीं

---

१ गूढलिंगं व्याधिमुपशयानुपशयाभ्यां बुध्येत इति । २ अभ्यङ्गस्नेहस्वेदाद्यैर्वातदोषो न शाम्यति । विकारस्तत्र विज्ञेयो दुष्टमत्रास्ति शोणितम् ॥ इति ॥

नहीं तो रोग कैसे प्रगट हो सकते हैं ? उत्तर-इस पदका यह अर्थ है कि दोष (वात पित्त कफ) का व्याधिके अल्प होनेसे अप्रगट होना रूप अर्थात् थोडा थोडा होना. अतएव तत्तत् ज्वरादिव्याधिका अपने अपने अप्रगट लक्षण पूर्वरूप तैसें तैसेही होते हैं। अब कहते हैं कि, पूर्वरूप दो प्रकारका हैं-एक सामान्य दूसरा विशिष्ट। सामान्यप्राग्रूप (पूर्वरूप) उसे कहते हैं जैसे दोष (वात पित्त कफ) से दूषित धातु उसके बिगडनेसे प्रगट होनेवाले ज्वरादि व्याधिमात्रकीही प्रतीति होवे और वात आदि दोषोंके चिह्न न मालूम हो जैसे-" श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वामिति " अर्थात् ज्वरमें श्रम हो, मनका न लगना, देहका विवर्ण इत्यादि लक्षण और जिसमें होनहार रोगारम्भक दोष उन्होंके चिह्न तिसके एक अंशकी प्रतीति हो उसको विशिष्ट प्राग्रूप कहते हैं. जैसे-" जृंभात्यर्थं समीरणात् " अर्थात् जम्भाईका आना केवल वातके दोषसे ही है। इसमें होनहार रोग कौन ज्वर, उसका आरंभ कौन वात, उस वातका एक अंश कौन जम्भाई ऐसे और भी जानने चाहिये। इस विशिष्ट पूर्वरूपमें जम्भाई आदि रूप देखकर कदाचित् पूर्वरूपको रूप न समझना चाहिये। क्योंकि यह तो केवल व्याधिके आरम्भक दोषमात्रका सूक्ष्म चिह्न है, इस बातको दृष्टान्त देकर समझाते हैं। दृष्टान्त-जैसे तृणके समूहमें छोटी अग्निकी चिनगारी गिरनेसे धूम (धुआँ) मात्र प्रकट देखकर हाथ वस्त्र आदिके मारनेसे ही शान्ति कर सकते हैं, परन्तु जब अग्नि एक साथ जोरसे प्रज्वलित होगई तब शान्त नहीं होसके. ऐसे ही विशिष्ट पूर्वरूपके अल्प होनेसे चिकित्सा करनेसे शांति कर सकते हैं, परन्तु जब रूप होगया तब उसका उपाय नहीं होसकता है। इसीसे पूर्वरूप और रूपमें भेद है। अब कहते हैं-पूर्वरूप और रूप इन दोनोंमें कोई शारीरिक अर्थात् शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं और कोई मानसिक अर्थात् मनसे सम्बन्ध रखते हैं। शारीरिक जैसे ज्वरमें मुखका विरस होना, देह भारी, नेत्रोंसे जल गिरना इत्यादिक और मानसिक जैसे मनका एक जगह न लगना और अपने हितकारक वचनोंसे शांति न होना तथा खट्टे चरपरे पदार्थपर मन चलना इत्यादि ॥

व्याधिके रूपके पर्याय शब्द।

तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते।
संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥ ७ ॥

जब पूर्वोक्त प्राग्रूप प्रगट होजाय तब उसको रूप ऐसे कहते हैं और संस्थान, व्यञ्जन, लिंग, लक्षण, चिह्न और आकृति ये छः शब्द रूपके पर्यायवाचक हैं ॥

अब उपशयके लक्षणको कहते हैं-

हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम्।

औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम्॥ ८॥
विद्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः।

व्याधेः सुखावहम्, उपयोगम्, उपशयं विद्यात् स सात्म्यम् इति स्मृतः। केषाम् औषधान्नविहाराणाम्, किंभूतानां हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् इत्यन्वयः।

व्याधेरुपयोगः सुखावहस्तमुपशयं विद्यात् जानीयात्। उपयुज्यत इति उपयोगः सेवनं सुखमावहति सम्यगनुबन्धेन सुखमुत्पादयतीति सुखावहः, केषामुपयोगः औषधान्नविहाराणाम्, औषधं चान्नं च विहारश्चौषधान्नविहारास्तेषाम्, औषधं हरीतक्यादि, अन्नं रक्तशाल्यादि, विहारो देहमनोनिर्वर्तितचेष्टाविशेषः,किंभूतानाम् औषधान्नविहाराणां हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम्, हेतुर्बाह्य आभ्यन्तरश्च व्याधिर्ज्वरादिः हेतुश्च व्याधिश्च हेतुव्याधी तयोर्व्यस्तसमस्तयोः विपर्यस्ता व्याधिनिदानयोर्विपरीताः तथा विपर्यस्तानाम् अर्थो विपर्यस्तार्थः तयोर्व्यस्तसमस्तयोरेव विपरीतमर्थं कुर्वतीति विपर्यस्तार्थकारिणः हेतुव्याधिविपर्यस्ताश्च विपर्यस्तार्थकारिणश्च हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणः, तेषां हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम्। तदायमर्थः,—निदानरोगयोर्व्यस्तसमस्तयोर्विपरीता अपि कारणरूपा इव भासमाना व्याधिरूपा इव भासमाना हेतुव्याधिविपरीतानाम् अर्थं व्याध्युपशमलक्षणं कुर्वन्तीति। यथा। हेतुविपरीतैः औषधान्नविहारैर्व्याध्युपशयः क्रियते प्रतिपक्षत्वात् एवं विपर्यस्ताविपर्यस्तार्थकारिभिरपीत्यर्थः। तत्र चोपशमानामष्टादश भेदा भवन्ति। तान् वर्णयति यथा—हेतुविपरीतमौषधं हेतुविपरीतमन्नं हेतुविपरीतो विहारः। यथेमे त्रयो भेदा एवमेव सर्वत्र। तथा च हेतुविपरीतानां व्याधिविपरीतानां हेतुव्याधिविपरीतानां हेतुविपरीतार्थकारिणां व्याधिविपरीतार्थकारिणां हेतुव्याधिविपरीतार्थकारिणाम् औषधान्नविहाराणां यः सुखावह उपयोगः स उपशय इति पिण्डार्थः। अथैषां क्रमेणोदाहरणानि भाषायां वेदितव्यानि॥

हेतुविपरीत व्याधिविपरीत हेतुव्याधिविपरीत हेतुविपर्यस्तार्थकारी व्याधिविपर्यस्तार्थकारी हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी ऐसे जो औषध अन्न (पथ्य) विहार (आचरण) इनका सेवन सुखकारक जानना उसको व्याधिका उपशय कहते हैं, इसका तात्पर्य यह है कि रोग और रोगका हेतु इनको सुखकारक जो औषधि पथ्य आचरणरूप प्रयोग उसको उपशय कहते हैं और व्याधिसात्म्य ये पर्यायवाचक नाम उसी उपशयके हैं। सुखकारकके कहनेसे यह प्रयोजन है कि दाह और प्यासयुक्त नवीन ज्वरमें शीतलजलका पीना व्याधिका बढानेवाला है इससे शीतलजल सुखकर्ता न भया अतएव

शीतल जलको उपशय न समझना चाहिये परंतु दाहयुक्त प्यासमें शीतलजल उपशय मानाजायगा क्योंकि सुखकारक है ॥

आगे अब क्रमसे उदाहरण लिखते हैं-

नाम	औषधि	अन्न	विहार
हेतुविपरीत	शीतज्वरमें गरम औषधि सोंठ	श्रम और बादीसे प्रगट रोगपर मांसके रस और भात.	दिनके सोनेसे प्रगट कफरोगपर बिपरीत आचरण रातमें जागना.
व्याधिबिपरीत	अतिसारमें दस्त बन्द करनेवाली औषधि पाठा, आदि	दस्तोंमें दस्तके बन्द कारक पथ्य मसूर.	उदावर्तरोगमें शब्दपूर्वक अधोवायुका निकसना, मन्त्र औषधि धारण, देव गुरूकी सेवा करनी.
हेतुव्याधिविपरीत	वातकी सूजनमें दशमूलका काढा वात और सूजन दोनोंको दूर करनेवाला है.	कफकी संग्रहणीमें छाछका पीना वातनाशक कफनाशक और संग्रहणी नाशक है.	स्निग्ध जो दिनके सोनेसे उत्पन्न तन्द्रा तिसमें रूक्ष तन्द्रासे विपरीत स्निग्धतानाशक रात्रिमें जागना.
हेतुविपर्यस्तार्थकारी	जैसे पित्त प्रधान व्रण सूजनमें पित्तकारक उष्ण पिण्डाकी बांधना.	पित्तकी सूजनमें दाहकारक अन्नका भोजन करना.	जैसे वातसे पैदा उन्मादमें वासका देना.
व्याधिविपर्यस्तार्थकारी	जैसे कफरोगमें वमन कारक मैनफल आदि.	अतिसार रोगमें दस्तकारक दुग्ध देना.	छर्दिरोगमें हाथका अंगूठा गलेमें करवा कमलनाल आदिसे उल्टीका लाना.
हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी	जैसे अग्नि जलेपर गरम अगर लेप आदि अथवा विष पर विष.	जैसे मद्यपानके करनेसे प्रगट मदात्ययरोगमें मदकारक फिर मद्य पीना.	दंड कसरतसे प्रगट वातमें जलका तैरनारूप व्यायामका करना.

हेतुविपरीत औषध–जैसे शीतकफज्वरमें सोंठ, तो इसमें प्रथम समझना चाहिये कि, यहां हेतु कौन है कि, सर्दी उसका शीतल धर्म है तो अब शीत कफ यह कब शान्त होय कि, जब सर्दी और कफसे विपरीत औषध मिले ऐसी औषध कौन कि, शुंठी यह सर्दीको और कफ दोनोंको शान्त करती है तो शीतकफज्वरमें हेतुविपरीत

औषध सोंठ हुई ऐसे ही हेतुविपरीत अन्न जैसे श्रम और वातसे प्रगट ज्वरोंमें मांसका रस और चावल इसमें हेतु कौन कि, श्रम और वात ये कब शान्त होंय कि, श्रम और वात हरणकर्त्ता पथ्य मिलै ऐसा पथ्य कौन कि, मांसरस और चावलोंका भात ये श्रम और वातके विपरीत हैं अर्थात् नाशक हैं ऐसे ही हेतुविपरीतविहार कहिये आचरण कौन जैसे दिनके सोनेसे प्रगट कफपर रातमें जागना, यहां हेतु कौन भया कि, दिनका सोना उसके प्रगट दोष कौन कि कफ, यह कफ कब शान्त होय कि, जिस हेतुसे प्रगट भया उस हेतुसे विपरीत आचरण करा जाय तो दिनके सोनेपर उलटा आचरण कौन कि, रातमें जागना, तो यह हेतुविपरीत आचरण भया। इसी प्रकार और उदाहरण व्याधिविपरीत आदिके लिखे हुए चक्रके अनुसार बुद्धिमान् मनुष्य समझ लेवेंगे ॥

अनुपशयके लक्षण ।

विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्यमिति स्मृतः ॥ ९ ॥

जो उपशयके लक्षण कहे हैं उससे विपरीत लक्षण अनुपशयके हैं और व्याधिका असात्म्य अर्थात् असमान नाम उसी अनुपशयका पर्यायवाचक शब्द है ॥

सम्प्राप्तिके लक्षण ।

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ।
निर्वृत्तिरामयस्याऽसौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ १० ॥

दोष कहिये वात पित्त कफ इनका दुष्ट होना नाम कुपित होना अनेक प्रकारका है अर्थात् स्वकारण या दूसरेके कारण करके ऐसे कुपित दोष अपने स्थानको छोडकर देहमें ऊपर नीचे तिरछे विचरते हैं उस विचरनेसे जो रोग प्रगट हो उसको सम्प्राप्ति कहते हैं और जाति तथा आगति ये दोनों पर्यायवाचक नाम उसी सम्प्राप्तिके हैं। तात्पर्यार्थ यह है कि, मनुष्यके देहमें वात पित्त कफ ये सम्पूर्ण दोष बढकर जैसे रोगको प्रगट करैं तैसे ही उसको सम्प्राप्ति कहते हैं। उदाहरण-जैसे कुपितदोषोंका आमाशयमें प्रवेश होनेसे और स्थानमें इतस्ततो गमन करनेसे तथा रसकी वहनेवाली नाडियोंके मार्गोंको रोकनेसे और पक्वाशयमें रहनेवाली अग्निको बाहर निकालनेसे तथा उसी जठर अग्निसे सर्व देहके तप्त होनेसे यह ज्वर है, ऐसा जो निश्चय कह्या जाय है उसीको सम्प्राप्ति कहते हैं, ऐसे ही अतिसारादि रोगोंकी सम्प्राप्ति जाननी चाहिये ॥

सम्प्राप्तिके भेद ।

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ।

अब सम्प्राप्तिके भेद कहते हैं सो कहिये सो सम्प्राप्ति संख्यादि विशेषण पांच प्रकारकी है जैसे-१ संख्या, २ विकल्प, ३ प्राधान्य, ४ बल, ५ काल इति ॥

संख्यारूप सम्प्राप्तिके लक्षण।

सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥ ११ ॥

जैसे इसी ग्रन्थमें आगे आठ प्रकारका ज्वर पांच प्रकारकी खांसी अर्थात् रोगोंकी गणनाको ही संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं ॥

विकल्परूप संप्राप्तिके लक्षण।

दोषाणां समवेतानां विकल्पोंऽशांशकल्पना।

मिले हुए दोष कहिये वात पित्त कफ इनके अंशांशका अनुमान करना उसका विकल्परूपसम्प्राप्ति कहते हैं, जैसे–धुएँके निकलनेसे यह पर्वत अग्निवाला है ऐसेही यह रोगीके देहमें वातका अंश विशेष है. काहेसे कि, वातके अंश विशेष मिलनेसे इसी अनुमानको विकल्पसंप्राप्ति कहते हैं। उदाहरण–जैसे रूखी शीतल हलकी और फैलानेवाली इत्यादि गुणयुक्त जो पवन उसका रूक्ष आदि गुणयुक्त कसैला रस वातको सर्वांश करके बढानेवाला है, ऐसेही कटुरस सर्व भाव करके पित्तको बढानेवाला है अर्थात् कटु, उष्ण, तीक्ष्णत्व करके हींग पित्तको बढानेवाली है ऐसेही मधुररस, जैसे भैंसका दूध यह सर्व भावकरके कफ बढानेवाली है इत्यादि। इसमें "दोषाणां" जो बहुवचन है सो दोषोंके पृथक् पृथक् ग्रहणके वास्ते है और "समवेतानाम्" यह पद जो है सो द्वंद्वज और सन्निपातके ग्रहणनिमित्त धरा है ॥

प्राधान्यरूपसंप्राप्तिके लक्षण।

स्वातंत्र्यपारतंत्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ १२ ॥

व्याधेः स्वातंत्र्येण च पुनः पारतंत्र्येण प्राधान्यम् आदिशेत् अप्राधान्यं चेति शेष इत्यन्वयः ॥

व्याधिके स्वतन्त्रता और परतन्त्रता करके प्रधानता और अप्रधानता कही है जैसे स्वतन्त्र ज्वरको प्रधानता है और ज्वराधीन श्वास आदि रोगोंको अप्रधानता है अर्थात् व्याधिकी स्वतंत्रतासे प्रधानता और परतंत्रतासे अप्रधानता जाननी चाहिये ॥

बलरूपसंप्राप्तिके लक्षण।

हेत्वादिकात्स्न्यवियवैर्बलाबलविशेषणम्।

अत्रापि व्याधेरित्यनुवर्तते। हेत्वादीनां हेतुपूर्वरूपरूपाणां कात्स्न्येन साकल्येन अवयवैरेकदेशैर्बलाबलयोर्विशेषणं विशेषावबोधः इत्यन्वयः।

हेतु आदिशब्दोंसे हेतु, पूर्वरूप और रूप इनके सर्व अवयव (लक्षण) मिलनेसे व्याधिको बलवान् जानना और थोडे लक्षण मिलनेसे निर्बल जानना; जैसे रोगके प्रति जो निदान कहा है वह निदान सम्पूर्ण रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है कि एकदेश, ऐसे ही पूर्वरूप भी समस्त अवयवों करिके व्याधिका प्रकाशित है यह एकदेशसे इत्यादि ॥

कालरूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम् ॥ १३ ॥

नक्त (रात्री) दिन (दिवस) ऋतु (वसन्तादि) भुक्त (आहार) इनका अंश कहिये एकदेश उसको यथादोष (वात, पित्त, कफ) के अनुसार व्याधिका काल अर्थात् रोगके घटने बढनेके हेतुका समय जाने । उदाहरण–दिखाते हैं जैसे–रात्रिके तीन भाग करे प्रथम, मध्य और अन्त्य; ता रात्रिका प्रथमभाग कफका है, मध्यभाग पित्तका, अन्त्यभाग वातका है । ऐसेही दिनके भी तीन भाग करे तो पूर्वाह्ण कफका, मध्याह्न पित्तका, अपराह्ण वातका है । ऐसे ही ऋतु जैसे वसंत-ऋतुमें कफ, शरदऋतुमें पित्त और वर्षामें वात कुपित होता है । ऐसे ही भोजनका जैसे भोजन करनेके समय कफका काल और अन्नके पचनेके समय पित्तका काल और जब भले प्रकार परिपक्व होगया तब वातका काल. इसके जाननेसे यह प्रयोजन है कि जिसे दोष (वात, पित्त, कफ) का जो काल कहा है उसका उसी उसी कालमें जान लेना कठिन मालूम नहीं होता ॥

निदानपंचकका उपसंहार ।

इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यासेनोपदेक्ष्यते ॥ १४ ॥

इति कहिये यह संक्षेप प्रकारसे जो निदानार्थ कहा उसे विस्तारपूर्वक प्रतिरोगके निदान पूर्वरूपादि करके कहेंगे ॥

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ।
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ॥ १५ ॥

अब पूर्व चतुर्थ श्लोककी व्याख्यामें कहे निदानके दो भेद कौन संनिकृष्ट और विप्रकृष्ट, तिसमें संनिकृष्ट कौन वातादिक समीपके कारण करके सर्व रोगोंका कारण हैं सो कहते हैं–" सर्वेषामिति " कुपित भये जो मल (वात, पित्त, कफ) ये सम्पूर्ण रोगोंके कारण होते हैं और उन वात, पित्त, कफ दोषोंके कोपका कारण अनेक प्रकारका जो अपथ्यसेवन करना ही है ॥

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते ।
तद्यथा ज्वरसन्तापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते ॥ १६ ॥

---

१ केचन ऋत्वंशाः कतिपयाहोरात्राणि कथयंति । यदुक्तं वाग्भटे–"ऋत्वोरित्यादि सप्ताहावृतुसन्धिरिति स्मृतः । " २ यदाह चरकः–" नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माद्विचक्षणः । अनुक्तमपि दोषाणां लिंगैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥" मलिनीकरणान्मला वातपित्तकफाः ॥

रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते।
प्लीहाभिवृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ १७ ॥
अर्शोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते।
(दिवास्वापादिदोषैश्च प्रतिश्यायश्च जायते।)
प्रतिश्यायादथो कासः कासात्संजायते क्षयः ॥ १८ ॥
क्षयो रोगस्य हेतुत्वे शोषस्याप्युजायते।

कोई प्रश्न करे कि, जो पूर्व कह आये हैं यह ही निदान है अथवा इसके व्यतिरिक्त और, इसलिये कहते हैं रोगका रोग भी निदान होता है अर्थात् जो निदानसे कार्य होता है वह ही रोगसे भी होता है. इसवास्ते दृष्टांत देकर कहते हैं–"तद्यथेति" जैसे ज्वरसन्तापसे रक्तपित्त प्रगट होता है और रक्तपित्तसे ज्वर और रक्तपित्तज्वरसे श्वास प्रगट होता है और प्लीहाके बढनेसे जैसे उदररोग और उदररोगसे सूजन और बवासीरसे जैसे उदररोग और गुल्म (गोला) रोग, दिनमें सोने आदिकोंसे जुकाम होता है और जुकामसे खांसी तथा खांसीसे ओजप्रभृति धातुओंका क्षय होता है, यह क्षयरोग (राजयक्ष्मा) सम्पूर्ण रोगोंमें राजा है इसको प्रगट करे हैं ॥

ते पूर्वं केवला रोगाः पश्चाद्धेत्वर्थकारिणः ॥ १९ ॥

वे रोग प्रथम स्वतन्त्र होते हैं और पीछे जब बल मिलगया तो वेही हेत्वर्थकारी अर्थात् रोगके उत्पन्न करनेवाले होते हैं जैसे ज्वरसे रक्तपित्त होता है ॥

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति।
न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ॥
एवं कृच्छ्रतमा नृणां दृश्यन्ते व्याधिसङ्कराः ॥ २० ॥

अब उसी रोग उत्पन्न करनेवाली व्याधिकी विचित्रता दिखाते हैं, जैसे कोई एक रोग दूसरेका कारण हो अर्थात् दूसरे रोगको प्रगट कर आप शांत हो जाता है जैसे ज्वरके सन्तापसे रक्तपित्त होता है उस समय ज्वर दूर होजाय और रक्तपित्त रह जावे और कोई रोग दूसरे रोगको प्रगट कर आप जैसाका तैसा बना रहता है जैसे बवासीर नहीं जाय और गुल्म तथा उदररोग पैदा होते हैं। इस प्रकार मनुष्योंके घोर क्लेशदायक मिलेहुए रोग देखनेमें आते हैं। विशेष करके चिकित्सा विरुद्ध होनेसे ये रोग कृच्छ्रतम होते हैं ॥

अब कहे हुए निदानादिपंचकद्वारा रोगनिवृत्तिरूप सिद्धिको इच्छा करके अवश्य जानने योग्य कहते हैं-

तस्माद्यत्नेन सद्वैद्यैरिच्छद्भिः सिद्धिमुत्तमाम् ।
ज्ञातव्यो वक्ष्यते योऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः ॥ २१ ॥

"तस्मात्" इति । इसी कारण उत्तम सिद्धि हमको प्राप्त हो ऐसी जिन सद्वैद्योंकी इच्छा है उनको ज्वरादिरोगोंका निदान जो आगे कहते हैं वह यत्नसे जानना चाहिये॥

इति श्रीमाधवभावार्थदीपिकायां माथुरीटीकायां सर्वरोगनिदानादि-पंचककथनं समाप्तम् ॥ १ ॥

ज्वरनिदानम् ।

अब सर्व देहके रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसे बली, देह इन्द्रिय मनको तपायमान करनेसे, जन्म मरणका कारण होनेसे, स्थावर जंगम प्राणियोंमें स्थिति होनेसे सम्पूर्ण शरीरके रोगोंमें चरक, सुश्रुतादि आचार्योंने ज्वरको राजा कहा है ।

तदुक्तं चरके-

देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली ।
ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा ॥ १ ॥

देह इन्द्रिय मनको तपायमान करनेसे, रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसे बलवान् ज्वरके सब रोगोंमें प्रधानता है ॥

ज्वरकी उत्पत्ति ।

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिश्वाससम्भवः ।
ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वन्द्वसंघातागन्तुजः स्मृतः ॥ २ ॥

दक्षप्रजापतिकृत तिरस्कारसे क्रोधित श्रीरुद्र भगवान्के श्वाससे उत्पन्न जो

---

१ ज्वरयति शरीराणीति ज्वरः नान्ये व्याधयस्तथा दारुणा बहूपद्रवाः दुश्चिकित्स्याश्च यथाऽयम्, स सर्वरोगाधिपतिर्नानातिर्यग्योनिषु च बहुविधैः शब्दैः श्रूयते । यथा—"पाकलः स तु नागानामभितापश्च वाजिनाम् । गवामीश्वरसंज्ञश्च मानवानां ज्वरो मतः॥अजावीनां प्रलापाख्यः करभे चालसो भवेत् । हरिद्रो महिषाणां च मृगरोगा मृगेषु च॥पक्षिणामभिघातस्तु मत्स्येष्विन्द्रमदो मतः । पक्षपातः पतंगानां व्यालेष्वाक्षिकसंज्ञकः ॥ इत्यादि" सर्वप्राणभृतश्च सज्वरा एव जायन्ते सज्वरा एव म्रियन्ते । अतः सर्वरोगाग्रगण्यत्वाज्ज्वर एव प्रागभिहितः ॥

ज्वर सो आठ प्रकारका है–वात, पित्त, कफ इनसे ३, द्वंद्वज ३ सन्निपात १ और आगंतुज १ ऐसे मिलकर संक्षेपसे ज्वर आठ प्रकारका है ॥

इस श्लोकमें–"निःश्वाससम्भव" यह जो पद धरा है सो श्वास यहां क्रोधके लक्षण करके कहा है किन्तु ज्वरकी श्वाससे उत्पत्ति नहीं है क्योंकि, जैसे सुश्रुतमें लिखा है यथा–"रुद्रकोपाग्निसंभूतः सर्वभूतप्रतापनः" इति। अर्थात् क्रोधित रुद्रनें ललाटस्थ तीसरे अग्निमय चक्षु (नेत्र) को स्पर्श कर आग्नेयबाण निर्माण किया। तथा च चरके–"स्पृष्ट्वा ललाटे चक्षुर्वै दग्ध्वा तानसुरान्प्रभुः। बाणं क्रोधाग्निसंतप्तमसृजच्छत्रुनाशनम्॥" इत्यादिक वाक्योंसे ज्वरमात्रकी पित्तप्रकृति जाननी, प्रयोजन यह है कि सर्वज्वरमें पित्तकी विरोधी क्रिया न करे। सो वाग्भटने कहा है यथा–"उष्मा पित्तादृते नाऽस्ति नात्युष्माणं विना ज्वरः। तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिकम्॥" इति। अर्थात् गरमी पित्तके विना नहीं होती और ज्वर गरमीके विना नहीं होता इसीसे ज्वरमें पित्तविरुद्ध क्रिया न करे और पित्तज्वरमें विशेषकरके पित्तविरुद्ध क्रिया त्याज्य है। अन्य आचार्य कहते हैं कि–श्रीरुद्रसे उत्पत्ति होनेसें ज्वर देवता है इस लिये ज्वरका पूजन करनेसे शांत होता है, जैसे विदेहका वाक्य है–"ज्वरस्तु पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्यति" और ज्वरका स्वरूप भी हरिवंशमें लिखा है यथा–"ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः। भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः॥" इति। अर्थात् ज्वरके तीन चरण, तीन मस्तक, छः भुजा, नव नेत्र, भस्मयुक्त देह, रौद्र, कालका भी काल और यमराजके समान है॥

ज्वरकी सम्प्राप्ति।

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः[३]।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः॥ ३॥

मिथ्या आहार (देश काल प्रकृति आदिसे विरुद्ध और संयोगविरुद्ध भोजन) जो दोष (वात, पित्त, कफ) सो नाभिस्तनके बीच आमाशयमें प्राप्त हों रसको मिथ्याविहार (देहके पुरुषार्थसे विशेष कामका करना) इन कारणोंसे दुष्ट हुए बिगाडकर और कोष्ठस्थानमें रहती हुई जो अग्नि उसको देहके बाहर निकाल करके प्रगट करनेवाले होते हैं॥

यह सम्प्राप्ति शरीररोगोंकी है आगन्तुजकी नहीं है, क्योंकि, आगन्तुज रोगोंका

१-अकाले चातिमात्रं च असात्म्यं यच्च भोजनम्। विषमाशनं च यद्भुक्तं मिथ्याहारःस उच्यते॥

२–अशक्तः कुरुते कर्म शक्तिमात्र करोति च।मिथ्याविहारमित्युक्तं सदा चैव विवर्जयेत्॥

३–नाभिस्तनान्तरं जन्तोरामाशय इति स्मृतः॥

तो व्यथापूर्वक वातादिदोषोंके रोकनेसे प्रयोजन है, जैसे-सुश्रुतमें लिखा है श्रम और चोटके लगनेसे देहधारियोंके कुपित हुई वात सब देहको परिपूर्ण कर ज्वरको पैदा करती है और चरकमें भी लिखा है कि चोटके लगनेसे प्रगट वात रुधिरको बिगाड व्यथा और शोष तथा विवर्णयुक्त वातज्वरको प्रगट करती है । शंका-क्योंजी ! आगंतुज भी शरीररोगही है क्योंकि आगंतुजज्वरमें भी गरमी रहती है क्यों कि- "उष्मा पित्तादृते नास्ति" इत्यादि वाक्य प्रमाण होनेसे । उत्तर-यह जो तुमने कहा सो ठीक है परन्तु इन आगंतुजरोगोंमें पित्तकी पूर्वकालसे ही उत्पत्ति नहीं होती, पीछे उत्पत्ति होती है, इससे आगन्तुजरोगोंको शारीरत्व नहीं है । इस श्लोकमें-"कोष्ठाग्निम्" यह जो पद धरा है सो धातुकी अग्निके निवारणार्थ है अर्थात् जब धात्वग्नि बाहर आय जावेगी तो दोषोंका पचना नहीं होसके और दोष पके विना ज्वरशांति नहीं होवेगी इसलिये इसका अर्थ ऐसा न करना चाहिये "बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निम्" कोठेके अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ऐसा अर्थ करना चाहिये ॥

ज्वरके लक्षण ।

स्वेदावरोधः संतापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा ।
युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥ ४ ॥

जिस रोगमें पसीना न आवे, देहमें सन्ताप और सर्वांगमें पीडा ये एक ही समय हों उसको ज्वर ऐसे कहते हैं ॥ शंका-क्योंजी ! पित्तज्वरमें तो पसीना आता है तो इस श्लोकमें विरुद्धता आती है-इसपर जैज्जटादिक उत्तर-लिखते हैं कि स्वेदावरोध कहिये-"स्विद्यते अनेनेति स्वेदः" इस व्युत्पत्ति करके स्वेद कहिये अग्नि तिसका अवरोध कहिये दोषकी व्याप्ति ऐसा अर्थ करनेसे श्लोकार्थमें विरुद्धता नहीं पडती ॥

ज्वरका पूर्वरूप ।

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः ।
इच्छा द्वेषो मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ ५ ॥
जृम्भाऽङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ।
अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पत्स्याति ज्वरे ॥ ६ ॥

कारण विनाही श्रम कर्म करनेमें उत्साह न हो अथवा खेलनेमें अरुचि, देहमें मलिनता, मुखमें विरसता, नेत्र अश्रुपातयुक्त और सर्दी, गर्मी, पवन इनकी बारम्बार इच्छा होना और बारम्बार द्वेष हो इसमें जो आदि शब्द है उससे जल

और अग्निका ग्रहण है अर्थात् इनकी बारबार इच्छा और द्वेष, ये चरकका मत है। तदुक्तं चरके-" ज्वलनातपवाम्खबुभक्तद्वेषाभिलाषिता " इति। अन्ये तु ' शैत्यौष्ण्यसाधर्म्याज्जलानलौ गृह्णन्ति ते तु आदिशब्देन शयनादिकं मन्यन्ते ' और अन्य आचार्य सर्दी गर्मीके साधर्म्यसे जल अग्निको कहते हैं और वे आदिशब्दसे शयन आदि मानते हैं जम्भाई अंगोंका टूटना, देह भारी रोमांचोंका होना, अन्नमें अरुचि अँधेरीके आना, आनन्दकी निवृत्ति सर्दीका लगना. शंका--क्योंजी! पूर्व कहि आये कि सर्दी गरमीकी बार २ इच्छा और बार बार द्वेष पुनः शीत पद क्यों धरा? उत्तर--इस पदके धरनेसे सर्दीकी अधिकता दिखाई अर्थात् सर्दी विशेष लगे ये लक्षण ज्वरके पूर्व होते हैं॥

सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भात्यर्थं समीरणात्।
पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नान्नाभिनन्दनम्॥ ७॥

विशेषकरके वातज्वरमें जम्भाई बहुत आती हैं, पित्तज्वरमें नेत्रोंमें दाह होता है और कफज्वरमें अरुचि होती है॥

वातज्वरके लक्षण।

वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठौष्ठमुखशोषणम्।
निद्रानाशः क्षवस्तंभो गात्राणां रौक्ष्यमेव च॥ ८॥
शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं गाढविट्कता।
शूलाध्माने जृंभणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे॥ ९॥

कंप होना, ज्वरका विषमवेग, कण्ठ, होठ, मुख इनका सूखना, निद्राका नाश, छींकका न आना, देहका रूखापना, चकारसे नेत्र, विष्ठा, मूत्र इनका काला होना और आचार्य--" रौक्ष्यमेव च " इस जगह " श्यावांगमलमूत्रता " ऐसा पाठ कहते हैं और मस्तक हृदय गात्र इनमें पीडा। कोई शंका--करे कि गात्र पदके धरनेसे ही मस्तक हृदय आदिका बोध होगया फिर मस्तक और हृदय पद क्यों धरा? उत्तर--इन दोनों पदोंके धरनेसे इनमें दर्दकी अधिकता दिखाई अर्थात् मस्तक हृदयमें बहुत पीडा होय, मुखकी विरसता, मलका रुकना, शूल, अफरा, जम्भाई ये लक्षण वातज्वरके होते हैं॥

पित्तज्वरके लक्षण।

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः।
कण्ठोष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते॥ १०॥

प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा ।
पीतविण्मूत्रनेत्रत्वक् पैत्तिके भ्रम एव च ॥ ११ ॥

ज्वरका तीक्ष्ण वेग हो, अतिसार यानी पित्तके वेगसे दस्तका पतला होना न कि अतिसार रोग हो, थोडी निद्रा आवे, पित्तको कफके स्थानमें पहुँचनेसे वमनका होना, कण्ठ, होठ, मुख, नाक इनका पकना और पसीनोंका आना, बडबडाना, मुखमें कडुआहट, मूर्च्छा, दाह, उन्मत्तपना, प्यास, विष्ठा, मूत्र, नेत्र, देहकी त्वचा इनका पीला होना तथा भ्रम ये लक्षण पित्तज्वरमें होते हैं । शंका--क्योंजी ! भ्रमको वातविकारमें लिखा है इससे तो वातका धर्म है फिर पित्तके विकारमें भ्रम शब्द क्यों धरा ? उत्तर--तुमने कहा सो ठीक है परन्तु रोग एकही दोषसे नहीं प्रगट होता अनेक दोषोंसे होय है । सो लिखा है-" न रोगोऽप्येकदोषजः" और " पैत्तिक भ्रम एव च" इस श्लोकमें चकार जो पढा है इससे इस श्लोकमें जो तीव्र गरमी लाल चकत्ते शीतकी इच्छा दाह अरुचि इत्यादि जानने ॥

कफज्वरके लक्षण ।

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता ।
शुक्लमूत्रपुरीषत्वक्स्तम्भस्तृप्तिरथापि च ॥ १२ ॥
गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता ।
प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता ॥ १३ ॥

स्तैमित्य (गीले कपडेसे देहको आच्छादित कर देनेसे जैसा हो ऐसा मालूम हो) ज्वरका मन्दवेग, आलस्य, मुख मीठा, मल मूत्र सफेद, देहका जकडना, तृप्तके सरीखा अन्नमें अरुचि, देह भारी, शीत लगे, ओकारी आवे । अन्य आचार्य कहते हैं कि, कफका थूकना, रोमांचका होना, अतिनिद्रा, रसके बहनेवालीनाडीके मार्गोंका रुकना, दस्तका थोडा उतरना, पसीना, मुखमें नोनकासा स्वाद हो, देहका थोडा गरम होना, रद्दका होना, लारका गिरना, मुखपाक तथा मुख नाकसे कफका पडना, अरुचि, खांसी, नेत्र श्वेत हों ये लक्षण कफज्वरमें होते हैं--"स्तंभस्तृप्तिरथापि च" इस पदमें जो चकार है उससे देहमें पीडा; शीतका लगना, लारका गिरना, वमन, तंद्रिकरोग, हृदय लिहसासा, गरमी प्यारी लगे, मन्दाग्नि इत्यादि जानने ॥

वातपित्तज्वरके लक्षण ।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा ।
कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ॥ १४ ॥
पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ।

प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तकपीडा, कण्ठ, मुखका सूखना, वमन, रोमाञ्च, अरुचि, अन्धकारदर्शन, संधियोंमें पीडा और जंभाई ये वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥

वातकफज्वरके लक्षण ।

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च ॥ १५ ॥
शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्तनम् ।
सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ १६ ॥

स्तैमित्य (गीले कपड़ेसे देहको ढकनेसे जैसा हो ऐसा मालूम हो) संधियोंमें फूटनी, निद्रा, देह भारी, मस्तक भारी, नाकसे पानी गिरे, खांसी, पसीनेका न आना शरीरमें दाह, ज्वरका मध्यम वेग ये वातश्लेष्मज्वरके लक्षण हैं ॥

पित्तकफज्वरके लक्षण ।

लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा ।
मुहुर्दाहो मुहुः शीतं श्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ॥ १७ ॥

मुख कफसे लिप्त हो तथा पित्तके जोरसे मुखमें कडुआहट, तन्द्रा, मूर्च्छा, खांसी, अरुचि, प्यास, बारंबार दाह और शीतका लगना ये कफपित्तज्वरके लक्षण हैं, स्तम्भ (देहका जकडना) पसीना, कफ, पित्तका गिरना ये सुश्रुतोक्त लक्षण और भी जानने चाहिये ॥

सन्निपातज्वरके लक्षण ।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धिशिरोरुजा । संस्रावे कलुषे रक्ते
निर्भुग्ने चापि लोचने ॥ १८ ॥ सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः
शूकैरिवावृतः । तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः
॥ १९ ॥ परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्ताङ्गता परम् । ष्ठीवनं
रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ २० ॥ शिरसो लोठनं
तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा । स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शन-
मल्पशः ॥ २१ ॥ कृशत्वं नातिगात्राणां सततं कण्ठकूज-
नम् । कोष्ठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम् ॥ २२ ॥
मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च । चिरात्पाकश्च दोषाणां
सन्निपातज्वराकृतिः ॥ २३ ॥

अकस्मात् क्षणमें दाह, क्षणभरमें शीत लगे, हाड, संधि, मस्तक इनमें शूल, अश्रुपातयुक्त काले और लाल तथा फटेसे नेत्र होजावें (अथवा टेढ़े नेत्र हों, यह जय्यटका मत है) कानोंमें शब्द और पीडा हो, कण्ठमें कांटे पड़जायँ, तन्द्रा, बेहोशी हो, अनर्थ बोले, खांसी, श्वास, अरुचि, भ्रम ये हो; जीभ परिदग्धवत् (काली) और खर्दरी गोजीभके समान तथा शिथिल (लठर) हो पित्त रुधिर मिला कफ थूके, शिरको इधर उधर पटके, तृषा बहुत लगे, निद्राका नाश हो, हृदयमें पीडा, पसीना मूत्र मल इनका बहुत कालमें थोडा उतरना, दोषोंके पूर्ण होनेसे देहका कृश न होना, कण्ठमें कफका निरन्तर बोलना, रुधिरसे काले लाल कोठ[1] और चकत्तोंका होना, शब्द बहुत मन्द निकले, कान नाक मुख आदि छिद्रोंका पकना, पेटका भारी होना, वात पित्त कफ इनका देरमें पाक हो " उदरस्य च " इस पदमें जो चकार है इससे वाग्भटने जो लिखे हैं कौन, शीतका लगना, दिनमें घोर निद्राका आना, नित्य रात्रिमें जागना अथवा निद्रा कभी आवेही नहीं, पसीना बहुत आवे और नहीं आवे, कभी गान करे, कभी नाचे, हंसे, रोवे और चेष्टा पलट जाय इत्यादि जानने ये सन्निपातज्वरके लक्षण जानने ॥

शंका–क्योंजी ! वातादिक दोषोंके परस्पर विरुद्ध गुण हैं फिर उनका एकत्र मिलकर एकही कार्यका करना कहीं घट सके हैं, क्योंकि परस्पर विरुद्ध गुण होनेसे जैसे अग्नि और जलके विरुद्ध गुण होनेसे एकही कार्य नहीं हो सके ऐसेही वात पित्त कफके विरुद्ध गुण हैं फिर ये कैसे सन्निपातरूपी विकारको प्रगट करते हैं ? उत्तर–इसका समाधान दृढबल आचार्यने इस प्रकार कहा है कि, गुण विरुद्ध[2] भी वात पित्त कफ दोष हैं तथा एक संग उत्पन्न होनेसे तथा परस्पर समानगुण होनेसे एक दूसरे दोषको शांत नहीं कर सकता. जैसे–सर्पका विष सर्पको बाधक नहीं। गदाधर आचार्य इसमें और हेतु कहते हैं जैसे दैवकी[3] इच्छासे और दोषोंके स्वभावसे तथा विरुद्ध गुण होनेसे सान्निपातमें एक दोष दूसरे दोषका नाशक नहीं है. शंका–क्योंजी! वात पित्त कफका अलग अलग कालमें संचय होता है और अलग अलग कोप होता है इनका एक ही कालमें प्रगट होना असम्भव है तो कहिये तीनों दोष मिलकर कैसे सन्निपातज्वरको प्रगट करते हैं ? उत्तर–ये त्रिदोष प्रगट कारक कारण औषध अन्न विहारके बल करके एक ही कालमें इन तीनों दोषोंका प्रकोप होता है यह सिद्धान्त है ॥

---

१ कोठके ७ लक्षण भालुकिने कहे हैं यथा–" वरटीदंशसंकाशः कण्डूमान् लोहितोऽस्र-कफपित्तक्षणिकोत्पत्तिविनाशः कोठ इत्यभिधीयते सद्भिः " इति । २ विरुद्धैरपि नत्वेते गुणैर्घ्नन्ति परस्परम् । दोषास्तु सहसाम्यत्वाद्विषं घोरमहीनिव । ३ दैवा ेषस्वभावाद्वा दोषाणां सान्निपातिके । विरुद्धैश्च गुणैस्तैश्च नोपघातः परस्परम् ॥

सन्निपातोंके भेद।

सुश्रुत और वाग्भटके मतसे सान्निपात एक ही प्रकारका है परन्तु और आचार्योंके मतसे उल्वणादि भेदों करके ९२ प्रकारका है, यथा–

भ्रमः पिपासा दाहश्च गौरवं शिरसोऽतिरुक्। वातपित्तोल्वणे विद्याल्लिङ्गं मन्दकफे ज्वरे॥ १॥ शैत्यं कासोऽरुचिस्तन्द्रा पिपासा दाहहृद्व्यथाः। वातश्लेष्मोल्वणे व्याधौ लिङ्गं पित्तानुगे विदुः॥२॥ छर्दिः शैत्यं मुहुर्दाहस्तृष्णा मोहोऽस्थिवेदना। मन्दवाते व्यवस्यन्ति लिङ्गं पित्तकफोल्वणे॥ ३॥

जिस सन्निपातज्वरमें वातपित्तकी अधिकता और कफकी मन्दता हो उसमें भ्रम प्यास दाह और शरीरका भारीपन शिरमें अत्यन्त पीडा ये लक्षण जानने चाहिये॥ १॥ वातकफकी अधिकता और कफकी मन्दतामें शीत लगना खांसी अरुचि तन्द्रा प्यास दाह हृदयमें दर्द होता है॥ २॥ पित्त कफकी अधिकता और वातकी मन्दतामें वमन जाडा लगना बारम्बार दाह प्यास मोह हड्डियोंमें पीडा होती है॥ ३॥

सन्ध्यस्थिशिरसः शूलं प्रलापो गौरवं भ्रमः। वातोल्वणे स्याद् द्व्यनुगे तृष्णा कण्ठास्यशुष्कता॥ ४॥ रक्तविण्मूत्रता दाहः स्वेदस्तृष्णा बलक्षयः। मूर्च्छा चेति त्रिदोषे स्याल्लिङ्गं पित्ते गरीयसि॥ ५॥ आलस्यारुचिहृल्लासदाहवम्यरतिभ्रमैः। कफोल्वणं सन्निपातं तन्द्राकासेन चादिशेत्॥ ६॥

वातकी अधिकता और पित्त कफकी न्यूनतामें सन्धिस्थान और हड्डी और शिरमें शूल, बडबडाना, शरीरका भारीपन, भ्रम प्यास कण्ठ और मुखका सूखना होता है॥ ४॥ पित्तकी अधिकता और वात कफकी मन्दतावाले सन्निपातमें लाल पुरीष और लाल मूत्र दाह पसीना प्यास बलका नाश मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं॥ ५॥ कफकी अधिकता पित्तवातकी न्यूनतामें आलस्य अरुचि (में) उवकाई जलन वमन पीडा भ्रम तन्द्रा और खांसी होती है॥ ६॥

प्रतिश्यायश्छर्दिरास्यं तन्द्रारुच्यग्निमार्दवम्। हीनवाते पित्तमध्ये लिङ्गं श्लेष्माधिके मतम्॥ ७॥ हारिद्रमूत्रनेत्रत्वं दाहस्तृष्णा भ्रमोऽरुचिः। हीनवाते मध्यकफे लिङ्गं पित्ताधिके

मतम् ॥ ८ ॥ शिरोरुग्वेपथुः श्वासः प्रलापच्छर्द्यरोचकाः । हीनपित्ते मध्यकफे लिङ्गं वाताधिके मतम् ॥ ९ ॥

हीन वायु पित्त मध्यम और कफकी अधिकतामें जुकाम वमन आलस्य तन्द्रा अरुचि मन्दाग्नि होती है ॥ ७ ॥ हीन वात कफ मध्यम पित्त अधिक होवे तो पीला मूत्र और नेत्रमें पीलापन जलन प्यास भ्रम अरुचि ये लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥ हीन पित्त और कफ मध्यम और वातकी अधिकतामें शिरमें पीडा कांपना श्वास बडबडाना वमन अरुचि होती है ॥ ९ ॥

शीतकं गौरवं तन्द्रा प्रलापोऽस्थिशिरोऽतिरुक् । हीनपित्ते वातमध्ये लिङ्गं श्लेष्माधिके विदुः ॥१०॥ वर्चोभेदोऽग्निदौर्बल्यं तृष्णा दाहोऽरुचिर्भ्रमः । कफहीने वातमध्ये लिङ्गं पित्ताधिके विदुः ॥ ११ ॥ श्वासः कासप्रतिश्यायौ मुखशोषोऽति पार्श्वरुक् । कफहीने पित्तमध्ये लिङ्गं वाताधिके मतम् ॥ १२ ॥

हीन पित्त और वात मध्यम कफकी अधिकतामें शीत शरीरका भारीपन तन्द्रा बडबडाना हड्डी और शिरमें अत्यन्त पीडा होती है ॥ १० ॥ हीन कफ वात मध्यम पित्तकी अधिकतामें दस्त पतला अग्नि मन्द प्यास दाह अरुचि भ्रम ये लक्षण होतें हैं ॥ ११॥ हीन पित्त मध्यम वात कफ अधिक हो तो श्वास खांसी जुकाम मुखका सूखना पसवाडेमें अत्यन्त पीडा होती है ॥ १२ ॥

ये उल्वणादि भेद चरकके मतसे कहे हैं परन्तु भालुकि आचार्यने अपने ग्रन्थमें उल्वणादिलक्षण और ही प्रकारसे कहे हैं, यथा—

वातपित्ताधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति । तस्य ज्वरोऽङ्ग-मर्दस्तृट्तालुशोषप्रमीलकाः ॥ १३ ॥ आध्मानतन्द्रावरुचि-श्वासकासभ्रमश्रमाः । पित्तश्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ॥ १४ ॥ अन्तर्दाहो बहिः शीतस्तस्य तन्द्रा विवर्द्धते । तुद्यते दक्षिणं पार्श्वमुरःशीर्षगलग्रहाः ॥ १५ ॥

जिस पुरुषके वात पित्त अधिक हैं जिसमें ऐसा सन्निपात कोपको प्राप्त होता है उस पुरुषके ज्वर, सब शरीरमें दर्द, प्यास, तलुवा सूखना, नेत्र मिचना, अफारा, तन्द्रा, अरुचि, श्वास, कास, भ्रम, थकावत होती है । पित्तश्लेष्म अधिकवाला सन्नि-पात कुपित हो तो भीतर जलन बाहर ठंढा और तन्द्रा अधिक बढती है । दायें पसवाडेमें सुईसी चुभती है, हृदय शिर गला पकडा हुआ मालूम होता है॥१३–१५॥

निष्ठीवेत्कफपित्तं च तृष्णा कण्ठश्च दूयते ।
विड्भेदश्वासहिक्काश्च बाध्यन्ते सप्रमीलकाः ॥ १६ ॥

कफ और पित्तको थूकता है, प्यास लगती है, कण्ठ दूखता है अथवा प्यासकी अधिकतासे कण्ठ दूखता है। दस्त पतला सांस और हिचकीसे पीडित होता है, आंखें मिच जाती हैं ॥ १६ ॥

[विधुफल्गू] च तौ नाम्ना सन्निपातावुदाहृतौ । श्लेष्मानिलाधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ॥ १७ ॥ तस्य शीतज्वरो निद्रा क्षुत्तृष्णा पार्श्वसंग्रहः । शिरोगौरवमालस्यं मन्यास्तम्भप्रमीलकाः ॥ १८ ॥ उदरं तुद्यते चास्य कटी वस्तिश्च दूयते । सन्निपातः स विज्ञेयो [मकरीति] सुदारुणः ॥ १९ ॥

विधु और फल्गुनामसे दोनों सन्निपात कहे हैं अर्थात् वातपित्ताधिकवाला (विधु) और पित्तश्लेष्माधिकवाला (फल्गु) कहा है। कफ और वात अधिक होकर सन्निपात जिसके कुपित होता है उसके शीतज्वर, नींद, क्षुधा, प्यास, पसवाडोंका जकडना, शिरका भारीपन, आलकस, मन्या (नाडीकी दोनों नस) का जकडना, नेत्र मिचना, पेटमें सुईसी चुभना, मुख कम्मर बस्ति इनमें दर्द होना ये सब लक्षण होते हैं. यह अतिभयंकर (मकरी) इस नामवाला सन्निपात जानना चाहिये ॥ १७-१९ ॥

वातोल्वणः सन्निपातो यस्य जन्तोः प्रकुप्यति । तस्य तृष्णाज्वरग्लानिपार्श्वरुग्दृष्टिसंक्षयाः ॥ २० ॥ पिण्डिकोद्वेष्टनं दाह ऊरुसादो बलक्षयः । सरक्तं चास्य विण्मूत्रं शूलं निद्राविपर्ययः ॥ २१ ॥ निर्भिद्यते गुदं चास्य वस्तिश्च परिकृष्यति । आयम्यते भिद्यते च हिक्कते विलपत्यपि । मूर्च्छति स्फार्यते रौति नाम्ना [विस्फूरकः] स्मृतः ॥ २२ ॥

वात अधिक है जिसमें ऐसा सन्निपात जिस पुरुषके कुपित हुआ हो उसके प्यास, ज्वर, ग्लानि, पसवाडेमें दर्द, नेत्रसे न दीखना, पीडियोंका इँठना, जलन, जंघामें पीडा, बलनाश, रक्तसहित विष्ठा और मूत्रका निकलना, शूल, निद्राविपर्यय (दिनमें सोना रात्रिमें जागना), गुदाका फटना और वस्तिका खिंचना (सिकुडना) फूटनी होनी, हिचकी लेना, बडबडाना, मूर्छा होना, नेत्रोंका फटना, रोना ये सब लक्षण होते हैं यह (विस्फूरक) कहा है ॥ २०-२२ ॥

पित्तोल्वणः सन्निपातो यस्य जन्तोः प्रकुप्यति ॥ २३ ॥ तस्य दाहज्वरो घोरो बहिरन्तश्च वर्धते । शीतं च सेवमानस्य कुप्यतः कफमारुतौ ॥ २४ ॥ ततश्चैनं प्रधावन्ते हिक्काश्वासप्रमीलकाः । विषूचिका पर्वभेदः प्रलापो गौरवं क्लमः ॥२५॥ नाभिपार्श्वरुजा तस्य स्विन्नस्याशु विवर्द्धते । स्विद्यमानस्य रक्तं च स्रोतोभ्यः संप्रपद्यते ॥ २६ ॥ शूलेन पीडयमानस्य तृष्णा दाहश्च वर्द्धते । असाध्यसान्निपातोऽयं [शीघ्रकारीति] कथ्यते । नहि जीवत्यहोरात्रमेतेनाविष्टविग्रहः ॥ २७ ॥

पित्त अधिक है जिसमें ऐसा सन्निपात जिसके कुपित हुआ है ॥ २३ ॥ उस पुरुषके घोर दाह और ज्वर भीतर और बाहर बढता है उस समय शीतका सेवन करनेसे पुरुषके कफ और वायु कुपित होते हैं, तदनन्तर हिचकी, सांस और आंखोंका मिचना बाधा करते हैं । विषूचिका (दस्त और उलटी), पर्वोंमें फूटन, बडबडाना, शरीरका भारी होना, खेद होना, नाडी और पसवाडेमें दर्द, स्वेदन देनेसे शीघ्र बढना और उस स्विन्न पुरुषके स्रोतोंसे रक्त झरने लगना और शूलसे पीडित पुरुषके प्यास और दाहका बढना यह असाध्य सन्निपात होता है, उसको (शीघ्रकारी) नामसे बोलते हैं । इस सन्निपातसे ग्रसित शरीरवाला पुरुष एक दिन रात भी नहीं जीता ॥ २४–२७ ॥

कफोल्वणः सन्निपातो यस्य जन्तोः प्रकुप्यति ॥२८॥ तस्य शीतज्वरस्वप्नगौरवालस्यतन्द्रिकाः । छर्दिमूर्च्छातृषादाहतृष्णारोचकहृद्ग्रहाः ॥ २९ ॥ ष्ठीवनं मुखमाधुर्यं श्रोत्रवाग्दृष्टिनिग्रहः । श्लेष्मणो निग्रहं चास्य यदा प्रकुरुते भिषक् ॥३०॥तदा तस्य भृशं पित्तं कुर्यात्सोपद्रवं ज्वरम् । निगृहीते तु पित्ते च भृशं वायुः प्रकुप्यति ॥३१॥ निराहारस्य सोऽत्यर्थं मेदो मज्जास्थि बाधते । तथाऽत्र स्नाति भुंक्ते वा त्रिरात्रं नहि जीवति । मेदोगतः सन्निपातः [कफोल्बणः] स उदाहृतः ॥३२ ॥

कफ अधिक है जिसमें ऐसा सन्निपात जिसके कुपित हो उस पुरुषके शीतज्वर, स्वप्न, शरीरका भारीपन, आलस्य, तन्द्रा, वमन, मूर्च्छा, दाह, प्यास, अरुचि,

हृदयका जकडना, थूकना, मुखमें मीठापन, कानोंसे सुनना वाणीसे बोलना दृष्टिसे देखना बन्द होजाय, यदि इस पुरुषके कफको वैद्य रोके तो अत्यंत कुपित हुआ पित्त उपद्रव सहित ज्वरको पैदा करे और यदि पित्तको रोकाजाय तो वात अत्यन्त कुपित होता है और कुपित हुआ वात निराहार पुरुषकी मेदा मज्जा और हड्डियोंको पीडित करता है। इसमें स्नान करता है और खाता भी है लेकिन तीन रात नहीं जीता है अर्थात् तीन रातके अन्दर ही मर जाता है यह मेदोगत सन्निपात (कर्कण) नामसे कहा है॥ २८-३२॥

मतान्तरभेद।

कुम्भीपाकः प्रौर्णुनावः प्रलापी ह्यन्तर्दाहो दण्डपातोऽन्तकश्च।
एणीदाहश्चाथ हारिद्रसंज्ञो भेदा एते सन्निपातज्वरस्य॥ १॥
अजघोषभूतहासौ यन्त्रापीडश्च संन्यासः।
संशोषी च विशेषास्तस्यैवोक्तास्त्रयोदशान्यत्र॥ २॥

१ कुम्भीपाक, २ प्रौर्णुनाव, ३ प्रलापी, ४ अन्तर्दाह, ५ दण्डपात, ६ अन्तक, ७ एणीदाह, ८ हारिद्रसंज्ञक, ९ अजघोष, १० भूतहास, ११ यन्त्रापीड, १२ संन्यास, १३ संशोषी ये तेरह प्रकारके संन्निपात हैं॥

इन तेरहोंके क्रमसे लक्षण लिखते हैं-

कुम्भीपाक १।

घोणाविवरगलद्बहुशोणासितलोहितं सार्तिं।
विलुठन्मस्तकमभितः कुम्भीपाकेन पीडितं विद्यात्॥ १॥

जिस पुरुषके नासिकाके छिद्रसे पीला काला लाल गाढा जल बहुत झरता हो और शिरको चारों तरफ पटकता हो उस पुरुषको कुम्भीपाकसे पीडित जानना चाहिये॥

प्रौर्णुनाव २।

उत्क्षिप्य यः स्वमङ्गं क्षिपत्यधस्तान्नितान्तमुच्छ्वसिति।
तं प्रौर्णुनावजुष्टं विचित्रकष्टं विजानीयात्॥ २॥

जो पुरुष अपने अंगको उठाकर नीचे पटकता है और बहुत जल्दी २ श्वास लेता है, अनेक प्रकारसे दुःखी उस पुरुषको प्रौर्णुनाव सन्निपातसे ग्रसित जानना चाहिये॥

प्रलापी ३।

स्वेदभ्रमाङ्गमर्दाः कम्पो दवथुर्वमिर्व्यथा कण्ठे।
गात्रं च गुर्वतीव प्रलापिजुष्टस्य जायते लिङ्गम्॥ ३॥

प्रलापीसन्निपातसे ग्रसित मनुष्यके पसीना भ्रम सब शरीरमें दर्द कंप दाह वमन कण्ठमें पीडा और शरीरमें भारीपन ये लक्षण होते हैं ॥

अन्तर्दाह ४ ।

अन्तर्दाहः शैत्यं बहिः श्वयथुररतिरपि तथा श्वासः ।
अङ्गमपि दग्धकल्पं सोऽन्तर्दाहार्दितः कथितः ॥ ४ ॥

भीतर दाह और बाहर शरीर ठंडा शरीरमें सूजन पीडा श्वास शरीरभी जले हुएके सदृश ये लक्षण जिसमें हों उसको अन्तर्दाह सन्निपातसे पीडित कहा है ॥

दण्डपात ५ ।

नक्तं दिवा न निद्रामुपैति गृह्णाति मूढधीर्नभसः ।
उत्थाय दण्डपाते भ्रमातुरः सर्वतो भ्रमति ॥ ५ ॥

दण्डपात सन्निपातमें मनुष्य रात्रिमें और दिनमें कभी सोता नहीं है और बेवकूफ हुआ आकाशसे कोई चीज लेनेके लिये हाथ फैलाता है । भ्रमसे पीडित हुआ उठकर सब जगह भ्रमता है ॥

अन्तक ६ ।

संपूर्यते शरीरं ग्रन्थिभिरभितस्तथोदरं मरुता ।
श्वासातुरस्य सततं विचेतनस्यान्तकार्त्तस्य ॥ ६ ॥

निरन्तर श्वासोंसे पीडित चेतनारहित अन्तक सन्निपातसे पीडित मनुष्यको शरीर गाठोंसे भर जाता है और वायुसे उदर चारों तरफसे भरजाता है ॥

एणीदाह ७ ।

परिधावतीव गात्रे रुक्पात्रे भुजगपतंगहरिणगणः ।
वेपथुमतः सदाहस्यैणीदाहज्वरार्त्तस्य ॥ ७ ॥

कम्पयुक्त दाहयुक्त एणीदाह सन्निपातसे पीडित मनुष्यको अपने शरीरमें सर्प पतंग मृगोंका समुदाय दौडताहुआ मालम होता है ॥

हारिद्र ८ ।

यस्यातिपीतमङ्गं नयने सुतरां मलं ततोऽप्यधिकम् ।
दाहोऽतिशीतता बहिरस्य स हारिद्रको ज्ञेयः ॥ ८ ॥

जिस पुरुषका शरीर अत्यन्त पीला और नेत्र भी पीले और विष्ठा मूत्र सबसे भी अधिक पीले हों, भीतर दाह और बाहिरसे शरीर ठंडा हो तो उस पुरुषको हारिद्रसन्निपातसे पीडित जानना ॥

अजघोष ९।

छगलकशरीरगन्धः स्कन्धरुजावान्निरुद्धगलरन्ध्रः।
अजघोषसन्निपातादाताम्राक्षः पुमान्भवति ॥ ९॥

अजघोष सन्निपातसे बकरेकी गंधके समान शरीरमें गंध आती है, कन्धेमें पीडा और गलेका छिद्र रुक जाता है लाल नेत्र हो जाते हैं इन लक्षणोंयुक्त पुरुष होता है॥

भूतहास १०।

शब्दादीनधिगच्छति न स्वान्विषयान् यदिन्द्रियग्रामैः।
हसति प्रलपति परुषं स ज्ञेयो भूतहासार्त्तः॥ १०॥

जो इन्द्रियसमुदायसे अपने शब्दादि विषयोंको न समझता हो अर्थात् श्रोत्रेन्द्रियसे शब्द न सुनता हो, त्वगिन्द्रियसे स्पर्श न जानता हो इत्यादि, हँसता होवे कठोर बडबडाता हो उसको भूतहासार्त सन्निपातसे पीडित जानना ॥

यंत्रापीड ११।

येन मुहुर्ज्वरवेगाद्यन्त्रेणेवावपीडयते गात्रम्।
रक्तं पीतं च वमेद्यन्त्रापीडः स विज्ञेयः॥ ११॥

बारम्बार ज्वरके वेगसे यंत्रके सदृश जिसका शरीर पीडित किया जाय और लाल पीला वमन करे उस मनुष्यको यन्त्रापीडसे पीडित जानना चाहिये॥

संन्यास १२।

अतिसरति वमति कूजति गात्राण्यभितश्चिरं नरः क्षिपति।
संन्याससन्निपाते प्रलपति भुग्नाक्षिमण्डलो भवति॥ १२॥

संन्याससन्निपातमें मनुष्यके दस्त होते हैं, वमन करता है, कुन २ शब्द करता है, चारों तरफ बहुत कालतक शरीरको फेंकता है, प्रलाप करता है और उस पुरुषकी आंखोंकी पुतली टेढी हो जाती है॥

संशोषी १३।

मेचकवपुरतिमेचकलोचनयुगलो मलोत्सर्गात्।
संशोषिणि सितपिटकामण्डलयुक्तो ज्वरो भवति॥ १३॥

संशोषी सन्निपातमें मलके त्याग होनेसे काला शरीर और अत्यन्त काले दोनों नेत्र हो जाते हैं और सफेद फुनसियोंके मण्डलसे युक्त पुरुष होता है॥

इति कुम्भीपाकादीनां त्रयोदशानां लक्षणानि।

सन्निपातके विस्फारकादि १६ भेदोंको कहते हैं—१ विस्फारक २ शीघ्रकारी ३ कम्पन ४ बभ्र ५ विद्धाख्य ६ शर्कराख्य ७ भल्ल ८ कूटपालक ९ सम्मोहक १० पाकल ११ याम्य १२ संग्राम १३ क्रकच १४ कर्कोटक १५ दारिक १६ व्यालकृति इन १६ सन्निपातोंके लक्षण ग्रन्थ बढनेके भयसे हमने नहीं लिखे ।

अब प्रसंगवशसे सम्पूर्ण सन्निपातोंकी उत्पत्ति और सम्प्राप्ति ग्रन्थान्तरोंसे लिखते हैं—

अम्लस्निग्धोष्णतीक्ष्णैः कटुमधुरसुरातापसेवाकषायैः
कामक्रोधातिरूक्षैर्गुरुतरपिशिताहारनीहारशीतैः ।
शोकव्यायामचिंताग्रहगणवनितात्यन्तसङ्गप्रसङ्गैः
प्रायः कुप्यन्ति पुंसां मधुसमयशरद्वर्षणे सन्निपाताः ॥ १ ॥

खट्टा चिकना गरम तीखा कडुआ मीठा मद्य, सूर्यके घामसे आदि ले तापका सेवन, कसेला, काम क्रोध रूक्ष भारी मांस आदि पदार्थोंका सेवन, नीहार काल शीत शोक दंड कसरत आदि श्रम, चिंता भूतपिशाचकी बाधा, अत्यन्त स्त्रीसंग इन कारणोंसे और चैत्र वैशाख आश्विन कार्त्तिक श्रावण भाद्रपद इन महीनोंमें मनुष्योंके प्रायः सन्निपातोंका कोप होता है ॥

आमो ह्याहारदोषात्प्रथममुपचितो हंति वह्निं शरीरे
श्लेष्मत्वं याति भुक्तं सकलमपि ततोऽसौ कफो वायुदुष्टः ।
स्रोतांस्यापूर्य्य रुंध्यादनिलमथ मरुत्कोपयेत्पित्तमन्तः
संमूर्च्छयान्योन्यमेते प्रबलमिति नृणां कुर्वते सन्निपातम् ॥ २ ॥

आहारके दोषसे प्रथम संगृहीत जो आम सो देहकी अग्निको शान्त करे और मनुष्य जो कुछ खाया सो सब कफ होजाय और फिर इस कफको वायु दूषित करे तब ये पवनके बहनेवाली नाडियोंके मार्गमें प्राप्त हो उनको रोक दे तब पवन पित्तको कुपित करे ऐसे तीनों दोष अन्योन्य कुपित हों मनुष्योंके प्रबल सन्निपात रोग प्रगट करते हैं ॥

अब संधिकादि तेरह सन्निपातोंके नाम पृथक् २ लिखते हैं—

संधिकश्चान्तकश्चैव रुग्दाहश्चित्तविभ्रमः । शीतांगस्तंद्रिकः प्रोक्तः कण्ठकुब्जश्च कर्णकः ॥ ३ ॥ विख्यातो भुग्ननेत्रश्च रक्तष्ठीवी प्रलापकः । जिह्वकश्चेत्यभिन्यासः सन्निपातास्त्रयोदश ॥ ४ ॥

१ संधिक, २ अन्तक, ३ रुग्दाह, ४ चित्तविभ्रम, ५ शीतांग, ६ तन्द्रिक, ७ कण्ठकुब्ज, ८ कर्णक, ९ भुग्ननेत्र, १० रक्तष्ठीवी, ११ प्रलापक, १२ जिह्वक, १३ अभिन्यास-ये तेरह सन्निपात कहे हैं ॥

तेरह सन्निपातोंकी मर्यादा।

संधिके वासराः सप्त चान्तके दश वासराः। रुग्दाहे विंशतिर्ज्ञेया वह्न्यष्टौ चित्तविभ्रमे ॥ ५ ॥ पक्षमेकं तु शीताङ्गे तन्द्रिके पञ्च-विंशतिः। विज्ञेया वासराश्चैव कण्ठकुब्जे त्रयोदश ॥ ६ ॥ कर्णके च त्रयो मासा भुग्ननेत्रे दिनाष्टकम्। रक्तष्ठीवी दशा-हानि चतुर्दश प्रलापके ॥ ७ ॥ जिह्वके षोडशाहानि कला-ऽभिन्यासलक्षणे। परमायुरिति प्रोक्तं म्रियते तत्क्षणादपि ॥ ८ ॥

संधिककी ७, अन्तककी १०, रुग्दाहकी २०, चित्तविभ्रमकी २४, शीतांगकी १५, तन्द्रिककी २५, कण्ठकुब्जकी १३, कर्णककी तीन महीना (९०दिन), भुग्ननेत्रकी, ८ रक्तष्ठीवीकी १०, प्रलापककी १४, जिह्वककी १६, अभिन्यासकी १६ दिनकी ये सन्निपातोंकी परमायुके दिन कहे हैं परन्तु रोगी शीघ्रभी मरजाता है ॥

उक्त सन्निपातोंमें साध्यासाध्य विचार।

सन्धिकस्तन्द्रिकश्चैव कर्णकः कण्ठकुब्जकः।
जिह्वकश्चित्तविभ्रंशः षट् साध्याः सप्त मारकाः ॥ ९ ॥

सन्धिक १ तन्द्रिक २ कर्णक ३ कण्ठकुब्ज ४ जिह्वक ५ चित्तविभ्रंश ६, ये छः साध्य हैं बाकी बचे सात सो मारक हैं ॥

असाध्य कृच्छ्रसाध्यके लक्षण।

दोषे विवृद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसम्पूर्णलक्षणः।
सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥ १० ॥

जिसमें दोष (वात पित्त कफ) वृद्धि होकर अर्थात् सम्पूर्ण लक्षण होकर मिलते हों और अग्नि शांत होगई हो वह सन्निपात ज्वर असाध्य है और इससे विपरीत अर्थात् दोष बढे न हों, अल्प लक्षण हों, अग्नि थोडी दीप्त हो वह सन्नि-पातज्वर कृच्छ्रसाध्य है ॥

जैयटने दोषशब्दका मल अर्थ करा है अर्थात् पुरीषादिक बडे। 'सते' इत्यादि इस श्लोकका तात्पर्यार्थ यह है कि, असाध्य और कृच्छ्रसाध्य भयेपर सुखसाध्य नहीं होता है इसीस भालुकि आचार्यने लिखा है—

मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपातं चिकित्सता ।
यस्तु तत्र भवेज्जेता स जेताऽऽमयसंकुले ॥ ११ ॥

जो वैद्य सन्निपातकी चिकित्सा करे है वह मौतके साथ संग्राम करे है, जो इस सन्निपातको जीते अर्थात् शांत करे वह सर्व रोगके गणोंका जीतनेवाला है ॥

सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवम् ।
कस्तेन न कृतो धर्मः कां च पूजां न सोऽर्हति ॥ १२ ॥

जो वैद्य सन्निपातरूपी सागरमें डूबे मनुष्यको निकालता है उसने कौनसा धर्म न करा अर्थात् सब धर्म कर चुका और वह कौन पूजाके योग्य नहीं है अर्थात् वह सब पूजाओंके योग्य है ॥

संधिकादि त्रयोदश संनिपातोंके पृथक्पृथक् लक्षण।

१ संधिक।

पूर्वरूपकृतशूलसम्भवं शोषवातबहुवेदनान्वितम् ।
श्लेष्मतापबलहानिजागरं सन्निपातमिति सन्धिकं वदेत् ॥ १ ॥

जिसके पूर्वरूपमें शूल, शोष, वातसे बहुत पीडा, कफका गिरना, सन्ताप, बलहानि, रात्रिमें जागरण ये लक्षण होयँ तिसको (संधिक) सन्निपात कहते हैं ॥

२ अन्तक।

दाहं करोति परितापनमातनोति मोहं ददाति विदधाति शिरःप्रकम्पम् । हिक्कां करोति कसनं च समाजुहोति जानीहि तं विबुधवर्जितमन्तकाख्यम् ॥ २ ॥

दाह करे, संतापको बढावे, मोहको देवे, शिर कंपावे, हिचकी करे और खांसीको बढावे, ऐसा पंडितोंकरके त्याज्य (अन्तक) सन्निपात जानना ॥

३ रुग्दाह।

प्रलापपरितापनप्रबलमोहमान्द्यश्रमः परिभ्रमणवेदनाव्यथितकण्ठमन्याहनुः । निरन्तरतृषाकरश्वसनकासहिक्काकुलः स कष्टतरसाधनो भवति हन्त रुग्दाहकः ॥ ३ ॥

अनर्थभाषण, सन्ताप, अतिमोह, मंदता, अनायास श्रम और पीडा, कंठ, मन्या नाडी और ठोडी इनमें व्यथा, निरन्तर प्यास लगे, श्वास, खांसी और हिचकी इन लक्षणोंकरके युक्त ऐसा यह (रुग्दाहनामक) सन्निपात कष्टसाध्य है ॥

४ चित्तभ्रम।

यदि कथमपि पुंसां जायते कायपीडा भ्रममदपरितापो मोह-वैकल्यभावः। विकलनयनहासो गीतनृत्यप्रलापी ह्यभिदधति असाध्यं केऽपि चित्तभ्रमाख्यम् ॥ ४ ॥

जिसके कोई प्रकार करके पीडा होय तथा भ्रम (धतूरा खाये सरीखी अवस्था) हो, सन्ताप, मोह, विकलता, नेत्रोंमें बेकली, हँसना, गाना, नाचना, बकना ये लक्षण होयँ उसको कोई असाध्य (चित्तभ्रम) सन्निपात ऐसे कहते हैं ॥

५ शीतांग।

हिमसदृशशरीरो वेपथुः श्वासहिक्का शिथिलितसकलाङ्गः खिन्ननादोग्रतापः। क्लमथुदवथुकासच्छर्द्यतीसारयुक्तस्त्वरित-मरणहेतुः शीतगात्रप्रभावात् ॥ ५ ॥

शरीर बर्फके समान शीतल हो, कम्प, श्वास, हिचकी, सर्व अंग शिथिल हों, मन्द शब्द, देहके भीतर उग्र सन्ताप, अनायास श्रम, मनका सन्ताप, खांसी, छर्दि, अतीसार इन लक्षणोंयुक्त सन्निपातको (शीतांग) कहते हैं, यह प्राणोंका शीघ्र नाश करता है ॥

६ तन्द्रिक।

प्रभूतातंद्रार्तिज्वरकफपिपासाकुलतरो भवेच्छ्यामा जिह्वा पृथुलकठिना कण्टकवृता। अतीसारः श्वासः क्लमथुपरितापः श्रुतिरुजो भृशं कण्ठे जाड्यं शयनमनिशं तन्द्रिकगदे ॥ ६ ॥

तन्द्रा बहुत हो, शूल ज्वर कफ तृषासे रोगी बहुत पीडित हो, जीभ कालें रंगकी मोटी कठोर और कांटेयुक्त हो और अतीसार श्वास ग्लानि सन्ताप कर्ण-शूल कण्ठमें जडता और रातदिन निद्रा ये लक्षण (तन्द्रिक) सन्निपातमें होते हैं यह असाध्य है ॥

७ कण्ठकुब्ज।

शिरोऽर्तिकण्ठग्रहदाहमोहकंपज्वरा रक्तसमीरणार्त्तिः।
हनुग्रहस्तापविलापमूर्च्छाः स्यात्कण्ठकुब्जः खलु कष्टसाध्यः ॥ ७ ॥

शिरमें पीडा, कण्ठमें पीडा, दाह, बेहोशी, कम्प, ज्वर, वातरक्तसम्बन्धी पीडा हनुग्रह, सन्ताप, बकना और मूर्च्छा इन लक्षणोंसे युक्त सन्निपातको (कंठकुब्ज) कहते हैं, यह कष्टसाध्य है ॥

८ कर्णक ।

प्रलापः श्रुतिह्रासकण्ठग्रहाङ्गव्यथाश्वासकासप्रसेकप्रभावम् ।
ज्वरं तापकर्णान्तयोर्गल्लपीडा बुधाः कर्णकं कष्टसाध्यं वदन्ति ॥८॥

अनर्थभाषण करे, बहरा हो जावे, कण्ठमें दर्द होय, अंगोंमें पीडा, श्वास, कास, पसीना, लारका गिरना, ज्वर, सन्ताप, कर्णके मूल और गाल इनमें पीडा जिसमें ये लक्षण हों उसको पण्डित कष्टसाध्य (कर्णक) सन्निपात कहते हैं ॥

९ भुग्ननेत्र ।

ज्वरबलापचयः स्मृतिशून्यता श्वसनभुग्नविलोचनमोहितः ।
प्रलपनभ्रमकंपनशोफवांस्त्यजति जीवितमाशु स भुग्नदृक् ॥ ९॥

ज्वर, बलका नाश, स्मृतिनाश, श्वास, टेढी दृष्टि, बेहोशी, अनर्थ भाषण, भ्रम, कंप और सूजन ये लक्षण (भुग्ननेत्र) सन्निपातके हैं । यह रोगी जल्दी मरता है ॥

१० रक्तष्ठीवी ।

रक्तष्ठीवी ज्वरवमितृषामोहशूलातिसारा हिक्काध्मानभ्रमणद-
वथुश्वाससंज्ञाप्रणाशाः । श्यामा रक्ता भवति मण्डलो-
त्थानरूपा रक्तष्ठीवी निगदित इह प्राणहन्ता प्रसिद्धः ॥१०॥

रक्तकी उलटी करे, ज्वर, वमन, तृषा, मूर्च्छा, शूल, अतीसार, हिचकी, अफरा, भौंरेका आना, सन्ताप, श्वास, संज्ञानाश, काली और लाल जीभ, देहमें रुधिरके विकारसे चकत्ते जिसमें ये लक्षण हों उसको (रक्तष्ठीवी) सन्निपात कहते हैं । यह प्राणनाशक प्रसिद्ध है ॥

११ प्रलापक ।

कम्पप्रलापपरितापनशीर्षपीडाप्रौढप्रभावपवमानपरोऽन्यचिन्ता ।
प्रज्ञाप्रणाशविकलप्रचुरप्रवादः क्षिप्रं प्रयाति पितृपालपदं प्रलापी ११

कंप, बडबडाना, सन्ताप, शिरमें पीडा इनका विशेष जोर हो, पवित्रतामें आसक्त' दूसरेकी चिन्ता करे, बुद्धिका नाश हो, विकल और बहुत बकवाद करे ऐसा यह (प्रलापक) सन्निपात है । इस सन्निपातवाला रोगी यमराजके पुरको पधारे ॥

१२ जिह्वक ।

श्वसनकासपरितापविह्वलः कठिनकण्टकपरीतजिह्वकः ।
बधिरमूकबलहानिलक्षणो भवति कष्टतरसाध्यजिह्वकः ॥ १२ ॥

श्वास, खांसी, सन्ताप, विह्वल, कठोर और कांटोंसे व्याप्त ऐसी जीभ, बहरा, गूंगा और बलकी हानि इन लक्षणोंसे संयुक्त ऐसा यह (जिह्वक) सन्निपात कष्टसाध्य है॥

१३ अभिन्यास।

दोषत्रयस्निग्धमुखत्वनिद्रावैकल्यनिश्चेष्टनकष्टवाग्मी।
बलप्रणाशः श्वसनादिनिग्रहोऽभिन्यास उक्तो ननु मृत्युकल्पः॥१३॥

त्रिदोषोंके कोपके समान मुखपर चिकनापन, निद्रा, बेकली, चेष्टाहीन हो, कष्टसे बोले, बलनाश, श्वासादिकोंका रुकना ये लक्षण (अभिन्यास) सन्निपातमें होते हैं, यह महाअसाध्य मृत्युके तुल्य है॥

सन्निपातोपद्रव।

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः।
शोथः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते॥ १४॥
ज्वरस्य पूर्वं ज्वरमध्यतो वा ज्वरान्ततो वा श्रुतिमूलशोथः।
क्रमादसाध्यः खलु कष्टसाध्यः सुखेन साध्यो मुनिभिः प्रदिष्टः॥१५॥

सन्निपातज्वर शांत होनेके पीछे कानकी जडमें दारुण सूजन पैदा होती है उस सूजनसे कोई रोगी बचे है प्रायः यह मारही डाले है। यदि यह सूजन ज्वरके पहिले होवे तो असाध्य है, ज्वरके मध्यमें होय तो कष्टसाध्य है और ज्वरके अंतमें होय तो सुखसाध्य है ऐसा मुनीश्वरोंने कहा है॥

सद्यस्त्रिपंचसप्ताहाद्दशाहाद्द्वादशादपि।
एकविंशद्दिनैः शुद्धः सन्निपाती सुजीवति॥ १६॥

सन्निपात हुए पर तत्काल तीन पांच सात दश और बारह दिनमें इक्कीश दिनतक सन्निपातवाला रोगी शुद्ध होकर जीवे हैं॥

त्रिदोषज्वराकी साधारण मर्यादा।

सप्तमी द्विगुणा यावन्नवम्येकादशी तथा।
एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च॥ १७॥
पित्तकफानिलवृद्ध्या दशदिवसद्वादशाहसप्ताहात्।
हन्ति विमुञ्चति पुरुषं त्रिदोषजो धातुमलपाकात्॥ १८॥

१-सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा। पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हन्ति वा॥ इति।

जबसे त्रिदोष प्रगट हो उस दिनसे लेकर ७ किंवा १४ और ९ किंवा १८ तथा ११ किंवा २२ दिनतक त्रिदोषज्वरोंकी मर्यादा है इस अवाधिमें ज्वर जाता रहै अथवा, मृत्यु होय । सात नौ और ग्यारह दिनमें मर्यादा वाताधिक पित्ताधिक और कफाधिक सन्निपातोंकी क्रमसे जाननी । पित्त, कफ और वात इनकी वृद्धि क्रम करके दस दिनकी बारह दिनकी और सात दिनकी है, इसमें त्रिदोषज्वर धातुपाक होनेसे मार डाले और मलपाक होनेसे रोगी रोगमुक्त होजाय ॥

धातुपाकलक्षण ।

निद्राबलौजोरुचिर्वीर्यनाशो हृद्वेदना गौरवतालपचेष्टा ।
विष्टंभता यस्य किलारतिः स्यात्स धातुपाकी मुनिभिः प्रदिष्टः।१९

निद्रा बल तेज रुचि वीर्य इनका नाश, हृदयमें पीडा, देह भारी, हीनचेष्टा, अफरा, मनका न लगना ये लक्षण जिसके हों उसको धातुपाकी मुनीश्वरोंने कहा है। धातुपाक काहिये उत्तरोत्तर रोगकी वृद्धि और बलकी हानि होकर शुक्रादि धातुसहित मूत्रादिकोंका जो पाक होय उसे धातुपाक कहते हैं ॥

मलपाकलक्षण ।

दोषप्रकृतिवत्कृत्य लघुता ज्वरदेहयोः ।
इन्द्रियाणां च वैमल्यं दोषाणां पाकलक्षणम् ॥ २० ॥

दोषोंका स्वभाव पलटजाय, ज्वरका हलका होना, देह हलकी हो, इन्द्रियोंका निर्मल होना ये मलपाकके लक्षण जानने । धातुपाक और मलपाक होना केवल ईश्वरपर है, इसमें दूसरा कोई हेतु नहीं है ॥

आगंतुकज्वर ।

अभिघाताभिचाराभ्यामभिषङ्गाभिशापतः ।
आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत् ॥ २१ ॥

तलवार छुरा मुक्का लकडी इत्यादि शस्त्र आदिके लगनेसे प्रगट ज्वरको अभिघातज कहते हैं और विपरीत मंत्रके जपनेसे लोहके स्रुवासे मारणार्थ सर्षपादिक होम अथवा कृत्याका प्रयोग करनेसे उत्पन्न ज्वरको अभिषंगज कहते हैं, काम शोक भय क्रोध भूतादिकोंके आवेशसे उत्पन्न ज्वरको अभिशापज कहते हैं ब्राह्मण गुरु वृद्ध सिद्ध इनके शाप देनेसे प्रगट ज्वरको अभिशापज कहते हैं. ये चार प्रकारसें आङ्गतुकज्वर उत्पन्न होय हैं । इस ज्वरके आरम्भसे पूर्व कोई दोषका प्रकाश नहीं हो पीछे जैसे दोष कुपित होवें तिनको उन्हीं २ दोषोंके लक्षण करके जाने, जैसें " कामशोकभयाद्वायुः " अर्थात् काम शोक भयसे वात कुपित होती है ॥

विषजन्य आगंतुकज्वर।

श्यावास्यता विषकृते दाहोऽतीसार एव च।
भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥ २२ ॥

अब आगंतुकज्वरोंके हेतुभेद करके लक्षण कहते हैं-स्थावर जङ्गम विष भक्षण करनेसे जो ज्वर होय उससे मुख श्यामवर्ण और दाह तथा दस्तोंका होना, अन्नमें अरुचि, प्यास, सुई चुभनेकीसी पीडा और मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं ॥

औषधगन्धजनित ज्वर।

औषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुः क्षवः।

तीक्ष्ण औषधके सूंघनेसे जो ज्वर होय उसमें मूर्च्छा, शिरमें पीडा, वमन, छींक ये लक्षण होते हैं ॥

कामज्वरके लक्षण।

कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्रालऽऽस्यमभोजनम् ॥ २३ ॥
हृदये वेदना चास्य गात्रं च परिशुष्यति।

सुन्दर स्त्रीके देखनेसे मनुष्यके मनमें घोर कामबाधाकी उत्पत्ति हो, उससे प्रगट ज्वरके ये लक्षण हैं-चित्तकी अस्थिरता, तन्द्रा, आलस्य, भोजनमें अरुचि, हृदयमें पीडा और शरीर सूख जावे ॥

भय शोक और कोपज्वरके लक्षण।

भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ॥ २४ ॥

भयसे और शोकसे उत्पन्न ज्वरमें अनर्थ बके, कोपसे प्रगट ज्वरमें कम्प हो ॥

अभिचार और अभिघातज्वरके लक्षण।

अभिचाराभिघाताभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते।

अभिचार और अभिघातसे प्रगट ज्वरमें मोह और तृष्णा होवे ॥

भूताभिषंगज्वरके लक्षण।

भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम् ॥ २५ ॥

भूतबाधासे उत्पन्न ज्वरसे चित्तमें उद्वेग हो, हँसे रोवे और कम्प ये लक्षण होते हैं ॥

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः।
भूताभिषङ्गात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ २६ ॥

काम शोक और भय इनसे वात कुपित होता है, क्रोधसे पित्त कुपित होता है और भूताभिषंगसे तीनों दोष कुपित होते हैं इनमें और भी लक्षण होते हैं अर्थात् उन्माद, निदानमें जिस जिस देवग्रहोंके लक्षण हास्य रोदन कम्पादिक कहे हैं वे लक्षण होतेहैं ॥

विषमज्वरकी सम्प्राप्ति ।

दोषोऽल्पोऽहितसंभूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः ।
धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ २७ ॥

जिस मनुष्यके ज्वर औषधादिक सेवन करनेसे शांत होनेके पश्चात् अपथ्य करनेसे वात पित्तादि दोष पुनः थोडे प्रकुपित हो रक्तरसादि धातुओंमेंसे किसी धातुमें प्राप्त हो और उनको दूषित कर विषमज्वर कहिये तृतीयक चतुर्थकादिक ज्वर उत्पन्न करे । वाशब्द करके प्रथमसे ही विषमज्वर होय है यह सूचना करी । यथा-" आरम्भाद्विषमो यस्तु " इति । अल्पशब्दसे यह दिखाया कि, यह दोष बलहीन होनेसे कालान्तरमें बलवान् होकर ज्वर करे और जो दोष बलवान् है वह नित्यज्वर करे है । विषमज्वरके लक्षण भालुकिने कहे हैं सो ऐसे कि, अनियत कालमें शीत उष्णकरके विषमवेग ज्वर होय उस ज्वरको विषमज्वर ऐसे कहते हैं । दूसरे लक्षण ऐसे कि, " मुक्तानुबन्धित्वं विषमत्वम् " अर्थात् जो ज्वर छोड दे और फिर आजावे उसको विषमज्वर ऐसे कहते हैं ॥

धातुगतज्वरके नाम ।

सततः संततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ।
संततं रसरक्तस्थः सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः ॥ २८ ॥
मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि ह्यस्थिमज्जगतः पुनः ।
कुर्य्याच्चातुर्थिकं घोरमन्तकं रोगसंकरम् ॥ २९ ॥

सन्तत सतत अन्येद्यु (द्व्याहिक) तृतीयक (त्र्याहिक) जिसको तिजारी कहते हैं और चातुर्थिक जिसको चौथिया कहते हैं ऐसे पांच प्रकारके विषमज्वर हैं ॥ सततशब्दकरके सतत और सन्तत ये दोनों जानने अर्थात् रसस्थ दोष सन्तत ज्वर करे हैं और रक्तस्थ दोष सतत ज्वर करे हैं इससे सन्तत और सतत ये दोनों शब्द केवल संज्ञावाचक हैं सातत्यवाचक नहीं हैं ऐसे जानने । मांसगत अन्येद्युष्क अर्थात् द्व्याहिक (एकतरा) को करे हैं और मेदगतदोष तृतीयक (तिजारी) ज्वर करे हैं और वेही दोष अस्थिमज्जामें प्राप्त हुए दुःसह मृत्युका कारक अनेक रोगोंसे व्याप्त ऐसा चातुर्थिक ज्वर प्रगट करे हैं ॥

संततज्वरके लक्षण ।

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ।
संतत्या योऽविसर्गी स्यात्संततः स निगद्यते ॥ ३० ॥

---

१ " यः स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च ।
वेगतश्चापि विषमो ज्वरः स विषमो मतः " ॥

सात दिनपर्यंत किंवा दश दिनपर्यंत किंवा बारह दिनपर्यन्त एकसा जो ज्वर निरन्तर रहे और उतरे नहीं तिसको सन्ततज्वर कहते हैं। सात दश बारह ये जो कहे सो अनुक्रम करके वात पित्त कफ इनके उल्बणसे कहे हैं, यह संततज्वर त्रिदोषज है कारण इसका बारह पदार्थोंका साथ होता है। ऐसे वातादिदोष धातुके प्रमाण मूत्र और मल इनको एक ही समय ग्रसकर सन्ततज्वर उत्पन्न करे हैं। बारह पदार्थ ये हैं—वातादिदोष ३ सप्त धातु ७ मूत्र १ और मल १ मिलकर बारह हुए॥

सततकादिकोंके लक्षण।

अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्त्तते। अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रमेककालं प्रवर्त्तते॥ ३१॥ तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः। केचिद्भूताभिषंगोत्थं वदंति विषमज्वरम्॥ ३२॥

काल छः हैं—१ पूर्वाह्ण, २ मध्याह्न, ३ अपराह्ण, ४ प्रदोष, ५ अर्द्धरात्रि, ६ प्रत्यूष. पूर्वाह्ण प्रदोष ये कफके काल हैं, मध्याह्न और अर्धरात्रि ये पित्तके काल हैं, अपराह्ण और प्रत्यूष ये वातके काल हैं। सन्ततज्वर दिनरातमें दो समय आता है, ईशानदेव कहते हैं कि, दिनके दो वेला अर्थात् दो वार, रात्रिके दो वेला अथवा दिनके एक वेला और रात्रिके एक वेला, एकके दो वेला अमुक वेलामें आवेगा जैसे ज्वरके आनेका समय नहीं कहा है। अन्येद्युष्कज्वर अहोरात्रिमें एक वेलामें आता है, तृतीयकज्वर जिस दिन आता है उसके तीसरे दिन फिर आता है और चातुर्थिक चौथे दिन आता है और कोई आचार्य इस विषम ज्वरको भूताभिषंगोत्थ कहते हैं, यह मत सुश्रुताचार्यकोही मान्य है अर्थात् उसने विषमज्वरपर बलि होमादि भूतोचित और कषायपानादिक दोषोचित ऐसी चिकित्सा कही है और विषमज्वर ये प्रायशः आगंतुकका सम्बन्धी है यह चरकने कहा है॥

उत्कृष्टदोषभेदकरके तृतीयक चतुर्थकोंके दूसरे लक्षण।

कफपित्तात्त्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः।
वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः॥ ३३॥
चातुर्थिको दर्शयति प्रभावं द्विविधं ज्वरः।
जङ्घाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरसोऽनिलसंभवः॥ ३४॥

तृतीयक ज्वर कफ पित्तके जोरसे त्रिकस्थान (तीन हड्डी) में पीडा करे है वात कफके जोरसे पीठमें पीडा करे है, वात पित्तके जोरसे मस्तकमें पीडा करे है, ऐसे तृतीयकज्वर तीन प्रकारका है। त्रिकग्राही जो इसका तात्पर्य यह है कि, त्रिक

---

१ त्रिक कहिये कमर और जंघाके मध्यकी तीन हड्डी।

वातका स्थान है उसके स्थानमें कफ पित्त दूसरेके स्थानमें पहुँचनेसे निर्बल हो जाते हैं इससे तीसरे दिन ज्वर करते हैं । यदि कफ पित्त स्वस्थानपर स्थित होय तो सन्ततज्वरको करते हैं यह जैज्जटका मत है । ऐसेही मस्तक कफका स्थान है और पीठ पित्तका स्थान है इनमें दूसरे दोषोंके पहुँचनेसे दुर्बल होकर तृतीयक ज्वर करते हैं। शंका-यदि त्रिक वातका स्थान है तो फिर आप पित्त कफका उस स्थानमें गमन कैसे कहते हो ? उत्तर-यह स्थानका नियम प्रकृतिस्थित दोषोंका कहा है कुपित दोषोंका नहीं कहा है क्योंकि कुपित दोषोंका सर्वत्र गमन होता है यह सुश्रुतका मत है । ऐसेही दोषोंका अन्यस्थानगतत्व होनेसे तथा दोषोंका निर्बलत्व होनेसे चातुर्थिक ज्वरमें भी जानना । चातुर्थिक ज्वर दो प्रकारकी शक्ति दिखाता है सो ऐसे-कफ अधिक जिसमें होवे वह प्रथम जंघाओंमें व्याप्त होकर पश्चात् सर्व देहमें व्याप्त होता है और वात अधिक जिसमें होवे वह पहले मस्तकमें व्याप्त होकर पीछे सर्व देहमें व्याप्त होता है। पांच प्रकारके विषमज्वर प्रायशः सन्निपातसे प्रगट होते हैं यह चरकका मत है । हारीत ऋषि कहते हैं कि चातुर्थिकज्वरमें पित्त प्रधान है। इन विषम ज्वरोंका उत्पत्तिक्रम वृद्धसुश्रुतमें इस प्रकारका लिखा है कि, कफके पांच स्थान हैं। उनमें जिस जिस स्थानमें दोष प्राप्त होते हैं वहां उसी २ विषमज्वरको प्रगट करते हैं । उन पांच स्थानोंके नाम-आमाशय १, हृदय २, कण्ठ ३, शिर ४ और सन्धि ५ । तहां आमाशयमें दोष पहुँचनेसे सन्ततकज्वर दो समय आता है, हृदय स्थित दोष आमाशयमें आनेसे एकान्तरा एक समय आता है, कण्ठमें स्थित दोष एक दिनमें हृदयमें आता है, दूसरे दिन आमाशयमें प्राप्त हो ज्वर करे उसे तृतीयक (तिजारी) कहते हैं, शिरमें स्थित जो दोष सो क्रमसे कण्ठ हृदय और आमाशयमें तीन दिनमें प्राप्त हो चतुर्थ दिवस चातुर्थिक ज्वर प्रगट करते हैं और उन दोषोंको उलटकर पुनः स्वस्थानमें पहुँचना उसी दिन होता है क्योंकि, दोष वेगवान् होते हैं और दोष सन्धिस्थित होते हैं तब प्रलेपक ज्वर प्रगट करते हैं, ये विषमज्वरके समान ज्वर हैं. कारण इसका यह है कि, सन्धि आमाशयमें स्थित है और सुश्रुतने कहा है कि प्रलेपक यह विषम ज्वर है धातुशोष रोगियोंको क्लेशका देनेवाला है ॥

विषमज्वरके भेद ।

विषमज्वर एवान्यश्चातुर्थिकविपर्ययः ।
स मध्येऽह्नि ज्वरयति ह्यादावन्ते विमुञ्चति ॥ ३५ ॥

---

१ कुपितानां हि दोषाणां शरीरं परिधावताम् । यत्र संगः स्ववैगुण्याद्व्याधिस्तत्रोपजायते ॥
२ प्रायशः सन्निपातेन दृष्टः पञ्चविधो ज्वरः । सन्निपाते तु यो भूयात् स दोषः परिकीर्तितः॥

चातुर्थिक ज्वरका उलटा यह दूसरा विषमज्वर है, यह प्रथम और अंतका दिन छोडकर बीचके दो दिन आता है जैसे यह चातुर्थिकका विपर्यय है तैसे ही तृतीयक आदिका भी विपर्यय होता है, उनको कहते हैं-जैसे बीचके एक दिन ज्वर आवे और आदि अन्तके दिन नहीं आवे यह तृतीयकका विपरीत और जो एक काल छोडकर सब दिन रात्रि ज्वर रहे वह अन्येद्युष्क इकन्तरेका विपरीत जानना। इनके विषयमें ग्रन्थकारोंके भिन्न भिन्न मत हैं, विस्तारके भयसे इस जगह नहीं लिखे हैं॥

वातबलासकज्वर।

नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शूनकस्तेन सीदति।
स्तब्धाङ्गः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी॥ ३६॥

वातबलासक नामक ज्वर जिस मनुष्यके हो वह उस ज्वरकरके शोथयुक्त अर्थात् सूजन हो और मन्दज्वर सदैव बना रहे, देह रूखी हो, अंग जकड जावे, कफ विशेष होय यह ज्वर वात और कफसे होता है इसको वातबलासकज्वर कहते हैं॥

प्रलेपकज्वर।

प्रलिम्पन्निव गात्राणि घर्मेण गौरवेण च।
मन्दज्वरविलेपी च स शीतः स्यात्प्रलेपकः॥ ३७॥

जिस ज्वरमें पसीनासे तथा सूर्यके घामसे अथवा देहके गौरवसे मानो देहको लिप्त करदियासा मालूम हो इसी हेतुसे मन्दज्वर हो, शीत लगे, यह ज्वर कफपित्तसे प्रगट होता है और राजयक्ष्मारोगमें यह होता है, कोई इसको त्रिदोषजनित कहते हैं, इसको प्रलेपकज्वर कहते हैं॥

विषमज्वरविशेषभेद।

विदग्धेऽन्नरसे देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते।
तेनार्धं शीतलं देहमर्धमुष्णं प्रजायते॥ ३८॥

अन्नका रस दुष्ट होनेसे और देहमें कफ पित्त दुष्ट होकर स्थित होनेसे (अर्धनारीश्वररूप अथवा नरसिंहरूप) अर्धांगज्वर प्रगट करे हैं अर्थात् अर्धदेह कफसे शीतल और अर्धदेह पित्तसे गरम होता है॥

---

१ वातबलासलक्षणं ग्रन्थान्तरे-" बलासो वायुना युक्तः शीतादि षडहो ज्वरम्। जनयेन्नयनस्रावं हृत्पीडां मधुरास्यताम्॥" २ प्रलेपकस्त्वविषमः प्रायः क्लेशाय शोषिणाम्। अन्ये रात्रिज्वरादयोऽपि विषमज्वरा बोद्धव्याः, यथोक्तम्-समौ वातकफौ यस्य क्षीणपित्तस्य देहिनः। रात्रौ प्रायो ज्वरस्तस्य दिवा हीनकफस्य तु॥

काये दुष्टं यदा पित्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः।
तेनोष्णत्वं शरीरस्य शीतत्वं हस्तपादयोः॥ ३९॥

जिस मनुष्यके कोठेमें पित्त दुष्ट हो और कफ हाथ पैरोंमें दुष्ट होकर स्थित होवे तिस करके सब देह उष्ण रहे और हाथ पग शीतल रहें॥

इन्होंका विपरीत द्वितीय ज्वर।

काये श्लेष्मा यदा दुष्टः पित्तं चान्ते व्यवस्थितम्।
शीतत्वं तेन गात्राणामुष्णत्वं हस्तपादयोः॥ ४०॥

जिस समय कोठेमें कफ दुष्ट हो और पित्त हाथ पैरोंमें दुष्ट होकर रहे तब शरीर शीतल हो और हाथ पैर उष्ण होयँ॥

शीतपूर्वकज्वरके लक्षण।

त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरम्।
तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च॥ ४१॥

कफ और वात ये दुष्ट होकर त्वचामें प्राप्त हों अर्थात् रसधातुका आश्रय कर प्रथम शीतज्वर उत्पन्न करते हैं और जब इनका वेग शांत होता है तब पिछाडी पित्त दाह करे है॥

दाहपूर्वकज्वरके लक्षण।

करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च।
तस्मिन्प्रशान्ते त्वितरौ कुरुतः शीतमन्ततः॥ ४२॥
द्वावेतौ दाहशीतादिज्वरौ संसर्गजौ स्मृतौ।
दाहपूर्वस्तयोः कष्टः सुखसाध्यतमोऽपरः॥ ४३॥

उसी प्रकार पहिले पित्त रसगत होकर अत्यन्त दाह करे है. पीछे उसका वेग शांतहुएपर वात कफ ये शीत करते हैं। दाहपूर्वक और शीतपूर्वक ये दोनों ज्वर संसर्ग अर्थात् त्रिदोषोंके सम्बन्धसे होते हैं, ऐसे ऋषियोंने कहा है उनमें दाहपूर्वक ज्वर दुःखप्रद और कृच्छ्रसाध्य है और शीतपूर्वक ज्वर सुखसाध्य है॥

सप्तधातुगत ज्वर। रसगतज्वरके लक्षण।

गुरुता हृदयोत्क्लेशः सदनं छर्द्यरोचकौ।
रसस्थे तु ज्वरे लिङ्गं दैन्यं चास्योपजायते॥ ४४॥

रसधातुमें स्थित ज्वर होय तो देह भारी, दोषोंको हृदयमें स्थित होनेसे उपस्थित वमनसी मालूम हो, ग्लानि,ओकारी,अरुचि और दैन्य कहिये मनमें खेद ये चिह्न होते हैं॥

रक्तगत ज्वरके लक्षण।

रक्तनिष्ठीवनं दाहो मोहश्छर्दनविभ्रमौ।
प्रलापः पिटिका तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ ४५ ॥

रुधिरका गिरना, दाह, मोह, वमन, भ्रम, अनर्थ बोलना, देहमें फुन्सी, प्यास ये लक्षण रक्तगत ज्वरके होनेसे होते हैं ॥

मांसगत ज्वरके लक्षण।

पिण्डिकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता।
ऊष्मान्तर्दाहविक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे ॥ ४६ ॥

जानुके नीचे पिंडियोंमें दण्ड आदिके लगनेकीसी पीडा, प्यास, मल मूत्रका निकलना, गरमी, अन्तर्दाह, हाथ पैरोंका इधर उधर पटकना और ग्लानि ये लक्षण जब मांसमें ज्वर पहुँच जाय है तब होते हैं ॥

मेदोगत ज्वरके लक्षण।

भृशं स्वेदस्तृषा मूर्च्छा प्रलापश्छर्दिरेव च।
दौर्गन्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदस्थे चासहिष्णुता ॥ ४७ ॥

अत्यन्त पसीनेका आना, प्यास, मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, देहमें दुर्गन्ध, अन्नमें अरुचि, ग्लानि और वेदना न सही जाय ये लक्षण मेदोगतज्वरमें होते हैं ॥

अस्थिगत ज्वरके लक्षण।

भेदोऽस्थ्नां कूजनं श्वासो विरेकश्छर्दिरेव च।
विक्षेपणं च गात्राणामेतदस्थिगते ज्वरे ॥ ४८ ॥

हाड फूटना तथा हाडोंका गूंजना, श्वास, दस्तका होना, वमन, हाथ पैरका चलना ये अस्थिगत ज्वरके लक्षण हैं ॥

मज्जागत ज्वरके लक्षण।

तमःप्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमिस्तथा।
अन्तर्दाहो महाश्वासो मर्मच्छेदश्च मज्जगे ॥ ४९ ॥

अन्धेरा आना, हिचकी, खांसी, शीत लगे, वमन, अन्तर्दाह, महाश्वास अर्थात् जो श्वासके निदानमें कहेंगे और मर्ममें पीडा यह मर्म शब्द इस जगह हृदयवाचक है अर्थात् हृदयमें पीडा हो ये मज्जागत ज्वरके लक्षण हैं ॥

शुक्रगत ज्वरके लक्षण।

मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे।
शेफसः स्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य च विशेषतः ॥ ५० ॥

रसादि धातुगत ज्वर शुक्रस्थानमें पहुंचनेसे रोगीका मरण होता है, इस ज्वरमें लिंगका जकडजाना और शुक्रका विशेष छूटना और सुश्रुतादिक आचार्य कहते हैं कि रक्तादि पदार्थोंका थोडा २ स्राव होता है ॥

प्राकृत और वैकृत ज्वरका लक्षण ।

वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यः प्राकृतः क्रमात् ।
वैकृतोऽन्यः सुदुःसाध्यः प्राकृतश्चानिलोद्भवः ॥ ५१ ॥

वर्षाऋतु शरदृतु और वसंतऋतु इसके मध्यमें वातादिकके क्रमसे जो ज्वर होय वह प्राकृत कहाता है जैसे वर्षाकालमें वातज्वर, शरत्कालमें पित्तज्वर और वसन्त कालमें कफज्वर, इससे विपरीत जो ज्वर हो उसको वैकृतज्वर कहते हैं जैसे-वर्षाकालमें पैत्तिक, शरदऋतुमें श्लैष्मिक और वसन्तऋतुमें वातिक, यह वैकृतज्वर दुःसाध्य है अर्थात् प्राकृत ज्वर सुखसाध्य है और वातजन्य प्राकृत ज्वर यह भी दुःसाध्य है और रोगोंमें प्राकृतत्व दुःसाध्य है परन्तु ज्वरमें व्याधिस्वभाव करके सुखसाध्यत्व कहा है ॥

प्राकृतज्वरोंकी चिकित्साके निमित्त उत्पत्तिक्रम कहते हैं-

वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम् ।
कुर्याच्च पित्तं शरदि तस्य चानुबलः कफः ॥ ५२ ॥
तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम् ।
कफो वसन्ते तमपि वातपित्तं भवेदनु ॥ ५३ ॥

ग्रीष्मऋतुसे सञ्चित हुआ वायु वर्षाकालमें कुपित हो पित्त कफयुक्त हो ज्वरको प्रगट करे है उसी प्रकार वर्षाकालमें सञ्चित हुआ पित्त शरदृतुमें दुष्ट होकर ज्वरको उत्पन्न करे है उसको कफका अनुबन्ध होता है । उस ज्वरमें कफ पित्तके स्वभाव करके और विसर्ग काल करके लंघन करनेसे भय नहीं होय । तैसे ही

---

१ यदुक्तम्-प्राकृतः सुखसाध्यस्तु वसंतशरदुद्भवः॥२ ज्वरे तुल्यर्तुदोषत्वं प्रमेहे तुल्यदूष्यता। रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् ॥ ३ अनुबलं यथा-स्वतंत्रस्य कस्यचिद्राज्ञो गजरथतुरगपुरुषादिबलवतो वैरिभिः सह युध्यमानस्य पश्चादन्यबलं तच्छक्तेरनुबलोपबृंहणार्थमागच्छति एवं स्वतन्त्रस्य पित्तस्य ज्वरं कुर्वतो बलोपबृंहणं शरदि कफः करोति, तयोः पित्तश्लेष्मणोः प्रकृत्या स्वभावेन तत्कृतयोर्ज्वरयोरनशनालंघनाद्भयं न भवतीति ॥ वर्षा शरद और हेमंत ये विसर्गकाल हैं इनमें चन्द्रमाका बल रहे है इनमें प्राणोंका बल बढे है। और शिशिर वसन्त ग्रीष्म ये आदानकाल हैं इनमें सूर्य्यका बळ अधिक होता है इसीसे प्राणोंका बलक्षीण होता है ॥

हेमन्तकालमें सञ्चित भया कफ वसन्तकालमें ज्वर उत्पन्न करे है तिसके पिछाडी वात पित्त सहायक होते हैं ॥

कालें यथास्वं सर्वेषां प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव वा।
निदानोक्तानुपशयो विपरीतोपशायिता ॥ ५४ ॥

वातादिकोंकी यथायोग्य अपने कालमें उत्पत्ति और वृद्धि होवै है अथवा उत्पत्ति नित्य ज्वरकी और वृद्धि विषमज्वरकी होती है जैसे–कालमें ये दोष विशेष जाननेके लक्षण हैं उसी प्रकार उपशय और अनुपशय भी रोग जाननेके कारण हैं। सो इस प्रकार जानना–निदानत्व करके जो आहार विहार कहे हैं उनसे सेवन करनेको अनुपशय कहिये दुःखकी उत्पत्ति होती है और दोषोंके विपरीत जो आहार विहार उन्होंसे उपशायिता कहिये सुखकी उत्पत्ति होय है ॥

अन्तर्दाहोऽधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः। सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चोविनिग्रहः ॥ ५५ ॥ अन्तर्वेगस्य लिङ्गानि ज्वरस्यैतानि लक्षये। सन्तापोऽभ्यधिको बाह्यस्तृष्णादीनां च मार्दवम् ॥ बहिर्वेगस्य लिङ्गानि सुखसाध्यत्वमुच्यते ॥ ५६ ॥

पिछाडी जो ज्वर कहे हैं उन्होंमें सम्प्राप्तिके भेदसे कोई एक ज्वर अंतर्वेग होता है और कोई ज्वर बहिर्वेग होता है तिन दोनोंके लक्षण कहते हैं–अंतर्दाह, अतितृषा, बडबडाना, श्वास, भ्रम, संधि और हाड इनमें पीडा, पसीना न आवे, वायु और मलका बाहर न निकलना ये अंतर्वेगज्वरके लक्षण जानने। शरीरके बाहर संताप अधिक होवे, तृष्णादिक लक्षण थोडे होवें, ये बहिर्वेगज्वरके लक्षण हैं यह ज्वर सुखसाध्य है इस ज्वरके सुखसाध्य कहनेसे अंतर्वेगज्वर कृच्छ्रसाध्य और असाध्य है; यह सूचना करी ॥

चिकित्सा करनेके निमित्त आम पच्यमान और निराम ज्वरके लक्षण कहते हैं–

लालाप्रसेकहृल्लासहृदयाशुद्ध्यरोचकाः। तन्द्रालस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता ॥ ५७ ॥ क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवाञ्ज्वरः। आमज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ ५८ ॥ भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो जनयति ज्वरम्। शोधनं शमनीयं च करोति विषमज्वरम् ॥ ५९ ॥

लारका गिरना, खाली ओकारीका आना, हृदयमें जडत्व, अरुचि, तंद्रा, आलस्य, अन्नका परिपाक न होना, मुखका स्वाद जाता रहे, देह भारी, भूखका नाश, वारंवार मूतना, देहका जकडना, देहमें बलवान् ज्वर हो ये अपक्व ज्वरके लक्षण जानने,

इस ज्वरमें वैद्य औषधी न दे, अपक्क ज्वरमें औषधि देनेसे ज्वरकी वृद्धि होती है और शोधन तथा शमन औषध देनेसे विषमज्वरको करै हैं ॥

ज्वरके दश उपद्रव ।

श्वासो मूर्च्छाऽरुचिस्तृष्णा छर्द्यतीसारविड्ग्रहः ।
हिक्का श्वासोऽङ्गदाहश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ॥ ६० ॥

भावप्रकाशके मतसे दश उपद्रवोंको कहते हैं—श्वास, मूर्च्छा, अरुचि, प्यास, वमन, अतीसार, मलका रुकना, हिचकी, खांसी, देहमें दाह ये ज्वरके दश उपद्रव हैं ॥

पच्यमान ज्वरके लक्षण ।

ज्वरवेगोऽधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः ।
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ६१ ॥

ज्वरका वेग, अधिक प्यास, प्रलाप, भ्रम, मलकी प्रवृत्ति, उपस्थित वमनसी मालूम होय ये पच्यमान ज्वरके लक्षण हैं ॥

पक्कज्वर किंवा निरामज्वरके लक्षण ।

क्षुत्क्षामता लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमार्दवम् ।
दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम् ॥ ६२ ॥

भूखका लगना, देवका कृश होना, अंगोंका हलकापना, मन्द ज्वरका आना, अधोवायुकी प्रवृत्ति होना, मनमें उत्साहका होना ये निरामज्वरके लक्षण जानने ॥

ग्रन्थांतरसे जीर्णज्वरके लक्षण ।

त्रिःसप्ताहे व्यतीते तु ज्वरो यस्तनुतां गतः ।
प्लीहाग्निसादं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते ॥ ६३ ॥

२१ दिवस व्यतीत होनेपर जो ज्वर बारीक हो देहमें रहे जिससे प्लीहा अर्थात् तापतिल्ली रोग और मन्दाग्नि होवे उसको जीर्णज्वर कहते हैं ॥

साध्यज्वरके लक्षण ।

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ।

बलवान् पुरुषके थोडे दोषयुक्त और श्वास आदि उपद्रव करके रहित जो ज्वर हो वह साध्य जानना ।

असाध्यज्वरके लक्षण ।

हेतुभिर्बहुभिर्जातो बलिभिर्बहुलक्षणः ।
ज्वरः प्राणान्तकृद्यश्च शीघ्रमिन्द्रियनाशनः ॥ ६४ ॥

जो ज्वर बहुत प्रबल कारणोंसे उत्पन्न भया हो और जिसमें सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों वह ज्वर प्राणोंका हरण करनेवाला जानना और जो ज्वर प्रगट होते ही चिकित्सा करते २ इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट कर दे अर्थात् अन्धा बहिरा इत्यादि वह भी ज्वर असाध्य जानना ॥

ज्वरः क्षीणस्य शूनस्य गम्भीरो दैर्घ्यरात्रिकः ।
असाध्यो बलवान् यश्च केशसीमन्तकृज्ज्वरः ॥ ६५ ॥

जो पुरुष ज्वरसे क्षीण पडगया हो अथवा सूजन जिसके देहमें आगई हो वह असाध्य है और जिसके ज्वर धातुके भीतर हो अथवा अन्तर्वेगज्वर अथवा जिसमें वातादि दोषोंका निश्चय न होसके और बहुत दिनतक रहनेवाला ज्वर असाध्य होता है और ज्वर बलवान् हो तथा जिसमें रोगी अपने हाथसे केशों (बालों) की सीमन्त आदि रचना करे वह ज्वर असाध्य है ॥

गम्भीरज्वरके लक्षण ।

गम्भीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यन्तर्दाहेन तृष्णया ।
आनद्धत्वेन चात्यर्थं श्वासकासोद्गमेन च ॥ ६६ ॥

अन्तर्दाह, प्यास, दोष अर्थात् विरुद्ध दोषके बढनेसे मलके रुकनेसे तथा श्वास खांसीके उत्पन्न होनेसे गम्भीर ज्वर जानना ॥

दूसरे असाध्यज्वरके लक्षण ।

आरम्भाद्विषमो यस्य यस्य वा दैर्घ्यरात्रिकः ।
क्षीणस्य चातिरूक्षस्य गम्भीरो हन्ति मानवम् ॥ ६७ ॥
विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोऽपि वा ।
शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ॥ ६८ ॥

जो ज्वर प्रगट होते ही विषम पड जांय और जो ज्वर बहुत दिनसे आथा करे और क्षीण तथा अतिरूक्ष देहवाले पुरुषके जो गम्भीर ज्वर हो वह मृत्युकारक होता है और जो बेहोश होकर मोहको प्राप्त हो तथा गिरकर जिससे उठा न जाय पडाही रहे अथवा बाहरी शीत लगे और देहके भीतर दाह हो ऐसे ज्वरवाला पुरुष मरजावे ॥

और असाध्य लक्षण ।

यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि संघातशूलवान् । वक्रेण चैवो-
च्छ्वसिति तं ज्वरो हन्ति मानवम् ॥ ६९ ॥ हिक्काश्वासतृषा-

युक्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम्। संततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः॥ ७०॥ हतप्रभेन्द्रियं क्षाममरोचकनिपीडितम्। गम्भीरतीक्ष्णवेगार्त्तं ज्वरितं परिवर्जयेत्॥ ७१॥

जिसके देहमें रोमांच खडे रहें, लालनेत्र हों, हृदयमें गांठ होनेसे जैसी पीडा हो वैसा हो और संघात इस पदका यह अर्थ करते हैं कि, नाना प्रकारका शूल हो मुखके द्वारा श्वास ले वह ज्वर रोगी मनुष्यको मार डाले। हिचकी श्वास प्यास इन करके व्याप्त हो, मोहयुक्त हो चलायमान नेत्र हों, निरंतर श्वास ले ऐसे लक्षणयुक्त मनुष्यको ज्वर मार डालता है। इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट होनेसे और शरीरकी कांति निस्तेज होनेसे अथवा इन्द्रिय (नाक कान नेत्र) ये नष्ट हो जावें, देह कृश हो जावे, अरुचिसे अत्यंत पीडित हो " अरोचकनिपीडितम् " इसका इस जगह जैज्जटने दो पाठ लिखे हैं एक तो–" दुरात्मानमुपद्रुतम् " इसका अर्थ यह है कि, दुष्ट अंतःकरण होवे और उपद्रवयुक्त होवे। दूसरा पाठ यह है कि " दुरात्मभिरुपद्रुतम् " अर्थात् राक्षसादिकरके युक्त हो तथा अतिघोर अन्तर्वेग करके परिपीडित हो ऐसे ज्वरवान् पुरुषको वैद्य छोडदेवे। इसी जगह कई एक टीकाकारोंने जो असाध्यलक्षण लिखे हैं सो आतंकदर्पण तथा मधुकोश टीकासे लिखे हैं वे सब वाग्भट और हारीतके कालज्ञान देखनेसे निश्चय हो जायँगे सो लेवे, इस जगह हम ग्रन्थ बढनेके भयसे नहीं लिखते॥

ज्वरमुक्तिके पूर्वरूप।

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कम्पो विड्भेदसंज्ञिता। कूजनं चातिवैगन्ध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे॥ ७२॥

दाह, पसीना, भ्रम, प्यास, कंप, मलका पतला होना, संज्ञाका नाश होना, गूंजे, देहमें अत्यंत दुर्गंध आवे ये लक्षण ज्वर छोडता है तब होते हैं. शंका--क्यों जी! दोष (वात पित्त कफ) नाशके विना रोगकी निवृत्ति होय नहीं और जब दोष क्षीण होगये तो उस दाहादिलक्षण कैसे करते हैं? उत्तर--इसका कारण यह है कि, कोई एक वस्तुका ऐसा स्वभाव है कि क्षीण होनेके समयमें अपनी शक्तिको दिखाती है जैसे दीपकमें तेल नहीं रहे और थोडी देर बलकर शांत हो जाता है ऐसेही जब दोष शांत होनेको होते हैं तब अपनी शक्ति दाहादिकोंको दिखाते हैं। अथवा दूसरा उत्तर यह है कि, जैसे बंदर वृक्षकी डालीको हिलायकर दूसरे स्थानपर चलाजाता है परन्तु वह वृक्षकी डाली बहुत देरपर्यंत हिला करती है इसी प्रकार ज्वर गयेपर भी उसके असरसे दाहादिक रहते हैं यह लक्षण दाहसे आदि ले त्रिदोष ज्वरके शांत होनेके समय होते हैं और सब ज्वरोंमें नहीं होते और ज्वरमें केवल पसीने ही आते हैं यह भालुकी आचार्यका मत है॥

ज्वरमुक्तिके लक्षण।

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूः पाको मुखस्य च।
क्षवथुश्चान्नकांक्षा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ७२ ॥

इति ज्वरनिदानम् ॥

पसीने आवें, देह हलका हो, मस्तकमें खुजली चले, मुखका पाक अर्थात् होठोंमें पपडी पडजाय, छीक आवे, भोजन करनेकी इच्छा हो ये लक्षण ज्वरमुक्तके हैं ॥

प्रसंगवशाज्ज्वरमुक्तलक्षणं ग्रन्थान्तरे-

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः
पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम्।
स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगिमनोऽन्नलिप्सा
कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥ १ ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषा-
टीकायां ज्वरनिदानं समाप्तम् ॥

इंग्रेजी मतानुसार ज्वर निदान।

ज्वरको इंग्रेजीमें (Fever) फीवर कहते हैं उसकी उत्पत्ति।

१--शरदी।

शरदी पडनेसे मनुष्यका सब देह रोमांचबद्ध होजाय तब पसीनेका निकलना रुकजाय इस हेतुसे देहका जो अवगुण सो देहके बाहर नहीं निकले इसीसे देह हलका नहीं होय और वही देहका अवगुण ज्वररोगको प्रगट करता है। इस ज्वरको सामान्य ज्वर कहते हैं। अथवा देह अतिगरमीसे पीडित होय उस समय किसी कारणसे शीतल करे तो शरदी होती है अथवा किसी अतिपरिश्रम करनेसे मनुष्यके देहसे पसीने निकलें उस समय हवामें बैठे अथवा हवामें शयन करनेसे शरदी होती है अथवा रातमें मैदानमें सोनेसे अथवा रातमें शीतलपवनके लगनेसे पसीना नहीं निकले इस हेतुसे शरदी होय अथवा गीला कपडा ओढकर बैठनेसे वा सोनेसे शरदी होय है इन कारणोंसे शरदी होय वह शरदी अनेक प्रकारके ज्वरोंकी उत्पत्ति करे है ॥

२--मन्दवायु।

जिस समय पृथ्वीमें वर्षाका अथवा और प्रकार जल सूखे उसमें घास पत्ता सड़-जावे तब इनसे मन्द वायु अथवा बाष्प उत्पन्न होय तिसके द्वारा अनेक प्रकारके ज्वर प्रगट होवें, विशेषकरके आमज्वरकी अधिक उत्पत्ति होय इसीसे जलाशयस्थान तालाब आदि और झील खाल इन स्थानोंमें मन्दवायु अधिक होता है इससे नाना प्रकारके ज्वर प्रगट होयँ, यह हवा सोताके जलसे उत्पन्न नहीं होय है किन्तु जिस जगह थोडा जल होय जैसे तलैया आदि उसमें घाम लगनेसे जल पक्क होकर गन्ध वायुको अधिक उत्पन्न करे है यह वायु दिनमें सूर्य्यकी किरणसे बहुत हलकी होकर ऊपरको उठे इसीसे यह बडा नुकसान करनेवाली होती है और सन्ध्या तथा रात्रिमें यह वायु शीतल होनेसे नीचे उतर सर्व साधारण मनुष्योंको नुकसान करनेवाली होती है और हवाओंसे यह हवा अधिक भारी होती है, घरके किंवाड लगानेसे यह हवा घरके भीतर कम जाती है इसीसे घरके किंवाड देकर मसेरी जिसको पूर्वके लोग बहुधा रखते हैं यह कपडेकी बनी हुई होती है इसमें सोना चाहिये॥

३--गरिष्ठ भोजन।

जो मनुष्य भारी द्रव्य भोजन करे तब उसके वह पचै नहीं और पेटमें पीडा करे उस पीडाके होनेसे ज्वर उत्पन्न होय, विशेषकरके यह ज्वर बालकोंके होता है॥

अनेकप्रकारके ज्वरोंके लक्षण।

नाडी और श्वास जल्दी चले, मस्तकमें पीडा होय, त्वचा शुष्क और गरम होय प्रलाप होय अथवा न होय पेशाब लाल उतरे, जीभ मलीन होय, शरीरमें सदा ज्वर रहाकरे कभी कम होजाय कभी जियादह हो जाय॥

कुंकुमज्वरके लक्षण।

श्वास लेते समय मन्द मन्द पीडा होय, खांसी हो, कफ कुछ नीले रंगका गिरे, ज्वर अल्प होय, वक्षस्थलमें पीडा होय, खांखते समय श्वास जल्दी चले, नाडी कुछ कुछ थोडी और शीघ्र चले, त्वचा सदैव थोडी गरम रहे; जिस समय रोगकी वृद्धि होय, स्वासके चलनेसे पीडा होय और अधिक पीडा होय उस रोगके आरम्भमें कफ नहीं निकले किन्तु दो तीन दिनके बाद कफसमेत निकल पडे उस रोगीका हल्दीके समान पीला वर्ण होय, कभी कभी जलके सदृश वर्ण होय इस रोगकी विशेषता होनेसे कफ पतला होजाय, यह रोग अत्यन्त बढकर पचनेको होय तब कफका शाकके समान रंग हो अथवा काले रंगका और दुर्गंधयुक्त होय बहुत शरदी पडनेसे इसकी उत्पत्ति होती है॥

यकृत वा कलेजाज्वरके लक्षण।

दहने पाँसूमें पीडा होय, शरीरमें थोडा ज्वर होय तथा आहारमें अरुचि होय जीभ मलिन, नेत्र पीले होयँ, मल मिट्टीके रंगका अथवा सफेद तथा काला होय और कठिन, पेशाब लाल होय॥

अथातिसारनिदानम्।

पित्तज्वरमें अतिसार होता है तथा ज्वरको और अतिसारको अन्योन्य उपद्रव होनेसे ज्वरके अनन्तर अतिसार रोगको कहते हैं-

गुर्वतिस्निग्धतीक्ष्णोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः। विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चातिभोजनैः॥ १॥ स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयैः। शोकदुष्टाम्बुमद्यातिपानैः सात्म्यर्तुपर्ययैः॥ २॥ जलाभिरमणैर्वेगविघातैः कृमिदोषतः। नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते॥ ३॥

प्रमाणसे अधिक भोजन करनेसे अथवा स्वभावसे भारी पदार्थ जैसे उडद आदिक खानेसे और अतिचिकनी अतितीखी अतिगरम अत्यन्त पतली स्थूल अर्थात् जिसके अवयव कठिन हों जैसे लडडू, घेवर, गूंझा इत्यादि और अत्यन्त शीतल स्पर्शसे तथा वीर्यसे विरुद्ध जैसे क्षीर मत्स्य इत्यादिक, अध्यशन कहिये पूर्व दिनका भोजन परिपाक नहीं होय और उसपर भोजन करना, अन्नके विना पके, नित्य भोजनके समयको त्यागकर और समय थोडा वा बहुत ऐसे भोजनोंके करनेसे स्नेह स्वेद आदि पंचकर्मसे, अत्यन्त योगके करनेसे वा थोडे योग करनेसे स्थावरादिक दूषी।विषके खानेसे, भयसे, सोच करनेसे, अतिदुष्ट जलके पीनेसे तथा अतिमद्यके पीनेसे सात्म्य और ऋतुके पलटनेसे, जलमें अतिक्रीडा करनेसे, मल मूत्र आदि वेगोंको रोकनेसे, कृमिरोगके उपद्रवसे अथवा कृमिजनित वातादिकके कोपसे मनुष्योंको अतिसार रोग होता है, इन लक्षणोंसे यह निदान यथासम्भव वातादिदोषोंका जानना। आगे अतिसारके लक्षण कहते हैं॥

अतिसाररोगकी संप्राप्ति।

संशम्यापां धातुरग्निं प्रवृद्धो वर्चोमिश्रो वायुनाऽधः प्रणुन्नः। सरत्यतीवातिसारं तमाहुर्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति। एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः॥ ४॥

पूर्वोक्त कुपथ्यसे अत्यन्त दुष्ट हुए शरीरमें रस, जल, मूत्र, स्वेद, मेद, कफ, पित्त, रुधिर इत्यादि जलरूप धातु अग्निको मन्द कर और वही जल मलमिश्रित

१ तदुक्तं चरके-"भुक्तं पूर्वान्नशेषे तु पुनरध्यशनं मतम्।
"२ बहुस्तोकमकाले च तज्ज्ञेयं विषमाशनम्॥"

हो पवनका प्रेरित गुदाके मार्गसे बारंबार नीचेको बहुत उत्तरे तिसको अतिसार कहते हैं । यह भयंकर अतिसार रोग ६ प्रकारका है-वातका १, पित्तका २, कफका ३, ४ सन्निपातका, ५ शोकका और ६ आमातिसार ऐसे छः प्रकारका अतिसार है । द्वंद्वज अतिसार व्याधिस्वभावकरके नहीं होते, चरकमें आमातिसार नहीं कहा । भय और शोकसे दो कहकर संख्या पूरी करी है । और आमातिसारको सन्निपातातिसारके अन्तर्गत कहा है ॥ यहां माधवाचार्यने भयातिसारकी वातज अतिसारमें गणना करी है ॥

अतिसारके पूर्वरूप ।

हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधाः ।
विट्सङ्ग आध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि॥५॥

हृदय, नाभि, गुदा, पेट, कूख इनमें पीडा हो, शरीरमें फूटनी हो, गुदाका पवन रुकजाय, मलका अवरोध हो अफरा हो और अन्न पचे नहीं ये लक्षण-अतिसाररोगके पूर्वरूपके होते हैं ॥

वातातिसारके लक्षण ।

अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः ।
शकृदामं सरुक्शब्दं मारुतेनातिसार्यते ॥ ६ ॥

कुछ ललाईको लिये, झाग मिला तथा रूखा, थोडा थोडा बारम्बार आम मिला हुआ दस्त उत्तरे और शूल चले तथा मल उतरते समय शब्द होवे तो वातातिसार जानना ॥

पित्तातिसारके लक्षण ।

पित्तात्पीतं नीलमालोहितं वा तृष्णामूर्च्छादाहपाकोपपन्नम् ।

पित्तसे पीला काला और घूसरे रंगका मल उतरता है तथा तृष्णा मूर्च्छा और सम्पूर्ण शरीर तथा गुदामें दाह होती है, गुदा पकजाती है ये लक्षण पित्तातिसारके हैं ॥

कफातिसारके लक्षण ।

शुक्लं सान्द्रं सकफं श्लेष्मयुक्तं विस्रं शीतं हृष्टरोमा मनुष्यः ॥ ७ ॥

कफातिसारवाले पुरुषका मल सफेद, गाढा, चिकना, कफमिश्रित, दुर्गंधयुक्त और शीतल उतरता है तथा रोम खडे होजाते हैं ये लक्षण कफातिसारके जानने ॥

सन्निपातातिसारके लक्षण ।

वराहस्नेहमांसाम्बुसदृशं सर्वरूपिणम् ।
कृच्छ्रसाध्यमतीसारं विद्याद्दोषत्रयोद्भवम् ॥ ८ ॥

सूकरकी चरबीसदृश अथवा मांसके धोये हुए पानीके सदृश और वातादि त्रिदोषोंके जो लक्षण कहे हैं उन लक्षणसंयुक्त हो ऐसा यह त्रिदोषजनित अतिसार कष्टसाध्य जानना ॥

शोकातिसारके लक्षण।

तैस्तैर्भावैः शोचतोऽल्पाशनस्य बाष्पोष्मा वै वह्निमाविश्य जन्तोः।
कोष्ठं गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं तच्चाधस्तात्काकणन्तीप्रकाशम् ॥
निर्गच्छेद्वै विड्विमिश्रं ह्यविड्वा निर्गन्धं वा गन्धवद्वातिसारः ॥ ९॥

जिस पुरुषके पुत्र, मित्र, स्त्री, धन इनका नाश होजावे वह उसी उसी वस्तुका शोच करे इसीसे क्षुधा मन्द होनेसे धातुक्षय होय, ऐसे प्राणीके बाष्प (नेत्र नासा गले आदिसे जो शोकद्वारा जल गिरे सो) और ऊष्मा कहिये शोकजन्य देह-तेज ये दोनों बाष्पोष्मा कोठेमें प्राप्त हो अग्निको मन्द कर रुधिरको कुपित करे तब यह रुधिर चिरमिटीके रंगसदृश हुआ गुदाके मार्ग होकर मलयुक्त अथवा मलरहित निकले तथा गन्धयुक्त अथवा गन्धरहित दस्त उतरे उसको शोकातिसार कहते हैं, इसी प्रकार भयातिसार भी जान लेना ॥

शोकातिसारके कृच्छ्रसाध्यत्व लक्षण।

शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं रोगो वैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः॥१०॥

शोकसे उत्पन्न हुआ जो अतिसार वह चिकित्सा करनेमें बहुत कठिन है कारण कि, शोक शांत हुए विना केवल औषधोंसे शांति नहीं होती इससे वैद्योंने यह कष्ट-साध्य कहा है ॥

आमातिसारके लक्षण।

अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताः क्षोभयन्तः कोष्ठं दोषा धातुसङ्घान्मलांश्च।
नानावर्णं नैकशः सारयन्ति शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति ॥ ११ ॥

अन्नके न पचनेसे दोष (वात पित्त कफ) अपने मार्गको छोडकर कोठेमें प्राप्त हो कोठेको दूषित कर रक्तादि धातु और पुरीषादि मलको बारबार गुदाके मार्गसे बाहर निकाले और इसका रंग अनेक प्रकारका हो तथा शूलयुक्त दस्त उतरे इसको छठा आमातिसार वैद्य कहते हैं। शंका-प्रथम कहि आये हैं कि, अति-सार रोग छः प्रकारका होता है, पुनः-"षष्ठमेनं वदंति" यह पद क्यों धरा ? उत्तर-यह पद नियमके अर्थ माधवाचार्यने सुश्रुतके मतसे संग्रह किया है। हमारे

मतमें छठा अतिसार आमज है जो भयसे उत्पन्न हुआ और आचार्य मानते हैं वह, हम नहीं मानते अतएव ' षष्ठमेनं' पुनः कहा है क्योंकि भयादि अतिसारोंका वात पित्त कफ अतिसारोंके अन्तर्गतत्व है ॥

आमके लक्षण ।

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति ।
पुरीषं भृशदुर्गन्धि पिच्छिलं चामसंज्ञितम् ॥ १२ ॥

पूर्व कहे वातादि अतिसारोंके मिलेहुए लक्षणसंयुक्त जो मल वह जलमें गेरनेसे डूब जाता है, क्योंकि आम वातजमें भारी है और उसमें बहुत दुर्गंध आती है तथा अत्यन्त गाढा होता है उसकी आमसंज्ञा है ॥

पक्व लक्षण ।

एतान्येव तु लिङ्गानि विपरीतानि यस्य वै ।
लाघवं च विशेषेण तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

और ऊपरके श्लोकसे विपरीत लक्षण होवे अर्थात् शरीर हलका हो तथा मल जलमें डूबे नहीं और दुर्गंधिरहित हो, बबूलरहित हो उस रोगीका मल पक्व हुआ जाने ॥

असाध्य लक्षण ।

पक्वं जाम्बवसङ्काशं यकृत्पिण्डनिभं तनु । घृततैलवसामज्जावेसवारपयोदधि ॥ १४ ॥ मांसधावनतोयाभं कृष्णं नीलारुणप्रभम् । मेचकं कर्बुरं स्निग्धं चन्द्रकोपगतं घनम् ॥ १५ ॥ कुणपं मातुलुङ्गाभं दुर्गन्धं कुथितं बहु । तृष्णादाहारुचिश्वासहिक्कापार्श्वास्थिशूलिनम् ॥ १६ ॥ संमूर्च्छारतिसंमोहयुक्तं पक्ववलीगुदम् । प्रलापयुक्तं च भिषग् वर्जयेदतिसारिणम् ॥ १७ ॥

पके जामुनके रंगसदृश काला और चिकना तथा काला और लोहित रंग पतला घृत तेल चरबी मज्जा वेशवार दूध दही और मांसके धोनेसे जैसा जल निकले है ऐसा रंग हो, काजलके रंगसमान अथवा नीलमिश्रित अरुण रंग अर्थात् पपैया पक्षीके पंखके रंगसमान अथवा खंजन पक्षीके वर्णसदृश तथा अनेक रंगका चिकना मोरकी चंद्रिकाके सदृश रंग, दृढ, मुरदाकीसी दुर्गंध युक्त, मस्तककी मज्जाके समान

---

१ वेशवार नाम-मांसमेंसे हड्डी निकाल और कूटकर दही दूध काली मिरच डालकर जो पदार्थ बनाते हैं तत्सदृश रंग हो ।

गन्धयुक्त बुरी दुर्गंधके समान, प्यास, दाह, अरुचि, श्वास, हिचकी, पसवाडोंके हाडोंमें पीडा, मनको मोह और इंद्रियोंको मोह. अरति ये लक्षण होयँ तथा गुदाके आंटोंका पकना अनर्थ भाषण करे ऐसे आतिसारी रोगीको वैद्य छोडदे ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

असंवृतगुदं क्षीणं दुराध्मानमुपद्रुतम् ।
गुदे पक्के गतोष्माणमतिसारिणमुत्सृजेत् ॥ १८ ॥

जिसकी गुदाका दस्तके पिछाडी संकोच न होवे, क्षीण पुरुष, अत्यन्त अफरा-युक्त अथवा "दुरात्मानं" ऐसा भी पाठान्तर है अर्थात् जिसकी इंद्रिय वश न होवे तथा अतिसारके शोथादिक उपद्रव करके युक्त और गुदाके स्थानमें पाककर्त्ता पकानेवाला पित्त विद्यमान होते हुए जिसकी देहमें गरमीसी नहीं दीखे अर्थात् देह शीतल हो अथवा जिसकी अग्नि नष्ट होजावे ऐसे अतिसारी रोगीको वैद्य त्याग देवे ॥

अतिसारके उपद्रव ।

शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासकासमरोचकम् ।
छर्दिं मूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वाऽतीसारिणं त्यजेत् ॥ १९ ॥

सूजन, शूल, ज्वर, तृषा, श्वास, खांसी, अरुचि, वमन, मूर्छा, हिचकी ऐसे लक्षण जिस रोगीमें होयँ उसको वैद्य छोड दे ॥

असाध्य लक्षण ।

श्वासशूलपिपासार्त्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् ।
विशेषेण नरं वृद्धमतिसारो विनाशयेत् ॥ २० ॥

श्वास, शूल, प्यास इनसे पीडित, क्षीण, ज्वरसे पीडित और वृद्ध मनुष्यके ये लक्षण होयँ तो यह अतिसाररोग मनुष्यको विनाश करे ॥

रक्तातिसारके लक्षण ।

पित्तकृन्ति यदात्यर्थं द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके ।
तदोपजायतेऽभीक्ष्णं रक्तातीसार उल्बणः ॥ २१ ॥

पित्तातिसारवाला पुरुष अथवा पित्तातिसार होनेवाला पुरुष जब पित्त करनेवाली वस्तु अधिक और निरन्तर भोजन करे तब भयंकर रक्तातिसार प्रगट होता है । इसके लाल काले पीले आदि रंग वातादि दोषोंके दूषित होनेसे होते हैं, ये भी पित्तातिसारके भेद हैं ॥

प्रवाहिकाकी सम्प्राप्ति ।

वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं नुदत्यधस्तादहिताशनस्य ।
प्रवाहतोऽल्पं बहुशो मलाक्तं प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥२२॥

अपथ्य सेवन करनेवाले पुरुषके कुपित हुई जो वात सो संचित हुए कफको मलसंयुक्त करके बारम्बार गुदाके मार्गसे बाहर निकाले और मरोडाके साथ पीडा हो, थोडा मल कई दफा निकले इसको प्रवाहिका कहते हैं। प्रवाहिका और आतिसार इन दोनोंका एक साधर्म्य है इसीसे अतिसार रोगमें प्रवाहिका कही है। परन्तु अतिसारमें अनेक प्रकारके द्रव धातु निकलते हैं और प्रवाहिकामें केवल कफ निकलता है. इतना भेद है। इसमें " निचितं बलासम् " यह जो पद कहा अर्थात् कफसे मिलकर सो यह केवल कफका तो उपलक्षण है अर्थात् कफके कहनेसे पित्त और रुधिर भी जानना। भोजने इस रोगका नाम विवसी कहा है, पराशरऋषिने इसको अन्तरग्रन्थी कहा है,हारीत ऋषिने निश्चारक कहा है,कोई आचार्य निर्वाहिका कहते हैं॥

प्रवाहिकाके वातादि भेदकरके लक्षण ।

प्रवाहिका वातकृता सशूला पित्तात्सदाहा सकफा कफाच्च ।
सशोणिता शोणितसम्भवा च ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु।
तासामतीसारवदादिशेच्च लिङ्गं क्रमं चामविपक्वतां च॥२३॥

वातकी प्रवाहिकामें शूल होता है, पित्तकी दाहयुक्त, कफकी कफयुक्त और रक्तसे रक्तयुक्त होती है। यह चिकने और रूखे पदार्थ भोजन करनेसे होती है अर्थात् चिकने पदार्थसे कफकी, रूखे पदार्थसे वातकी, तु-शब्द करके तीक्ष्ण और खट्टेपदार्थसे क्रमसे पित्तकी और रुधिरकी होती है ऐसे जानना। इस प्रवाहिकाके लक्षणक्रम आम और पक्वावस्था यह अतिसार निदानके सदृश जानना ॥

अतिसार चला गया होय उसके लक्षण ।

यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति ।
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः ॥ २४ ॥

जिस मनुष्यको मूत्र करते समय दस्त न होय और अपानवायु जिसकी शुद्ध निकले और अग्नि देदीप्यमान होवे, कोठा हलका होवे उस मनुष्यका अतिसार गया जानिये ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकाया-मतिसाररोगः समाप्तः ॥

अथ ग्रहणीनिदानम् ।

ग्रहणीकी सम्प्राप्ति ।

अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः ।
भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥ १ ॥

पहले मनुष्यके अतिसाररोग होकर जाता रहा होय फिर उस मनुष्यके कुपथ्य करनेसे मन्द हुई जो अग्नि पुरुषके उदरमें रहनेवाली जो पित्तधरानामक छठी कला जिसको ग्रहणी कहते हैं उसको बिगाड, अपिशब्द करके अतिसार न भया होय तो भी अपने कारण करके पूर्वोक्त ग्रहणीको बिगाडकर ग्रहणीरोगको प्रगट करे यह सूचना करी। कोई आचार्य ऐसे कहते हैं कि, अतिसार न गया होय, बीचमें ही ग्रहणीरोग होता है। "मन्दाग्नि" इस पद करके यह सूचना करी कि, जिस पुरुषकी अग्नि तीक्ष्ण है वह कुपथ्य भी करे तथापि कुछ अवगुण नहीं होय, अन्नको ग्रहण करे है इसीसे इसको ग्रहणी कहे हैं, इसीसे ग्रहणी बिगडनेसे अन्नका परिपाक अच्छे प्रकार नहीं होय अर्थात् बारम्बार आम मिश्रित मल गुदाके मार्गसे गिरता है ॥

ग्रहणीरोगकी सम्प्राप्तिपूर्वक सामान्य लक्षण ।

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः । सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुञ्चति ॥ २ ॥ पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् । ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥ ३ ॥

अत्यन्त कुपित हुए पृथक् २ दोष (वात, पित्त, कफ) और सर्व दोष मिलकर ग्रहणीको दुष्ट करें सो ग्रहणी दुष्ट होकर भोजन किये हुए पदार्थको कच्चा अथवा पक्का गुदाके मार्ग होकर निकाले और पीडा होय तथा उस मलमें दुर्गंध आवे, बादीसें पतला मल और पित्तसे गाढा दस्त बारम्बार होवे और कभी कफसे पानी सरीखा अधोवायुयुक्त निकले इसको आयुर्वेदके जाननेवाले वैद्य ग्रहणीरोग कहते हैं ॥

ग्रहणीके पूर्वरूप ।

पूर्वरूपं तु तस्येदं तृष्णालस्यं बलक्षयः ।
विदाहोऽन्नस्य पाकश्च चिरात्कायस्य गौरवम् ॥ ४ ॥

प्यास, आलसक, बलनाश, अन्नका दाह (पाकके समय अग्निसी जले) और अन्नका पाक देरमें होय, देह भारी होय, यह ग्रहणीरोगका पूर्वरूप है ॥

---

१ यथाह चरके-" अग्न्यधिष्ठानमन्त्रस्य ग्रहणाद्ग्रहणी मता । नाभेरुपरि सा ह्यग्निबलो-पस्तम्भबृंहिता । अपक्वं धारयत्यन्नं पक्वं सृजति चाप्यधः ॥"

वातग्रहणीका निदान ।

कटुतिक्तकषायातिरूक्षसंदुष्टभोजनैः । प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ॥ मारुतः कुपितो वह्निं संछाद्य कुरुते गदान् ॥५॥

कडुआ, तीखा, कसैला, अतिरूखा और संयोगविरुद्ध ऐसे भोजनसे तथा थोडे भोजनसे, उपवाससे, बहुत चलनेसे, मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसे, अत्यन्त मैथुनसे कुपित भई जो वात सो अग्निको कुपित कर रोगोंको प्रगट करे हैं ॥

वातजसंग्रहणीका रूप ।

तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुक्तपाकं खराङ्गता ॥ ६ ॥ कंठास्यशोषः क्षुत्तृष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः । पार्श्वोरुवंक्षणग्रीवारुगभीक्ष्णं विषूचिका ॥ ७ ॥ हृत्पीडाकार्श्यदौर्बल्यं वैरस्यं परिकर्तिका । गृद्धिः सर्वरसानां च मनसः स्पंदनं तथा ॥ ८ ॥ जीर्णे जीर्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यमुपैति च । स वातगुल्महृद्रोगप्लीहाशङ्की च मानवः ॥ ९ ॥ चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत् । पुनः पुनः सृजेद्वर्चः कासश्वासार्दितोऽनिलात् ॥ १० ॥

उस वातग्रहणीवालेके अन्न दुःखसे पचे, अन्नका पाक खट्टा होय, अंगमें कर्कशता (यह वायुको त्वचाके चिकनापन सोखनेसे होता है), कण्ठ मुखका सूखना, भूख, प्यास लगे, मन्द दीखे, कानोंमें शब्द हो, पसवाडे जांघ पेडू और कन्धामें पीडा होवे, विषूचिका हो अर्थात् दोनों द्वारसे कच्चे अन्नकी प्रवृत्ति होवे, हृदय दूखे, देह दुबला होजाय, जीभका स्वाद जाता रहे, गुदामें कतरनीकीसी पीडा हो, मीठेसे आदि ले सर्व रसोंके खानेकी इच्छा, मनमें ग्लानि, अन्न पचने उपरांत पेटका फूलना, भोजन करनेसे स्वस्थता, पेटमें गोला, हृद्रोग, तापतिल्लीकीसी शंका, वातके योगसे खांसी, श्वाससे पीडित, बहुत देरमें बडे कष्टसे कभी पतला कभी गाढा थोडा शब्द और झाग मिला वारम्वार दस्त हो जाय ॥

पित्तग्रहणीके लक्षण ।

कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्वणम् । आप्लावयेद्धन्त्यनलं जलं तप्तमिवानलम् ॥११॥ सोऽजीर्णं नीलपीताभं पीताभः सार्यते द्रवम् । संधूमोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृडर्दितः ॥ १२ ॥

---

१ पूत्यम्लोद्गार इत्यपि पाठः । दुर्गन्ध डकार तथा खट्टी डकार आवे ।

जो पुरुष कटु, अजीर्ण, मिरच आदि तीखी, दाहकारक (वंश, करीलकी कोंपल) आदि, खट्टी, खारी (ओंगा आदिका खार) आदिशब्दसे नोनका गरम पदार्थ इन कारणोंसे कुपित हुआ जो पित्त सो जठराग्निको ऐसे बुझा देता है जैसे तप्तजल अग्निको शांत कर देता है और पित्तकी ग्रहणीसे पीली कान्तिवाला पुरुष कच्चा तथा नीले पीले रंगके मलको निकाले तथा धूमयुक्त डकार आवे, हृदय और कंठमें दाह होवे, अरुचि और प्यास करके पीडित होवे, ये पित्तकी संग्रहणीके लक्षण हैं ॥

कफग्रहणीकी उत्पत्ति।

गुर्वतिस्निग्धशीतादिभोजनादतिभोजनात्। भुक्तमात्रस्य च स्वप्नाद्धन्त्यग्निं कुपितः कफः ॥ १३ ॥ तस्यान्नं पच्यते दुःखं हृल्लासच्छर्द्यरोचकाः। आस्योपदेहमाधुर्यकासष्ठीवनपीनसाः ॥ १४ ॥ हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरु। दुष्टो मधुर उद्गारः सदनं स्त्रीष्वहर्षणम् ॥ १५ ॥ भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्तनम्। अकृशस्यापि दौर्बल्यमालस्यं च कफात्मके ॥ १६ ॥

भारी, अत्यन्त चिकना, शीतल आदि पदार्थके खानेसे अतिभोजनसे तथा भोजन करके दिनमें सोनेसे इन कारणोंसे कुपित हुआ कफ जठराग्निको शांत करे तब इसका खाया अन्न कष्टसे पचे, हृदयमें पीडा हो, वमन, अरुचि, मुख कफसे लिपासा तथा मुखका मीठा रहना, खांसी, कफ थूके, पीनस (जुखाम) हो, हृदय पानीसे भरासदृश हो, पेट भारी और जड हो, दुष्ट और मीठी डकार आवे, अग्नि शांत हो स्त्रीरमणमें अरुचि, पतला आम कफ मिला और भारी ऐसा मल निकले, बल विना शरीर पुष्ट दीखे, आलस्य बहुत आवे ये कफकी ग्रहणीके लक्षण हैं ॥

त्रिदोषकी ग्रहणीके लक्षण।

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिङ्गसमागमे।
त्रिदोषं लक्षयेदेवं तेषां वक्ष्यामि भेषजम् ॥ १७ ॥

वातादि तीनों दोषोंके जो लक्षण कह आये हैं वे सब जिसमें मिलते होयँ उसको त्रिदोषकी ग्रहणी जानिये " तेषां-भेषजम् " यह पद केवल पादपूरणार्थ लिखा है ॥

(संग्रहणी लक्षण।

अन्त्रकूजनमालस्यं दौर्बल्यं सदनं तथा। द्रवं शीतं घनं स्निग्धं सकटीवेदनं शकृत ॥ १ ॥ आमं बहु सपैच्छिल्यं

सशब्दं मन्दवेदनम् । पक्षान्मासाद्दशाहाद्वा नित्यं वाप्यथ मुञ्चति ॥ २ ॥ दिवा प्रकोपो भवति रात्रौ शान्तिं व्रजेच्च सा । दुर्विज्ञेया दुश्चिकित्स्या चिरकालानुबन्धिनी ॥ सा भवेदामवातेन संग्रहग्रहणी मता ॥ ३ ॥

आंतोंमें शब्द होना, आलसक, दुर्बलता, शरीरमें पीडा तथा पतला ठण्ढा कुछ गाढा चिकना दस्त होवे दस्त होते समय कमरमें दर्द होवे । पन्द्रह दिन अथवा एक महीना अथवा दस दिन बाद हमेशा बहुत आम रेसादार शब्दसहित मन्द २ पीडासे निकले वह भी आम दिनमें अधिक निकले और रातमें शांतिको प्राप्त हो । दुःखसे जानने योग्य दुःखसे चिकित्सा करने योग्य बहुत समयतक रहनेवाली होवे । ऋषियोंने आम और वातसे संगृहीतको संग्रहणी कहा है ॥

स्वपतः पार्श्वयोः शूलं गलज्जलघटीध्वनिः ।
तं वदन्ति घटीयन्त्रमसाध्यं ग्रहणीगदम् ॥ ४ ॥

सोतेहुए मनुष्यके दोनों पसवाडोंमें शूल तथा निगलते हुए जलकी चेष्टाके समान शब्द हो उस ग्रहणी रोगको घटीयन्त्र कहते हैं और वह असाध्य है ॥)

दोषं सामं निरामं च विद्यादत्रातिसारवत् ॥ १८ ॥

जैसे अतिसारमें मलका जलमें डूबने आदि लक्षणोंसे आम और उसके विपरीत होनेसे निरामता (यकृत्) जानी जाती है उसी प्रकार ग्रहणीरोगमें भी जाननी चाहिये ॥

लिङ्गैरसाध्यो ग्रहणीविकारो यैस्तैरतीसारगदो न सिध्येत् ।
वृद्धस्य नूनं ग्रहणीविकारो हत्वा तनूमेव निवर्तते च ॥ १९ ॥

जिन " पक्वं जाम्बवसंकाशम् " इत्यादि लक्षणोंसे अतिसाररोग असाध्य होजाता है उन्हीं लक्षणोंसे ग्रहणीरोग भी असाध्य होजाता है अर्थात् जो अतिसारके असाध्य लक्षण हैं वे ही ग्रहणीरोगके असाध्य लक्षण समझने चाहिये । और वृद्ध मनुष्यका ग्रहणीरोग तो शरीरको नाश करके ही दूर होता है ॥

बालके ग्रहणी साध्या यूनि कृच्छ्रा समीरिता ।
वृद्धे त्वसाध्या विज्ञेया मतं धन्वन्तरेरिदम् ॥ २० ॥

बच्चेके हुआ ग्रहणीरोग साध्य होता है और जवान पुरुषके ग्रहणीरोग कृच्छ्रसाध्य होता है और वृद्धके असाध्य जानना चाहिये, यह धन्वन्तरिजीका मत है ॥

डाक्टरीमतके अनुसार परीक्षा व कारण।

आमसे मिला मल उतरे, दस्त होते समय गुदा शब्द करे ऐसे एक महीना अथवा अधिक दिवस पर्यंत पीडा हो ॥ कारण-भारी द्रव्यके खानेसे अथवा देहके दुर्बल होनेसे मनुष्यके संग्रहणीरोग होता है ॥

इति श्रीपंडितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां ग्रहणीरोगः समाप्तः ॥

अर्शोरोगनिदानम्।

अतिसार ग्रहणी और अर्शका परस्पर सम्बन्ध है इससे ग्रहणीरोगके पीछे अर्शरोग कहते हैं—

संख्या रूप सम्प्राप्ति।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात् सहजानि च।
अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्याद्गुदवलित्रये ॥ १ ॥

पृथक् पृथक् दोषोंसे ३, समस्त दोष मिलकर १, रुधिरसे १ और सहज १ ऐसे छः प्रकारका अर्श (बवासीर) रोग है यह रोग गुदाकी तीन वलीके भीतर हो। गुदामें प्रवाहिणी विसर्ज्जनी संवरणी यह तीन वली (आंटे) हैं ॥

सम्प्राप्तिपूर्वके अर्शका रूप।

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन्।
मांसाङ्कुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि ताञ्जगुः ॥ २ ॥

वातादि दोष त्वचा, मांस और मेदा इनको और उस ठिकानेके रुधिरको दूषित कर अपान (गुदा) में अनेक प्रकारकी आकृतिके मांसके अंकुर उत्पन्न करे अर्थात् मस्से प्रगट करे उसको बवासीर कहते हैं। आदिशब्दसे नाक, नेत्र, नाभिमें भी जानना, यह मत सुश्रुतका है। कायचिकित्सक तो गुदामें जो होय उसे बवासीर

---

१ मनुष्यकी गुदामें तीन आंटे हैं एक ऊपर, एक नीचे क बीचमें। ऊपरके आंटेका नाम प्रवाहिणी है सो मल पवन आदिको बाहर काढे, बीचका आंटा मल पवनको बाहर पटक दे इसका नाम विसर्जनी है, तीसरा नीचेका आँटा मल पवन निकले पीछे ज्योंका त्यों गुदाको करदे तिसका नाम संवरणी है॥ २ गुदा साढे चार अंगुलकी होती है और गुदाके अवयवभूत तीन वली शंखके आवर्त समान प्रवाहिणी, विसर्जनी, संवरणीनामवाळी ऊपर २ ही स्थित हैं। उसमें गुदाका ओष्ठ आधा अंगुलका होता है गुदोष्ठसे ऊपर प्रवाहिणीं एक अंगुलकी और विसर्जनी डेढ अंगुलकी और संवरणीभी डेढ अंगुलकी होती है, इसी प्रकारसे गुदाका प्रमाण साढे चार अंगुलका होता है।

कहते हैं, जो नासिका आदिमें होय उसको अधिमांस कहते हैं, क्योंकि नासिका आदिमें जो बवासीर होती है उसमें पूर्वरूपके लक्षण नहीं मिलते हैं ॥

वातकी बवासीरके कारण।

कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि च। प्रमिताल्पाशनं तीक्ष्णं मद्यं मैथुनसेवनम् ॥ ३ ॥ लंघनं देशकालौ च शीतौ व्यायामकर्म च। शोको वातातपस्पर्शो हेतुर्वातार्शसां मतः ॥ ४ ॥

कसैला, कडुवा, तीखा, रूखा, शीतल और अतिलघु ऐसे पदार्थोंके खानेसे तथा अति थोडा खानेसे, भोजनकालके उल्लंघन करनेसे, तीव्र मद्यके पान करनेसे, अत्यन्त मैथुन (स्त्रीसंग) करनेसे, उपवास, शीतदेश और शीतकाल (हेमन्तादिऋतु) दंड कसरतसे, शोकसे, हवा घाममें डोलनेसे ये वातकी बवासीर होनेके कारण हैं ॥

पित्तकी बवासीरके कारण।

कट्वम्ललवणोष्णानि व्यायामाग्न्यातपश्रमाः।
देशकालावशिशिरौ क्रोधो मद्यमसूयनम् ॥ ५ ॥
विदाहि तीक्ष्णमुष्णं च सर्वं पानान्नभेषजम्।
पित्तोल्वणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसाम् ॥ ६ ॥

तीखा, खट्टा, लवणका, गरम ऐसे पदार्थोंसे, दण्ड कसरतसे, अग्निके समीप तथा घाममें रहनेसे, श्रम, गरम देश (मारवाड आदि) और उष्णकाल अर्थात् ग्रीष्मऋतु, क्रोध, मद्यपान, परद्रव्य देखकर जलना, दाहकारक, तीखी, गरम वस्तुका पीना, अन्नका और गरम औषधिका सेवन ये सब पित्ताधिक बवासीरके कारण हैं ॥

कफकी बवासीरके कारण।

मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च। अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखे रतिः ॥ ७ ॥ प्राग्वातसेवा शीतौ च देशकालावचिन्तनम्। श्लेष्मोल्वणानामुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ॥ ८ ॥

मीठा, चिकना, शीतल, खारी, खट्टा, भारी ऐसे भोजनसे, व्यायामके न करनेसे, दिनमें सोनेसे, सेज, गद्दी इनके सेवन करनेसे, पूर्वकी हवा खानेसे, शीतल देश, शीतकाल, चिन्तारहित होनेसे ये कफकी बवासीर होनेके हेतु हैं ॥

द्वंद्वज बवासीरके कारण।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वोल्वणानि च।

दो दो दोषोंके कारण और लक्षण मिले तो द्वंद्वजबवासीर हुई है ऐसे जाने ॥

त्रिदोषकी बवासीरके कारण ।

सर्वो हेतुस्त्रिदोषाणां सहजैर्लक्षणैः समम् ॥ ९ ॥

पृथक् वातादि बवासीरके जो कारण कहे हैं वे सर्व त्रिदोषकी बवासीरके कारण हैं, और जो सहज अर्शके अर्थात् सहज बवासीरके लक्षण सो भी इसके लक्षण जानने ॥

वातकी बवासीरके लक्षण ।

गुदाङ्कुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमिचिमान्विताः । म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विशदाः परुषाः खराः ॥ १० ॥ मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः । बिंबिकर्कन्धुखर्जूरकार्पासीफलसंनिभाः ॥ ११ ॥ केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः । शिरःपार्श्वांसकट्यूरुवंक्षणाभ्यधिकव्यथाः ॥ १२ ॥ क्षवथूद्गारविष्टंभहृद्ग्रहारोचकप्रदाः । कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः ॥ १३ ॥ तैरार्त्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् । रुक्फेनापिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते ॥ १४ ॥ कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते । गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासंभवस्तत एव च ॥ १५ ॥

वाताधिक्यसे गुदाके अंकुर सूखे (स्रावरहित) चिमचिम पीडायुक्त मुरझाये हुए, काले, लाल, टेढे, विशद, कर्कश, खरदरे, एकसे न होय, बांके, तीखे, फटे मुखके, कन्दूरी, बेर, खजूर, कपासके फलसदृश होय, कोई कदंबके फूल समान हों, कोई सरसोंके सदृश हों, शिर, पसवाडे, कन्धा, कमर, जांघ, पेडू इनमें आधिक पीडा हो, छींक, डकार, दस्तका न होना, हृदय पकडासा मालूम हो, अरुचि, खांसी, श्वास, अग्निका विषम होना अर्थात् कभी अन्न पचे, कभी नहीं पचे, कानोंमें शब्द होय, भ्रम होय उस बवासीरसे पीडित मनुष्यके पत्थरके समान, थोडा शब्दयुक्त

---

१ अथ सहजार्शोलक्षणम् । यथाच सुश्रुतः–"दुर्दर्शनानि परुषारुणपांडूनि दारुणान्तर्मुखानि तैरुपद्रुतः कृशोऽल्पभुक् शिरासंततगात्रोऽल्पप्रजः क्षीणरेताः क्षामस्वरः क्रोधनोऽल्पाग्निर्घ्राणशिरोऽक्षिश्रवणरोगवान् सततमन्त्रकूजनाटोपहृदयोपलेपारोचकप्रभृतिभिः पीड्यते ।" दुःखसे देखने योग्य (बहुत छोटे होनेसे) अथवा भयंकर दर्शन और खरदरे लाल पीले वर्णवाले कठिन और भीतर मुखवाले मस्सों उपद्रवसे युक्त मनुष्य दुबला थोडा भोजन करनेवाला शिराओंसे व्याप्त शरीर (सब शरीरपर दीखें) अल्प सन्तान, क्षीण शुक्र, बैठी हुई आवाज, क्रोध, मन्दाग्नि, नाक शिर नेत्र कानोंके रोगवाला, निरन्तर आंतोंमें शब्द, अफरा, हृदयका भारीपन, अरुचि आदिसे पीडित होता है ॥

और वातकी प्रवाहिकाके लक्षणसंयुक्त शूल, झाग, चिकटा इन लक्षण संयुक्त हौले हौले दस्त होयँ उस मनुष्यकी त्वचाका रंग तथा नख, विष्ठा, मूत्र, नेत्र, मुख ये काले होयँ, गोला तापतिल्ली (उदररोग) अष्ठीला (वातकी गाँठ) इन रोगोंके उपद्रव इस वातकी बवासीरमें होते हैं ॥

पित्तकी बवासीरके लक्षण ।

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीताः सितप्रभाः । तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः ॥ १६ ॥ शुकजिह्वायकृत्खण्ड-जलौकावक्त्रसन्निभाः । दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्च्छाऽरुचि-मोहदाः ॥ १७ ॥ सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः । यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखादयः ॥ १८ ॥

मस्सोंका मुख नीला, लाल, पीला और सफेदाई लिये होवे उन मस्सोंमेंसे महीन धारसे रुधिर चुचाय और रुधिरकी वास आवे, महीन और कोमल तथा शिथिल हों और उनका आकार तोतेकी जीभ कलेजा और जोंकके मुखके समान हो और देहमें दाह हो, गुदाका पकना, ज्वर, पसीना, प्यास, मूर्च्छा, अरुचि और मोह ये होवें और हाथके स्पर्श करनेसे गरम मालूम होवे और जिसके मलका द्रव नीला, पीला, लाल, गरम, आमसंयुक्त होय, जवके समान बीचमें मोटे हों और जिसकी त्वचा, नख नेत्रादिक हरे पीले हरतालके समान और हलदीके समान होवे ये लक्षण पित्ताधिक बवासीरके हैं ॥

कफकी बवासीरके लक्षण ।

श्लेष्मोल्वणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः । उत्सन्नो-पचिताः स्निग्धाः स्तब्धा वृत्तगुरुस्थिराः ॥ १९ ॥ पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लक्ष्णाः कण्ड्वाढ्याः स्पर्शनप्रियाः । करीर-पनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ॥ २० ॥ वंक्षणानाहिनः पायुवस्तिनाभिविकर्षिणः । सश्वासकासहृल्लासप्रसेकारुचि-पीनसाः ॥ २१ ॥ मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः । क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः ॥ २२ ॥ वसाभाः

---

१ "सामान्यतो बवासीरो रीही खूनी द्विधा भवेत् ।
खूनी ह्यपि च वातस्य विना कोपं न संभवेत् ॥ १ ॥" इति यवनशास्त्रे ।

सकफप्रायपुरीषाः सप्रवाहिकाः । न स्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ॥ २३ ॥

कफकी बवासीरके लक्षण ये हैं. जैसे कि, गुदाके मस्से महामूल (दूर धातुके प्रति जानेवाले), एक दूसरेसे मिले हुए, मन्द पीडाके करनेवाले, सफेद, लम्बे, मोटे, चिकने, करडे, गोल, भारी, स्थिर, गाढे, कफसे लिपटे, मणिके समान स्वच्छ, खुजली बहुत होय और प्यारी लगे, करील कटहर इनके कांटेके समान होयँ, दाखके सदृश होयँ, पेडूमें अफरा करनेवाले, गुदा, मूत्रस्थान और नाभि इनमें पीडा करनेवाले, श्वास, खांसी, खाली ओकारी, लारका टपकना, अरुचि, पीनस इनको करनेवाले, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकका भारी होना, शीतज्वर, नपुंसकपना, अग्निका मन्द होना, वमनका और आम जिनमें बहुत ऐसे अतिसार, संग्रहणी आदि रोगके करनेवाले वसा (चर्वी) और कफ मिला दस्त होवे, प्रवाहिका उत्पन्न करनेवाले और मस्सोंमेंसे रुधिर न निकले, गाढा मल होनेसे भी मस्से न फूटें और शरीरका रंग पीला और चिकना होय ये कफकी बवासीरके लक्षण हैं ॥

सन्निपातके और सहज बवासीरके लक्षण।

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि च ।

जो पूर्व वातादि तीनों दोषोंकी बवासीरोंके लक्षण कहे सो सब मिलते हों उसको सन्निपातकी बवासीर जाननी और येही लक्षण सहज बवासीरके हैं ॥

रक्तार्शके लक्षण।

रक्तोल्वणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ॥ २४ ॥ वटप्ररोहसदृशा गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः । तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्कप्रपीडिताः ॥ २५ ॥ स्रवन्ति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः । भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षयसंभवः ॥ २६ ॥ हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः । विट् श्यावं कठिनं रूक्षमधोवायुर्न गच्छति ॥ २७ ॥

गुदाके मस्सोंका रंग चिरमिटीके समान होवे अथवा बटके अंकुरसे हो और पित्तकी बवासीरके लक्षण जिसमें मिलते हों, मूँगाके सदृश हों और दस्त कठिन उतरनेसे मस्से दबें तब उन मस्सोंमेंसे दुष्ट और गरमागरम रुधिर पडे और रुधिरके बहुत पडनेसे वर्षाऋतुके मेंडकके समान पीला रंग होजाय, रुधिरके निकलनेसे जो प्रगट त्वचाका कठोरपना, नाडीका शिथिलपना और खट्टी वस्तु तथा शीतकी

इच्छा इत्यादि दुःख तिनसे पीडित होय, हीनवर्ण, बल उत्साह पराक्रमका नाश होय, सम्पूर्ण इंद्रियोंका व्याकुल होना, उसका काला, कठिन और रूखा ऐसा मल होय, अपानवायु करे नहीं, ये लक्षण रुधिरकी बवासीरके जानने चाहिये ॥

अब इसी रक्तार्शनिदानके वातादिभेदकरके लक्षण कहते हैं—

तनु चारुणवर्णं च फेनिलं चासृगर्शसाम् ।
कट्यूरुगुदशूलं च दौर्बल्यं यदि चाधिकम् ॥
तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदि च रूक्षणम् ॥ २८ ॥

बवासीरमें रुधिर थोडा, अरुणवर्ण और झागसंयुक्त निकले और कमर जाँघ और गुदा इनमें दर्द होवे । यदि दुर्बलता विशेष होजावे और उसमें कोई रूक्ष हेतु पहुँचा होवे तो इस रक्तार्शको वातका सम्बन्ध है ऐसे जानना ॥

कफसम्बन्धके लक्षण ।

शिथिलं श्वेतपीतं च विट् स्निग्धं गुरु शीतलम् ।
यद्यर्शसां घनं चासृक्तन्तुमत्पाण्डु पिच्छिलम् ॥ २९ ॥
गुदं सपिच्छं स्तिमितं गुरु स्निग्धं च कारणम् ।
श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयस्तत्र रक्तार्शसां बुधैः ॥ ३० ॥

जिसमेंसे शिथिल, सफेद, पीला, चिकना, भारी और शीतल ऐसा दस्त होय और जिसका रुधिर गाढा तन्तुयुक्त पीला तथा बबूलेयुक्त निकले और गुदा बबूलयुक्त, गीला होवे और भारी चिकनी ऐसे कोई कारण होवे तो उस रक्तार्शको कफका सम्बन्ध जानना । **शंका**–क्यों जी ! पित्तके अनुबन्धकी बवासीर क्यों नहीं कही ? **उत्तर**–रक्तके और पित्तके प्रायः करके समान लक्षण होनेसे नहीं कहे, क्योंकि पहले २४ वें श्लोकमें कहि आये हैं कि " पित्ताकृतिसमन्विताः " इति ॥

बवासीरका पूर्वरूप ।

विष्टम्भोऽन्नस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एव च । कार्श्यमुद्गारबाहुल्यं सक्थिसादोऽल्पविट्कता ॥ ३१ ॥ ग्रहणीदोषपांड्वर्तेराशङ्का चोदरस्य च । पूर्वरूपाणि निर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये ॥ ३२

अन्नका परिपाक अच्छी तरह हो नहीं, अन्न कूखमें रहे, देहमें दुर्बलता हो, कूखमें अफारा हो, अग्नि मन्द हो जावे, डकार बहुत आवै, जंघामें पीडा, थोडा दस्त उतरे, संग्रहणी और पण्डुरोगकी भ्रांति हाना, क्योंकि, उनके लक्षण मिलते हैं और उदररोगकी शंका होना ये लक्षण होवें तब जानना कि पुरुषके बवासीर रोग होवेगा ॥

शंका-केवल गुदामें दोषोंके कोपसे बवासीर रोग होती है फिर सब देहमें कृशत्व और काला हो जाना कैसे है ?

उत्तर।

पञ्चात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलित्रये। सर्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे ॥ ३३ ॥ तस्मादर्शांसि दुःखानि बहुव्याधिकराणि च। सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कृच्छ्रतमानि च ॥ ३४ ॥

गुदाके तीन आँटोंमें बवासीरके मस्से प्रगट होनेसे पांच प्रकारकी वायु, पांच प्रकारका पित्त, पांच प्रकारका कफ ये सब दोष कुपित होते हैं । प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ये पांच प्रकारकी वायु, हृदय, गुदा, नाभि, कण्ठ और सर्व देह ये इनके क्रमसे स्थान हैं तथा आलोचक, रंजक, साधक, पाचक, भ्राजक इन भेदोंसे पित्त पांच प्रकारका है । इनके स्थान-आलोचक नेत्रोंमें, रञ्जक यकृत् और प्लीहोंमें, साधक हृदयमें, पाचक पक्वाशय और आमाशयमें, भ्राजक त्वचामें रहता है। ऐसे ही कफ भी अवलम्बक, क्लेदक, बोधक, तर्षक और श्लेष्मक इन पांच भेदके क्रमकरके हृदय, आमाशय जीभ, मस्तक और सन्धि इन पांचों स्थानोंमें रहता है। इस प्रकार सर्व दोष अपने पांच पांच स्वरूपोंसे कुपित होते हैं, इससे यह रोग (बवासीर) बहुत दुःखकारक और अनेक प्रकारकी व्याधि (उदर और अग्निमांद्य इत्यादि उपद्रव) कर्ता सर्व देहको क्लेशदायक और विशेषकरके कृच्छ्रसाध्य तथा असाध्य जानना ॥

सुखसाध्यके लक्षण।

बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्वणानि च।
अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च ॥ ३५ ॥

बाहरके आंटेमें भई हो, एक दोषोल्वण हो और जिसको एक वर्ष व्यतीत न भया हो, ऐसी बवासीर सुखसाध्य है ॥

कृच्छ्रसाध्य लक्षण।

द्वंद्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च।
कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥ ३६ ॥

दो दोषोंसे प्रगट भई हो और दूसरी वली अर्थात् आंटेमें होय और जिसको एक वर्ष व्यतीत हो गया हो ऐसी बवासीरके मस्से कृच्छ्रसाध्य होते हैं और जो बाहरकी वलीमें द्विदोषोल्वण होय और एक दोषोल्वण दूसरी वली (दूसरे आंटे) में होवे तो यह भी कृच्छ्रसाध्य जानना ॥

असाध्यके लक्षण ।

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरावलिम् ।
जायन्तेऽर्शांसि संश्रित्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत् ॥ ३७ ॥

सहज कहिये जन्म होनेके समयसे जो होय अथवा तीन दोषोंसे प्रगट भई हो और जो तीसरा अन्तका आंटा है उसमें भई हो सो बवासीर असाध्य जानना ॥

याप्यलक्षण ।

शेषत्वादायुषस्तानि चतुष्पादसमन्विते ।
याप्यन्ते दीप्तकायाग्नेः प्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा ॥ ३८ ॥

यदि असाध्य बवासीर होय और उस रोगीका आयुष्य बाकी हो और चतुष्पाद सम्पत्ति (वैद्य, औषध, परिचारक और रोगी ये जैसे चाहिये वैसे) होवे और रोगीकी जठराग्नि प्रदीप्त होवे तो रोग याप्य जानना । इसीसे विपरीत होवे तो रोगीको वैद्य छोड देवे ॥

प्रसंगवशसे रोगी, वैद्य, औषध और सेवकके लक्षण कहते हैं–

वैद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भेषजं परिचारकः ।
एते पादाश्चिकित्सायाः कर्मसाधनहेतवः ॥ ३९ ॥

वैद्य, रोगी, औषध और सेवक ये कर्मसाधन हेतु चिकित्साके (चार) पाद हैं ॥

तत्रादौ वैद्यलक्षण ।

तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयं कृती । लघुहस्तः शुचिः शूरः सज्जोपस्कृतभेषजः ॥४०॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान् व्यवसायी प्रियंवदः । सत्यधर्मपरो यश्च वैद्य ईदृक् प्रशस्यते ॥४१॥

गुरुसे भले प्रकार शास्त्रको पढा हो और दूसरे वृद्ध वैद्यकी चिकित्सा अर्थात् इलाज जिसने देखा हो और आप चिकित्सा करनेमें चतुर हो तथा सिद्धहस्त अर्थात् जिस रोगीका इलाज करे सो शीघ्र अच्छा हो जावे, पवित्र रहे, शूर हो, श्रेष्ठ औषधि चन्द्रोदय आदि रसादिक सासग्री जिसके समीप रहा करे, तत्काल जिसकी बुद्धि स्फुरणवाली होय, बुद्धिमान्, संसारकें व्यवहारको जाननेवाला हो, प्रियवचन बोलनेवाला, सत्य और धर्मका आचरण करनेवाला ऐसा वैद्य प्रशंसाके योग्य होता है ॥

निषिद्धवैद्यके लक्षण ।

कुचैलः कर्कशः स्तब्धः कुग्रामी स्वयमागतः ।
पञ्च वैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरिसमा अपि ॥ ४२ ॥

मैले वस्त्रवाला, बुरा बोलनेवाला, अभिमानी, व्यवहारमें न समझे और जो बिना बुलाये आवे ये पांच वैद्य श्रीधन्वन्तरिके समान भी हों तो भी पूजने योग्य नहीं हैं ॥

रोगीके लक्षण।

आयुष्मान् सत्त्ववान् साध्यो द्रव्यवानात्मवानपि।
उच्यते व्याधितः पादो वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥ ४३ ॥

आयुवाला, बलयुक्त साध्य, द्रव्यवान्, ज्ञानी, वैद्यका आज्ञाकारी और आस्तिक ऐसा रोगी होना चाहिये ॥

उत्तम औषधिके लक्षण।

प्रशस्तदेशसंभूतं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम्।
अल्पमात्रं बहुगुणं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ ४४ ॥

उत्तम स्थानोंमें प्रगट हुई हो और शुभ दिनमें उसको उखाडी हो, थोडी मात्रा देनेसे बहुत गुण करे, दुर्गंधरहित, उत्तम स्वरूप और रसयुक्त हो सो औषधि उत्तम है ॥

दुष्ट औषधिके लक्षण।

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजाः।
जन्तुवह्निहिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसाधकाः ॥ ४५ ॥

इतने स्थानकी औषधें कार्य करनेवाली नहीं होती हैं–बांबीकी, खोटी धरतीकी, जलके समीपकी, श्मशानकी, ऊषरकी, जहां रेहूं चूना निकलता होय तहांकी और रास्तेकी, कीडोंकी खाई, अग्निसे जली हुई, जाडेकी मारी ऐसी औषधें कार्य करनेवाली नहीं हैं ॥

दूतके लक्षण।

स्निग्धोऽजुगुप्सुर्बलवान् युक्तो व्याधितरक्षणे।
वैद्यवाक्यकृदश्रान्तः पादः परिचरः स्मृतः ॥ ४६ ॥

नवीन अवस्थाका, बलवान्, रोगीकी रक्षा करनेमें तत्पर होवे, वैद्यके वचनका करनेवाला होवे, आलस्यरहित ऐसा परिचारक अर्थात् दूत होय। इन पूर्वोक्तको चतुष्पाद सम्पत्ति कहते हैं सो यह आयु शेषके विना नहीं मिलते ॥

अब उपद्रवसे असाध्यत्व कहते हैं—

हस्ते पादे गुदे नाभ्यां मुखे वृषणयोस्तथा।
शोथो हृत्पार्श्वशूलं च यस्यासाध्योऽर्शसो हि सः॥ ४७॥

जिसके हाथ, पैर, गुदा, नाभि, मुख और अण्डकोश इनमें सूजन हो, हृदय और पसवाडे दूखें वह रोगी असाध्य जानना॥

हृत्पार्श्वशूलं संमोहश्छर्दिरङ्गस्य रुग्ज्वरः।
तृष्णा गुदस्य पाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम्॥ ४८॥

हृदय और पसवाडोंमें दर्द होय, इन्द्रिय और मन इनमें मोह होय, वमन, अङ्गोंमें पीडा, ज्वर, प्यास, गुदाका पकना अर्थात् गुदाके ऊपर पीले फोडे ये लक्षण होनेसे बवासीरवाला रोगी असाध्य जानना॥

तृष्णारोचकशूलार्त्तमतिप्रसृतशोणितम्।
शोथातिसारसंयुक्तमर्शांसि क्षपयन्ति हि॥ ४९॥

प्यास, अरुचि, शूल इनसे पीडित, जिसके अत्यन्त रुधिर बहे और सूजन अतिसार ये होयँ उस रोगीका बवासीर नाश कर देता है॥

मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजान्यपि।
गण्डूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च॥ ५०॥

मेढ्र कहिये लिंग, आदिशब्दकरके नाक कान इत्यादि स्थानोंमें दोषभेद करके बवासीर होती है सो आगे कहेंगे। उसी प्रकार नाभिस्थानमें भी अर्शरोग होता है वह केंचुएके मुखके समान गाढी और नरम होय॥

चर्मकीलकी संप्राप्ति।

व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः।
कीलोपमः स्थिरखरं चर्मकीलं तु तद्विदुः॥ ५१॥

व्यानवायु कफको लेकर त्वचामें कीलके सदृश स्थिर और खरदरी ऐसे बवासीरको करे उसको चर्मकील कहते हैं। "त्वचो बहिः" इसके कहनेसे गुद होठका त्याग कहा॥

वातादिभेदकरके उसके लक्षण।

वातेन तोदपारुष्ये पित्तादतिसरक्तता।
श्लेष्मणा स्निग्धता चास्य ग्रथितत्वं सवर्णता ॥ ९२ ॥

वातसे सुईके चुभानेसे जैसे पीडा होती है ऐसी पीडा हो, पित्तसे कठोरता, कफसे काला और कुछ तथा चिकनी गांठके समान वर्ण होवै ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरी-
भाषाटीकायामर्शोरोगः समाप्तः ॥

अथ मन्दाग्निरोगनिदानम्।

अर्शरोगसे मन्दाग्नि होती हैं, इसीसे मन्दाग्निरोगको कहते हैं—

मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः।
कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः ॥ १ ॥

मनुष्यके कफकी प्रकृतिसे मंदाग्नि, पित्तकी प्रकृतिसे तीक्ष्णाग्नि, वातकी प्रकृतिसे विषमाग्नि तथा वात, पित्त, कफ इनके समान होनेसे समाग्नि होवे है। ऐसी अग्नि चार प्रकारकी है। इसमें मन्दाग्निको दुर्जय होनेसे प्रथम कही और जाठर शब्द कहनेसे धातुकी अग्निका त्याग जानना ॥

अजीर्णरोग।

विषमो वातजान् रोगांस्तीक्ष्णः पित्तनिमित्तजान्।
करोत्यग्निस्तथा मन्दो विकारान् कफसंभवान् ॥ २ ॥

विषमाग्नि वातजन्य ८० रोगोंमेंसे किसी रोगको प्रगट करे और सामान्य ज्वरातिसारादिकको प्रगट करे, तीक्ष्णाग्नि पित्तके ४० रोगोंमेंसे किसी रोगको प्रगट करे। उसी प्रकार मन्दाग्नि कफजन्य २० रोगोंमेंसे किसी रोगको पैदा कर आलस्यादिकोंको उत्पन्न करती है ॥

समाग्न्यादिकोंके लक्षण।

समा समाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते। स्वल्पापि नैव मन्दाग्नेर्विषमाग्नेस्तु देहिनः ॥ ३ ॥ कदाचित्पच्यते सम्यक्

कदाचिन्न विपच्यते । मात्रातिमात्राप्याशिता सुखं यस्य विपच्यते ॥ ४ ॥ तीक्ष्णाग्निरिति तं विद्यात्समाग्निः श्रेष्ठ उच्यते ॥

समाग्निवाले पुरुषके यथोचित आहार भले प्रकार पाचन होता है और मन्दाग्निवाले पुरुषको थोडा भी आहार यथार्थ नहीं पचता और विषमाग्निवाले मनुष्यको कभी अच्छी तरहसे अन्न पचे और कभी नहीं पचे और बहुत भोजन करा हुआ भी जिसके सुखपूर्वक पचजावे उसको तीक्ष्णाग्नि कहते हैं । इन चारों प्रकारकी अग्निमें समाग्नि उत्तम है । तीक्ष्णाग्निके कहनेसे भस्मकका ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि अत्यन्त तीक्ष्णाग्निको भस्मक कहते हैं उसके लक्षण चरकमें कहे हैं ॥ यथा—

नरे क्षीणकफे पित्तं कुपितं मारुतानुगम् ॥ ५ ॥ सोष्मणा पाचकस्थाने बलमग्नेः प्रयच्छति । तदा लब्धबलो देहं रूक्षं यत्सानिलोऽनलः ॥ ६ ॥ अभिभूय पचत्यन्नं तैक्ष्ण्यादाशु मुहुर्मुहुः । पक्त्वाऽन्नं स ततो धातूञ्छोणितादीन्पचत्यपि ॥ ७ ॥ ततो दौर्बल्यमातङ्कं मृत्युं चोपनयेत् परम् । भुक्तेऽन्ने लभते शान्तिं जीर्णमात्रे प्रताम्यति । तृट्कासदाहमोहाः स्युर्व्याधयोऽत्यग्निसंभवाः ॥ ८ ॥

क्षीणकफवाले पुरुषके कफ कुपित हो वायुसे मिलकर ऊष्माके साथ पाचकस्थानमें जाकर अग्निको बल देवे तब जठराग्नि वातकी सहायता पाकर प्रबल होकर देहको रूखा कर देवे और उसके जोरसे बारंबार अन्नको पचावे । अन्नको पचाय पीछे रुधिरादि धातुओंको पचावे, रुधिर आदिके पचनेसे देहमें दुर्बलताका रोग और मृत्युको मनुष्य प्राप्त होवे, जब अन्नको खावे तब तो शांति हो जाय और जब अन्न पचजाय तब मूर्च्छित होय । प्यास, खांसी, दाह, मोह, (कुछ सुध न रहै) ये रोग अत्यन्त अग्निसे होते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायामग्निमांद्यनिदानं समाप्तम् ॥

अथाजीर्णनिदानम् ।

अग्निमांद्य और अजीर्ण इनका परस्पर कारण है, इसीसे अग्निमांद्यके पीछे अजीर्णनिदानको कहते हैं—

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः । अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषतः ॥ १ ॥ अजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च । वदन्ति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम् ॥ २ ॥

मनुष्यके कफसे आम, पित्तसे विदग्ध, वातसे विष्टब्ध ऐसे तीन प्रकारका अजीर्णरोग होता है । और जो भोजन करा सो पक्क होय नहीं रस शेष रहे सो रसशेषसे चतुर्थ अजीर्ण होय है । और रात्रि दिनमें जो आहार पचे और जिसमें अफरा, हडफूटन कुछ होय यह पांचवां अजीर्ण किसीके मतसे है। और जो नित्य ही स्वाभाविक अजीर्ण रहै अर्थात् विकृतिजन्य न होय उसको छठा अजीर्ण कहते हैं इस अजीर्णके पचानेके अर्थ सुश्रुतमें वामपार्श्वशयनादिक उपाय कहे हैं सो करने चाहिये ॥

भुक्त्वा शतपदं गच्छेद्वामपार्श्वेन संविशेत् । शब्दरूपरसस्पर्शगन्धांश्च मनसः प्रियान् ॥ भुक्तवानुपसेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ३॥

भोजन करे पीछे सौ पैंड डोलना, बांई करवट शयन करना, अपने मनको जो प्रिय शब्द, रूप, रस, स्पर्श, सुगन्ध उनको सेवन करना इस प्रकार करनेसे अन्न भले प्रकार पचे है ॥

अजीर्णके कारण ।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च सन्धारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च ।
कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य॥४॥
ईर्ष्याभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन शुग्दैन्यनिपीडितेन ।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक्परिपाकमेति ॥ ५ ॥

बहुत जल पीनेसे, भोजनके समयको छोड पीछे भोजन करनेसे, मल, मूत्र आदि वेगोंके रोकनेसे, दिनमें सोनेसे, रातमें जागनेसे इन कारणोंसे भोजनके समय यदि

१ शंका—आमादिक तीनों अजीर्ण और रसशेषमें क्या भेद है? उत्तर—आम, विदग्ध, विष्टब्ध ये तीनों अजीर्ण अन्नसे उत्पन्न होवे हैं और रसशेष अजीर्ण आहारके रससे उत्पन्न होता है ॥

लघु और स्निग्ध गरम आदिगुणयुक्त भी हितकारी पदार्थ खाय तो भी अन्न अच्छी रीतिसे नहीं पचे ये देहके कारण कहे । अब अजीर्णके कारण जो मनसे सम्बन्ध रखते हैं उनको कहते हैं-ईर्ष्या कहिये परद्रव्यको न देख सकना, डरना, क्रोध करना इन कारणोंसे युक्त तथा लोभ, शोक, दीनतासे पीडित और मत्सरता करना इन कारणोंसे मनुष्यके भोजन करा हुआ अन्न भले प्रकार पचता नहीं है ॥

आमादिक अजीर्णोंके लक्षण ।

तत्रामे गुरुतोत्क्लेदः शोथो गण्डाक्षिकूटगः ।
उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्धः प्रवर्त्तते ॥ ६ ॥

उन चारों अजीर्णोंमें प्रथम आमाजीर्णके लक्षण कहते हैं-पेट और अंग भारी हो, वमनके आनेकेसे प्रतीत हो, कपोल और नेत्रोंमें सूजन होवै और इसी अजीर्णके प्रभावसे जैसा भोजन करा होय मीठा आदि उसी प्रकारकी डकार आवे ॥

विदग्धाजीर्णके लक्षण ।

विदग्धे भ्रमतृण्मूर्च्छाः पित्ताच्च विविधा रुजः ।
उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च जायते ॥ ७ ॥

विदग्ध अजीर्णमें भ्रम, प्यास और मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं और पित्तके अनेक रोग प्रगट हों तथा धुएँके साथ खट्टी डकार आवे पसीना आवे और दाह होय ॥

विष्टब्ध अजीर्णके लक्षण ।

विष्टब्धे शूलमाध्मानं विविधा वातवेदनाः ।
मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहोऽङ्गपीडनम् ॥ ८ ॥

विष्टब्ध अजीर्णके ये लक्षण हैं-शूल, अफरा, अनेक वातकी पीडा, मल और अधोवायुका रुकजाना, देह जकडजाय, मोह और देहमें पीडा होय ॥

रसशेष अजीर्णके लक्षण ।

रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे ।

रसशेष अजीर्णके ये लक्षण हैं-अन्नमें अरुचि, हृदयमें शुद्धि न होय और देह भारी होय ॥

अजीर्णके उपद्रव ।

मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः ।
उपद्रवा भवन्त्येते मरणं चाप्यजीर्णतः ॥ ९ ॥

मूर्च्छा, बडबड, ओकारी अर्थात् वमन, लारका गिरना, ग्लानि, भ्रम ये अजीर्णके उपद्रव हैं और बहुत बडा अजीर्ण मनुष्यको मार भी डालता है ॥

बहुत भोजन ही अजीर्णका हेतु है, उसीको कहते हैं-

अनात्मवन्तः पशुवद् भुञ्जते येऽप्रमाणतः ।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि ॥ १० ॥

जिन मनुष्योंकी इन्द्रियें स्वाधीन नहीं हैं वे पशुके समान अप्रमाण भोजन करते हैं उनके रोगोंका कारण अजीर्णरोग प्रगट होता है ॥

अब कहते हैं कि, अजीर्णरोगसे विषूचिकारोगकी उत्पत्ति होती है, इसलिये अजीर्णके अनन्तर विषूचिकाको कहते हैं-

अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम् ।
विषूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका ॥ ११ ॥

आम, विष्टब्ध और विदग्ध ये जो अजीर्ण कहे हैं इनसे विषूचिका (हैजा) अलसक और विलंबिका पैदा होवे है इनसे चौथा रसशेष अजीर्णको विषूच्यादिकोंको उत्पादक नहीं लिखा है । इसका कारण यह है कि, उस रसाजीर्णको अपरिणाममात्रत्वकरके विषूचिका आदिके आरम्भत्व स्वभावादिकोपमतके कहनेसे आम, विदग्ध और विष्टब्ध इनसे क्रमपूर्वक विषूचिका, अलसक, विलंबिका ये प्रगट होती हैं । ऐसे कार्त्तिककुण्ड आचार्य कहता है सो असत्य है क्योंकि विदग्ध अजीर्णको विलंबिकाका प्रगट करना असम्भव है. क्योंकि उस विलंबिकाका आगे कफ वातसे प्रगट होना कहेंगे और विदग्धभावको पित्तजन्यता है इसलिये यह मत मन्तव्य नहीं है। इसी कारण तीनों अजीर्ण मिलकर विषचिका आदिको प्रगट करते हैं यह बकुल आचार्यका मत है ॥

विषूचिकाकी निरुक्ति कहते हैं-

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् संतिष्ठतेऽनिलः ।
यत्राजीर्णे च सा वैद्यैर्विषूचीति निगद्यते ॥ १२ ॥

जिस अजीर्णमें वादी देहको सूईके सदृश पीडा देय अर्थात् सूईसे चुभे उसको वैद्य विषूचिका कहते हैं ॥

न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः ।
मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः ॥ १३ ॥

जिनका आहार परिमाणका है और जो वैद्यविद्याके कहने पर चलते हैं उनको कदाचित् विषूचिकारोग नहीं होय। जो अज्ञानी, जिनकी इंद्रियें वशमें नहीं, जो भोजनके लालची हैं ऐसे मनुष्योंको यह विषूचिका रोग अवश्य होता है ॥

विषूचिकाके लक्षण ।

मूर्च्छातिसारो वमथुः पिपासा शूलभ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः ।
वैवर्ण्यकंपौ हृदये रुजश्च भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः ॥ १४ ॥

मूर्च्छा, अतिसार, वमन, प्यास, शूल, भ्रम, जांघोंमें पीडा जँभाई, दाह, देहका विवर्ण, कम्प, हृदयमें पीडा और मस्तकमें पीडा ये लक्षण हो उसको विषूचिका कहते हैं। इसीको महामारी अथवा हैजा कहते हैं ॥

अलसकके लक्षण ।

कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्येत्परिकूजति । निरुद्धो मारुतश्चैव
कुक्षावुपरि धावति ॥ १५ ॥ वातवर्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं
भवेदपि । तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ तु यस्य च ॥ १६ ॥

कूखमें और पेटमें अफरा हो, मोह हो, पीडासे पुकारे, पवन चलनेसे रुककर कूखमें और कण्ठादि स्थानोंमें फिरे, मल मूत्र और गुदाकी पवन रुक, प्यास बहुत लगे, डकार आवे ये लक्षण जिसमें होयँ उसको अलसकरोग कहते हैं ॥

विलम्बिकाके लक्षण ।

दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्त्तते नोर्ध्वमधश्च यस्याम् ।
विलम्बिकां तां भृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः॥१७

जिस मनुष्यके भोजन करा हुआ अन्न–कफ वात करके दूषित हो, ऊपर नीचे नहीं जाय अर्थात् वमन विरेचन न होय उसको वैद्यविद्याके जाननेवाले जिसकी चिकित्सा नहीं ऐसी विलंबिका रोग कहते हैं। कोई शंका–करे कि, अलसक और विलंबिका इन दोनोंकी वात कफके प्रबल होनेसे ऊपर नीचे प्रवृत्ति होती है । इन दोनोंमें भेद क्या है ? सो कहो। उत्तर–अलसकमें शूल आदि घोरपीडा होती है और विलंबिकामें नहीं होती इतना ही भेद है॥

अजीर्णसे प्रगट विषूच्यादिको कहकर अजीर्णजन्य आमके दूसरे कार्यान्तर कहते हैं—

यत्रस्थमामं विरुजेत्तमेव देशं विशेषेण विकारजातैः ।
दोषेण येनावततं शरीरं तल्लक्षणैरामसमुद्भवैश्च ॥ १८ ॥

जिस ठिकानेपर आम रहता है उस ठिकानेपर जिस दोषसे वह स्थान व्याप्त हो उसके लक्षण (पीडा, दाह गौरव आदि) करके और आमजन्य विकार (आमवातादिक) विशेष पीडा होती है, इस लिये जाना गया कि, और ठिकानेपर थोडी पीडा होती है और " यत्र " इस सर्वनामशब्दसे कुपित हुए वातादिकोंके सदृश आमका कोई स्थान नियत नहीं है यह दिखाया ॥

विषूचिका और अलसक इनके असाध्य लक्षण।

यः श्यावदन्तौष्ठनखोऽल्पसंज्ञो वम्यर्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्रः।
क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसन्धिर्यायान्नरः सोऽपुनरागमाय ॥ १९ ॥

जिस रोगीके दांत नख होठ काले पडजावें और संज्ञा जाती रहे, वमनसे पीडित होवे और नेत्र भीतरको बैठजायँ मन्द स्वर हो तथा हाथपैरोंकी संधि ढीली पडजाय वह मनुष्य बचे नहीं। विलंबिका स्वरूपसे ही असाध्य है यह जैज्जट आचार्यका मत है ॥

[निद्रानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञिता। अमी उपद्रवा घोरा विषूच्यां पञ्च दारुणाः ॥ २० ॥ प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम्। तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विनाशाद्विनश्यति ॥२१॥

निद्राका नाश, मनका न लगना, कम्प, मूत्रका रुकना, संज्ञाका नाश ये विषूचिकाके घोर पांच उपद्रव हैं। बहुधा भोजनकी विषमतासे अजीर्णरोग मनुष्योंको होता है, वही अजीर्ण सब रोगोंका कारण है उस अजीर्णरोगके नाश होनेसे सब रोगोंका नाश होता है ॥ ये दोनों श्लोक क्षेपक हैं।]

अजीर्ण जाता रहा उसके लक्षण।

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः।
लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ २२ ॥

शुद्ध डकार आवें, शरीर और मनका प्रसन्न होना, जैसा भोजन करा हो उसके सदृश मल मूत्रकी भले प्रकार प्रवृत्ति होना, शरीर हलका होय परन्तु कोष्ठ विशेष हलका हो, भूख और प्यास लगे, भोजन पचनेके उत्तर ये लक्षण होवे हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषा-
टीकायामजीर्णरोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ कृमिरोगनिदानम् ।

अजीर्णसे कृमिरोग प्रगट होय हैं इसीसे अजीर्णरोगके अनन्तर कृमिरोग कहे हैं—

कृमयस्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।
बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः ॥ १ ॥

कृमिरोग दो प्रकारका है । एक बाहरका दूसरा भीतरका । तहां बाहरके मल (पसीना आदि) और कफ, रुधिर, विष्ठा इन कारणोंसे बहिः कृमिरोग चार प्रकारका है ॥

बाह्यकृमियोंके नाम ।

नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः । तिलप्रमाणसंस्थान-वर्णाः केशाम्बराश्रयाः ॥२॥ बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूकालिक्षादि-नामतः । द्विधा ते कुष्ठपिडिकाकण्डूगण्डान्प्रकुर्वते ॥ ३ ॥

उस कृमिरोगके बीस नामोंसे बीस भेद हैं । तहां बाहरके मलसे प्रगट कृमि तिलके समान परिमाण और आकृति और श्वेत कृष्णवर्णवाली होती हैं । वस्त्र और केशोंमें रहनेवाली होती हैं तथा बहुत पैरकी और छोटी जूं लीख नामोंसे प्रसिद्ध दो प्रकारकी हैं । ये कृमियें कोढ, पिडिका, खाज इत्यादिरोग प्रगट करे हैं ॥

कृमिरोगका कारण ।

अजीर्णभोजी मधुराम्लनित्यो द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता ।
व्यायामवर्जी च दिवाशयानो विरुद्धभुक्संलभते कृमींश्च ॥ ४ ॥

अजीर्णमें भोजन करे, प्रतिदिन मीठा खट्टा खावे तथा पतला पदार्थ (जैसे कढी रायता आदि) खावे, पीसा अन्न मैदा आदि और गुडके पदार्थ खावे और भोजन करके परिश्रम न करे, दिनमें सोवे, विरुद्ध भोजन, जैसे दूध मछली आदिको खावे ऐसे पुरुषके कृमिरोग प्रगट होता है ॥

कौन कारणसे कौनसी कृमि प्रगट होती है

माषपिष्टान्नलवणगुडशाकैः पुरीषजाः ।
मांसमत्स्यगुडक्षीरदधिशुक्ताः कफोद्भवाः ॥
विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवन्ति हि ॥ ५ ॥

उडद पीसा अन्न (लड्डू वेवर गूंझा आदि) नोनके गुडके तथा शाक आदि ऐसे पदार्थ खानेसे मलकी कृमि प्रगट होती है । मांस मछली गुड दूध दही कांजी ऐसे पदार्थ खानेसे कफकी कृमि पैदा होती है । विरुद्धपदार्थ जैसे दूध मछली और आधा कच्चा आधा पक्का शाक जैसे हरा चनेका आदि ऐसे भोजनोंसे रुधिरजन्य कृमि पैदा होती है ॥

पेटमें कृमि पडगई हों उसके लक्षण ।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः ।
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च संजातक्रिमिलक्षणम् ॥ ६ ॥

ज्वर हो, शरीरका रंग और प्रकारका होजावे, शूल, हृदय दूखे, वमनकीसी इच्छा हो, भ्रम, भोजन बुरा लगे, दस्त होयँ ये लक्षण जिसके पेटमें गिंडोहा आदि कृमि पड जाती हैं उसको होते हैं ॥

कफकी कृमिके लक्षण ।

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः ।
पृथुब्रध्ननिभाः केचित्केचिद्गण्डूपदोपमाः ॥ ७ ॥
रूढधान्याङ्कुराकारास्तनुदीर्घास्तथाऽणवः ।
श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते ॥ ८ ॥
अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महारुजः ।
चुरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते ॥ ९ ॥
हृल्लासमास्यस्त्रवणमविपाकमरोचकम् ।
मूर्च्छाच्छर्दितृषानाहकार्श्यश्वयथुपीनसान् ॥ १० ॥

कफसे आमाशयमें प्रगट हुई कृमियें जब बढ जाती हैं तब चारों तरफ डोलती हैं, उनमेंसे कोई मोटी चामकी बाधीके सदृश, कोई गिंडोहेके आकार, कोई धान्यके अंकुरके समान होती हैं। कितनी छोटी, बडी, चौडी होती हैं और किसीका वर्ण श्वेत, किसीका तांबेके समान होता है । उन्होंके सात नाम हैं । सो इस प्रकार- १ अन्त्राद, २ उदरावेष्ट, ३ हृदयाद, ४ महारुज, ५ चुरु, ६ दर्भकुसुम और ७ सुगन्ध ये नाम कोई सार्थक हैं और कोई निरर्थक हैं । व्यवहारके निमित्त पहले आचार्योंने धरे हैं । इन कृमियोंसे वमनकीसी इच्छा होय, मुखसे पानी गिरे, अन्नका पाक न होवे, अरुचि, मूर्च्छा, वमन, प्यास, अफरा, शरीर कृश होवे, सूजन और पीनस इतने विकार होते हैं ॥

रुधिरकी कृमिके लक्षण ।

रक्तवाहिशिरास्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः । अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः ॥ ११ ॥ केशादा रोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः । षट् ते कुष्ठैककर्माणः सह सौरसमातरः ॥ १२ ॥

रुधिरकी बहनेवाली नाडियोंमें रुधिरसे प्रगट कृमि बारीक, पादरहित, गोले तामेके रंगके होते हैं, कोई बहुत बारीक होती हैं, वह देखनेसे भी नहीं दीखे। ये कृमि छः प्रकारकी हैं । उनके नाम ये हैं–१ केशाद, २ रोमविध्वंस, ३ रोमद्वीप, ४ उदुम्बर, ५ सौरस, ६ मातर ये कुष्ठको पैदा करती हैं ॥

विष्ठासे प्रटग कृमिके लक्षण ।

पक्काशयपुरीषोत्था जायन्तेऽधोविसर्पिणः ।
वृद्धास्ते स्युर्भवेयुश्च ते यदाऽऽमाशयोन्मुखाः ॥ १३ ॥
तदास्योद्गारनिश्वासा विड्गन्धानुविधायिनः ।
पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसितासिताः ॥ १४ ॥
ते पञ्च नाम्ना कृमयः ककेरुकमकेरुकाः ।
सौसुरादामलूनाश्च लेलिहा जनयन्ति च ॥ १५ ॥
विड्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुष्यपाण्डुताः ।
रोमहर्षाग्निसदनं गुदकण्डूर्विमार्गगाः ॥ १६ ॥

पक्काशयमें विष्ठासे प्रगट कृमि गुदाके मार्ग होकर बाहर निकलती हैं । जब ये बढ जाती हैं तब आमाशयमें प्राप्त होकर डकार और श्वाससे विष्ठाकीसी वास आने लगती है । ये कृमि बडी, छोटीं, गोल, मोटी, रंगमें, काली, पीली, सफेद नीली होती हैं । इनके पांच नाम हैं–१ ककेरुक, २ मकेरुक, ३ सौसुराद, ४ आमलून, ५ लेलिह । जब ये कृमि मार्गको छोड अन्य मार्गमें जाती हैं तब इतने रोग प्रगट करें हैं । दस्तका पतला होना, शूल, अफरा, देहमें कृशता तथा देहमें कठोरता, पाण्डुरोग, रोमांच, मन्दाग्नि और गुदामें खुजलीका होना ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीभाषाटीकायां
क्रिमिरोगनिदानं समाप्तम् ॥

---

१ संशूलाख्येति पाठान्तरम् ।

अथ पाण्डुरोगनिदानम्।

पाण्डुरोगाः स्मृताः पञ्च वातपित्तकफैस्त्रयः।
चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमो भक्षणान्मृदः ॥ १ ॥

मलसे प्रगट कृमिरोग पांडु (पीलिया) रोगको प्रगट करे है. इसी कारण कृमिरोगके अनन्तर पांडुरोगका निदान कहते हैं। तहां प्रथम पांडुरोगकी संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं—१ वातका, २ पित्तका, ३ कफका, ४ सन्निपातका और ५ माटीके खानेसे पांडुरोग पांच प्रकारका कहा है ॥

पांडुरोगके कारण और सम्प्राप्तिके लक्षण।

व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम्।
निषेव्यमाणस्य विदूष्य रक्तं दोषास्त्वचं पाण्डुरतां नयन्ति॥२॥

अति मैथुन, खट्टे पदार्थका भोजन, नोनका पदार्थ खानेसे, बहुत मद्य पीनेसे, मिट्टी खानेसे, दिनमें सोनेसे, अत्यन्त तीखा पदार्थ खानेसे इन कारणोंसे तीनों दोष रुधिरको बिगाड देहकी त्वचाको पीले रंगकी कर देते हैं। इस जगह रुधिरका तो उपलक्षणमात्र है, रक्तके कहनेसे त्वचा मांस इनको दूषित करते हैं यह दृढबलने कहा है। हारीतने रसको दूष्य कहा है दोष नाम वातादिक और दूष्य कहिये रसरक्तादि ॥

पांडुरोगके पूर्वरूप।

त्वक्स्फोटनष्ठीवनगात्रसादमृद्भक्षणप्रेक्षणकूटशोथाः।
विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ३ ॥

त्वचाका फटना, मुखसे बारम्बार थूकना, अंगोंका जकडना, मिट्टी खानेकी इच्छा, नेत्रोंपर सूजन, मल, मूत्र पीले हों, अन्नका परिपाक न होय ये लक्षण पांडुरोग प्रगट होनेवाला होय है तब होते हैं ॥

वातपांडुरोगके लक्षण।

त्वङ्मूत्रनयनादीनां रूक्षकृष्णारुणात्मता।
वातपाण्ड्वामये कम्पतोदानाहभ्रमादयः ॥ ४ ॥

वातके पांडुरोगमें त्वचा, मूत्र, नेत्र इनमें रूखापना कालापना और लाली होती है तथा कंप, सुई छेदनकासा चुभना, अफरा, भ्रम, आदिशब्दसे भेद और शूलादिक भी होते हैं ॥

पित्तजपांडुरोगीके लक्षण ।

पीतमूत्रशकृन्नेत्रो दाहतृष्णाज्वरान्वितः ।
भिन्नविट्कोऽतिपीताभः पित्तपाण्ड्वामयी नरः ॥ ५ ॥

पित्तपांडुरोगीके ये लक्षण होते हैं–मल मूत्र और नेत्र पीले हों, दाह, प्यास, ज्वर इनसे पीडित हो, मल पतला हो और उस रोगीके देहकी कांति अत्यन्त पीली होती है ॥

कफपांडुरोगीके लक्षण ।

कफप्रसेकश्वयथुतन्द्रालस्यातिगौरवैः ।
पाण्डुरोगः कफाच्छुक्लैस्त्वङ्मूत्रनयनाननैः ॥ ६ ॥

मुखसे कफका गिरना, सूजन, तन्द्रा, आलसक शरीरका भारी होना, त्वचा, मूत्र, नेत्र, मुख इनका सफेद होना इन लक्षणोंसे कफका पांडुरोग जानना ॥

सन्निपातयुक्त पांडुरोगके असाध्य लक्षण ।

ज्वरारोचकहृल्लासच्छर्दितृष्णाक्लमान्वितः ।
पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हतेन्द्रियः ॥ ७ ॥

ज्वर, अरुचि, ओकारी (उबकाई), वमन, प्यास और क्लम इतने उपद्रवयुक्त जो त्रिदोषजन्य पांडुरोगी क्षीण होगया हो और जिसकी इंद्रियें अपना अपना विषय ग्रहण करनेकी शक्ति न रखती हों तो उसको वैद्य त्याग दे ॥

मिट्टीखानेसे प्रगट पांडुरोगकी सम्प्राप्ति ।

मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो मलः । कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम् ॥८॥ कोपयन्मृद्रसादींश्च रौक्ष्याद् भुक्तं च रूक्षयेत् । पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणद्धयापि ॥ ९ ॥ इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजो वीर्यौजसी तथा। पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥ १० ॥

---

१ चरकमें लिखा है–सर्वान्नसेविनः सर्वे दुष्टा दोषास्त्रिदोषजम् । त्रिलिंगं संप्रकुर्वन्ति पांडुरोगं सुदुःसहम् ॥ सम्पूर्ण अन्नोंके सेवन करनेवाले पुरुषके तीनों दोष दुष्ट हुए त्रिदोषज पांडुरोगको करते हैं जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हैं उसको सन्निपातका पांडुरोग जानना और वह असाध्य है ॥

मिट्टी खानेका जिस मनुष्यको अभ्यास पडजाय उसके वातादिक दोष कुपित होवें, कषेली मिट्टीसे वात कुपित होय, खारी मिट्टीसे पित्त और मीठी मिट्टीसे कफ कुपित होवे। फिर वही मिट्टी पेटमें जाकर रसादिक धातुओंको रूखा करे। जब रौक्ष्य गुण प्रगट होजाय तब जो अन्न खाय सो रूखा होजाय। फिर वही मिट्टी पेटमें विना पके रसको रस बहनेवाली नसोंमें प्राप्त कर उनके मार्गको रोकदे, रसके बहनेवाली नसोंका मार्ग जब रुकजाय तब इन्द्रियोंका बल अर्थात् अपने अपने विषय ग्रहण करनेकी शक्तिका नाश होय, शरीरकी कांति तेज और ओज कहिये सब धातुओंका सार हृदयमें रहता है सो क्षीण होकर पाण्डुरोग प्रगट करे उसमें बल, वर्ण और अग्नि इनका नाश होता है ॥

पांडुके विशेष लक्षण।

शूनाक्षिकूटगण्डभ्रूः शूनपन्नाभिमेहनः।
कृमिकोष्ठोऽतिसार्य्येत मलं चासृक्कफान्वितम् ॥ ११ ॥

नेत्र, कपोल, भृकुटी, पैर, नाभि और लिंग इनमें सूजन हो और कोठेमें क्रिमि पडजाँय तथा रुधिर और कफ मिला दस्त उतरे सब पाण्डुरोगोंमें जब पेटमें कृमि पडजाँय हैं तब ये पूर्वोक्त लक्षण होते हैं। यह जैज्जट आचार्यका मत है और कोई कहता है-ये मृत्तिकाजन्य पांडुरोगके लक्षणहैं। क्योंकि, मृत्तिकाजन्य पाण्डुरोगके लक्षण अनन्तर लिखे हैं परन्तु विदेहने तो ये मृत्तिकाजन्य पांडुरोगके लक्षण स्पष्ट कहे हैं ॥

असाध्य पांडुरोगके लक्षण।

पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिद्ध्यति। कालप्रकर्षा-
च्छूनाङ्गो यो वा पीतानि पश्यति ॥ १२ ॥ बद्धाल्पविट् सह-
रितं सकफं योऽतिसार्यते। दीनः श्वेतातिदिग्धाङ्गश्छर्दि-
मूर्च्छातृषान्वितः ॥ १३ ॥ स नास्त्यसृक्क्षयाद्यस्तु पाण्डुः
श्वेतत्वमाप्नुयात्। पाण्डुदन्तनखो यस्तु पाण्डुनेत्रश्च यो भवेत्
॥ १४ ॥ पाण्डुसङ्घातदर्शी च पाण्डुरोगी विनश्यति। अन्तेषु
शूनं परिहीनमध्यं म्लानं तथा तेषु च मध्यशूनम् ॥ १५ ॥
गुदे च शोफस्त्वथ मुष्कयोश्च शूनं प्रताम्यं तमसंज्ञकल्पम्।
विवर्जयेत्पाण्डुकिनं यशोर्थी तथातिसारज्वरपीडितं च ॥ १६ ॥

बहुत दिनका पांडुरोग बहुत काल बीतनेसे पुराना होजाता है सो अच्छा नहीं होय। अथवा-सब देहमें सूजन आगई होवे और उसको पदार्थ पीले दीखें सो भी

असाध्य है। अथवा–जिस मनुष्यका बँधाहुआ मल थोडा हरे रंगका कफमिश्रित उतरे सो भी असाध्य है । अथवा–जो पुरुष दीन कहिये ग्लानियुक्त हो और जिसकी देहका श्वेत वर्ण हो और वमन, मूर्च्छा, प्यास इनसे पीडित होवे सो पांडु-रोगी नष्ट होवे । अथवा–रुधिरक्षय होनेसे जो पांडुरोग श्वेतत्वको प्राप्त होय सो भी असाध्य है । जिसके दांत, नख और नेत्र पीले होयँ वह रोगी असाध्य है । जिसको सब पदार्थ पीलेही पीले दीखें वह रोगी मरे । हाथ, पैर, शिर, इनमें सूजन हो और जिसका मध्य पतला होय ऐसा पांडुरोगी असाध्य है, इससे विपरीत साध्य है। जिस रोगीके देहके मध्यमें सूजन हो और हाथ, पग, शिर ये सूखजायँ तथा गुदा, लिङ्ग इनमें सूजन होय तथा मरेके समान होगया होय ऐसे पांडुरोगीको जिस वैद्यको यशकी इच्छा हो सो त्याग दे । इसी प्रकार अतिसार और ज्वर इनसे पीडित रोगीको वैद्य त्याग देवे परन्तु इस अन्तके श्लोकमें जो " पांडुकिनं " यह पाठ है। इस जगह पालकिनं ऐसा पाठ कोई आचार्य मानते हैं सो ठीक है क्योंकि ऐसा पढनेसे पांडुरोगकी अवस्था अर्थात् पांडुरोगका भेद जो पालकी है उसके भी लक्षण इस पाठसे आगये । सो सुश्रुतमें लिखा है, इसीका आशय लेकर किसी अन्यने भी लिखा है । यथा–

अन्ते शूनः कृशो मध्ये त्वथवा गुदशेफसि ॥
शूनो ज्वरातिसाराद्यैर्मृतकल्पस्तु पालकी ॥ १७ ॥

जिस मनुष्यके हाथ पैरोंके ऊपर सूजन और देहका मध्य कृश होगया अथवा गुदा लिंगपर सूजन हो तथा ज्वर अतिसारके मुर्देके समान हो ये लक्षण पालकी रोगके हैं । पांडुरोगका भेद कामला है ॥

कामलाके लक्षण ।

पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते ।
तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते ॥ १८ ॥
हारिद्रनेत्रः स भृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः ।
रक्तपित्तशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः ॥ १९ ॥
दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः ।
कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता ॥ २० ॥

---

१ सकामलापालकिपाण्डुरोगः कुम्भाह्वयो लाघविकोऽलसाख्यः । इति ॥

जो पाण्डुरोगी अत्यन्त पित्तकारक वस्तुओंके सेवन करे उसके पित्त, रुधिर मांसको जलाय (दुष्ट कर) कामलारूप रोग प्रगट करनेको समर्थ होय, उस मनुष्यके नेत्र अत्यन्त पीले होयँ, त्वचा, नख और मुख ये पीले होयँ, रक्तपित्तयुक्त मल, मूत्र काले होयँ अथवा पीले होयँ, वह मनुष्य वर्षाऋतुमें मेंढकके समान पीला होवे, इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट होय, दाह, अन्न पचे नहीं, दुर्बलता, अंगग्लानि, अन्नमें अरुचि इनसे पीडित होय. जिसमें पित्त प्रबल है ऐसी यह कामला एक कोष्ठाश्रय और दूसरी शाखा (रक्तादि धातु) आश्रित है । जैसे कासरोगसे भी राजयक्ष्मा पैदा होती है और स्वतन्त्र भी होती है उसी प्रकार कामला स्वतन्त्र भी होती है ॥

अब कहते हैं कि, पाण्डुरोगको उपेक्षा करनेसेही कामलादिक होते हैं उसीकी दूसरी अवस्था कुंभकामला है ।

अथ कुम्भकामलाके लक्षण ।

कालान्तरात्खरीभूता कृच्छ्रा स्यात्कुम्भकामला ।

बहुत कालसे पुरानी पडनेसे जो कुंभकामला होवे सो कृच्छ्रसाध्य होती है । कुम्भ कहिये कोष्ठ तद्गत जो कामला उसको कुम्भकामला कहते हैं अर्थात् कोष्ठाश्रय कामला ॥

असाध्य कामलाके लक्षण ।

कृष्णपीतशकृन्मूत्रो भृशं शूनश्च मानवः ।
संरक्ताक्षिमुखच्छर्दिविण्मूत्रो यश्च ताम्यति ॥ २१ ॥

जिस मनुष्यका मल काला और मूत्र पीला हो और शरीरपर सूजन विशेष होवे और नेत्र मुख, वमन, मल और मूत्र ये अत्यन्त लाल होयँ, मोह होय वह कामलावान् रोगी बचे नहीं ॥

दाहारुचितृडानाहतन्द्रामोहसमन्वितः ।
नष्टाग्निसंज्ञः क्षिप्रं च कामलावान्विपद्यते ॥ २२ ॥

दूसरे असाध्य लक्षण—दाह, अरुचि, प्यास, अफरा, तन्द्रा इन लक्षणयुक्त तथा मन्दाग्नि और विस्मृतिवान् कामलावाला रोगी तत्काल मरे ॥

---

१ "स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च । हृदुण्डकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥"

कुम्भकामलाके असाध्य लक्षण ।

छर्द्यरोचकहृल्लासज्वरक्लमनिपीडितः ।
नश्यति श्वासकासार्तो विड्भेदी कुम्भकामली ॥ २३ ॥

वमन, अरुचि, ओकारीका आना, ज्वर, अनायास श्रम इनसे पीडित तथा श्वास खाँसी इनसे जर्जरित और अतिसारयुक्त ऐसा कुम्भकामलावाला रोगी मरजावे ॥

पांडुरोगसे हलीमक रोग प्रगट होता है, सो कहते हैं–

यदा तु पाण्डुवर्णः स्याद्धरितः श्यावपीतकः ।
बलोत्साहक्षयस्तन्द्रा मन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः ॥ २४ ॥
स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्च दाहस्तृष्णाऽरुचिर्भ्रमः ।
हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः ॥ २५ ॥

जिस समय पाण्डुरोगीका वर्ण हरा, काला, पीला होय और बल व उत्साह इनका नाश, तन्द्रा, मन्दाग्नि, महीन ज्वर, स्त्रीसंभोगकी इच्छाका नाश, अंगोंका टूटना, दाह, प्यास, अन्नमें अप्रीति और भ्रम ये उपद्रव वातपित्तसे प्रगट हलीमक रोगके हैं ॥

पानकी लक्षण ।

सन्तापो भिन्नवर्चस्त्वं बहिरन्तश्च पीतता ।
पाण्डुता नेत्रयोर्यस्य पानकीलक्षणं भवेत् ॥ २६ ॥

सन्ताप कहिये इन्द्रिय, मन इनका ताप, मलका पतला होना, भीतर बाहर पीला हो जावे और नेत्रोंका पीला होना ये पानकी रोगके लक्षण हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां पाण्डुकामलाहलीमकनिदानं समाप्तम् ॥

अथ रक्तपित्तनिदानम् ।

पाण्डुरोगके सदृश रक्तपित्तको भी पित्तजन्य होनेसे तदनन्तर रक्तपित्तनिदानको कहते हैं–

घर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसेवितैः ।
तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैः कटुभिरेव च ॥ १ ॥

---

१ रक्तं च तत् पित्तं च रक्तपित्तम् । अथवा रक्तं च पित्तं चेत्यनयोः समाहारः रक्तपित्तम्, तस्य निदानम् ॥

पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम् ।
ततः प्रवर्त्तते रक्तमूर्ध्वं वाऽधो द्विधापि वा ॥ २ ॥
ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः ।
कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्त्तते ॥ ३ ॥

धूपमें बहुत डोलनेसे, अति परिश्रम करनेसे, शोकसे, बहुत मार्ग चलनेसे, अति मैथुन करनेसे, मिरच आदि तीखी वस्तु खानेसे, अग्निके तापनेसे जवाखार आदि खारे पदार्थ, नोंनसे आदि ले लवणके पदार्थ, खट्टी कडुवी ऐसी वस्तुओंके खानेसे कोपको प्राप्त भया जो पित्त सो अपने तीक्ष्ण द्रव पूति इत्यादि गुणोंसे रुधिरको बिगाडे तब रुधिर ऊपरके अथवा नीचेके मार्ग अथवा दोनों मार्ग होकर प्रवृत्त हो निकले (ऊपरके मार्ग, नाक, नेत्र मुख इनके द्वारा निकले) और अधोमार्ग कहिये लिंग गुदा और योनि इनके रास्ते होकर निकले और जब रुधिर अत्यन्त कुपित होय तब दोनों मार्ग और सब रोमच्छिद्रोंके द्वारा निकले हैं ॥

रक्तपित्तका पूर्वरूप ।

सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः ।
लोहगन्धिश्च निश्वासो भवत्यस्मिन् भविष्यति ॥ ४ ॥

ग्लानि, शीतकी इच्छा, कण्ठसे धूआं निकलना, वमन और तपाये भये लोहेपर जल गेरनेसे जैसी गन्ध आवे ऐसी श्वास लेनेसे गन्धका आना जिस मनुष्यमें इतने लक्षण मिलते होयँ उसको जानना कि, इसके रक्तपित्त प्रगट होवेगा ॥

कफयुक्त रक्तपित्तके लक्षण ।

सान्द्रं सपाण्डु सस्नेहं पिच्छिलं च कफान्वितम् ।

सघन, कुछ पीला और कुछ चिकना तथा गाढा ऐसा रक्तपित्त कफमिश्रित जानना॥

वातिक रक्तपित्तके लक्षण ।

श्यावारुणं सफेनं च तनु रूक्षं च वातिकम् ॥ ५ ॥

नीलवर्ण, लालवर्ण, कुछ झागयुक्त, पतला और रूखा ऐसा रक्तपित्त वातका जानना ॥

पैत्तिक रक्तपित्तके लक्षण ।

रक्तपित्तं कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसंनिभम् ।
मेचकागारधूमाभमञ्जनाभं च पैत्तिकम् ॥ ६ ॥

जो रक्तपित्त काढेके रंगसमान हो, काला, गौके मूत्र समान हो अथवा मोरकी चन्द्रिकाके समान नीलवर्ण अर्थात् बैंगनी रंगके सदृश होय, घरके धूएँके सुर्मेके समान हो ये पैत्तिक रक्तपित्तके लक्षण हैं। शंका–क्यों जी ! केवल पैत्तिक रक्त-पित्त नहीं हो सके है। कारण इसका यह है कि, जैसे कफके रक्तपित्तका मार्ग कहा है इस प्रकार पैत्तिक रक्तपित्तका नहीं कहा ? उत्तर–तुमने कहा सो ठीक है परन्तु यह मार्ग जो कहा है सो वातकफके लक्षण प्रति नहीं कहा है ॥

द्विदोषजादि रक्तपित्तके लक्षण।

संसृष्टलिङ्गं संसर्गात्त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम्।
ऊर्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं मारुतान्वितम् ॥ ७ ॥
द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यामनुवर्त्तते।

दो दोषके मिलनेसे जो रक्तपित्त होता है उसमें दोनों दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्विदोषज जानना और जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातका रक्त पित्त जानना। ऊपरके मार्गसे कफका और नीचेके मार्ग होकर वातका और दोनों-मार्गोंसे जो रक्तपित्त निकले सो वात और कफ इन दोषोंसे प्रगट भया जानना ॥

ऊर्ध्वगादिकोंका साध्यासाध्यविचार।

ऊर्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम् ॥ ८ ॥

ऊपरके मार्गसे लोही निकले सो साध्य है (क्योंकि कफसे प्रगट है सो कफके रक्तपित्तमें काथ तीखे रस कफपित्तके हरणकर्ता होते हैं) और नीचेके मार्गसे जिसमें रुधिर गिरे सो याप्य (साध्यासाध्य) है इसका कारण यह है कि, पित्तके हरणमें विरेचन मुख्य है और इसपर वातपित्त शमन करनेवाला मधुररस प्रधान वमन देनेसे विरुद्धमार्गी होते हैं अर्थात् (वेगमात्रका अवरोधक है परन्तु पित्तका हरण करनेवाला नहीं है) और दोनों मार्गोंसे गिरनेवाला रक्तपित्त असाध्य है कारण इसपर विरुद्ध चिकित्सा करनी पडती है ॥

साध्य होनेके कारण ।

एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम्।
रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ॥ ९ ॥

बलवान् पुरुषके एक मार्ग अर्थात् ऊपरके मार्गसे जाता हो, अतिवेग नहीं हो,

---

१–यदुक्तं चरके " साध्यं लोहितपित्तं तद्यदूर्ध्वं प्रतिपद्यते। विरेचनस्य योग्यत्वाद् बहुत्वाद् भेषजस्य च। विरेचनं हि पित्तस्य जयाय परमौषधम् ॥ " इत्यादि।

नवीन प्रगट भया हो और हेमन्त शिशिर कालमें प्रगट भया हो और दुर्बलता आदि उपद्रवरहित हो ऐसा रक्तपित्त साध्य होता है ॥

दोषभेदसे साध्यासाध्य लक्षण।

एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते।
त्रिदोषजमसाध्यं स्यान्मन्दाग्नेरतिवेगितम् ॥ १० ॥
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यानश्नतश्च यत् ॥ ११ ॥

एकदोषका रक्तपित्त साध्य है, द्विदोषका याप्य है और तीनों दोषोंका असाध्य है। मन्दाग्नि अतिवेगसे हो, रोगसे क्षीण देहवालेका, बूढे मनुष्यका और जिसका आहार थकगया हो ऐसे मनुष्योंका रक्तपित्त असाध्य होता है ॥

रक्तपित्तके उपद्रव।

दौर्बल्यं श्वासकासज्वरवमथुमदाः पाण्डुता दाहमूर्च्छा
भुक्ते घोरो विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा।
तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठीवनत्वं
भक्तद्वेषाविपाकौ विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तोपसर्गाः ॥ १२ ॥

अशक्तता, श्वास, खांसी, ज्वर, वमन, धतूरेके फल खानेसे जैसी अवस्था हो ऐसी अवस्था, शरीरका पीला वर्ण होजाय, मूर्च्छा, अन्न खानेसे अत्यन्त दाह हो, अधीरपना, सर्वकाल हृदयमें विलक्षण पीडा, प्यास, कोष्ठभेद (अर्थात् मल पतला हो), मस्तकमें पीडा, दुर्गंधयुक्त थूकना, अन्नमें अरुचि, आहारका परिपाक न होना ये रक्तपित्तके उपद्रव हैं और उसी प्रकार उस रक्तपित्तकी विकृति भी होय है सो आगे-" मांसप्रक्षालनाभम् " इत्यादि श्लोककरके कहते हैं ॥

असाध्य लक्षण।

मांसप्रक्षालनाभं क्वथितमिव च यत्कर्दमाम्भोनिभं वा
मेदःपूयास्रकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजम्बूफलाभम्।
यत्कृष्णं यच्च नीलं भृशमतिकुणपं यत्र चोक्ता विकारा-
स्तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं विभाति॥१३॥

जो रक्तपित्त मांस धोये हुए जलके समान हो अथवा सडे पानीके समान अथवा कीचके समान अथवा जलके समान; उसी प्रकार मेद, राध, रुधिर इनके समान अथवा कलेजेके टुकडेके समान अथवा पकी जामुनके समान किंवा काले रंगका किंवा नील कहिये पपया पक्षीके पंखके समान जिसमें मुरदेकीसी बास आवे

और जिसमें पूर्वोक्त (कहे) श्वासकासादि विकार युक्त हों ऐसा रक्तपित्त वर्जित है और जो रक्तपित्त इन्द्रधनुषके वर्ण समान रंगवाला हो सो भी त्याज्य है अर्थात् ऐसे रक्तपित्तकी वैद्य चिकित्सा न करे ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

येन चोपहतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः ।
पश्येद् दृश्यं वियच्चापि तच्चासाध्यमसंशयम् ॥ १४ ॥

जिस रक्तपित्तने मनुष्यको ग्रस लिया होय वह दृश्य (घटपटादि) और वियत् (आकाश) इनको रक्तवर्णका देखे वह रोगी निःसन्देह असाध्य जानना ॥

लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः ।
लोहितोद्गारदर्शी च म्रियते रक्तपैत्तिकः ॥ १५ ॥

दूसरे असाध्य लक्षण—जो वारंवार रुधिरकी वमन करे और जिसके लाल नेत्र होयँ तथा डकार भी लाल आवे वह रक्तपित्तवाला रोगी मरजावे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषा-
टीकायां रक्तपित्तनिदानं समाप्तम् ॥

अथ राजयक्ष्मनिदानम् ।

वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात् ।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात् ॥ १ ॥

वात, मूत्र, पुरीष आदि वेगोंके रोकनेसे, अतिमैथुन, उपवास, ईर्ष्या, खेद इत्यादिक धातुक्षयके कारणोंसे, बलवान्से वैर करनेसे, विषमाशन कहिये कुसमय थोडा अथवा बहुत भोजन करनेसे इन चार कारणोंसे तीनों दोषोंके कोपसे मनुष्यके राजयक्ष्मा रोग होता है । वेगका रोकना ही वातकोपका कारण है, यह सत्य है तथापि वातकोपसे अग्नि दुष्ट होकर कफपित्तका कोप होता है, इन चार हेतुओंमें असंख्य हेतुओंका अन्तर्भाव होता है. रसादि धातुओंके शोषण (सुखाने) से इस रोगको (शोष) कहते हैं तथा शरीरमें पाचनादि सर्व क्रियाओंको क्षय करे है इसीसे इस रोगको (क्षय) कहते हैं और राजा (चन्द्र) इस रोगसे अतिपीडित भया इसीसे इसको (राजयक्ष्मा) कहते हैं । यह सुश्रुतका

---

१ संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते । क्रियाक्षयकरत्वाच्च क्षय इत्युच्यते पुनः ॥ राज्ञश्चन्द्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः । तस्मात्तं राजयक्ष्मेति केचिदाहुर्मनीषिणः ॥ इति ॥

आशय है और वाग्भटने इसको सर्व रोगोंका राजा कहा है इसीसे इसको राजयक्ष्मा नाम कहा है। इस श्लोकमें जो कहा है कि, त्रिदोषका एक ही यक्ष्मा रोग प्रगट होता है उसका तात्पर्य यह है कि, तीनों दोषोंके कारणभेदसे अनेक प्रकारका नहीं है सो सुश्रुतमें कहा भी है और इस श्लोकमें " वेगरोधात् " इस पदमें केवल वात, मूत्र, मल इनका ही ग्रहण करना चाहिये, भ्रमादिक सबोंका ग्रहण नहीं है, सो चरकमें लिखा है ॥

राजयक्ष्माकी विशिष्टसंप्राप्ति।

कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु।
अतिव्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनन्तराः॥
क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः॥ २॥

कफ है प्रधान जिनमें ऐसे जो वातादि दोष तिन करके रसके वहनेवाली नाडियोंके मार्ग रुक जानेसे (इससे यह सूचना करी कि, रसमार्ग बन्द होनेसे हृदयमें स्थित जो रस उसको बिगाड और उसी स्थानमें विकृति कहिये और प्रकारका स्वरूप करके खांसीके वेगसे मुखमार्ग होकर निकाले) सो चरकमें लिखा भी है। (इससे अनुलोमक्षय[3] दिखाय अब प्रतिलोमक्षय[4] कैसा होता है उसको कहते हैं-) अथवा अतिमैथुन करनेसे मनुष्यका वीर्य क्षीण होता है, जब शुक्र क्षीण होजाय तब समीपकी धातु क्षीण होयँ तब पुरुष सूखने लगता है, जैसे शुक्र क्षीणके अनन्तर मज्जा क्षीण होय, मज्जा क्षीणके अनन्तर हड्डी क्षीण होयँ ऐसे पूर्वपूर्व धातु क्षीण हो जायँ। शंका--क्यों जी ! रस, रुधिर, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा, शुक्र इनमें क्रमसे प्रत्येक क्षीण होनेसे शुक्रका क्षय होना उचित है, परन्तु कार्यभूत शुक्रका क्षय होनेसे कारणभूत धातुओंका नाश कैसे होता है ? उत्तर--जब शुक्रका क्षय होता है तब वात कुपित होता है, सो तन्त्रान्तरोंमें लिखा है अर्थात् धातुके नष्ट होनेसे पवनको बहनेवाली नाडियोंका मार्ग बन्द होकर वायुको कुपित करे तब वही पवन समीपकी मज्जा धातुको सुखावे तदनंतर हड्डी और उसके पश्चात् मेदा इसी रीतिसे रसपर्यंत धातुओंको सुखावे है, इस जगहपर दृष्टान्त है-जैसे अग्निमें तपायाभया लोहका गोला गीली पृथ्वीमें धरनेसे प्रथम समीपकी पृथ्वीके आर्द्रपनेको शोषण करे पीछे दूरका गीलापन शोषण करे उसी रीतिसे यहां जानना चाहिये ॥

---

१ "एक एव मतः शोषः सन्निपातात्मको यतः। उद्रेकात्तत्र लिंगानि दोषाणां निर्मितानि हि॥" इति। २ "ह्रीमत्त्वाद्वा घृणित्वाद्वा भयाद्वा वेगमागतम्। वातमूत्रपुरीषाणां निगृह्णाति यदा नरः॥" इत्यादि। ३ रससे रुधिर, रुधिरसे मांस, इसी रीतिसे शुक्रपर्यंत धातुओंका क्षय हो सो। ४ शुक्रसे रसपर्यंत धातुओंका शोष हो सो। ५ "वायोर्धातुक्षयात् कोपो मार्गस्यावरणेन च" इति॥

राजयक्ष्माके पूर्वरूप।

श्वासाङ्गसादकफसंस्रवतालुशोषवम्यग्निसादमदपीनसकासनिद्राः। शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः॥३॥ स्वप्नेषु काकशुकशल्लकिनीलकण्ठगृध्रास्तथैव कपयः कृकलासकाश्च। तं वाहयन्ति स नदीर्विजलाश्च पश्येच्छुष्कांस्तरून् पवनधूमदवार्दितांश्च॥४॥

श्वास, हाथ पैरका गलना, कफका थूकना, तालुवेका सूखना, वमन, मंदाग्नि, उन्मत्तता, पीनस, खांसी और निद्रा ये लक्षण धातुशोष होनेवालेके होते हैं और उस मनुष्यके नेत्र सफेद होते हैं और उस मनुष्यकी मांस खानेपर तथा स्त्रीसङ्ग करनेको इच्छा होती है और स्वप्नमें कौआ, तोता, सेह, नीलकंठ (मोर), गीध, बन्दर, करकेटा इनपर अपनेको बैठा देखे और जलहीन नदीको देखे तथा पवन, धूर और धूआँ इनसे पीडित ऐसे वृक्ष देखे, चकारसे तृण, केश आदिका गिरना ये होते हैं। ये सब स्वप्न क्षयीरोग होनेसे पहिले दीखते हैं, सो चरकमें लिखा है। शंका—क्योंजी! शुक्रका तो क्षय हो जाता है फिर "रिरंसुः" यह पद क्यों धरा? उत्तर—यह केवल व्याधिके बढनेसे मनके दोषसे जानना चाहिये॥

त्रिरूपक्षयके लक्षण।

अंसपार्श्वाभितापश्च संतापः करपादयोः।
ज्वरः सर्वाङ्गगश्चैव लक्षणं राजयक्ष्मणः॥५॥

कन्धा और पसवाडोंमें पीडा हो, हाथ पैरमें जलन और सर्व अंगोंमें ज्वर ये राजयक्ष्माके लक्षण हैं, ये तीन लक्षण अवश्य होते हैं ऐसा चरकने कहा है॥

एकादशरूप षड्रूप और त्रिरूप शोषके लक्षण कहते हैं—

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोचश्चांसपार्श्वयोः।
ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः॥६॥

---

१ "पूर्वरूपं प्रतिश्यायो दौर्बल्यं दोपदर्शनम्। अदोषेष्वीपि भावेषु काये बीभत्सदर्शनम्॥ घृणित्वमश्नतश्चापि बलमांसपरिक्षयः। स्त्रीमद्यमांसप्रियता प्रियता चावगुण्ठने॥ मक्षिकाघूणकेशादितृणानां पतनानि च। प्रायोऽन्नपाने केशानां नखानां चाभिवर्द्धनम्॥ पतत्रिभिः पतङ्गैश्च श्वापदैश्चापि धर्षणम्। स्वप्ने केशास्थिराशीनां भस्मनश्चाधिरोहणम्॥ जलाशयानां शैलानां वनानां ज्योतिषामपि। शुष्यतां क्षीयमाणानां पततां चापि दर्शनम्॥ प्राग्रूपं बहुरूपस्य तज्ज्ञेयं राजयक्ष्मणः॥" इति। अत्र श्वापदा व्याघ्रादयः।

शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छन्द एव च ।
कासः कण्ठस्य चोद्ध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥ ७ ॥
एकादशभिरेतैर्वा षड्भिर्वापि समन्वितम् ।
कासातिसारपार्श्वार्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः ॥ ८ ॥
त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैर्ज्वरकासासृगामयैः ।
जह्याच्छोषार्दितं जन्तुमिच्छन्सुविपुलं यशः ॥ ९ ॥

यह राजयक्ष्मा त्रिदोषसे उत्पन्न है इसमें दोषोंके न्यारे न्यारे मिलाय कर सब ग्यारह रूप हैं, ये व्याधिके प्रभावसे होते हैं । सन्निपातज्वरके सदृश सर्वलक्षण सब दोषोंसे नहीं होते पृथक् पृथक् होते हैं । सो दिखाते हैं—वादीके प्रभावसे स्वरभेद, कन्धे और पसवाडोंमें संकोच और पीडा हो, पित्तसे ज्वर, दाह, अतिसार और मुखसे रुधिरका गिरना और कफके कोपसे मस्तकका भारीपना, अन्नसे द्वेष, खांसी, स्वरभेद ये लक्षण होते हैं, इसमें तीन तो वातसे और चार लक्षण पित्तसे तथा चारही लक्षण कफसे ऐसे सब ग्यारह लक्षणसे अथवा खांसी, अतिसार, पसवाडोंमें पीडा, स्वरभेद, अरुचि और ज्वर इन छः लक्षणोंसे अथवा ज्वर खांसी और रुधिरविकार इन तीन लक्षणोंसे पीडित क्षयीरोगवाले मनुष्य तथा जिसका बल मांस क्षीण होगया हो ऐसे रोगीको यशकी इच्छावाला वैद्य त्याग दे ऐसा रोगी असाध्य है ॥

साध्यासाध्य विचार ।

सर्वैरर्धैस्त्रिभिर्वापि लिङ्गैर्वापि बलक्षये ।
युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा ॥ १० ॥

स्वरभेदादिक जो ग्यारह लक्षण कहे उन सब लक्षणों करके अथवा उनमेंसे आधे अर्थात् छः लक्षणोंसे अथवा तीन लक्षण कहे इनसे युक्त जो क्षयीरोगी बल, मांस क्षीण होनेपर त्याज्य है । यदि बल, मांस जिसका क्षीण न भया हो परन्तु सर्वलक्षण युक्त भी है तथापि त्याज्य नहीं है, उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥

असाध्य लक्षण ।

महाशिनं क्षीयमाणमतिसारनिपीडितम् ।
शूनमुष्कोदरं चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

जो बहुत भोजन करे परन्तु दिनप्रति क्षीण होता जाय वह असाध्य रोगी है, अतिसार करके अत्यन्त पीडित हो सो रोगी भी असाध्य होता है. क्योंकि क्षयरोगवालेका जीना मलके आधीन है । जैसे लिखा है—"मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रा-

यत्तं तु जीवितम् । तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥" इति । और जिसके अंडकोश और उदर ये सूज गये हों ऐसा रोगी असाध्य है क्योंकि शोथवाला दस्तके करानेसे अच्छा होता है सो इसपर दस्त कराना वर्जित है । इसीसे ऐसे रोगीको वैद्य त्याग दे ॥

कौनसे रोगीको औषध देना योग्य है ? सो कहते हैं—

ज्वरानुबन्धरहितं बलवन्तं क्रियासहम् ।
उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम् ॥ १२ ॥

जिस क्षय रोगवाले मनुष्यको ज्वरका सम्बन्ध होय नहीं, बलवान्, औषधादि उपचारका सहनेवाला और जिसकी इन्द्रियें बलमें हों तथा जठराग्नि जिसकी दीप्त होय और कृश न हो ऐसे रोगीकी चिकित्सा (उपचार) करना चाहिये । इस श्लोकमें "अकृशं" इस पदके धरनेका यह प्रयोजन है कि पुष्टदेहवाला भी क्षय रोगसे हजार दिन बच सके है सोई ग्रन्थान्तरमें लिखा है ॥

असाध्य लक्षण ।

शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ।
कृच्छ्रेण बहु मेहन्तं यक्ष्मा हन्तीह मानवम् ॥ १३ ॥

सफेद नेत्र जिसके होगये हों, अन्न जिसको बुरा लगे, ऊर्ध्वश्वाससे पीडित और कष्टसे बहुत मूतनेवाला अर्थात् मल सुखसे उतरे इससे यह दिखाया कि जो आहार खाय सो मल होजाय, जब आहारका मल होगया तब उसके मांस रुधिर इनका क्षय होता है इसीसे यह असाध्य है, शुक्लाक्षादिक ये प्रत्येक अलग २ भी असाध्य हैं ॥

अब कहते हैं, कि अति मैथुनादि करनेसे धातुका क्षय होता है इसीसे क्षयरोग प्रगट होता है ऐसा नहीं किन्तु और भी कारणसे होता है उसको कहते हैं—

व्यवायशोकवार्द्धक्यव्यायामाध्वप्रशोषिणः ।
व्रणोरःक्षतसंज्ञौ च शोषिणौ लक्षणं शृणु ॥ १४ ॥

अति मैथुनसे शोषी, शोकशोषी, वार्द्धक्यशोषी, व्यायामशोषी, मार्गशोषी, व्रणशोषी और उरःक्षतशोषी इनके न्यारे न्यारे लक्षण कहता हूँ ॥

व्यवायशोषीके लक्षण ।

व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिङ्गैरुपद्रुतः ।
पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः ॥ १५ ॥

---

१ परं दिनसहस्रं तु यदि जीवति मानवः । सुभिषग्भिरुपक्रान्तस्तरुणः शोषपीडितः ॥ इति ॥

व्यवायशोषी (अति मैथुनसे क्षीण भया) सुश्रुतके कहे अनुसार शुक्रक्षय-लक्षणोंसे [शुक्रक्षय होनेसे लिंग और अण्डकोशमें पीडा होय, मैथुन करनेसे अशक्त और बलसे मैथुन करे तो बहुत देरमें शुक्रका स्राव हो और वह स्राव बहुत अल्प होय अथवा रुधिरका स्राव होय] पीडित होय उसके देहका वर्ण पीला होजाता है और शुक्रसे मज्जा, मज्जासे हड्डी ऐसे उलटे धातु क्षीण हो जाते हैं ॥

शोकशोषीके लक्षण।

प्रध्यानशीलः स्रस्ताङ्गः शोकशोष्यपि तादृशः।

शोकशोषी अर्थात् शोचसे जिसको क्षय होय वह चिन्ता करे और हाथ पैर गलने लगें तथा शुक्रक्षयव्यतिरिक्त शोषवान् हो और पाण्डु देह हो ऐसा शोचसे क्षय-वाला पुरुष होता है ॥

जराशोषीके लक्षण।

जराशोषी कृशो मन्दवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः ॥ १६ ॥
कंपनोऽरुचिमान् भिन्नकांस्यपात्रहतस्वरः।
ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारुचिपीडितः ॥ १७ ॥
संप्रस्रुतास्यनासाक्षः शुष्करूक्षमलच्छविः।

जरा (बुढापे) से शोषवाला मनुष्य कृश होता है, उसके वीर्य बुद्धि बल और इंद्रिय ये मन्द हो जाते हैं, कम्प हो, अन्नमें अरुचि, फूटे कांसीके बासनको लक-डीके बजानेसे जैसा शब्द हो ऐसा शब्द हो, कफरहित बारम्बार थूके अर्थात् कफके निकालनेके वास्ते यत्न करे तथापि कफ नहीं निकले, शरीर भारी रहे, अरु-चिसे पीडित पुनः अरुचिग्रहण विशेषतः द्योतनके वास्ते कहा है। मुख नाक और नेत्र इनसे स्राव हो, मल शुष्क उतरे और देहकी कांति निस्तेज होय ॥

अध्वप्रशोषीके लक्षण।

अध्वप्रशोषी स्रस्ताङ्गः संभृष्टपरुषच्छविः।
प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ॥ १८ ॥

अध्वप्रशोषी (अतिमार्ग चलनेसे क्षीण हुआ) मनुष्यके हाथ पैर शिथिल हो जावें. उसके देहका वर्ण भूजे पदार्थके सदृश और खरदरा होय है, सर्व देहमें प्रसुप्तता, हृदयमें प्यासका स्थान है सो गला और मुख इनका सूखना। शंका-क्योंजी ! जराशोषीके अनन्तर व्यायामशोषीके लक्षण कहने चाहिये पीछे अध्व (मार्ग)-

शोषीके लक्षण कहने चाहिये फिर माधवाचार्यने अध्वशोषीके लक्षण क्यों कहे ? उत्तर–अध्वशोषीके लक्षण इस वास्ते कहे कि व्यायामशोषीके इसके सब लक्षण मिलते हैं । शंका–अच्छा आप ऐसे कहोगे तो व्यायामशोषीमें अध्वशोषीके कौनसे लक्षण नहीं मिलते ? उत्तर–तुमने कहा सो ठीक है परन्तु अध्वशोषीमें उरःक्षत आदि चिह्न नहीं हैं इससे पूर्व अध्वशोषीके लक्षण कहे ॥

व्यायामशोषीके लक्षण ।

व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः ।
लिङ्गैरुरःक्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना ॥ १९ ॥

व्यायामशोशी (अत्यन्त दंडकसरत आदि श्रमसे क्षीण) मनुष्य विशेष करके अध्वशोषीके लक्षण स्रस्तांगतादियुक्त होता है अर्थात् जो लक्षण अध्वशोषीमें थोडे थोडे होते हैं वे व्यायामशोषीमें अधिक होते हैं और उस मनुष्यके घावके विनाही उरःक्षतके लक्षण मिलते हैं । उरःक्षतके लक्षण सुश्रुतमें लिखे हैं ॥

तीन कारणोंसे व्रणशोष होय, सो कहते हैं––

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात् ।
व्रणिनश्च भवेच्छोषः स चासाध्यतमो मतः ॥ २० ॥

रुधिरके क्षयसे, फोडाकी पीडासे तैसे ही आहारके घटनेसे व्रणी पुरुषके जो शोष होय सो अत्यन्त असाध्य जानना ॥

उरःक्षतसे धातुशोष होनेका सम्भव है अतएव शोषप्रकरणमें निदानसहित उरःक्षतरोग कहते हैं––

धनुषाऽऽयस्यतोऽत्यर्थं भारमुद्वहतो गुरुम् । युध्यमानस्य बलिभिः पततो विषमोच्चतः ॥ २१ ॥ वृषं हयं वा धावन्तं दम्यं चान्यं निगृह्णतः । शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान् क्षिपतो निघ्नतः परान् ॥ २२ ॥ अधीयानस्य वाऽत्युच्चैर्दूरं वा व्रजतो द्रुतम् । महानदीर्वा तरतो हयैर्वा सह धावतः ॥ २३ ॥ सहसोत्पततो दूरात्तूर्णं वातिप्रनृत्यतः । तथाऽन्यैः कर्मभिः

---

१ "तस्योरसि क्षते रक्तं भूयः श्लेष्मा च गच्छति । कासमानश्छर्दयेच्च पीतरक्तासितारुणम् ॥ सन्तप्तवक्षसोऽत्यर्थं दमनात्परिताम्यति । दुर्गन्धोच्छ्वासवदनो भिन्नवर्णस्वरो नरः ॥ " इति

क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य च ॥ २४ ॥ ताडिते वक्षसि व्याधिर्बलवान् समुदीर्यते। स्त्रीषु चातिप्रसक्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः ॥ २५ ॥ उरो विरुज्यतेऽत्यर्थं भिद्यतेऽथ विभज्यते। प्रपीड्यते तथा पार्श्वे शुष्यत्यङ्गं प्रवेपते ॥ २६॥ क्रमाद्वीर्यं बलं वर्णो रुचिरग्निश्च हीयते। ज्वरो व्यथा मनोदैन्यं विड्भेदोऽग्निवधावपि ॥ २७॥ दुष्टः श्यावोऽथ दुर्गन्धः पीतो विग्रथितो बहुः । कासमानस्य चाभीक्ष्णं कफः सास्रः प्रवर्त्तते ॥ २८ ॥ सक्षतः क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसोः क्षयात् ।

बहुत तीरंदाजी करनेसे, बहुत भारी वस्तु उठानेसे, बलवान् पुरुषके साथ युद्ध करनेसे, ऊंचे स्थानसे गिरनेसे, बैल, घोडा, हाथी, ऊंट इत्यादिक दौडते हुएको थामनेसे, भारी शिला लकडी पत्थर निर्घात (अस्त्रविशेष) इनके फेंकनेसे शत्रुको मारनेवाला, जोरसे वेदादिक शास्त्रको पढनेसे अथवा दूर दिशावर शीघ्र चलकर जानेसे, गंगा यमुनादि महानदीको तरनेवाला, अथवा घोडेके साथ दौडनेवाला, अकस्मात् कला खानेवाला, जल्दी जल्दी बहुत नाचनेसे, इसी प्रकार दूसरे मल्लयुद्धादि क्रूरकर्म करनेसे, उर (छाती) फट जाती है ऐसे पुरुषकी छाती दुखनेसें बलवान् उरःक्षतरूप व्याधि उत्पन्न होय है और बहुत मैथुन करनेसे वा खानेसे तथा छातीमें चोट लगनेसे अत्यंत स्त्रीरमण करनेसे और रूखा थोडा कुसमय और विना अनुमानका भोजन करनेवालेके—पूर्वोक्त लक्षणयुक्त ऐसे पुरुषका हृदय फटेके सदृश मालूम हो अथवा हृदयके दो टूक कर डाले ऐसा मालूम हो और हृदयमें अत्यन्त पीडा हो और उसके पसवाडोंमें अत्यन्त पीडा हो, अंग सब सूखने लगें तथा थरथर कांपने लगें और शक्ति, मांस, वर्ण, रुचि और अग्नि ये सब क्रमसे घटने लगे, ज्वर रहे, व्यथा हो, मनमें सन्ताप, दीन होजाय, अग्नि मन्द होनेसे दस्त होने लगें और बारंबार खाँसते २ दुष्ट काला अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त पीला गांठके समान बहुत और रुधिर मिला ऐसा कफ गिरे इस प्रकार क्षतरोगी अत्यन्त क्षीण होय सो केवल क्षतसे ही क्षीण हो जाय ऐसा नहीं किन्तु स्त्रीसेवन करनेसे शुक्र और ओज (सब धातुओंका तेज) इनका क्षय होनेसे यह मनुष्य क्षीण हो जाता है ॥

उरःक्षतका पूर्वरूप ।

अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ २९ ॥

उस उरःक्षतके अप्रगट लक्षणोंको पूर्वरूप कहते हैं ॥

क्षतक्षीणके असाध्य लक्षण।

उरोरुक्शोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः कफे।
क्षीणे सरक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटिग्रहः॥ ३०॥

क्षतक्षीण रोगीके हृदयमें पीडा होय, रुधिरकी उलटी करे और विशिष्ट कास अर्थात् पूर्व कहे जो दुष्टश्वासादि लक्षण उन्होंसे युक्त और रुधिरयुक्त मूत्रका उतरना, पसवाडे, पीठ और कमर इनमें पीडा होय॥

साध्यलक्षण।

अल्पलिङ्गस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो नवः।
परिसंवत्सरो याप्यः सर्वलिङ्गं विवर्जयेत्॥ ३१॥

जिसमें थोडे लक्षण मिलते हों और जिसकी अग्नि दीप्त हो ऐसे पुरुष बलवान् हो तथा रोग नवा हो तो वह साध्य है और रोगको भये एक वर्ष व्यतीत हो गया हो सो याप्य (साध्यासाध्य) है और जिसमें सर्वलक्षण मिलते हों सो असाध्य है उसको वैद्य त्याग दे॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां राजयक्ष्मरोगः समाप्तः॥

अथ कासनिदानम्।

कारण सम्प्राप्ति और निरुक्ति।

धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च।
विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव॥ १॥
प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः संभिन्नकांस्यस्वरतुल्यघोषः।
निरेति वक्त्रात्सहसा सदोषो मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः॥२॥

नाक मुखमें धूर धूआँ जानेसे, दंडकसरत, रूक्षान्न इनके नित्य सेवन करनेसे, भोजनके कुपथ्यसे, मलमूत्रके रोकनेसे, उसी प्रकार छिक्का अर्थात् छीक आती हुईके रोकनेसे प्राणवायु अत्यन्त दुष्ट होकर और दुष्ट उदानवायुसे मिलकर कफ-पित्तयुक्त अकस्मात् मुखसे बाहर निकले उसका शब्द फूटे कांस्यपात्रके समान हो उसको विद्वान् लोग कास (खांसी) कहते हैं॥

---

१ कसति शिरः कण्ठादूर्ध्वं गच्छति वायुरिति कासः।

पञ्च कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः ।
क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥

वात, पित्त, कफ, क्षत और क्षय ऐसे पांच प्रकारकी खांसी होती है इनकी औषध न करे तो सर्वका क्षयरूप हो जाता है। ये उत्तरोत्तर बलवान् जाननी जैसे वातसे पित्तकी, पित्तसे कफकी, कफसे क्षतकी, क्षतसे क्षयकी खांसी प्रबल है ॥

कासका पूर्वरूप ।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता ।
कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ॥ ४ ॥

मुख और गलेमें कांटेसे पडजायँ तथा कण्ठमें खुजली चले, भोजन करा न जाय ये खांसी होनेवालेके लक्षण हैं ॥

वातकी खांसीके लक्षण ।

हृच्छङ्खमूर्धोदरपार्श्वशूली क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः ।
प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव ॥ ५ ॥

हृदय, कनपटी, मस्तक, उदर, पसवाडा इनमें शूल चले, मुँह उतर जाय, बल, स्वर, पराक्रम ये क्षीण पडजायँ, बारम्बार खांसीका उठना, स्वरभेद और सूखी खांसी उठे ये वातकी खांसीके लक्षण हैं ॥

पित्तकी खांसीके लक्षण ।

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्तः ।
पित्तेन पीतानि वमेत्कटूनि कासेत्स पाण्डुः परिदह्यमानः ॥६॥

पित्तकी खांसीके हृदयमें दाह, ज्वर, मुखका सूखना इनसे पीडित हो, मुख कडुआ रहे, प्यास लगे, पीले रंगकी और कडुवी ऐसी पित्तके प्रभावसे वमन हो खांसीके समय रोगीका पीला वर्ण हो जाय और सब देहमें दाह होय ॥

कफकी खांसीके लक्षण ।

प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदञ्छिरोरुजार्त्तः कफपूर्णदेहः ।
अभक्तरुग्गौरवकण्डुयुक्तः कासेद्भृशं सान्द्रकफः कफेन ॥ ७ ॥

कफकी खांसीसे मुख कफसे लिपटा रहे, शिरमें दर्द और सब देह कफसे परिपूर्ण रहे, अन्नमें अरुचि, शरीर भारी रहे, कण्ठमें खुजली और रोगी बारंबार खांसे, कफकी गांठ थूकनेसे सुख मालूम होय ॥

क्षतकासलक्षण ।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजनिग्रहैः । रूक्षस्योरःक्षतं वायु-
र्गृहीत्वा कासमावहेत् ॥ ८ ॥ स पूर्वं कासते शुष्कं ततः
ष्ठीवेत् सशोणितम् । कण्ठेन रुजताऽत्यर्थं विरुग्णेनेव चोरसा
॥ ९ ॥ सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना । दुःख-
स्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना ॥ १० ॥ पर्वभेदज्वरश्वास-
तृष्णावैस्वर्यपीडितः । पारावत इवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात् ११

बहुत स्त्रीसंग करनेसे, भारके उठानेसे, बहुत मार्ग चलनेसे, मल्लयुद्ध (कुस्ती) करनेसे, दौडते हुए हाथी घोडेको रोकनेसे इन कारणोंसे रूक्ष पुरुषका हृदय फूट-कर वायुकोप होकर खांसीको प्रगट करे । सो पुरुष प्रथम सूखा खांसे, पीछे रुधिर मिला थूके, कण्ठ अत्यन्त दूखे, हृदय फटे सदृश मालूम हो और तीखी सूईकेसे चुभका चलें और उसको हृदयका स्पर्श सुहाय नहीं, दोनों पसवाडोंमें शूल हो, यह वाग्भटका भी मत है तथा दाह हो उस रोगीके गांठ गांठमें पीडा हो, ज्वर, श्वास, प्यास, क्षतजन्य खांसीके वेगसे रोगी कबूतरकी तरह घुंघुं शब्द करे ॥

क्षयकी खांसीके लक्षण ।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् । घृणिनां शोचतां
नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः ॥ १२ ॥ कुपिताः क्षयजं
कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् । स गात्रशूलज्वरदाहमोहान्प्राणक्षयं
चापि लभेत कासी ॥ १३ ॥ शुष्यन्विनिष्ठीवति दुर्बलस्तु
प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् । तं सर्वलिङ्गं भृशदुश्चिकित्स्यं
चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदन्ति ॥ १४ ॥

कुपथ्य और विषमाशनके करनेसे, अति मैथुन, मलमूत्रादिका वेग धारण इनसे, अति दया करनेसे, अति शोक करनेसे अग्नि मन्द होय अर्थात् आहार थक-कर वायु कुपित हो अग्निको नष्ट करे । तब तीनों दोष कोपको प्राप्त हों क्षयजन्य देहकी नाशक ऐसी खांसीको प्रगट करे । तब वह खांसी देहको क्षीण करे, शूल, ज्वर, दाह और मोह ये होयँ, तब यह प्राणका नाश करे । सूखी खांसी, रुधिर, मांस, शरीरका सूखजाना, रुधिर और राध थूके इन सर्व लक्षणयुक्त और चिकित्सा करनेमें अतिकठिन ऐसी इस खांसीको वैद्य क्षयज कहते हैं ॥

साध्यासाध्यविचार।

इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः।
साध्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थितः॥ १५॥
नवौ कदाचित्सिध्येतामपि पादगुणान्वितौ।
स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्यः प्रकीर्तितः॥ १६॥
त्रीन्पूर्वान्साधयेत्साध्यान्पथ्यैर्याप्यांस्तु यापयेत्॥ १७॥

इस प्रकार यह क्षयज कास (खांसी) क्षीण पुरुषकी घातक होती है, बलवान पुरुषके असाध्य याप्य (साध्यासाध्य) होती है, क्षतज खांसी भी इसी प्रकारकी होती है। यदि वैद्यादि पादचतुष्टयसंपन्न हो और ये दोनों प्रकारकी खांसी नवीन हों तो कदाचित् साध्य होय और बूढे पुरुषके जराकास अर्थात् धातुक्षीण होनेसे भई जो खांसी सो सब प्रकारकी याप्य हैं, सो सब इन्द्रियोंके अन्तर्गत जाननी। अब कहते हैं कि, वात, पित्त, कफ ये तीन खांसी साध्य हैं और बाकी तीन याप्य हैं वह पथ्य सेवन करनेसे नाश होती हैं और अवज्ञा करनेसे असाध्य होजाती हैं॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां कासरोगनिदानं समाप्तम्॥

हिक्का-श्वासनिदानम्।

विदाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षाभिष्यन्दिभोजनैः।
शीतपानाशनस्नानरजोधूमातपानिलैः॥ १॥
व्यायामकर्मभाराध्ववेगघातापतर्पणैः।
हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते॥ २॥

दाहकारक, भारी, अफराकारक, रूखा, अभिष्यंदी ऐसे भोजन करनेसे शीतल जल पीनेसे, शीतल अन्न खानेसे शीत जल करके स्नान करनेसे, रज और धूएँके मुख नाकमें जानेसे, गरमी व हवामें डोलनेसे, दंड कसरतके करनेसे, भारके उठानेसे, बहुत मार्गके चलनेसे, मलादि वेगके रोकनेसे और उपवासके करनेसे मनुष्यके हिक्का (हिचकी) श्वास (दमा) और (कास) खांसी ये रोग उत्पन्न होते हैं॥

---

१ पूयाभमरुणं श्याव हारितं पीतनीलकम्। निष्ठीवेच्छ्वासकासार्तो न जीवति हतस्वरः॥ कासश्वासक्षयच्छार्दिस्वरभेदादयो गदाः। भवंत्युपेक्षयाऽसाध्यास्तस्माचांस्त्वरया जयेत्॥ इति॥

हिक्काका स्वरूप और निरुक्ति ।

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो
यकृत्प्लिहान्त्राणि मुखादिवाक्षिपन् ।
सघोषवानाशु हिनस्त्यसून् यत-
स्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः ॥ ३ ॥

उदानवायु प्राणवायुके साथ मिलकर जब निकले तब मनुष्य हिग हिग ऐसा शब्द करे और कलेजा प्लीहा इनको मुखपर्यन्त खींच लावे (इस स्थानमें मुखशब्द करके प्राण जल अन्न इनके बहनेवाले मार्ग जानने) और मुखमें आनकर बडा शब्द निकले उसको वैद्यवर हिक्का (हिचकी) रोग कहे हैं । यह शीघ्र प्राणोंकी हरनेवाली होती है ॥

हिक्काके भेद और सम्प्राप्ति ।

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा ।
वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि ॥ ४ ॥

वात कफसे मिलकर १ अन्नजा, २ यमला, ३ क्षुद्रा, ४ गम्भीरा और ५ महती ऐसे पांच प्रकारकी हिचकी रोगको प्रगट करे हैं ॥

हिक्काके पूर्वरूप ।

कण्ठोरसो गुरुत्वं च वदनस्य कषायता ।
हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च ॥ ५ ॥

कंठ और हृदय भारी रहे और बादीसे मुख कसैला रहे कूखमें अफरा रहे, यह हिचकीका पूर्वरूप जानना ॥

अन्नजाके लक्षण ।

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितोऽनिलः ।
हिक्कयत्यूर्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥ ६ ॥

अन्न और पानीके बहुत सेवन करनेसे वात अकस्मात् कुपित हो ऊर्ध्वगामी होकर मनुष्यके अन्नजा हिचकी प्रगट करे ॥

---

१ अत्र प्लिहो ह्रस्वेकारवान् छन्दोऽनुरोधात् । २ हिनस्त्यसूनिति हिक्केति निरुक्तिः, पृषोदरादिना रूपसिद्धिः । हिगिति कृत्वा कम्पति शब्दायते इति हिक्केति शाब्दिकाः । ३ उक्तं च–प्राणोदकान्नवहानि स्रोतांसि विकृतोऽनिलः । हिक्काः करोति संरुध्य तासां लिङ्गं पृथक् शृणु ॥ इति ।

यमलाके लक्षण।

चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का संप्रवर्त्तते।
कंपयन्ती शिरो ग्रीवां यमलां तां विनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥

ठहर ठहरके दो दो हिचकी चले, शिर कन्धाको कंपावे वह यमला हिचकी जाननी॥

क्षुद्राके लक्षण।

प्रकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्त्तते।
नाभिप्रवृत्ता या हिक्का जत्रुमूलात्प्रधावति ॥ ८ ॥

जो हिचकी बहुत देरमें कण्ठ हृदयकी सन्धिसे मन्द मन्द चले उसको क्षुद्रा नाम हिचकी कहते हैं ॥

गंभीराके लक्षण।

नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गम्भीरनादिनी।
अनेकोपद्रववती गम्भीरा नाम सा स्मृता ॥ ९ ॥

जो हिचकी नाभिके पाससे उठ घोर गम्भीर शब्द करे और जिसमें प्यास ज्वरादि अनेक उपद्रव हों उसको गम्भीरा हिचकी कहते हैं ॥

महती हिचकीके लक्षण।

मर्माण्युत्पीडयन्तीव सततं या प्रवर्तते।
महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रप्रकम्पिनी ॥ १० ॥

जो हिचकी मर्मस्थानमें पीडा करती हुई और सर्व गात्रोंको कम्पावती हुई सब कालमें प्रवृत्त होय उसको महाहिक्का कहते हैं ॥

हिचकीके असाध्य लक्षण।

आयम्यते हिक्कतो यस्य देहो दृष्टिश्चोर्ध्वं ताम्यते यस्य नित्यम्। क्षीणोऽन्नद्विट् क्षौति यश्चातिमात्रं तौ द्वौ चान्त्यौ वर्जयेद्धिक्कमानौ ॥ ११ ॥

जिसका हिचकीसे देह तन जावे, ऊंची दृष्टि हो जावे और मोह होय, क्षीण पड जाय, भोजनमें अरुचि हो और छींक बहुत आवें इन दोनों हिचकियोंवाले रोगी अर्थात् जिसको गम्भीरा और महती हिचकी होंय, सो वैद्यको त्याज्य है ॥

अतिसञ्चितदोषस्य भक्तच्छेदकृशस्य च।
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥
आसां या सा समुत्पन्ना हिक्का हन्त्याशु जीवितम् ॥ १२ ॥

जिसके अत्यन्त दोषोंका संचय हो गया हो और जिसका अन्न छूटगया हो जो कृश हो गया हो, जिसका अनेक व्याधिसे देह क्षीण होगया हो और जो वृद्ध है, अति मैथुन करनेवाला है ऐसे पुरुषके ये दोनों हिचकी उत्पन्न होयँ तो तत्क्षण उस रोगीके प्राणनाश करें ॥

यमिकाके असाध्य लक्षण ।

यमिका च प्रलापार्त्तिमोहतृष्णासमन्विता ॥ १३ ॥

बकवाद करे, पीडा हो, मोह प्यास इन लक्षणोंसे युक्त जो यमिकानामकी हिचकी सो तत्काल प्राण हरनेवाली जाननी ॥

यमिकाके साध्य लक्षण ।

अक्षीणश्चाप्यदीनश्च स्थिरधात्विन्द्रियश्च यः ।
तस्य साधयितुं शक्या यमिका हन्त्यतोऽन्यथा ॥ १४ ॥

बलवान् प्रसन्न मन जिसकी धातु और इन्द्रिय स्थिर हों ऐसे पुरुषकी यमिका हिचकी साध्य है और इससे विपरीत अर्थात् क्षीण, दीन इत्यादि पुरुषको तत्काही नाश करे । अन्नजा, क्षुद्रा ये दोनों साध्य हैं दो बार आनेसे यमिका कहाती है । चरकोक्त यमला इस जगह नहीं ग्रहण करना चाहिये ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां हिक्कारोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ श्वासनिदानम् ।

हिक्का श्वासका एक हेतु होनेसे हिक्काके अनन्तर श्वासरोगको कहते हैं—

महोर्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा ।
भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥ १ ॥

महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास और क्षुद्रश्वास इन भेदोंसे एक श्वासरोग पांच प्रकारका है ॥

श्वासके पूर्वरूपके लक्षण ।

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाध्मानमेव च ।
आनाहो वक्त्रवैरस्यं शंखनिस्तोद एव च ॥ २ ॥

हृदय दूखे, शूल हो, अफरा हो, पेट तनासा हो, कनपटी दूखें, मुखमें रसका स्वाद आवे नहीं, यह श्वासरोगका पूर्वरूप है ॥

श्वासरोगकी सम्प्राप्ति।

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः।
विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान् करोति सः॥ ३॥

सर्व देहमें विचरनेवाला पवन जब कफसे मिलकर प्राण अन्न उदक बहनेवाली सब नसोंके मार्गको रोक देवे तब पवन फिरनेसे रुककर श्वासरोगको प्रगट करे॥

महाश्वासके लक्षण।

उद्धूयमानवातो यः शब्दवद् दुःखितो नरः। उच्चैः श्वसिति संरुद्धो मत्तर्षभ इवानिशम्॥ ४॥ प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलोचनः। विवृताक्ष्याननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्ण-वाक्॥ ५॥ दीनः प्रश्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम्। महाश्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते॥ ६॥

जिसका वायु ऊपरको जायके प्राप्त हो ऐसा मनुष्य दुःखित होकर मुखसे शब्द-युक्त श्वासको निकाले, ऊंचे स्वरसे अथवा जैसे मतवाला बैल शब्द करे इस प्रकार रात्रिदिन श्वाससे पीडित हो उसके ज्ञान विज्ञान जाते रहे, नेत्र चंचल हों और जिसका श्वास लेनेमें नेत्र और मुख फटजांय, मल मूत्र बन्द हो जाय, बोला जाय नहीं अथवा बोले तो मन्द बोले, मन खिन्न हो और जिसका श्वास दूरसे सुनाई दे यह महाश्वास जिस पुरुषके हो वह तत्काल मरणको प्राप्त होय॥

ऊर्ध्वश्वासके लक्षण।

ऊर्ध्वं श्वसिति यो दीर्घं न च प्रत्याहरत्यधः। श्लेष्मावृतमुख-स्रोताः क्रुद्धगन्धवहार्दितः॥ ७॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंश्च विभ्रां-ताक्ष इतस्ततः। प्रमुह्यन्वेदनार्तश्च शुष्कास्योऽरतिपीडितः॥८॥

बहुत देरपर्यंत ऊंचा श्वास ले, नीचे आवे नहीं, कफसे मुख भरजाय तथा और सब नाडियोंके मार्ग कफसे बन्द हो जायँ, कुपित वायुसे पीडित हो, ऊपरको नेत्र कर चंचल दृष्टिसे चारों ओर देखे, मूर्च्छाकी पीडासे अत्यन्त पीडित हो, मुख सूखे तथा बेहोश हो ये ऊर्ध्वश्वासके लक्षण हैं॥

ऊपरकोही श्वास ले नीचे नहीं आवे यह जो कहा उसमें कारण कहते हैं—

ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते ह्यधश्वासो निरुध्यते।
मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्वं श्वासस्तस्यैव हन्त्यसून्॥ ९॥

ऊपरका श्वास कुपित होनेसे नीचेका बन्द होय अर्थात् हृदयमें रुकजाय अथवा श्वास कहिये वायु सो नीचे नहीं उतरे तब मनुष्यको मोह हो, ग्लानि हो ऐसे पुरुषके ऊर्ध्वश्वास प्राणको हरण करे ॥

छिन्नश्वासके लक्षण ।

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः ।
न वा श्वसिति दुःखार्तो मर्मच्छेदरुगर्दितः ॥ १० ॥
आनाहस्वेदमूर्च्छार्तो दह्यमानेन बस्तिना ।
विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन्रक्तैकलोचनः ॥ ११ ॥
विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः ।
छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥ १२ ॥

जो पुरुष ठहर ठहरकर जितनी शक्ति हो उतनी शक्तिसे श्वास त्याग करे अथवा क्लेशको प्राप्त हो श्वासको नहीं छोडे और मर्म कहिये हृदय बस्ति (मूत्रस्थान) और नाडियोंको मानो कोई छेदन करे ऐसी पीडा हो, पेटका फूलना, पसीना और मूर्च्छा इनसे पीडित हो, वस्ति (मूत्रस्थान) में जलन हो, नेत्र चलायमान हों, अथवा नेत्र आंसुओंसे भरे हों, श्वास लेते २ थक जाय तथा श्वास लेते २ एक नेत्र लाल हो जाय (यह व्याधिके प्रभावसे होय है दोषके प्रभावसे होय तो दोनों होजायँ), उद्विग्नचित्त होजाय, मुख सूखे, देहका वर्ण पलट जाय, बकवाद करे, संधिके सब बन्ध शिथिल होजायँ, इस छिन्नश्वास करके मनुष्य शीघ्र प्राणका त्याग करे ॥

तमकश्वासके लक्षण ।

प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते । ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ १३ ॥ करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा । अतीव तीव्रवेगेन श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ १४ ॥ प्रताम्यति स वेगेन त्रस्यते संनिरुद्ध्यते । प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ श्लेष्मणा मुच्यमानेन भृशं भवति दुःखितः । तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्त्तं लभते सुखम् ॥ १६ ॥ तथाऽस्योद्ध्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम् । न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः ॥ १७॥ पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः ।

आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति ॥ १८ ॥ उच्छ्रि-ताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्तिमान्। विशुष्कास्यो मुहुः श्वासो मुहुश्चैवावधम्यते ॥ १९ ॥ मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्द्धते। स याप्यस्तमकश्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ २० ॥

जिस कालमें शरीरकी पवन उलटी गतिसे नाडियोंके छिद्रमें प्राप्त होकर मस्तक तथा कण्ठका आश्रय कर कफसंयुक्त होय, तब कफसे रुककर अतिवेगपूर्वक कण्ठमें घुरघुर शब्द करे और मस्तकमें पीनसरोग करे और अत्यन्त तीव्र वेगसे हृदयको पीडाका करनेवाला ऐसे श्वासको उत्पन्न करे उस श्वासके वेगसे मूर्च्छित होय, त्रासको प्राप्त होय, चेष्टारहित होय और खांसीके उठनेसे बडे मोहको बारंबार प्राप्त होय और जब कफ छूटे तब दुःख होय और कफ छूटनेके बाद दो घटी पर्यन्त सुख पावे, कण्ठमें खुजली चले, बडे कष्टसे बोले, श्वासकी पीडासे नींद न आवे, सोवे तो वायुसे पसवाडोंमें पीडा होय, बैठे ही चैन पडे और गरमीके पदार्थोंसे खुश होय, नेत्रोंमें सूजन होय, ललाटमें पसीना आवे, अत्यन्त पीडा होय, मुख सूखे, बारंबार श्वास और बारंबार हाथीपर बैठनेके सदृश सर्व देह चलायमान होवे। यह श्वास मेघके वर्षनेसे, शीतसे, पूर्वकी पवनसे और कफकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे बढे है. यह तमकश्वास याप्य है, यदि नया प्रगट भया होय तो साध्य होय है ॥

पित्तका अनुबन्ध होकर ज्वरादिकोंका योग होनेसे प्रतमक होय है, उसको कहते हैं–

ज्वरमूर्च्छापरीतस्य विद्यात्प्रतमकं तु तम्।

इस तमकश्वासमें ज्वर और मूर्च्छा ये दोनों लक्षण होनेसे इसको प्रतमकश्वास कहते हैं ॥

प्रतमकके दूसरे लक्षण और कारण कहते हैं—

उदावर्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥ २१ ॥
तमसा वर्धतेऽत्यर्थं शीतैश्चाशु प्रशाम्यति।
मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकं तु तम् ॥ २२ ॥

उदावर्त, धूल, आमादि अजीर्ण, विदग्धान्न, मलमूत्रादि वेगके रोकनेसे अथवा क्लिन्नकाय कहिये वृद्ध मनुष्य और निरोध कहिये वेगरोध इन कारणोंसे प्रगट भई जो श्वास सो अन्धकारसे अथवा तमोगुणसे अत्यन्त बढे और शीतल उपचारसे शीघ्र शांति हो जाय, इस श्वासके योगसे रोगीको अन्धकारमें डूबा सदृश मालूम होय, इसको प्रतमकश्वास ऐसे कहते हैं ॥

क्षुद्रश्वासके लक्षण और साध्यासाध्य ।

रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रो वातमुदीरयेत् ।
क्षुद्रश्वासो न सोऽत्यर्थं दुःखेनाङ्गप्रबाधकः ॥ २३ ॥
हिनस्ति न स गात्राणि न च दुःखी यथेतरे ।
न च भोजनपानानां निरुणद्ध्युचितां गतिम् ॥ २४ ॥
नेन्द्रियाणां व्यथां चापि काञ्चिदापादयेद्रुजम् ।
स साध्य उक्तो बलिनः सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः ॥ २५ ॥
क्षुद्रः साध्यतमस्तेषां तमकः क्षुद्र उच्यते ।
त्रयः श्वासा न सिध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च ॥ २६ ॥

रूखा पदार्थ खानेसे, श्रमके करनेसे प्रगट भई जो क्षुद्र श्वास सो पवनको ऊपर ले जाय, यह क्षुद्रश्वास अत्यन्त दुःखदायक नहीं है तथा अंगोंको कुछ विकार नहीं करे । जैसे ऊर्ध्वश्वासादिक दुःखदायक हैं ऐसे यह नहीं है और भोजनपानादिकोंकी उचित गतिको बन्द नहीं प्रगट करे और इन्द्रियोंको पीडा नहीं करे और कोई रोगको भी नहीं प्रगट करे । यह क्षुद्रश्वास साध्य कहा है । बलवान् पुरुषके सब महाश्वासादिकोंके लक्षण प्रगट न होयँ तो साध्य हैं, तिनमें भी क्षुद्रश्वास अत्यन्त साध्य है और तमकको क्षुद्र कहते हैं । अथवा-" तमकः क्षुद्र उच्यते " इस जगह " तमकः कृच्छ्र उच्यते " ऐसा भी पाठ कोई कहते हैं । उसका अर्थ यह है कि, तमक कृच्छ्रसाध्य है, महान्, ऊर्ध्व और छिन्न ये तीन श्वास सम्पूर्ण लक्षणयुक्त साध्य नहीं और निर्बल पुरुषके तमकश्वास भी साध्य नहीं होय ॥

कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा ।
यथा श्वासश्च हिक्का च हरतः प्राणमाशु वै ॥ २७ ॥

प्राणहरण करनेवाले ऐसे सन्निपात ज्वरादिक रोग बहुतसे हैं सो ठीक है । परन्तु श्वास और हिचकी ये जैसे जल्दी प्राण हरण करते हैं ऐसे और ज्वरादिक नहीं करे॥

इति श्रीपंडितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां श्वासनिदानं समाप्तम् ॥

अथ स्वरभेदनिदानम् ।

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघातसंदूषणैः प्रकुपिताः पवना-द्यस्तु । स्रोतःसु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥ वातादिभिः पृथक् सर्वैर्मेदसा च क्षयेण च ॥ १ ॥

बहुत जोरसे बोलनेसे, विषके खानेसे, ऊंचे स्वरसे पाठ करनेसे अर्थात् वेदादि पाठ करनेसे कण्ठमें लकडी काष्ठ आदिकी चोट लगनेसे कोपको प्राप्त हुए जो वात, कफ, पित्त सो कण्ठमें स्वरके बहनेवाली चार नसें हैं उनमें प्राप्त हो अथवा उनमें वृद्धिको प्राप्त स्वरको नाश करे । यह स्वरभेद वात, पित्त, कफ, सन्निपात, क्षय और मेद इन भेदोंसे छः प्रकारका है ॥

वातस्वरभेदके लक्षण ।

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं स्वरं वदति गर्दभवत्स्वरं च ।

वायुसे स्वरभंग होय तो रोगीके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा यह काले होयँ वह पुरुष टूटाहुआ शब्द बोले अथवा गधेके स्वरप्रमाण कर्कश बोले ॥

पित्तज स्वरभेदके लक्षण ।

पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा ब्रूयाद्गलेन स च दाहसमन्वितेन ॥ २॥

पित्तस्वरभेदवाले मनुष्यके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा ये पीले होते हैं और बोलते समय गलेमें दाह होता है ॥

कफके स्वरभेदके लक्षण ।

ब्रूयात्कफेनसततंकफरुद्धकण्ठःस्वल्पंशनैर्वदतिचापि दिवाविशेषात्।

कफके स्वरभेदमें, कण्ठ कफसे रुका रहे और मन्द मन्द तथा थोडा बोले दिनमें बहुत बोले ॥

सन्निपातके स्वरभेदका लक्षण ।

सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपत्तं चाप्यसाध्यमृषयःस्वरभेदमाहुः ३

सन्निपातके स्वरभेदमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं यह स्वरभेद असाध्य है ऐसे ऋषि लोग कहते हैं ॥

---

१ यदुक्तं सुश्रुते-द्वाभ्यां भाषते द्वाभ्यां घोषं करोति, भाषणघोषणयोरल्पमहत्वाभ्यां भेदः ।

क्षयजन्यस्वरभेदके लक्षण ।

धूम्येत वाक्क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च वागेष चापि हतवाक्परिवर्जनीयः ।

क्षयीके स्वरभेदवाले पुरुषके बोलते समय मुखसे धुआँसा निकले और वाणी क्षय हो जाय अर्थात् स्वर नहीं निकले । इस स्वरभेदमें जिस समय वाणी हत हो जाय अर्थात् ओजका क्षय होनेसे बोलनेकी सामर्थ्य नहीं हो तब यह असाध्य होता है और ओजका क्षय (नाश) नहीं हो तो साध्य है ॥

मेदके स्वरभेदका लक्षण ।

अन्तर्गतस्वरमलक्ष्यपदं चिरेण मेदोन्वयाद्वदति दिग्धगलस्तृषार्त्तः४

मेदके सम्बन्धसे कफ अथवा मेदसे गला लिप्त होय अथवा मेदसे स्वरके मार्ग रुक जानेसे प्यास बहुत लगे, गलेके भीतर बोले और मन्द बोले ॥

असाध्य लक्षण ।

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यस्य सहोपजातः ।
मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति ॥ ५ ॥

क्षीण पुरुषके, वृद्धके, कृशके, बहुत दिनका, जन्मके संग ही प्रगट भया, मोटे पुरुषके और सन्निपातोद्भव ऐसा स्वरभेदरोग साध्य नहीं होता ॥

इति श्रीपंडितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां स्वरभेदनिदानं समाप्तम् ॥

अथारोचकनिदानम् ।

वातजादि अरुचियोंके लक्षण ।

वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धैः ।
अरोचकाः स्युः परिहृष्टदन्तकषायवक्त्रश्च मतोऽनिलेन ॥ १ ॥

पृथक् वातादिक दोषों करके ३, सन्निपातसे १, आगन्तुकसे १ जैसे भयसे अतिलोभसे तथा अतिक्रोधसे ऐसे पांच प्रकारका अरोचक (अरुचि) रोग है । वह मनको क्लेश देनेवाला अन्न, रूप और गन्ध इन कारणोंसे प्रगट होता है । [1]सुश्रुत और अन्य ग्रन्थोंके मतसे भी पांच ही प्रकार मुख्य माने हैं, भय, लोभ, क्रोधकी अरुचिको शोककी ही अरुचिके अन्तर्गत मानते हैं । बादीकी अरुचिसे दांत खट्टे हो और मुख कसेला होय ॥

---

१ अरोचको भवेद्दोषैरेको हृदयसंश्रयैः । सान्निपातेन मनसः सन्तापेन च पञ्चमः ॥ इति ॥

कट्वम्लमुष्णं विरसं च पूति पित्तेन विद्याल्लवणं च वक्रम्।
माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यविबद्धसंबद्धयुतं कफेन ॥ २ ॥

पित्तकी अरुचिसे कडुआ, खट्टा, गरम, विरस, दुर्गंधयुक्त, नुनखरा ऐसा मुख होय है, कफकी अरुचिसे खारा, मीठा, पिच्छिल, भारी, शीतल मुख होय है और मुख बँधा सरीखा अर्थात् खाय नहीं और भीतर कफसे लिप्त होय ॥

शोकादि अरुचिके लक्षण।

अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याशुचिगन्धजे स्यात्।
स्वाभाविकं चास्यमथारुचिश्च त्रिदोषजे नैकरसं भवेत्तु ॥ ३ ॥

शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, अहृद्य (मनको बुरी लगे ऐसी वस्तु) अपवित्र बास इनमें प्रगट हुई अरुचिमें मुख स्वाभाविक रहे अर्थात् वातजादिकोंके सदृश कसेला, खट्टा आदि नहीं होय। सन्निपातकी अरुचिमें अन्नसे अरुचि तथा मुखसे अनेक रस मालूम हों ॥

वातजादि भेदकरके मुखकी विकृतिको कहकर अन्य ठिकानेपर
जो विकृति होय है उसे कहते हैं—

हृच्छूलपीडनयुतंपवनेनपित्तात्तृड्दाहचोषबहुलंसकफप्रसेकम्।
श्लेष्मात्मकंबहुरुजंबहुभिश्चविद्याद्वैगुण्यमोहजडताभिरथापरंच ॥४॥

वातकी अरुचिसे हृदयमें शूल और वेदना होती है। पित्तसे प्यास, दाह और चूसनेके सदृश पीडा ये लक्षण होते हैं। कफकी अरुचिमें मुखसे कफ गिरे, सन्निपातकी अरुचिमें पीडा अत्यन्त होय। वैगुण्य कहिये मनकी व्याकुलता, मोह, जडत्व इन लक्षणोंसे अपर कहिये आगंतुक अरोचक जाने। भूख होय परन्तु खानेकी सामर्थ्य न होना इसको अरुचि कहते हैं। आपको प्रिय भी अन्न किसीने दिया हो परन्तु खाय नहीं उसको अन्नाभिनन्दन कहते हैं। अन्नके स्मरण, श्रवण, दर्शन और वास इनसे जिसको त्रास होय उसको भक्तद्वेष कहते हैं। इस प्रकार यह रोग तीन प्रकारका है। इसी वास्ते चरक सुश्रुतने अरोचकं शब्द करके संग्रह करा है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकाया-
मरुचिरोगनिदानं समाप्तम् ॥

---

१ उक्तं हि वृद्धभोजेन—प्रक्षिप्तं यन्मुखे चान्नं जन्तोस्तत्स्वदते मुहुः। अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेषमतः शृणु। चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा श्रुत्वा च भोजनम्। द्वेषमायाति यो जन्तुर्भक्तद्वेषः स उच्यते ॥ कुपितस्य भयार्त्तस्य अभिचाराभिभूतये। यस्यान्ने न भवेच्छ्रद्धा स भक्तद्वेष उच्यते ॥ इति।

अथ छर्दिनिदानम् ।

छर्दिके कारण और निरुक्ति ।

दुष्टैर्दोषैः पृथक्सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः । छर्दयः पञ्च विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते ॥ १ ॥ अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरपि । अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥ २ ॥ श्रमाद्भयादथोद्वेगादजीर्णात्क्रिमिदोषतः । नार्याश्चापन्नसत्त्वायास्तथातिद्रुतमश्नतः ॥ ३ ॥ बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितो बलात् । छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः ॥ निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावति ॥ ४ ॥

दुष्ट हुए पृथक् और सब दोषों करके तथा दुष्ट वस्तुके देखनेसे आदिशब्द करके दुष्ट गन्धके सूंघनेसे पांच प्रकारकी छर्दि जाननी अर्थात् जिसको रद्द वमन उलटी कहते हैं उसके लक्षण आगे कहते हैं। अत्यन्त पतले अथवा चिकने अहृद्य (अप्रिय) वस्तु, खारके पदार्थ इनके सेवन करनेने, कुसमय भोजन करनेसे अथवा अत्यन्त भोजन करनेसे अथवा जो न पचे ऐसे भोजन करनेसे, श्रम, भय, उद्वेग, अजीर्ण, कृमिदोष इन कारणोंसे, गर्भिणी स्त्रीके गर्भकी पीडासे तथा जल्दी२ भोजन करनेसे और बीभत्स (खोटे) कारणोंसे जैसे विष्ठा, राध आदिका देखना इनसे तीनों दोष कुपित हो बलसे मुखको आच्छादन करें और अंगोंको पीडा कर मुखद्वारा भोजन किया हुआ सब निकाल देयँ इसको (छर्दि) उलटी ऐसे मनुष्य कहते हैं । इस जगह उदानवायु वमन कराती है ॥

छर्दिके पूर्वरूप ।

हृल्लासोद्गारसंरोधौ प्रसेको लवणास्यता ।
द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम् ॥ ५ ॥

हृदयमें खारा, खट्टा प्रथमही निकले अथवा सूखी रद्द होय, डकार आवे नहीं, लार गिरे, खारी मुख हो जाय, अन्न और पानीसे अत्यन्त अरुचि होय ये छर्दी (छाट) के पूर्वरूप हैं ॥

वातकी छर्दिके लक्षण ।

हृत्पार्श्वपीडा मुखशोषशीर्षनाभ्यर्त्तिकासस्वरभेदतोदैः ।

---

१ छादयति मुखम् अर्दयति चाङ्गानि इति छर्दिः ।

उद्गारशब्दं प्रबलं सफेनं विच्छिन्नकृष्णं तनुकं कषायम्।
कृच्छ्रेण चाल्पं महता च वेगेनार्तोऽनिलाच्छर्दयतीह दुःखम्॥६॥

हृदय और पसवाडा इनमें पीडा होय, मुखशोष मस्तक और नाभि इनमें शूल होय, खांसी, स्वरभेद, सूई चुभनेकीसी पीडा हो, डकारका शब्द प्रबल होय, वमनमें झाग आवे, ठहर ठहरकर वमन होय तथा थोडी होय, वमनका रंग काला होय, पतली और कसैली होय, वमनका वेग बहुत होय परन्तु वमन थोडा होय और वेगके प्रभावसे दुःख बहुत होय ये लक्षण वायुकी छर्दिके हैं॥

पित्तकी छर्दिके लक्षण।

मूर्च्छा पिपासा मुखशोषशीर्षताल्वक्षिसन्तापतमोभ्रमार्तः।
पीतं भृशोष्णं हरितं सतिक्तं धूम्रं च पित्तेन वमेत्सदाहम्॥७॥

मूर्च्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक, तलुआ, नेत्र इनमें सन्ताप अर्थात् तपायमान रहे, अन्धेरा आवे, चक्कर आवे, रोगी पीला गरम हरा कडुआ धूओंके रंगका और दाह युक्त ऐसे पित्तको वमन करे, यह पित्तकी छर्दिका लक्षण है॥

कफकी छर्दिके लक्षण।

तन्द्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकं सन्तोषनिद्रारुचिगौरवार्त्तः।
स्निग्धं घनं स्वादु कफाद्विशुद्धं सरोमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु॥८॥

तन्द्रा, मुखमें मिठास, कफका पडना, सन्तोष (खाये विनाही तृप्ति), निद्रा, अरुचि, भारीपना इनसे पीडित हो, चिकना, गाढा, मीठा, सफेद ऐसे कफको वमन करे। जब रद्द करे तब पीडा थोडी होय, रोमांच हो ये कफकी छर्दिके लक्षण हैं॥

त्रिदोषकी छर्दिके लक्षण।

शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबला प्रसक्तम्।
छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनीलसांद्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात्॥९॥

शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास, मोह इन लक्षणोंसे प्रबल भई जो वमन सो सन्निपातसे होती है। रद्द करनेवालेकी वमन खारी, खट्टी, नीली, संघट्ट (जिसको देशवारी मनुष्य जाडी कहे हैं) गरम लाल ऐसी होय है॥

असाध्य छर्दिके लक्षण।

विट्स्वेदमूत्राम्बुवहानि वायुः स्रोतांसि संरुध्य यदोर्ध्वमेति।
उत्सन्नदोषस्य समाचितं तं दोषं समुद्धूय नरस्य कोष्ठात्॥१०॥

---

१ यदुक्तं सुश्रुते–शुक्लं हिमं सान्द्रकफं कफेन। इति।

विण्मूत्रयोस्तत्समगन्धवर्णं तृट्श्वासकासार्तियुतं प्रसक्तम् ।
प्रच्छर्दयेद्दुष्टमिहातिवेगात्तथार्दितश्चाशु विनाशमेति ॥ ११ ॥

जिस समय वह वायु पुरीष, पसीना मूत्र और जल इनके बहनेवाली नाडियोंके मार्गको रोककर ऊपर आवे तब ऊपर आनेवाला दोष (मलमूत्रादि) कोठेसे बाहर निकाल वमन करावे उस वमनसे मलमूत्रकीसी दुर्गंध आवे, तथा वर्ण भी मल मूत्रके सदृश हो, प्यास, श्वास, खांसी और शूल ये होयँ और यह वमन बारंबार बडे वेगसे होय है । इस वमनसे पीडित मनुष्य थोडे कालमें नाशको प्राप्त होते हैं । कहते हैं कि, सब छर्दि प्रबल है परन्तु ऐसी छर्दि असाध्य है ॥

आगन्तुकछर्दिके लक्षण ।

बीभत्सजा दोहदजाऽऽमजा च याऽसात्म्यजा वा कृमिजा च या हि ।
सा पञ्चमी तां च विभावयेत्तु दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ ॥ १२ ॥

बीभत्स पदार्थ कहिये मल, राध, रुधिर आदि अपवित्र वस्तुओंके देखनेसे, गन्धसे, स्वादसे, स्त्रीके गर्भ रहनेसे, आमसे, असात्म्य भोजनसे अथवा कृमिरोगसे इन कारणोंसे प्रगट भई आगंतुक पांचवीं छर्दि होती है । उससे पूर्वोक्त लक्षणोंमेंसे जिस दोषके अधिक लक्षण मिले उसी दोषको प्रबल जाने ॥

कृमिकी छर्दिके लक्षण ।

शूलहृल्लासबहुला कृमिजा च विशेषतः ।
कृमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥ १३ ॥

कृमिकी छर्दिमें शूल, खाली रद्द ये विशेष होते हैं और बहुधा कृमि और हृदयरोग इनके लक्षणसदृश लक्षण जानना । जैसे पिछाडी कह आये हैं-" उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः । अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥ "

कृमिके साध्यासाध्य लक्षण ।

क्षीणस्य या छर्दिरतिप्रसक्ता सोपद्रवा शोणितपूययुक्ता ।
सचन्द्रिकां तां प्रवदेदसाध्यां साध्यां चिकित्सेन्निरुपद्रवां च ॥ १४ ॥

क्षीण पुरुषकी अथवा बारम्बार एकसी होनेवाली और कासादि उपद्रवयुक्त और रुधिर राध मिली मोरचंद्रिकाके समान ऐसी छर्दि असाध्य है और जो उपद्रवरहित हो उसको साध्य समझकर उपाय करे ॥

कृमिके उपद्रव ।

कासश्वासौ ज्वरो हिक्का तृष्णा वैचित्त्यमेव च ।
हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः ॥ १५ ॥

खांसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, प्यास, बेचेतपना, हृदयरोग, अँधेरा आना ये छर्दिरोगके उपद्रव हैं ॥

मधुकोशं सुनिर्मथ्य सारमाकृष्य वै मया।
व्रजभाषाकृता टीका माधवार्थप्रकाशिका ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां छर्दिनिदानं समाप्तम्।

अथ तृष्णानिदानम्।

तृष्णाकी सम्प्राप्ति।

भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वाप्यूर्ध्वं चितं पित्तविवर्धनैश्च।
पित्तं सवातं कुपितं नराणां तालु प्रपन्नं जनयेत्पिपासाम् ॥ १ ॥

भयसे, श्रमसे, बलके क्षयसे और पित्तके बढानेवाले क्रोध उपवासादिकोंसे अपने स्थानमें संचित हुआ जो पित्त और वात ये कुपित होकर ऊपर तालुए (पिपासा-स्थान) में जाय तृष्णा (प्यास) को उत्पन्न करें। इस जगह तालुका तो उपलक्षणमात्र है तालुके कहनेसे क्लोमस्थान (हृदयमें जो प्यासका स्थान है) उसका भी ग्रहण है, क्योंकि वह भी प्यासका स्थान है, सो चरकमें लिखा है ॥

अन्नजादि तृष्णाकी सम्प्राप्ति।

स्रोतःस्वपां वाहिषु दूषितेषु दोषैश्च तृष्णा भवतीह जन्तोः।
तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथा ह्यामसमुद्भवा च ॥ २
भक्तोद्भवा सप्तमिकेति तासां निबोध लिंगान्यनुपूर्वशश्च ॥

जलके बहनेवाली नसके दूषित होनेसे दोष (अन्न कफ और आम) इनसे तृष्णा रोग होय हैं सो तीन हैं और चौथी (क्षतजतृष्णा जो व्रणवाले पुरुषके होती है) पांचवी क्षयसे होती है छठी आमसे होती है, सातवी अन्नसे होय है। उन्होंके लक्षण

---

१ रसवाहिनी च धमनी जिह्वामूलगलतालुक्लोम्नः।
संशोष्य नृणां देहे कुरुते तृष्णामतिप्रबलाम् ॥

क्रमसे कहता हूं । इनमें पहिली चार तृष्णा सुखसाध्य हैं और बाकीकी तीन कष्टसाध्य हैं । शंका-क्योंजी ! इस श्लोकमें-" स्रोतःसु " यह बहुवचन क्यों धरा यह विरुद्ध है. क्योंकि, सुश्रुतमें तो जलके बहनेवाली दोही नाडी मानी हैं । उत्तर-उदकके बहानेवाले दो स्रोतोंकाही अनेक विस्तार होनेसे बहुवचन किया है । यहांपर अन्न, कफ आमको दुष्ट करनेसे तथा दुष्ट रोगोंको सम्बन्ध होनेसे अन्न, आम, कफको दोषत्व ग्रहण है यह गयदासका मत है अथवा दोषके कहनेसे वात, पित्त, कफका ही ग्रहण करना चाहिये ॥

वातकी तृषाके लक्षण ।

क्षामास्यता मारुतसंभवायां तोदस्तथा शंखशिरःसु चापि ।
स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्रं शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति ॥ ३ ॥

वातकी तृषा (प्यास) से मुख उतर जाय अथवा दीन होय, कनपटी और मस्तक इन ठिकाने नोचनेके समान पीडा होय, रस और जल बहनेवाली नाडियोंका मार्ग रुक जाय, मुखसे स्वाद जाता रहे और शीतल जलके पीनेसे प्यास बढे, चकारसे निद्राका नाश होय ॥

पित्तकी तृषाके लक्षण ।

मूर्च्छान्नविद्वेषविलापदाहा रक्तेक्षणत्वं प्रततश्च शोषः ।
शीताभिनन्दा मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायां परिदूयनं च ॥ ४ ॥

पित्तकी,तृषामें मूर्च्छा, अन्नमें अरुचि, बडबड, दाह, नेत्रोंमें लाली, अत्यन्त शोष, शीत पदार्थकी इच्छा, मुखमें कटुता और सन्ताप ये लक्षण होते हैं ॥

कफकी तृषाके लक्षण ।

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णाबलासेन भवेत्तथा तु ।
निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च तृष्णार्दितः शुष्यति चातिमात्रम् ॥ ५ ॥

अपने कारणसे कुपित कफ करके जठराग्नि आच्छादित होय तब अग्निकी गरमी अधोगत जलके बहनेवाली नाडियोंको सुखाय कफकी तृषाको प्रगट करें केवल कफसे तृष्णाका प्रगट होना असंभव है, केवल कफ बढे भयेका द्रवीभूत धर्म पतला होनेसे प्यासकर्तृत्व असंभव है और वातपित्तको तृषा करनेवाले होनेसे होय हैं सो ग्रन्थांतरमें[२] लिखा भी है इसीसे चरकाचार्यने कफकी तृष्णा

---

१ द्वे उदकवहे इति । २ यदुक्तम्-'पित्तं सवातं कुपितं नराणाम्' इत्यादि । चरकेऽप्युक्तम्-'नोऽग्नेर्विना सर्पणाद्वा तौ हि शोषणे हेतुः' इति । सुश्रुतेऽप्युक्तम्-मन्दस्याग्नेयवायव्यौ गुणावम्बुवहानि च । स्रोतांसि शोषयेद्यस्मात्ततस्तृष्णा प्रवर्तते ॥

नहीं कही, सुश्रुतने चिकित्सामें भेद होनेसे कही है और हारीतने भी सपित्त कफकी तृष्णा मानी केवल कफकी नहीं मानी। इस तृषामें निद्रा, भारीपना, मुखमें मिठास ये लक्षण होते हैं। इस तृषासे पीडित पुरुष अत्यन्त सूख जाता है ॥

क्षतजतृष्णाके लक्षण।

क्षतस्य रुक्शोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु ॥ ६ ॥

शस्त्रादिकके लगनेसे घाव होय तब उस पुरुषके पीडा और रुधिरका स्राव होनेसे जो तृष्णा होय यह चौथी क्षतजतृष्णा जाननी ॥

क्षयजतृष्णाके लक्षण।

रसक्षयाद्या क्षयसंभवा सा तयाभिभूतस्तु निशादिनेषु।
पेपीयतेऽम्भः स सुखं न याति तां सन्निपातादिति केचिदाहुः।
रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषग्व्यवस्येत् ॥ ७ ॥

रसक्षयसे जो तृष्णा होय उसमें जो लक्षण होते हैं सो क्षयज तृष्णामें होते हैं, तिससे पीडित पुरुष रात्रिदिन बारम्बार पानी पीवे परन्तु सन्तोष नहीं होय। कोई आचार्य इसको सन्निपातसे प्रगट कहते हैं रसक्षयके जो लक्षण कहे वे सब होते हैं सो वैद्योंको जानने चाहिये। रसक्षय लक्षण सुश्रुत[३]में कहे हैं सो इस प्रकारका रसक्षय होनेसे हृदयमें पीडा, कंप, शोष, बधिरता (बहरापना) और प्यास होती है ॥

आमजतृष्णाके लक्षण।

त्रिदोषलिङ्गामसमुद्भवा तु हृच्छूलनिष्ठीवनसादकर्त्री ॥ ८ ॥

आमज कहिये अजीर्णसे जो तृष्णा होय उसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं सो सुश्रुतमें लिखा भी है और हृदयमें शूल, लारका गिरना, ग्लानि ये सब होते हैं ॥

अन्नजतृष्णाके लक्षण।

स्निग्धं तथाम्लं लवणं च भुक्तं गुर्वन्नमेवाशु तृषां करोति।

---

१ तदुक्तं हारीतेन—स्वाद्वम्ललवणाजीर्णैः क्रुद्धः श्लेष्मा सहोष्मणा। प्रपद्याम्बुवहां स्रोतस्तृष्णां संजनयेन्नृणाम् ॥ शिरसो गौरवं तन्द्रा माधुर्यं वदनस्य च। भक्तद्वेषः प्रसेकश्च निद्राधिक्यं तथैव च ॥ लिङ्गैरेतैर्विजानीयात्तृष्णां कफसमुद्भवाम् ॥ २ रसक्षये हृत्पीडा कंपशोषौ बधिरता तृष्णा चैव ॥ ३ अजीर्णात्पवनादीनां विभ्रमो बलवान्भवेत्। इति। सततं यः पिबेत्तोयं न तृप्तिमधिगच्छति। पुनः कांक्षति तोयं च तं तृष्णार्दितमादिशेत् ॥ इति ॥

चिकना, खट्टा, खारा, चकारसे कडुआ कसेला आदि जानना, ऐसे भोजनसे तथा मात्राधिक और भारी ऐसा अन्न खानेसे अवश्य ही शीघ्र प्यासको प्रगट करे। दृढबल आचार्यने पांचही तृष्णा कही है-वातकी, पित्तकी, क्षयकी, आमकी, उपसर्गकी। तहां कफकी आमकी तृषाके अन्तर्गत कही है और क्षतजा वातकी तृषाके अन्तर्गत जाननी और अन्नजा भी वातकी तृषाके अन्तर्गत कही है, क्योंकि भोजनसे वातका कोप होता है। शंका-क्यों जी ! सुश्रुतने मद्यके प्रकरणमें मद्यकी तष्णा कही है फिर माधवाचार्यने सात ही तृष्णा कैसे कही हैं ? उत्तर-दृढबलाचार्यके मतसे मद्यकी तृषाको वातकी तृषाके अन्तर्गत होनेसे माधवाचार्यने सातही कही हैं ॥

उपसर्गज तृषाके लक्षण।

हीनस्वरः प्रताम्यन्दीनाननशुष्कहृदयगलतालुः ॥ ९ ॥
भवति खलु सोपसर्गा तृष्णा सा शोषिणी कष्टा।
ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् ॥ १० ॥

हीनस्वर, मोह, मनमें ग्लानि होय, मुख दीन होजाय, हृदय गला और तालु सूख जाय यह तृष्णा उपद्रवोंसे होते हैं। यह मनुष्यको सुखाय डाले और व्याधिसे शरीर कृश होनेसे यह कष्टसाध्य होजाती है। वे उपद्रव ये हैं ज्वर, मोह क्षय, खांसी, श्वास, आदिशब्दसे अतिसारादिकोंका ग्रहण है ये रोग जिसके होय उसके तृष्णा कष्टसाध्य जाननी ॥

असाध्य तृषाके लक्षण।

सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रसक्तानाम्।
घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णा मरणाय विज्ञेयाः ॥ ११ ॥

वातजादि सब प्रकारकी तृष्णा अत्यन्त बढी हुई अथवा रोगसे कृश भया ऐसे पुरुषके जो तृष्णा है सो अथवा छर्दिसे प्रगट भई जो तृष्णा और जो भयंकर उपद्रवकरके युक्त ऐसी तृष्णा मारनेका कारण होय है ॥

मधुकोशं सुनिर्मथ्य सारमाकृष्य वै मया।
व्रजभाषाकृता टीका माधवार्थप्रकाशिका ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां तृष्णारोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ मूर्च्छानिदानम्।

निदान और सम्प्राप्ति।

तृष्णामें मोह होता है, इसीसे तृष्णाके अनन्तर मूर्च्छाको कहते हैं-

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः। वेगाघातादभीघाता-द्धीनसत्त्वस्य वा पुनः ॥ १ ॥ करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वा-भ्यन्तरेषु च। निविशन्ते यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवाः ॥ २ ॥ संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः। ततो-ऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥३॥ सुखदुःखव्यपोहा-च्च नरः पतति काष्ठवत्। मोहो मूर्च्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥ वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च। षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ ५ ॥

क्षीण पुरुषके बहुत दोषके सञ्चय होनेसे, विरुद्ध आहार क्षीर मत्स्यादिकके सेवन करनेसे, मल मूत्रादि वेगके धारणकरनेसे, लकडी आदिके चोट लगनेसे, अथवा जिस पुरुषका सत्त्वगुण क्षीण होगया हो ऐसे पुरुषकी मनके आयतन (स्थान) बाहरकी चक्षु आदि हैं उसमें और भीतरके मनके बहानेवाली सोतोंमें प्रबल वातादि दोष कुपित हुए जब ठहरते हैं तब मनुष्य मूर्च्छाको प्राप्त होता है। संज्ञाके वहनेवाली नाडियोंमें वातादि दोषों करके आच्छादित होनेसे सुखदुःखका ज्ञान नष्ट होय तब मनुष्य पृथ्वीपर काष्ठकी तरह गिरे। इस रोगको मूर्च्छा अथवा मोह ऐसे कहते हैं। अथवा बाहरकी इन्द्रिय-नेत्र, कान आदि कर्मेन्द्रिय और बुद्धीन्द्रिय इनमें बलवान् दोष (वात, पित्त, कफ) प्रवेश कर संज्ञाकी बहनेवाली जो नाडी तिनको वह वात, पित्त, कफ रोक अन्धकारको प्रगट करे तब मनुष्य काष्ठकी भांति पृथ्वीपर गिरे उसको मूर्च्छा कहते हैं अथवा मोह कहते हैं। सो मूर्च्छा छः प्रकारकी है-वात, पित्त, कफसे तीन प्रकारकी और रुधिर, विष और मद्य इन भेदोंसे तीन प्रकारकी, इन तीनों मूर्च्छाओंमें पित्त है सो मुख्य प्रधान है अथवा व्यापक है ॥

---

१ उक्तं चाभिधानांतरे-संज्ञोपघाते मूर्च्छाया मूर्च्छा स्यान्मूर्च्छनं तथा।
कश्मलं प्रलयो मोहः संन्यासस्तु मृतोपमः ॥ इति ॥

मूर्च्छाका पूर्वरूप।

हृत्पीडा जृम्भणं ग्लानिः संज्ञादौर्बल्यमेव च।
सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वं च विभावयेत् ॥ ६ ॥

हृदयमें पीडा, जम्भाई, ग्लानि, भ्रांति ये मूर्च्छाके पूर्वरूप हैं। आगे उस मूर्च्छाके वातादि भेद जानने यह भेद प्रगट हुई रूपावस्थामें जानने चाहिये, पूर्वरूपकी अवस्थामें नहीं जानने चाहिये यह जैज्जटाचार्यका मत है ॥

वातकी मूर्च्छाके लक्षण।

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथवाऽरुणम्।
पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रं च प्रतिबुद्ध्यते ॥ ७ ॥
वेपथुश्चाङ्गमर्दश्च प्रपीडा हृदयस्य च।
कार्श्यं श्यावारुणा च्छाया मूर्च्छाये[1] वातसंभवे ॥ ८ ॥

जो मनुष्य नीले रंगका अथवा काले रंगका तथा लाल रंगका आकाशको देखे पीछे मूर्च्छाको प्राप्त होय और जल्दी होश हो जाय, देहमें कम्प, अंगोंका टूटना, हृदयमें पीडा होय, शरीर कृश हो जाय, शरीरका रंग काला, लाल पडजाय, उसको वातकी मूर्च्छा जाननी ॥

पित्तकी मूर्च्छाके लक्षण।

रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा।
पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदश्च प्रबुद्ध्यते ॥ ९ ॥
सपिपासः ससन्तापो रक्तपीताकुलेक्षणः।
संभिन्नवर्चाः पीताभो मूर्च्छा चेत्पित्तसंभवा ॥ १० ॥

जिसको आकाश लाल, हरा, पीला दीखे पीछे मूर्च्छा आवै और सावधान होते समय पसीना आवे, प्यास होय, सन्ताप होय, नेत्र लाल पीले होयँ, मल पतला होय, देहका वर्ण पीला होय यह लक्षण पित्तकी मूर्च्छाके हैं ॥

कफकी मूर्च्छाके लक्षण।

मेघसंकाशमाकाशमावृतं वा तमो घनैः।
पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुद्ध्यते ॥ ११ ॥
गुरुभिः प्रावृतैरङ्गैर्यथैवार्द्रेण चर्मणा।
सप्रसेकः सहृल्लासो मूर्च्छाये कफसंभवे ॥ १२ ॥

---

१ मूर्च्छायशब्दो मूर्च्छापर्यायः।

कफकी मूर्च्छामें आकाशको मेघके समान अथवा अंधकारके समान अथवा बद्दल इनसे व्याप्त देखकर मूर्च्छागत होय; देरमें सावधान होय भारी बोझासा देहपर भार मालूम होय अथवा गीला चमडा धारण करासा मालूम होय, मुखसे पानी गिरे, रद्द होयगी ऐसा मालूम होय ॥

सन्निपातकी मूर्च्छाके लक्षण।

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मार इवापरः।
स जन्तुं पातयत्याशु विना बीभत्सचेष्टितैः ॥ १३ ॥

सन्निपातकी मूर्छामें सब दोषोंके लक्षण होते हैं, ये रोग दूसरा अपस्मार (मृगी) जानना चाहिये। परन्तु अपस्मारमें दांतोंका चबाना, मुखसे झागका गेरना, नेत्रोंका हाल औरही प्रकारका हो जाना इत्यादिक लक्षण होते हैं सो इस रोगमें नहीं होते, इतनाही भेद है। शङ्का–क्यों जी! पूर्व तो छःप्रकारकी मूर्छा कह आये फिर सन्निपातकी मूर्च्छा कैसे कही? उत्तर–चरककी अष्टोत्तरीयाध्यायमें लिखा है. जैसे–अपस्मार चार प्रकारका है वातका, पित्तका, कफका, सन्निपातका, उसी प्रकार मूर्च्छारोगभी चार प्रकारका है इसी मतको ग्रहण कर माधवाचार्यने सन्नि-पातकी मूर्छा कही है। प्रथम रक्तजादि छः सुश्रुतके मतसे लिखी हैं और सन्नि-पातकी चरकके मतसे, क्योंकि, इस संग्रह ग्रन्थमें शास्त्रोंके स्वीकार होनेसे सुश्रुत चरक दोनोंकाही मत लिखने पडा है ॥

रक्तकी मूर्च्छाके लक्षण।

पृथिव्यापस्तमोरूपं रक्तगन्धस्तदन्वयः।
तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः।
द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमुह्यति ॥ १४ ॥

पृथ्वी और जल ये दोनों तमोगुण विशिष्ट हैं सो सुश्रुतमें लिखा है। और रुधिरकी गन्ध भी उन दोनोंसे अर्थात् पृथ्वी और जलसे प्रगट है तो रुधिरकी गन्ध भी तमोगुणविशिष्ट हुई इसीसे जो तामसी पुरुष हैं वे रुधिरकी गन्धसे मूर्छित होते हैं। और जो राजसी, सात्त्विकी पुरुष हैं सो मूर्छित नहीं होते. शंका–क्यों जी! चम्पक आदि (चम्पा) पुष्पोंकी गंधसे भी मूर्छा होनी चाहिये. क्योंकि, उसमें भी पार्थिव अर्थात् तामसगुणविशिष्ट गन्ध है। इसवास्ते उत्तर कहते हैं–"द्रव्यस्वभाव इत्येके" अर्थात् कोई आचार्य कहते हैं कि, ये द्रव्यका ही स्वभाव है अर्थात्

---

१ चतस्रो मूर्च्छा अपस्मारे व्याख्याताः। यथा चत्वारोऽपस्माराः वातेन, पित्तेन, श्लेष्मणा सन्निपातेन तद्वन्मूर्च्छा अपीत्यर्थः। २ तमोबहुला पृथ्वी सत्त्वतमोबहुला आप इति। ३ यदुक्तं भोजेन–स्तब्धांगदृष्टिर्भवति मूढोच्छ्वासस्तथैव च। दर्शनादसृजस्तस्माद्गन्धाच्चैव प्रमुह्यति॥इति॥

रुधिरका यही स्वभाव है कि, जिसकी गन्धसे ही मनुष्य मूर्छित होता है । अब स्वभावको और भी दृढ करते हैं—" दृष्ट्वा यदभिमुह्यति " अर्थात् रक्तके देखनेसे भी मूर्च्छित होय सो लिखा भी है ॥

विष और मद्यसे उत्पन्न मूर्च्छाको कहते हैं—

गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः ।
त एव तस्मादाभ्यां तु मोहौ स्यातां यथेरितौ ॥ १५ ॥

तैलादिकोंमें जो दश[1] गुण हैं वे ही गुण विष और मद्यमें अत्यंत तीव्रतासे रहते हैं । इसी विष और मद्यके सेवन करनेसे मोह होता है इसमें भी मद्यमें तीव्र रहै और विषमें तीव्रतर रहै इसीसे विषको मोह स्वयं शांत नहीं होता, क्योंकि, विष अपाकी है और मद्यका मोह मद्यके नशा उतरेपर शांत हो जाता है । यह भेद विष और मद्यमें रहता है ॥

रक्तजादि तीन मूर्च्छाओंके लक्षण ।

स्तब्धाङ्गदृष्टिस्त्वसृजा मूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः ॥ १६ ॥
मद्येन विलपञ्छेते नष्टविभ्रान्तमानसः ।
गात्राणि विक्षिपन्भूमौ जरां यावन्न याति तत् ॥ १७ ॥
वेपथुस्वप्नतृष्णाः स्युस्तमश्च विषमूर्च्छिते ।
वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः ॥ १८ ॥

रुधिरकी मूर्च्छामें अंग और नेत्र निश्चल हो जायँ और श्वास अच्छे प्रकार आवे नहीं । बहुत मद्यके पीनेसे जो मूर्च्छा हो उसके ये लक्षण हैं । बहुत बकता हुआ सोय जाय, संज्ञा जाती रहै, भ्रमयुक्त होय और जबतक मद्य न पचे तबतक पृथ्वीमें हाथ पैर पटके । विष[2]जन्य मूर्च्छामें कांपे, सोवे, प्यास लगे और अँधेरा आवे, एवं विष वृक्षके मूल, पत्र, दूध इनके भेदकर जो विषभक्षणसे लक्षण होते हैं, सो सब लक्षण होते हैं ॥

मूर्च्छा, भ्रम, तन्द्रा और निद्रा इनके भेद ।

मूर्च्छा पित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद्भ्रमः[3] ।
तमोवातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा ॥ १९ ॥

---

१ यदुक्तं दृढबलेन–लघु रूक्षमाशु विशदं व्यवायि तीक्ष्णं विकाशि च । उष्णमनिर्देश्यरसं दशगुणमुक्तं विषं तज्ज्ञैः ॥ इति । २ ये विषस्य गुणाः प्रोक्ताः सन्निपातप्रकोपिणः । त एव मद्ये दृश्यन्ते ।विषे तु बलवत्तराः ॥ इति । ३ तत्र भ्रमः स्थाणौ पुरुषज्ञानं पुरुषे विपरीतसत्त्वज्ञानादिकम् । अन्ये चक्रस्थितस्येव संभ्रमवस्तुदर्शनमिति ॥

मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिक रहे । रजोगुण पित्त और वायु इनसे भ्रम होय है । तमोगुण, वायु और कफ इनसे तन्द्रा और कफ तथा तमोगुण इनसे निद्रा उत्पन्न होती है ॥

तन्द्राके लक्षण ।

इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः ।
निद्रार्त्तस्येव यस्यैते तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

इन्द्रियें अपने अपने विषयको ग्रहण न करें, देह भारी हो जाय अर्थात् सुस्त हो जाय, जम्भाई और क्लम होय ये लक्षण निद्रार्त्त पुरुषके सदृश जिसके होयँ उसको तन्द्रा कहते हैं । इसमें आधे नेत्र खुले रहते हैं । निद्रामें इन्द्रिय और मनको मोह होय है, तन्द्रामें केवल इंद्रियोंको ही मोह होता है । निद्रा[1] और भ्रम[2] ये दोनों अति-प्रसिद्ध होनेसे माधवाचार्यने नहीं कहे, परन्तु चरकमें कहे हैं सो इस प्रकारकी— जिस समय मन और इन्द्रिय खेदको प्राप्त होयँ और अपने अपने विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) को त्याग देयँ, तब यह मनुष्यको निद्रा आती है ॥

संन्यासके भेदको कहते हैं—

दोषेषु मदमूर्च्छाद्या गतवेगेषु देहिनाम् ।
स्वयमेवोपशाम्यन्ति संन्यासो नौषधैर्विना ॥ २१ ॥

दोषोंके वेग होनेसे मदमूर्च्छादि अपने आप शान्त हो जाते हैं परन्तु यह संन्यास औषधके विना शान्त नहीं होता है ॥

संन्यासके लक्षण ।

वाग्देहमनसां चेष्टा आक्षिप्यातिबला मलाः ।
संन्यस्यन्त्यबलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रिताः ॥ २२ ॥
स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः ।
प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यःफलां क्रियाम् ॥ २३ ॥

अत्यन्त बलिष्ठ भये जो दोष सो वाणी देह और मन इनके व्यापारको बन्दकर हृदयमें प्राप्त हो निर्बलमनुष्यको मूर्च्छा करे वह संन्याससे पीडित मनुष्य काष्ठकी भांति पृथ्वीपर गिरे, उसकी सद्यःफल चिकित्सा अर्थात् सुईसे छेदना, तीखा

---

१ यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः । विषयेभ्योनिवर्त्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥

२ चक्रवद्भ्रमतो गात्रं भूमौ पतति सर्वदा । भ्रमरोग इति ज्ञेयो रजःपित्तानिलात्मकः ॥

अञ्जनका लगाना, अनामिकाको पीडित करना, कौंचकी फली लगाना, दाह देना, नास देना इत्यादिक न करे तो वह रोगी प्राणवियुक्त कहिये मरणको प्राप्त हो अन्यथा बचे है ॥

मधुकोशं सुनिर्मथ्य सारमाकृष्य यत्नतः ।
व्रजभाषाकृता टीका माधवार्थप्रकाशिका ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीभाषाटीकायां मूर्च्छानिदानं समाप्तम् ॥

अथ मदात्ययनिदानम् ।

ये विषस्य गुणाः प्रोक्तास्तेऽपि मद्ये प्रतिष्ठिताः ।
तेन मिथ्योपयुक्तेन भवत्युग्रो मदात्ययः ॥ १ ॥
किंतु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् ।
अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽमृतम् ॥ २ ॥

विषके जो गुण कहे हैं सोई गुण मद्यमें हैं अर्थात् यही मद्य अविधिसे सेवन कराभया घोर भयंकर मदात्यय रोग प्रगट करे हैं। कोई ऐसी शंका करे कि, विषके गुण मद्यमें हैं इससे विषके समान मद्यको सेवन न करे । इस विषयमें कहते हैं कि, मद्य यह स्वभावसे ही जैसे अन्न देहधारक है ऐसा ही है, परन्तु वह मद्य अविधिसे पावे तो रोगकारक होता है और विधिसे सेवन करे तो अमृतके समान गुण करे ॥

विधिसे मद्य पीनेका लक्षण।

विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम् ।
प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा ॥ ३ ॥
स्निग्धैः सदन्नैर्मांसैश्च सह भक्ष्यैश्च सेवितम् ।
भवेदायुःप्रकर्षाय बलायोपचयाय च ॥ ४ ॥

---

१ विधिश्चायं तद्यथा—कुसुमितलतोपगूढः प्रकटनिरन्तरनवांकुरनिकररोमांचैः मधुकरमधुर-झंकारसीत्कारैर्मुक्तकण्ठकलकण्ठकूजितैर्दक्षिणसमीरणोद्विजितसमुद्भासितपल्लवकरप्रचारैस्तरुणै-स्तरुभिरुपक्रांततरललताभिरतिशोभनेषु वनोपवनेषु तुषारकिरणैरंजितप्रदोषेषु शृंगारसमुचि-तालंकृतिकमनीयकामिनीसमर्पितं ललितललनोपनीयमानं सुरभिरुचिररूपरसोपदंशकं नाम परिमितपरार्द्धमधुपानं कं न सुखयति । चरकेण तु विस्तरेणैतदुक्तं विद्धि ।

विधिपूर्वक प्रमाणके संग, योग्यकालमें, चिकना आदि अच्छे अन्नके संग बला-बलके अनुसार अत्यन्त हर्षके साथ जो मद्यपान करे उसको अमृतके तुल्य गुण करे। इसके पीनेकी विधि मदात्ययके दूसरे श्लोककी टिप्पणीमें लिख आये हैं तथा ग्रन्थान्तरोंमें विधि तथा मात्रा कालेका नियम लिखा है अर्थात् शुद्ध शरीर होकर प्रातःकाल सोपदंश (अर्थात् मद्यपान करनेके बाद जो चटनी आदि पदार्थ खायेजाते हैं सो) इन करके सहित दो पल पीवे, मध्याह्नको चार पल पीवे, तदनन्तर चिकना पदार्थ भोजन करे और सायंकालको आठ पल पीवे, इस जगह पल नाम जैपुरसाई १ टके पक्केको कहते हैं। अथवा चिकने अन्नके साथ मांसके साथ अथवा और भक्ष्य हैं उनके साथ मद्यके सेवन करे तो मनुष्यकी आयुष्य बढे, बल बढे तथा देह पुष्ट हो। इस श्लोकमें "स्निग्धैः सदन्नैः" यह जो पद धरा सो स्निग्धका एक उपलक्षण है अर्थात् जो मद्यसे विपरीत गुण रखते हैं जैसे तीक्ष्णादि दश गुण हैं उनसे विपरीत होय उसके साथ मद्य पीना चाहिये सो तीक्ष्णादिं दशगुण ग्रन्थाँ-तरोंमें लिखे हैं और विशेष देखना होय तो भावप्रकाशमें देख लेवे, इस स्थलमें ग्रन्थविस्तारभयसे हमने त्याग दिये हैं॥

विधिसे मद्य पीनेके दूसरे गुण।

काम्यता मनसस्तुष्टिस्तेजो विक्रम एव च।
विधिवत्सेव्यमाने तु मद्ये सन्ति हिता गुणाः॥ ५॥

मद्यको विधिपूर्वक पीनेसे सुन्दर (स्वरूप) वस्तुओंमें मनकी वृत्ति, मनको सन्तोष, उत्साह, दूसरेको जीतनेकी सामर्थ्य इत्यादि हितकारक गुण होते हैं। कही हुई विधिसे विरुद्ध मद्यपान करनेसे मदात्यय रोग होता है। सो मदात्यय तीन प्रकारका है—पूर्वमद मध्यमद और अन्त्यमद॥

---

१ शुद्धकायः पिबेत्प्रातः सोपदंश[1]पलद्वयम्। मध्याह्ने द्विगुणं तच्च स्निग्धाहारेण पाचयेत्॥ आरोग्यं धातुसात्म्यं च कांतिपुष्टिबलप्रदम्। अनेन प्रदोषेऽष्टपलं तद्वन्मात्रा मद्ये रसायनम्। अन्यैर्बुद्ध्यादयो यावदुल्लसांति निरत्ययाः॥ मात्रेयं विहिता विधिना सेव्ये मद्य नित्यमतंद्रितैः। मद्ये पाने रोगाय चापरा॥ इति। २ तत्र कालो द्विविधः—नित्यकः आवश्यकश्च। तत्र नित्यकः ऋतुसम्बन्धी। यथा ग्रीष्मे शीतमधुरं माध्वीकादि। शीते उष्णं तीक्ष्णं गौडिकपैष्टिकादि। तथा आवश्यके काले वाते स्निग्धादि एवं वयस्युदाहार्यम्॥

३—लघुस्तीक्ष्णो हि सूक्ष्माम्लो व्यवायाशुगमेव च। रूक्षं विकाशि विशदं मद्ये दशगुणाः स्मृताः॥ तथा च सुश्रुते—"मद्यं ह्यम्लं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्मं विशदमेव च। रूक्षमाशुकरं चैव व्यवायि च विकाशि च॥" इति॥ अत्र अम्लरसत्वं चास्योद्भूतरसत्वेनोक्तम्। यदुक्तमन्यत्र "सर्वेषामम्लजातीनां मद्यं मूर्ध्नि व्यवस्थितम्।" इति॥

---

१ मद्यपानानन्तरं भक्षणीयद्रव्यविशेषः॥

पूर्वमदके लक्षण ।

बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारतिवर्धनश्च ।
संपाठगीतस्वरवर्धनश्च प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि ॥ ६ ॥

बुद्धि, स्मरण और प्रीति इनको करे, सुख करे, पान (पीना), अन्न, निद्रा और रति इनको बढावे, सुन्दर पाठ और गीत गानेको बढावे, ऐसा प्रथम मद अति· रमणीय कहा है । शंका–क्यों जी ! मद तो मनमें विकार उत्पन्न करे है फिर आप इनको रमणीय कैसे कहते हो ? उत्तर–आपने कहा सो ठीक है परन्तु दुःखको दूर करनेसे इनको रमणीयता है, इसी कारण सुश्रुतने हर्षको मनके विकारोंमें कहा है ॥

द्वितीय मदके लक्षण ।

अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टः सोन्मत्तलीलाकृतिरप्रशान्तः ।
आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च मध्येन मत्तः पुरुषो मदेन ॥ ७ ॥

मध्यम मदसे मतवाले पुरुषकी बुद्धि स्मरण और वाणी यथार्थ नहीं होय विरुद्ध चेष्टा करे और बावलेकीसी चेष्टा करे, प्रचण्ड हो जाय, बारंबार आलसक और निद्रासे पीडित हो जाय ॥

तृतीय मदके लक्षण ।

गच्छेदगम्यां न गुरूंश्च पश्येत्खादेदभक्ष्याणि च नष्टसंज्ञः ।
ब्रूयाच्च गुह्यानि हृदि स्थितानि मदे तृतीये पुरुषोऽस्वतन्त्रः ॥ ८ ॥

तीसरे मदसे पुरुष मदके अधीन होकर अगम्या (गुरुकी स्त्री आदिसे) गमन करे, बडोंका तिरस्कार करे, जो वस्तु खानेके योग्य नहीं हैं उनको खाय, संज्ञा जाती रहे और जो गुप्तबात हृदयमें हैं उनको कहने लगे ॥

चतुर्थ मदके लक्षण ।

चतुर्थे तु मदे मूढो भग्नदार्विव निष्क्रियः ।
कार्याकार्यविभागाज्ञो मृतादप्यपरो मृतः ॥ ९ ॥
को मदं तादृशं गच्छेदुन्मादमिव चापरम् ।
बहुदोषमिवारूढः कान्तारं स्ववशः कृती ॥ १० ॥

चतुर्थ मदसे मनुष्य मूढ होकर टूटे वृक्षके समान क्रियारहित होय, कार्य (करने योग्य) अकार्य (नहीं करने योग्य) इनको न समझे वह पुरुष मरेसे भी अधिक

मरा भया है कौन ऐसा स्ववश अथवा सुकृती पुरुष ऐसे निंद्य मद (अमल) का सहनशील होता है किन्तु कोई नहीं होता. कैसे कि, सिंह व्याघ्रादि हिंसक पशु जिस वनमें बहुत हैं ऐसे निर्जन वनमें मार्गमें कौन चतुर मनुष्य जायगा। शंका-चरक विदेह वाग्भट आदि आचार्योंने तो चतुर्थमद कहा ही नहीं है और सुश्रुतने कहा है इनमें विरोध क्यों है ? उत्तर-चरकमें जो दूसरे और तीसरेमें अन्तर कहा है सोही सुश्रुतने तृतीय मदको मानकर उसके लक्षण कहे हैं और जो चरकमें तृतीय मदके लक्षण कहे हैं, सो सुश्रुतने चतुर्थ मदके लक्षण कहे हैं। ऐसे विरोध नहीं हैं, वास्तवमें तीनहा मद हैं। शंका- योंजी ! एकमदसे तीन प्रकारके मद होते हैं इसमें क्या कारण है ? उत्तर-मद्य यह अग्निके समान है जैसे अग्निमें सुवर्ण (सोना) तपानेसे, उत्तम मध्यम अधमकी परीक्षा होती है ऐसे ही मद्य भी सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणवाले पुरुषोंकी प्रकृतिसूचक है अर्थात् सत्त्वगुणवाले पुरुषको प्रथम मद, रजोगुणवाले पुरुषको दूसरा मद, तमोगुणवाले पुरुषको तीसरा मद प्राप्त होता है। सो चरकमें लिखा है ॥

विधिहीन मद्यसेवनसे और विकार होते हैं उनको कहते हैं—

निर्भुक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम्।
आपादयेत्कष्टतमान्विकारानापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ ११ ॥

जिस पुरुषने अन्नरहित निरन्तर मद्यपान नित्य करा होय वह अत्यन्त दुःखदायक विकार (पानात्ययादिक) उत्पन्न करे है और शरीरका विनाश करे है ॥

अन्नके साथ मद्य सेवन करा भया भी क्रुद्धत्वादिकारणोंसे विकारकर्त्ता होता है, सो कहते हैं—

क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन।
व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन चापि ॥ १२ ॥
अत्यम्लभक्ष्यावततोदरेण साजीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन।
उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान्विकारान् १३॥

क्रोधयुक्त, भयसे पीडित, प्यास. शोकवान्, क्षुधायुक्त, दंड कसरत और भारसे जो क्षीण हो गया होय, मलमूत्रआदि वेगसे पीडित हो, अत्यन्त अम्लरस खानेसे जिसका पेट भरा रहा हो, अजीर्णमें भोजन करनेवाले पुरुषके निर्बल पुरुषके गरमीसे तपायमान ऐसे मनुष्यके मद्य सेवन करनेसे अनेक विकार उत्पन्न होते हैं ॥

---

१ प्रधानावरमध्यानां रुक्माणां व्यक्तिदर्शकः। यथाग्निरेवं सत्त्वानां मद्यं प्रकृतिदर्शकम् ॥

उन विकारोंको कहते हैं–

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि वा ।
पानविभ्रममुग्रं च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १४ ॥

पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम इत्यादि विकार होते हैं उनके लक्षण कहता हूं ॥

वातमदात्ययके लक्षण ।

हिक्काश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः ।
विद्याद्बहुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम् ॥ १५ ॥

हिचकी, श्वास, मस्तकका कंप होना, पसवाडोंमें पीडा, निद्राका नाश और अत्यंत बकवाद ये लक्षण जिसमें होय उसको वातप्रधान मदात्यय जानना ॥

पित्तमदात्ययके लक्षण ।

तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातीसारविभ्रमैः ।
विद्याद्धरितवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम् ॥ १६ ॥

प्यास, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम (कुछ कुछ ज्ञान होय) देहका वर्ण हरा होय इन लक्षणोंसे पित्तप्रधान मदात्यय जानना ॥

कफमदात्ययके लक्षण ।

छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः ।
विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायं मदात्ययम् ॥ १७ ॥

वमन (रद्द), अन्नमें अरुचि, खाली रद्द (ओकारी), तन्द्रा, देह गीली और भारी और शीत लगे इन लक्षणोंसे कफप्रधान मदात्यय जानना ॥

सन्निपात मदात्ययके लक्षण ।

ज्ञेयस्त्रिदोषजश्चापि सर्वलिङ्गैर्मदात्ययः ॥ १८ ॥

जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातप्रधान मदात्यय जानना ॥

परमदके लक्षण ।

श्लेष्मोच्छ्रयोऽङ्गगुरुता मधुरास्यता च विण्मूत्रसक्तिरथ तन्द्रिररोचकश्च । लिङ्गं परस्य तु मदस्य वदन्ति तज्ज्ञास्तृष्णा रुजा शिरसि सन्धिषु चातिभेदः ॥ १९ ॥

कफका कोप (यह नासास्रावादिक जानना), देहका जड होना, मुखमें मिठास, मलमूत्रका अवरोध, तन्द्रा। अरुचि, प्यास, मस्तकमें पीडा और सन्धियोंमें कुठारीसे तोडने सरीखी पीडा होय ये परमदके लक्षण जानने ॥

पानाजीर्णके लक्षण।

आध्मानमुग्रमथवोद्गिरणं विदाहः पाने त्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि।

पेटका अत्यन्त फूलना, वमन, डकारका आना, जलन होना ये लक्षण जब मद्याजीर्ण होय है तब होते हैं ॥

पानविभ्रमके लक्षण।

हृद्गात्रतोदकफसंस्रवकण्ठधूममूर्च्छावमिज्वरशिरोरुजनप्रदेहाः॥ २०
द्वेषः सुरान्नविकृतेष्वपि तेषु तेषु तं पानविभ्रममुशंत्यखिलेनधीराः॥

हृदय और गात्र इनमें सुई चुभानेकीसी पीडा होय, कफका स्राव होय, कण्ठसे धुवां निकलनेकीसी पीडा, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, शिरमें पीडा, मुख कफसे लिइसासा होय, अनेक प्रकारकी मैरेय पैष्टिक इत्यादिक सुराविकृति और लड्डू, पेडा आदि अन्नविकृति इनमें द्वेष होय इन सर्व लक्षणसे इस रोगको (पानविभ्रम) ऐसे कहते हैं। सन्निपातके अन्तर्गत होनेसे ये परमदादिक तीनों चरकने नहीं कहे और पूर्वोक्त मदात्ययके लक्षणसे विलक्षण होनेसे सुश्रुतमें उक्त त्रिदोषज मदात्ययको पृथक् कहा है॥

पानविभ्रमके असाध्य लक्षण।

हीनोत्तरोष्ठमतिशीतममन्ददाहं
तैलप्रभास्यमतिपानहतं त्यजेत्तम्॥ २१॥
जिह्वौष्ठदन्तमसितं त्वथवापि नीलं
पीतं च यस्य नयने रुधिरप्रभे वा।

ऊपरके होठसे नीचेका होठ कुछ लम्बा होय, देहके बाहर अतिशीत लगे और भीतर अत्यन्त दाह होय, तेलसे लिप्तसदृश मुख हो, जीभ होठ दांत ये काले अथवा नीले हो जायँ, नेत्र पीले, अथवा रुधिरके समान लाल होयँ ऐसे अतिपानसे अर्थात् अतिमद्य पीनेसे नष्ट मनुष्यको वैद्य त्याग दे। चरकमें ध्वंसक, विक्षेपक दो मद्यविकार और कहे हैं ॥

---

१ विच्छिन्नमद्यः सहसा योऽतिमद्यं निषेवते। ध्वंसो विक्षेपकश्चैव रोगस्तस्योपजाते ॥ १॥ श्लेष्मप्रसेकः कंठास्यशोषः सर्वासहिष्णुता। निद्रातन्द्रातियोगश्च ज्ञेयं ध्वंसकलक्षणम् ॥ २॥ हृत्कण्ठरोगसंमोहच्छर्दिरंगरुजाज्वरः। तृष्णाकासशिरःशूलमेतद्विक्षेपलक्षणम् ॥ ३॥

पानविभ्रमके उपद्रव कहते हैं—

हिक्काज्वरौ वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः

कासभ्रमावपि च पानहतं त्यजेत्तम् ॥ २२ ॥

हिचकी, ज्वर, वमन, कंप, पसवाडोंमें पीडा होय, खांसी, भ्रम ये उपद्रव जिसको होयँ उसको वैद्य त्याग दे, परन्तु जैज्जट आचार्य कहते हैं कि, असाध्य लक्षणसे पृथक् पाठ होनेसे और यह लक्षण होनेसे रोगी कृच्छ्रसाध्य जानना असाध्य न जानना ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरी-
भाषाटीकायां मदात्ययरोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ दाहनिदानम्।

दाहरोग सात प्रकारका है-तिसमें प्रथम मद्यजन्य दाहके लक्षण कहते हैं—

त्वचं प्राप्तः स पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः।

दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ १ ॥

मद्यपान करनेसे कुपित भया जो पित्त उस पित्तकी उष्णता पित्तरक्तको बढाय भयंकर दाहरोग उत्पन्न करे इसमें पित्तके समान औषध करे ॥

रक्तज और पित्तज दाहके लक्षण।

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ध्रुवम्। समुष्यते तृष्यते च ताम्राभस्ताम्रलोचनः ॥ २ ॥ लोहगन्धाङ्गवदनो वह्निनेवाव-कीर्यते। पित्तज्वरसमः पित्तात्स चाप्यस्य विधिः स्मृतः ॥ ३ ॥

सर्व देहका रुधिर कुपित होकर अत्यन्त दाह करे और वह रोगी अग्निके समीप रहनेसे जैसा तपे है ऐसा तपे, प्यासयुक्त, ताम्रके रंगसदृश देहका रंग होय और नेत्र भी लाल होयँ, तथा मुखसे और देहसे तप्त लोहेपर जल डालनेकीसी गन्ध आवे और अंगोंमें मानों किसीने अग्नि लगाय दीनी ऐसी वेदना होय, पित्तसे जो दाह होय उसमें पित्तज्वरकेसे लक्षण होते हैं उसपर पित्तज्वरकी चिकित्सा करनी चाहिये। पित्तज्वरमें और पित्तके दाहमें इतना अन्तर है कि, पित्तज्वरमें अरति आमाशयका दुष्ट होना होता है और पित्तके दाहमें नहीं होता और सब लक्षण होते हैं ॥

प्यास रोकनेके लक्षण।

तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुद्धतम्।

स बाह्याभ्यन्तरं देहं प्रदहेन्मन्दचेतसः ॥ ४ ॥
संशुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य वेपते ।

प्यासके रोकनेसे जलरूप धातु क्षीण होकर तेज कहिये पित्तकी गरमीको बढावे तब वह गरमी देहके बाहर और भीतर दाह करे, इस दाहसे रोगी बेसुध होय और गला, तालु, होठ यह अत्यन्त सूखें और जीभको बाहर काढ दे कांपे ॥

शस्त्रघातज दाहके लक्षण ।

असृजः पूर्णकोष्ठस्य दाहोऽन्यः स्यात्सुदुःसहः ॥ ५ ॥

शस्त्र कहिये तलवार आदिके लगनेसे प्रगट रुधिर उस रुधिरसे कोष्ठ कहिये हृदय भरजाय तब दाह अत्यन्त दुःसह प्रगट होय ॥

धातुक्षयजन्यदाहके लक्षण ।

धातुक्षयोत्थो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृषान्वितः ।
क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्भृशपीडितः ॥ ६ ॥

धातुके क्षय होनेसे जो दाह होय उससे रोगी मूर्च्छा प्यास इनसे युक्त होय, स्वरभंग और चेष्टाहीन होय और इस दाहसे पीडित होकर यदि चिकित्सा न करावे तो वह रोगी मरणको प्राप्त होय ॥

क्षतज दाहके लक्षण ।

क्षतजोऽनश्नतश्चान्यः शोचतो वाप्यनेकधा ।
तेनान्तर्दह्यतेऽत्यर्थं तृष्णामूर्च्छाप्रलापवान् ॥ ७ ॥

क्षत (घाव) के होनेसे जो दाह हो उससे आहार थोडा रहजावे और अनेक प्रकारके शोककर दाह होय और इस दाहकरके अभ्यन्तरदाह होय तथा प्यास मूर्च्छा और प्रलाप (बकवाद) ये लक्षण होयँ ॥

मर्माभिघातज दाहके लक्षण ।

मर्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सप्तमो मतः ।

मर्मस्थान (हृदय शिरा बस्ति) में चोट लगनेसे जो दाह होय सो सातवां असाध्य है अर्थात् और जो छः दाह हैं वे साध्य हैं ॥

सर्व एव च वर्ज्याः स्युः शीतगात्रस्य देहिनः ॥ ८ ॥

सब दाहोंमें शीतल देहवाला रोगी त्याज्य है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां दाहनिदानं समाप्तम् ॥

अथोन्मादनिदानम्।

मदयन्त्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः।
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्त्यते॥ १॥

दोष (वात पित्त कफ) बढकर अपने २ मार्गको छोड अन्यमार्ग अर्थात मनोवह धमनियोंमें प्राप्त होकर मनको उन्मत्त करें और यह व्याधि मानसी है अतएव इसको उन्माद ऐसे कहते हैं॥

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः। मानसेन च दुःखेन स पञ्चविध उच्यते॥ २॥ विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम्। स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्ति च॥ ३॥

अत्यन्त कुपित भये पृथक् पृथक् दोषोंसे ३, सन्निपात ४ और ५ मानसिक दुःखसे यह रोग पांच प्रकारका और ६ विषखानेसे छठा, इनमें यथादोषानुसार औषध देनी चाहिये, जबतक यह रोग बढे नहीं और जबतक तरुण रहे तबतक इस रोगको मद ऐसे कहते हैं॥

उन्मादके सामान्य कारण और सम्प्राप्ति।

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम्।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः॥ ४॥
तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य।
स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः॥ ५॥

विरुद्ध दुष्ट कहिये जहर मिला अन्न आदि, अशुचि चाण्डालादिसे स्पर्श करा ऐसा भोजन, देवता, गुरु, ब्राह्मण इसका तिरस्कार करनेसे, भय और हर्षके होनेसे मनको बिगाड सब चेष्टा विपरीत करे अर्थात् टेढा तिरछा चले, बलवान्से वैर करे, बकने लगे। इस श्लोकमें पूर्वशब्द कारणका है और चकारसे काम क्रोध लोभादिक भी उन्माद रोगके कारण हैं यह जैज्जटका मत है। इनमें कहे जो कारणोंसे अल्प सत्त्वगुणवाले पुरुषके वातादिक दोष कुपित होकर बुद्धिका निवासस्थान (रहनेका ठिकाना) जो हृदय उसको बिगाड मनके बहनेवाले स्रोतोंमें प्राप्त हो मनुष्यके अन्तःकरणको मोहित करें॥

---

१ उत् ऊर्ध्वं हृदयं गता दोषा मदयन्ति मनोविभ्रमं कुर्वन्तीत्युन्मादः॥

उन्मादका स्वरूप।

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च।
अबद्धवाक्यं हृदयं च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य चिह्नम्॥ ६॥

बुद्धिमें भ्रम, मनका चञ्चल होना, दृष्टिका सर्वत्र चलना, अधीरजपना (डरपना); कुछका कुछ बोलना, हृदय शून्य हो जाय (अर्थात् विचार शक्तिका नाश होना) ये उन्मादरोगके सामान्य लक्षण हैं॥

विशेष लक्षण।

रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः।
चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य बुद्धिं स्मृतिं चापि निहन्ति शीघ्रम्॥७॥
अस्थानहासस्मितनृत्यगीतवागङ्गविक्षेपणरोदनानि।
पारुष्यकार्श्यारुणवर्णता च जीर्णे बलं चानिलजस्वरूपम्॥ ८॥

रूखा, थोडा और शीतल ऐसा 'अन्नविरेक' इस शब्दसे इस जगह दस्त और वमन जानना, धातुक्षय और उपवास इन कारणोंसे अत्यन्त बढी जो वायु सो चिन्ता शोकादिकरके युक्त होकर हृदयको अत्यन्त दुष्टकर बुद्धि और स्मरण इनका शीघ्र नाश करे और हँसनेके कारण विना हँसे (मन्दमुसकान करे) नाचे, विना प्रसंगके गीत और बोलना करे, हाथोंको सर्वत्र चलावे, रोवे और शरीर रूखा तथा कृश और लाल हो जाय और आहारका परिपाक भयंकर ज्यादा जोर होय ये वातज उन्मादके लक्षण हैं॥

पित्तज उन्मादके कारण और लक्षण।

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्णवेगम्।
उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदि स्थितं पूर्ववदाशु कुर्यात्॥ ९॥
अमर्षसंरंभविनग्नभावाः सन्तर्जनाभिद्रवणौष्ण्यरोषाः।
प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषः पीतास्यता पित्तकृतस्य लिङ्गम्॥१०॥

अधकच्ची, कडवी, खट्टी, दाह करनेवाली और गरम ऐसी २ वस्तु भोजन करनेसे संचित भया जो पित्त सो तीव्रवेग होकर अजितेंद्रिय पुरुषके हृदयमें प्रवेश कर पूर्ववत् अति उग्र उन्माद तत्काल उत्पन्न करे। इस उन्मादसे असहनशील, हाथ पैरोंको पटकनेवाला, नग्न हो जाय, डरपे, भाजने लगे, देह गरम होजाय, क्रोध करै, छायामें रहे, शीतल अन्न और शीतल जल इनकी इच्छा, पीला मुख होजाय ये लक्षण पित्तज उन्मादके हैं॥

कफजन्य उन्मादके कारण और लक्षण।

संपूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य सोष्मा कफो मर्मणि संप्रवृत्तः।
बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति चित्तं प्रमोहयन्संजनयेद्विकारम्॥ ११॥
वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारीविविक्तप्रियताऽतिनिद्रा।
छर्दिश्च लाला च बलं च भुंक्ते नखादिशौक्ल्यं च कफात्मके स्यात्१२

मन्द भूखमें भोजन कर कुछ परिश्रम न करे, ऐसे पुरुषके पित्तयुक्त कफ हृदयमें अत्यन्त बढकर बुद्धि स्मरण और चित्त इनकी शक्तिका नाश करे और मोहित हो, उन्मादरूपविकारको उत्पन्न करे उस विकारसे वाणीका व्यापार कहिये बोलना इत्यादि मन्द हो, अरुचि होय, स्त्री प्यारी लगे, एकांतवास करे, निद्रा अत्यन्त आवे, वमन होय, मुखसे लार बहे, भोजन करे पिछाडी इस रोगका जोर हो। नख आदिशब्दसे त्वचा, मूत्र, नेत्रादिक ये सफेद होयँ ये लक्षण कफके उन्मादके हैं॥

सन्निपात उन्मादके लक्षण।

यः सन्निपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैः समस्तैरपि हेतुभिः स्यात्।
सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति तादृग्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः॥ १३॥

जो उन्माद वातादिक दोष करके अथवा तीनों दोषोंके कारण करके होय वह सन्निपातजन्य उन्माद बहुत भयंकर होता है। उसमें सब दोषोंके लक्षण होते हैं। इसमें विरुद्ध औषधकी विधि वर्जित है। यह उन्माद वैद्यों करके त्याज्य है। कारण यह कि, असाध्य है॥

शोकज उन्मादके लक्षण।

चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथान्यैर्वित्रासितस्य धनबान्धवसंक्षयाद्वा। गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसोर्जायेत चोत्कटतरो मनसो विकारः॥ १४॥ चित्रं ब्रवीति च मनोऽनुगतं विसंज्ञो गायत्यथो हसति रोदिति चातिमूढः।

चोरोंने, राजाके मनुष्योंने अथवा शत्रुओंने उसी प्रकार सिंह, व्याघ्र, हाथी आदि किसीने त्रास दिया होय अथवा धन बंधुके नाश होनेसे ऐसे पुरुषका अन्तःकरण अत्यन्त दूखे, अथवा प्यारी स्त्रीसे संभोग करनेकी इच्छावाले पुरुषके मनमें भयंकर विकार उत्पन्न होय, वह पुरुष गुप्त बातको भी कहने लगे और अनेक प्रकारसे बोले, विपरीत ज्ञान होय तथा गावे, हँसे और रोवे तथा मूर्ख हो जाय॥

विषजन्य उन्मादके लक्षण ।

रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः श्यावाननो विषकृतेन भवेद्विसंज्ञः।

विषसे प्रगट उन्मादमें नेत्र लाल होयँ, बल इन्द्रिय और शरीरकी कान्ति नष्ट हो जाय, अति दीन हो जाय, उसके मुखपर कालोंच आजाय और संज्ञा जाती रहे ॥

विषज उन्मादके असाध्य लक्षण ।

अवाङ्मुखस्तून्मुखो वा क्षीणमांसबलो नरः ।
जागरूको ह्यसन्देहमुन्मादेन विनश्यति ॥ १६ ॥

जिसका मुख नीचेको हो अथवा ऊपरको हो और जिसकामांस और बल क्षीण होगया हो तथा जिसकी निद्रा जाती रही हो ऐसा मनुष्य निश्चय इस उन्माद्-करके नाशको प्राप्त हो ॥

भूतज उन्मादके लक्षण ।

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टाज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः ।
उन्मादकालो नियतश्च यस्य भूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥ १७॥

वाणी, पराक्रम, शक्ति, देहका व्यापार, तत्त्वज्ञान, शिल्पादि ज्ञान अथवा ज्ञान कहिये शास्त्रज्ञान और विज्ञाननाम तदर्थनिश्चय, आदिशब्दसे स्मृत्यादिक ये जिसकी मनुष्यकीसी न होयँ और जिसका उन्मत्त होनेका काल निश्चय होय, ऐसे उन्मादको भूतोन्माद कहते हैं। भूतशब्दसे यहां आगे कहेंगे सो सब देवता जानने ॥

देवग्रहजके लक्षण ।

सन्तुष्टः शुचिरतिदिव्यमाल्यगन्धो निस्तन्द्रस्त्ववितथसंस्कृत-प्रभाषी। तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता ब्रह्मण्यो भवति नरः स देवजुष्टः ॥ १८ ॥

सदा संतोषयुक्त रहे, पवित्र रहे, देहमें दिव्यपुष्पके समान सुगंध, नेत्रोंके पलक लगे नहीं, सत्य और संस्कृतका बोलनेवाला हो, तेजस्वी, स्थिरदृष्टि, वरका देनेवाला (तेरा कल्याण हो ऐसे वर देवे), ब्राह्मणसे प्रीति राखे ऐसा मनुष्य देवग्रहपीडित जानना। देवशब्दसे गणमातृकादि ग्राह्य हैं सो विदेहने कहा भी है ॥

---

१ क्रोधेन स्तब्धसर्वाङ्गो लालाफेनाविलाननः। निद्रालुः कंपते मूको गणमातृभिरर्दितः ॥

असुरपीडितके लक्षण ।

संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः । सन्तुष्टो न भवति चान्नपानजातैर्दुष्टात्मा भवति स देवशत्रुजुष्टः ॥ १९ ॥

पसीनायुक्त देह, ब्राह्मण, गुरु और देव इनमें दोषारोपण करनेवाला, टेढी दृष्टिसे देखनेवाला, निर्भय, वेदविरुद्ध मार्गका चलनेवाला और बहुत अन्न जलसे भी जिसको सन्तोष न होय और दुष्टबुद्धि ऐसा मनुष्य दैत्यग्रहपीडित जानना ॥

गन्धर्वग्रहजके लक्षण ।

दुष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः । नृत्यन्वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २० ॥

गन्धर्व ग्रहसे पीडित मनुष्य प्रसन्नचित्त, पुलिन और बाग बगीचेमें रहनेवाला अनिंदित आचारको करनेवाला, गान सुगन्ध और पुष्प ये जिसको प्यारे लगे वह पुरुष नाचे, हंसे, सुन्दर बोले, थोडा बोले ॥

यक्षग्रहजके लक्षण ।

ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक् साहिष्णुः । तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २१ ॥

यक्षग्रहसे पीडित मनुष्यके नेत्र लाल हों, सुन्दर बारीक ऐसे रक्तवस्त्रका धारण करनेवाला, गम्भीर, बुद्धिमान्, जल्दी चलनेवाला, प्रमाणका बोलनेवाला, सहनशील, तेजस्वी, किसको क्या देऊं ऐसे बोलनेवाला ऐसा होय ॥

पितृग्रहजके लक्षण ।

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डान् श्रान्तात्मा जलमपि चापसव्यहस्तः । मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिकामस्तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिजुष्टः ॥ २२ ॥

कुशाके ऊपर प्रेतोंको (पितरोंको) पिंड दे, चित्तमें भ्रांति रहे और उत्तरीयवस्त्र अपसव्य करके तर्पण भी करे, मांस खानेकी इच्छा होय, तथा तिल, गुड खीर इनपर मन चले । इस कहनेका प्रयोजन यह है कि जिसकी जिस पदार्थपर इच्छा

होय उसको उसी पदार्थकी बलि देनेसे उस ग्रहकी शांति होती है, ऐसे ही सर्वत्र जानना। यह डल्लनका मत है। और वह मनुष्य पितरोंकी भक्ति करे। ये लक्षण पितृग्रहपीडित मनुष्यके हैं ॥

सर्पग्रहयुक्तके लक्षण ।

यस्तूर्व्यां प्रसरति सर्पवत्कदाचित्सृक्किण्यौ विलिहति जिह्वया तथैव । क्रोधालुर्मधुगुडदुग्धपायसेप्सुर्विज्ञेयो भवति भुजङ्ग-मेशजुष्टः ॥ २३ ॥

जो सर्पके समान पृथ्वीमें लौटा करे अर्थात् छातीके बल चले तथा सर्पके समान अपने ओष्ठप्रान्त (होठों) को चाटा करे, सदा क्रोधी रहे, शहद, गुड, दूध और खीरकी इच्छा करे वह सर्पग्रहग्रस्त जानना ॥

राक्षसग्रहपीडितके लक्षण ।

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सुर्निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः । क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविहारी शौचद्विड् भवति च राक्षसैर्गृहीतः ॥ २४ ॥

जो मनुष्य मांस, रुधिर, नाना प्रकारके मद्य पीनेकी इच्छा करे और निर्लज्ज, अत्यन्त निष्ठुर, अत्यन्त शूर, क्रोधी, बडा बली, रात्रिमें डोलनेवाला, अपवित्र ऐसा होय वह राक्षसकरके ग्रस्त जानना॥

पिशाचजुष्टके लक्षण ।

उद्धस्तः कृशपरुषश्चिरप्रलापी दुर्गंधो भृशमशुचिस्तथाऽतिलोलः । बह्वाशी विजनवनान्तरोपसेवी व्याचेष्टन्भ्रमति रुदन्पिशाचजुष्टः २५

जो अपने हाथ ऊपरको करे, " उद्वस्त्र " ऐसा भी पाठ है, उस जगह उद्वस्त्र नाम नंगा हो जाय, तेजरहित, बहुत देरपर्यंत बकनेवाला, जिसके देहमें दुर्गन्ध आवे, अपवित्र तथा अतिचञ्चल कहिये सब अन्नपानमें इच्छा करनेवाला खानेको मिले तो बहुत भोजन करे, एकान्त वनांतरोंमें रहनेवाला, विरुद्ध चेष्टा करनेवाला, रुदन कर्त्ता, डोलनेवाला ऐसा मनुष्य पिशाचग्रस्त जानना ॥

प्रसंगवशसे ब्रह्मराक्षस और भूतोन्मादके लक्षण ग्रन्थान्तरोंसे लिखते हैं—

देवविप्रगुरुद्वेषी वेदवेदाङ्गविच्छुचिः ।
आशुपीडाकरोऽहिंस्रो ब्रह्मराक्षससेवितः ॥ २६ ॥

देव, ब्राह्मण, गुरुसे द्वेषकर्त्ता, वेद और वेदके अंग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण आदि) को पढा भया, पवित्र रहनेवाला, शीघ्र पीडाका कर्त्ता, हिंसा करे नहीं ये लक्षण ब्रह्मराक्षसजुष्ट मनुष्यके हैं ॥

भूतोन्मादके लक्षण।

महापराक्रमो यश्च दिव्यं ज्ञानं च भाषते।
उन्मादकालनैश्चित्यो भूतोन्मादी स उच्यते ॥ २७ ॥

महापराक्रमी और जो श्रेष्ठज्ञानको कहे और जो उन्मादकालका निश्चय न होय उसको भूतोन्मादी कहते हैं ॥

अब कहते हैं कि, देवादिकग्रह इस मनुष्यको तीन कार्यके वास्ते ग्रहण करते हैं, हिंसा अर्थात् मारनेके निमित्त और पूजाके निमित्त तथा विहारके निमित्त। इनमें हिंसाके निमित्त ग्रस्त मनुष्य साध्य (अच्छा) नहीं होय उसके लक्षण आगे कहते हैं॥

स्थूलाक्षो द्रुतमटनः सफेनलेही निद्रालुः पतति च कम्पते च यो हि । यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः स्यात्सोऽसाध्यो भवति तथा त्रयोदशेऽब्दे ॥ २८ ॥

नेत्र भयानक होजायँ, शीघ्र चले, मुखमें जो झाग है उसको चाटनेवाला और जिसको निद्रा बहुत आवे तथा गिरपडे, काँपे और जो पर्वत, हाथी (अथवा) नग नाम वृक्ष, आदिशब्दसे भीत मन्दिर आदि जानने, इनसे गिरकर ग्रहग्रस्त होय वह असाध्य है। तैसेही तेरहवें वर्षमें सर्व देवादि उन्मादी असाध्य जानने। विदेहने विशेष लक्षण कहे हैं सो ग्रंथान्तरोंसे जानलेवे ॥

देवादिकोंका आवेशसमय।

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि।
गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यथ ॥ २९ ॥
पितृग्रहास्तथा दर्शे पञ्चम्यामपि चोरगाः।
रक्षांसि रात्रौ पैशाचाश्चतुर्दश्यां विशन्ति हि ॥ ३० ॥

देवग्रह पूर्णमासीको प्रवेश करते हैं, असुरग्रह सायंकालमें, अपिशब्दसे पूर्णमासीको भी प्रवेश करते हैं, गन्धर्वग्रह बहुधा अष्टमीको, प्रायःशब्दसे सन्ध्याको भी गन्धर्व ग्रह प्रवेश करते हैं, यक्षग्रह पडवाको, पितृग्रह अमावस्याको, सर्पग्रह पंचमीको, अपिशब्दसे अमावास्याको भी प्रवेश करते हैं, राक्षस रात्रिमें और पिशाच चतु-

---

१ सन्ध्या त्रिनाडीप्रमिताऽर्कबिंबादर्द्धोदितास्तादध ऊर्ध्वमत्र। इति ॥

देशीको मनुष्यदेहमें प्रवेश करते हैं। तिथि कहनेका यह प्रयोजन है कि, जिस जिस तिथिको जो ग्रह मनुष्यको ग्रस्त करे उसको उसी तिथिमें शांतिके निमित्त बलिदाना-दिक कराने चाहिये। शंका—क्योंजी! जब ग्रहग्रस्त मनुष्योंको उन्माद होता है तो वह ग्रह मनुष्य देहमें प्रवेश करते क्यों नहीं दीखते हैं? इसवास्ते उत्तर कहते हैं—

दर्पणादीन् यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा।
स्वमणिं भास्करांशुश्च यथा देहं च देहधृक्।
विशन्ति न च दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणाम्॥ ३१॥

जैसे दर्पणमें मनुष्यका प्रतिबिम्ब पडे है, आदिशब्द इस जगह प्रकारवाची है अर्थात् जल, तैल आदिमें जैसे छाया पडती है और सरदी, गरमी जैसे मनुष्योंको लगती है अथवा जैसे सूर्यकिरण सूर्यकातन्मणि (आतसीकाच) में प्रवेश करे है अथवा जैसे जीव देहमें प्रवेश करे है, इसी प्रकार सब ग्रह मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करते हैं परन्तु दीखते नहीं हैं। इस श्लोकके पोषक दृष्टान्त जैज्जट आचार्यने बहुत दिये हैं परन्तु ग्रन्थ बढनेके भयसे नहीं लिखे॥

इस उन्मादरोगमें सर्वत्र देवशब्दकरके देवताओंकेसे आचरणवाले देवताओंके अनुचर (दास) जानने चाहिये, क्योंकि देवताओंको मनुष्यके अपवित्र देहमें प्रवेश होना असम्भव है। सो सुश्रुतमें लिखा है—

न ते मनुष्यैः सह संविशन्ति न वा मनुष्यान् क्वचिदाविशन्ति।
ये त्वाविशन्तीति वदन्ति मोहात्ते भूतविद्याविषयादपोह्याः॥ ३२॥
तेषां ग्रहाणां परिचारका ये कोटीसहस्रायुतपद्मसंख्याः।
असृग्वसामांसभुजः सुभीमा निशाविहाराश्च तथा विशंति॥ ३३॥

जो देवादिक मनुष्यके साथ मिलते नहीं हैं न वे मनुष्योंकी देहमें प्रवेश करते हैं और जो वैद्य 'प्रवेश करते हैं' ऐसे कहते हैं, वे अज्ञानसे कहते हैं, ऐसा वैद्य भूतविद्यावाला जानकर त्याज्य है। तौ कौन प्रवेश करते हैं? इस वास्ते कहते हैं 'तेषाम्' अर्थात् उन देवताओंके परिचारक (नौकर) जो करोडों हजारों पद्म-संख्यक रुधिर, वसा, मांसके भोजन करनेवाले भयंकर, रात्रिमें विचरनेवाले हैं वे प्रवेश करते हैं॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषा-टीकायामुन्मादरोगनिदानं समाप्तम्॥

---

१ ग्रहा गृह्णन्ति गे येषु तेषां तेषु विशेषतः। दिनेषु बलिहोमादीन्प्रयुंजीत चिकित्सकः॥

अथापस्मारनिदानम्।

प्रथम सुश्रुतोक्त इस रोगकी निरुक्ति लिखते हैं—

स्मृतिर्भूतार्थविज्ञानमपस्तत्परिवर्जने।
अपस्मार इति प्रोक्तस्ततोऽयं व्याधिरन्तकृत्॥ १॥

स्मृतिशब्द प्राणियोंके अर्थज्ञानको कहता है और अपशब्द उसका नाशक है इसीसे स्मृति और अप इन दोनों शब्दोंसे अपस्मार यह शब्द सिद्ध हुआ। इसी पूर्वोक्त हेतुके नाशसे यह रोग जलादिकके विषे प्रवेश होनेसे प्राणान्तकारक है॥

अपस्मारकी निदानपूर्वक सम्प्राप्ति।

चिन्ताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्रोतसि स्थिताः।
कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते॥ २॥

चिन्ता, शोक, आदिशब्दसे क्रोध, लोभ, मोहादिसे कुपित भये जो दोष (वात, पित्त, कफ) सो हृदयमें स्थित जो मनके बहनेवाली नाडी उनमें प्राप्त हो स्मरण (ज्ञान) का नाश कर अपस्माररोगको प्रगट करे॥

वाग्भटके मतसे निदान।

मिथ्यायोगेन्द्रियार्थानां कर्मणामतिसेवनात्। निरुद्धमलिनां कर्मविहारकुपितैर्मलैः॥ ३॥ वेगनिग्रहशीलानामहिताशुचिभोजिनाम्। रजस्तमोभिभूतानां गच्छतां वा रजस्वलाम्। तथा कामभयोद्वेगक्रोधशोकादिभिर्भृशम्। चेतसोऽभिभवैः पुंसामपस्मारोऽभिजायते॥ ४॥

इन्द्रियोंके अर्थ कहिये विषय और कर्म, उनका मिथ्यायोग, अतियोग और अयोगके सेवन करनेसे तथा निरुद्धमल भोजन और विहारसे कुपित भये जो दोष उनसे तथा मूत्रमलादि वेगोंके धारण करनेवालोंके अहित और अपवित्र भोजन करनेसे रजोगुणी मनुष्योंके, रजस्वला स्त्रीगमन करनेसे तथा काम, भय, उद्वेग, क्रोध, शोक इन कारणोंसे, चित्त (मन) के बिगडनेसे मनुष्योंके अपस्माररोग प्रगट होता है। तहां श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन, घ्राण ये इंद्रियोंके अर्थ हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये इन्द्रियोंके विषय हैं। इनके अतिसेवनसे

उदाहरण दिखाते हैं, जैसे-पुरुषका इष्टनाशादि सुनना मिथ्यायोग है, पटहादि बाजोंका सुनना अतियोग है, कुछ न सुनना अयोग है। ऐसेही अपवित्र आदिको छूना मिथ्यायोग है, अतिशीतल अतिगरम छूना, स्नान उबटना आदिका सेवन अतियोग है, किसीको न छूना अयोग है। छोटी वस्तुका देखना मिथ्यायोग है, बडी वस्तुका देखना अतियोग और किसीको न देखना अयोग है। रसोंका अतिसेवन अतियोग है, थोडा सेवन मिथ्यायोग है, असेवन अयोग है। दुर्गन्धका सूँघना मिथ्यायोग है, अतितीक्ष्ण गन्धका सूँघना अतियोग है, किसीको न सूँघना अयोग है। तहां कायिक, वाचिक, मानासिक तीन प्रकारका कर्म कहा है। तहां कायिक कर्म जैसे कुसमयमें दंडकसरतका करना मिथ्यायोग, बहुत करना अतियोग, कुछ न करना अयोग है। खोटा और झूठा बोलना वाणीका मिथ्यायोग है, बहुत बोलना अतियोग है, चुप होजाना अयोग है। मानसकर्म जैसे शोकादि चिंतवन मानसिक मिथ्यायोग है, अत्यन्त चिन्ता करना अतियोग है और किसीकी चिंता न करना अयोग है इति॥ आगे श्लोक माधवके हैं॥

अपस्मारके सामान्य लक्षण।

तमःप्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतिः।
अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः॥ १॥

अन्धकारमें प्रवेश करनेके समान ज्ञानका नाश होना, नेत्र टेढे बांधे फिर दोषोंके बढनेसे ज्ञानका नष्ट होना ये लक्षण जिस रोगमें होयँ ऐसा भयंकर अपस्मार रोग चार प्रकारका है, इसको लोग संसारमें मिरगी ऐसे कहते हैं॥

पूर्वरूप।

हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमूढता।
निद्रानाशश्च तस्मिंस्तु भविष्यति भवन्त्यथ॥ २॥

जब अपस्मार होनेवाला होय है तब ये लक्षण होते हैं, हृदय कांपे और शून्य पड जाय-कुछ सूझे नहीं, चिन्ता, मूर्च्छा, पसीने आवे, ध्यान लगजाय, मूर्च्छा कहिये मनका मोह और प्रमूढता कहिये इन्द्रियोंका मोह होय, निद्रा जाती रहे॥

वातज अपस्मारके लक्षण।

कम्पते प्रदशेद्दन्तान्फेनोद्वामी श्वसित्यपि।
परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात्॥ ३॥

वातके अपस्मारमें रोगी कांपे, दांतोंको चबावे, मुखसे झाग गेरे और श्वास भरे तथा कर्कश अरुणवर्ण और काला वर्ण मनुष्योंको दीखे अर्थात् कोई नील वर्णका मनुष्य मेरे पास दौडा आता है । इसी प्रकार पित्तसे पीले वर्णका पुरुष दौडा आता है और कफमें सफेद रंगका पुरुष सामने दौडा आता है ऐसे जानना ॥

पित्तकी मृगीके लक्षण ।

पीतफेनाङ्गवक्राक्षः पीतासृग्रूपदर्शनः ।
सतृष्णोष्णानलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिकः ॥ ४ ॥

पित्तकी मिरगीवालोंके झाग, देह, मुख और नेत्र ये पीले होते हैं और वह पीले रुधिरके रंगकीसी सब वस्तु देखे, प्यासयुक्त और गरमीकी साथ अग्निसे व्याप्त भया ऐसा सब जगत्को देखे ॥

कफकी मृगीके लक्षण ।

शुक्लफेनाङ्गवक्राक्षः शीतहृष्टाङ्गजो गुरुः ।
पश्यञ्छुक्लानि रूपाणि मुच्यते श्लैष्मिकश्चिरात् ॥ ५ ॥

कफकी मिरगीवालेके झाग, अंग, मुख और नेत्र सफेद होयँ, देह शीतल होय तथा देहके रोमांच खडे रहे, भारी होय और सब पदार्थ सफेद दीखे यह अपस्मार (मिरगी) रोग देरमें छोडे । इससे यह सूचना करी कि, वातपित्तकी मृगी जलदी रोगीको छोड देती है ॥

सन्निपातकी मृगीके लक्षण ।

सर्वैरेतैः समस्तैश्च लिंगैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः ।
अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्यानवश्च यः ॥ ६ ॥

जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों वह त्रिदोषज अपस्मार जानना । यह असाध्य है । और जो क्षीण पुरुषके होय वह भी असाध्य है । तथा पुराना पड गया होय वह भी अपस्मार (मिरगी) रोग असाध्य है ॥

मृगीके असाध्य लक्षण ।

प्रतिस्फुरन्तं बहुशः क्षीणं प्रचलितभ्रुवम् ।
नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ ७ ॥

बारंबार कंपयुक्त होय, क्षीण हो गया हो भृकुटी (भौंह) का चलानेवाला और नेत्र बांके करमेवाला ऐसा अपस्मारी रोगी जीवे नहीं ॥

मृगीरोगकी पाली ।

पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः।
अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किंचिदथोत्तरम् ॥ ८ ॥

कोपको प्राप्त भये जो दोष सो पंद्रहवें दिन अथवा बारहवें दिन अथवा महीने भरमें मिरगीरोग प्रकट करें। तिनमें पैत्तिक १५ दिन, वातिक १२ दिन और श्लैष्मिक ३० दिनमें आती है। इस जगह बारहवें दिनके पिछाडी पक्ष कहना ठीक था फिर पहिले पक्ष धरनेका यह प्रयोजन है कि, अधिक कालकरके ही दोष वेग करते हैं यह कहा। "किंचिदथोत्तरम्" इस पदसे यह सूचना करी है कि, जिस जिस दोषका जो जो काल कहा है उससे पहिले भी दोषोंके तारतम्यसे मिरगीरोग होय है ऐसे जानना। शंका-वेग उत्पन्न करके अपस्मारके प्रगट कर्त्ता दोष देहमें सदा रहते हैं, फिर वे सर्वकालमें वेग क्यों नहीं करते, द्वादशादि दिनमें क्यों करते हैं ? इन विषयमें दृष्टांतरूप समाधान कहते हैं-

देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानिचित् ।
शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुच्छ्रयः ॥ ९ ॥

जैसे चातुर्मासमें इन्द्र वर्षे भी है परन्तु कोई जव, गेहूँ, चना आदि बीज शरद ऋतुमें ही ऊगते हैं तैसेही सर्वरोगके बीजरूप वातादिक दोष कदाचित् किसी अपस्मारादिक व्याधिविशेष निदानादिकका संगम होनेसे उस रोगको प्रगट करे हैं। अथवा इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि, बीजके अंकुर फूटनेमें तेज, वायु, पृथ्वी, जल ये सहायक भी हैं, परन्तु वे सब कालविशेषकी प्रतीक्षा (इच्छा) करते हैं। अंकुर आनेको काल ही सहाय चाहिये अर्थात् जिस कालमें जिस बीजको अंकुर आता है वह उसी कालमें आवेगा बीचमें कभी नहीं आनेवाला, यही न्याय चातुर्थिक ज्वरादिकोंमें भी जानना ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थदीपिकायां माथुरीभाषाटीकाया-मपस्मारनिदानं समाप्तम् ॥

अथ वातव्याधिनिदानम् ।

वातव्याधिकी सम्प्राप्ति।

रूक्षशीताल्पलघ्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः । विषमादुपचाराच्च दोषासृक्स्रावणादपि ॥ १ ॥ लङ्घनप्लवनात्यध्वव्यायामाति-

विचेष्टनैः । धातूनां संक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्षणात् ॥ २ ॥ वेगसंधारणादामादभिघातादभोजनात् । मर्मबाधाद्गजोष्ट्राश्वशीघ्रयानादिसेवनात् ॥ ३ ॥ देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली । करोति विविधान्व्याधीन्सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयान् ॥ ४ ॥

रूखा, शीतल, थोडा और हलका ऐसे अन्न खानेसे, अति मैथुनके करनेसे बहुत जागनेसे, विषम उपचार करनेसे दोष (कफ पित्त मल मूत्र इत्यादिक) और रुधिर इनके निकलनेसे अर्थात् वमन विरेचनसे, लंघन अर्थात् अखाडे आदिमें कला खेलनेसे, नदी आदिमें तैरनेसे, बहुत चलनेसे, अतिदण्डकसरत आदि श्रमके करनेसे, अत्यन्त विरुद्धचेष्टा करनेसे, रस रुधिर आदि धातुओंके क्षय होनेसे, चिन्ता शोक और रोगद्वारा कृश होनेसे, मल मूत्रादिकोंके वेग रोकनेसे, आमसे, लकडी आदिकी चोट लगनेसे उपवास (व्रत) के करनेसे आदि ले सब मर्मस्थानोंमें लगनेसे, हाथी ऊंट घोडा इत्यादि जल्दी चलनेवाली सवारीपर बैठनेसे, कोपको प्राप्त भई जो बलवान् वायु सो देहमें खाली जो नस उनमें प्राप्त हो सर्वाङ्ग अथवा एक अङ्गमें व्याप्त होनेवाली ऐसी अनेक प्रकारकी वातव्याधि उत्पन्न करे है ॥

वातव्याधिके पूर्वरूप व लक्षण ।

अव्यक्तं लक्षणं तेषां पूर्वरूपमिति स्मृतम् ।
आत्मरूपं तु तद्व्यक्तमपायो लघुता पुनः ॥ ५ ॥

उस वक्ष्यमाण वातव्याधिके जो अप्रगट लक्षण उसको पूर्वरूप ऐसे कहते हैं ज्वरादिकोंके सदृश विशिष्ट नहीं हैं । और जो रूप प्रगट होय अर्थात् दोषादि भेद करके यथार्थ दीखे उसको उस व्याधिका लक्षण जानना । अपानवायुके चञ्चल होनेसे, स्तम्भ संकोच कम्पादिकका कदाचित् अभाव होय है । और शरीरकी लघुता (वायुकरके धातुशोषण होनेसे) अथवा 'अपायोऽलघुता' कहिये सब वातविकारोंको अपाय कहिये अभाव होय और वातविकारोंका अलघुता कहिये अल्पत्व करके जो स्थिति है सो निःशेष (बिलकुल) निवृत्ति नहीं होय किन्तु कुछ न कुछ अंश रहा आवे जैसे बहिरायाम निवृत्ति होनेपर भी रूक्षादिकोंकी निवृत्ति नहीं होती हैं ॥

अब नाना प्रकारकी व्याधि करेहै यह जो कह आये हैं उसको कहते हैं—

संकोचः पर्वणां स्तम्भो भङ्गोऽस्थ्नां पर्वणामपि । लोमहर्षः प्रलापश्च पाणिपृष्ठशिरोग्रहः ॥ ६ ॥ खाञ्ज्यपाङ्गुल्यकुब्जत्वं शोथोऽङ्गानामनिद्रता । गर्भशुक्ररजोनाशः स्पंदनं गात्रसुप्तता ॥ ७ ॥ शिरोनासाक्षिजत्रूणां ग्रीवायाश्चापि हुण्डनम् ।

भेदस्तोदोऽर्तिराक्षेपो मोहश्चायास एव च ॥ ८ ॥ एवंविधानि रूपाणि करोति कुपितोऽनिलः। हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकृत् ॥ ९ ॥

संधियोंका संकोच और स्तंभ, हड्डियों और सन्धियोंमें फूटनेकीसी पीडा, रोमांच, वाहियात बकना, हाथ पैर और मुख इनका जकडजाना, खंजत्व, पांगुला होना, कुबडापना, अङ्गोंका सूखना, निद्राका नाश, गर्भका न रहना, शुक्र और रज (स्त्रीका आर्त्तव) इनका नाश, कंप, अङ्गोंमें शून्यता, मस्तक, नाक, मुख, जत्रु और नाड इनका भीतर जाना, अथवा टेढे होजाय, भेदसदृश पीडा, नोचनेकीसी पीडा, शूल, आक्षेपरोग जा आगे कहेंगे, मोह, श्रम, कुपित भई जो वायु इस प्रकार लक्षण करे है, वह वायु हेतु और स्थान इन भेदसे विशिष्ट रोग उत्पन्न करनेवाली होती है। जैसे कफावृत होनेसे मन्यास्तम्भ रोग करे। यदि पक्वाशयमें वात स्थित होय तो आंतोंका गूञ्जना इत्यादि रोग करै है ॥

कोष्ठाश्रितवायुके कार्य।

तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः।
ब्रध्नहृद्रोगगुल्मार्शः पार्श्वशूलं च मारुते ॥ १० ॥

कोठेमें स्थित वायु दुष्ट होनेसे मलमूत्रका अवरोध होय, बदरोग, हृद्रोग, गोला बवासीर और पसवाडोंमें पीडा इतने रोग उत्पन्न करे ॥

सर्वांगकुपित वायुके कार्य

सर्वाङ्गकुपिते वाते गात्रस्फुरणजृम्भणम्।
वेदनाभिः परीतस्य स्फुटन्तीवास्य सन्धयः ॥ ११ ॥

सब अंगकी वायु कुपित होनेसे अंगोंका फरकना, जम्भाई और सन्धि वेदना-युक्त हो फूटनेकीसी पीडा होय ॥

गुदामें स्थित वायुके कार्य।

ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्कराः।
जंघोरुत्रिकपत्पृष्ठरोगशोफौ गुदस्थिते ॥ १२ ॥

वायु गुदामें[1] स्थित होनेसे मल मूत्र और वायुका रुकना, शूल, अफरा, पथरी शर्करा, जंघा, ऊरु, त्रिकस्थान, पैर, पीठ इनमें पीडा और सूजन ये रोग होते हैं ॥

---

१ इस जगह गुदाशब्दकरके उत्तरगुदा अर्थात् पकाशय जानना, गुदा नहीं जानना क्योंकि, गुदामें कहे तो उसको अश्मरी (पथरी) कर्तृत्व नहीं हो सके।

आमाशयस्थित वायुके कार्य ।

रुक्पार्श्वोदरहृन्नाभेस्तृष्णोद्गारविषूचिकाः ।
कासः कण्ठास्यशोषश्च श्वासश्चामाशये स्थिते ॥ १३ ॥

वायु आमाशयमें स्थित होनेसे पसवाडा, उदर, हृदय और नाभि इनमें पीडा होय, प्यास, डकार और हैजा (मुख और गुदाके द्वारा अन्नकी प्रवृत्ति) खांसी, कण्ठ, मुखका सूखना, श्वास ये लक्षण होते हैं ॥

पक्वाशयस्थ वायुके कार्य ।

पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोति च ।
कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम् ॥ १४ ॥

वायु पक्वाशयमें होय तो आंतोंका गूञ्जना, शूल, आटोप, गुडगुडाशब्द, मल मूत्र कष्टसे निकले, अफरा, त्रिकस्थानमें पीडा इन लक्षणोंको करे ॥

इन्द्रियोंमें स्थित वायुके कार्य ।

श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्यात्क्रुद्धः समीरणः ।

कानसे आदि जो और इंद्रियें हैं उनमें कुपित वायु यदि स्थित होय तो इंद्रियोंका नाश करै ॥

रसधातुगत वायुके लक्षण ।

त्वग्रूक्षा स्फुटिता सुप्ता कृशा कृष्णा च तुद्यते ।
आतन्यते सरागा च मर्मरुक्त्वग्गतेऽनिले ॥ १५ ॥

वायु त्वग्गत अर्थात् धातुरूप त्वचामें प्राप्त होनेसे त्वचा रूखी और फटी शून्य कर्कश और काली हो जाय और उसमें चमका चले तथा तन जाय, कुछ तांबेके समान लाल होजाय और हृदयादि मर्मोंमें पीडा होय ॥

रक्तगत वायुके लक्षण ।

रुजस्तीव्राः ससन्तापा वैवर्ण्यं कृशताऽरुचिः ।
गात्रे चारूंषि भुक्तस्य स्तंभश्चासृग्गतेऽनिले ॥ १६ ॥

वायु रुधिरमिश्रित होनेसे सन्तापयुक्त तीव्रवेदना होय, देहकी विवर्णता होय, कृशता, अरुचि और देहमें फोडा तथा भोजन करनेके उपरान्त देहका जकड जाना ये लक्षण होते हैं ॥

मांसमेदोगत वायुके लक्षण ।

गुर्वङ्गं तुद्यते स्तब्धं दण्डमुष्टिहतं यथा ।
सरुक् श्रमितमत्यर्थं मांसमेदोगतेऽनिले ॥ १७ ॥

मांस और मेदमें वायुके पहुँचनेसे अंग भारी हो जाय, चोटनेकेसे पीडा होय अथवा निश्चल होजाय अथवा मुक्का मारनेकीसी तथा लकडी मारनेकीसी पीडा होय और थकापन होय ॥

मज्जास्थिगत वायुके लक्षण।

मेदोऽस्थिपर्वणां सन्धिशूलं मांसबलक्षयः।
अस्वप्नः सतता रुक् च मज्जास्थिकुपितेऽनिले ॥ १८ ॥

मज्जा और हड्डी इन ठिकानेपर वायुका कोप होनेसे हडफूटनी हो, संधिसन्धिमें पीडा हो, मांस बल ये क्षीण हो जायँ, निद्रा आवे नहीं और निरन्तर पीडा हो ॥

शुक्रगत वायुके लक्षण।

क्षिप्रं मुञ्चति बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा।
विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः ॥ १९ ॥

शुक्रस्थानकी वायुका कोप होनेसे वह वायु शुक्रको जलदी पतन करे और बंधन करे, अथवा गर्भको जलदी छोडे और बंधन करे और गर्भका अथवा शुक्रका विकार प्रगट करे ॥

शिरागत वायुके लक्षण।

कुर्याच्छिरागतः शूलं शिराकुञ्चनपूरणम्।
स बाह्याभ्यन्तरायामं खल्लीं कुब्जत्वमेव च ॥ २० ॥

वायु शिरा (नाडी) गत होनेसे शूल, नाडीका संकोच और स्थूलत्व करे और बाह्यायाम, आभ्यन्तरायाम, खल्ली और कुबडापना इन रोगोंको उत्पन्न करे ॥

स्नायुगत और संधिगत वायुके लक्षण।

सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च कुर्यात्स्नायुगतोऽनिलः।
हन्ति संधिगतः सन्धीञ्छूलशोथौ करोति च ॥ २१ ॥

वायु स्नायुगत होनेसे सर्वांग और एकांग रोगको करे, संधिगत होनेसे सन्धिका विश्लेष (जुदा जुदा होना) और सन्धिका जकड जाना तथा शूल और सूजन इन रोगोंको प्रगट करे ॥

पित्त और कफ इनस आवृत हुई प्राणादिक वायुके आधे आधे श्लोकोंमें लक्षण कहते हैं—

प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते। दौर्बल्यं सदनं तन्द्रा वैरस्यं च कफावृते॥ २२ ॥ उदाने पित्तयुक्ते तु दाहो मूर्च्छा भ्रमः क्लमः। अस्वेदहर्षौ मन्दाग्निः शीतता च कफा-

वृते ॥ २३ ॥ स्वेददाहौष्ण्यमूर्च्छाः स्युः समाने पित्तसंयुत । कफेन संगे विण्मूत्रे गात्रहर्षश्च जायते ॥ २४ ॥ अपाने पित्त-युक्ते तु दाहौष्ण्यं रक्तमूत्रता । अधःकाये गुरुत्वं च शीतता च कफावृते ॥ २५ ॥ व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः । स्तंभनो दंडकश्चापि शोथशूलौ कफावृते ॥ २६ ॥

प्राणवायु पित्तसंयुक्त होनेसे वमन और दाह उत्पन्न होय और कफसंयुक्त होनेसे दुर्बलपना, ग्लानि, तन्द्रा और मुखमें विरसता ये होयँ । उदानवायु पित्त-युक्त होनेसे दाह, मूर्च्छा, भ्रम, अनायास श्रम ये होयँ और कफयुक्त होय तो पसीना नहीं आवे, रोमाञ्च, अग्नि मन्द होय और शीत लगे । समानवायु पित्तयुक्त होनेसे पसीना, दाह, गरमी और मूर्च्छा ये होते हैं और कफयुक्त होनेसे मलमूत्रका रुकना और रोमाञ्च होय । अपानवायु पित्तयुक्त होनेसे दाह, गरमी, लाल मूत्र होता है और अपानवायु कफयुक्त हो तो कमरके नीचेके भागमें भारीपना और सरदीका लगना होय । व्यानवायु पित्तयुक्त होनेसे दाह गात्रोंका विक्षेप अर्थात् इधर उधरका फेरना और श्रम होय और कफयुक्त होनेसे शरीर लकडीके समान स्तंभ होय, सूजन और शूल होय । इस जगह प्राणादि पंच वायुओंके परस्पर मिलनेसे बीस प्रकारके आवरण चरकोक्त जान लेने और वाग्भटके मतसे आवरण बाईस प्रकारके हैं, हमने ग्रन्थके विस्तारभयसे छोड दिये हैं ॥

आक्षेपकके सामान्य लक्षण ।

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः । तदा क्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः । मुहुर्मुहुस्तदाक्षेपादाक्षेपक इति स्मृतः ॥२७॥

जिस कालमें वायु कुपित होकर सब धमनी नाडियोंमें जाकर प्राप्त होय तब उस जगह वह बारम्बार संहार करके देहको बारंबार आक्षिप्त करती है अर्थात् हाथीपर बैठनेवाले पुरुषके समान सब देहको चलायमान करे उस देहको बारम्बार चलानेको आक्षेपक रोग कहते हैं ॥

आक्षेपकके अपतन्त्र और अपतानक ऐसे दो अवस्था-विशेषको कहते हैं—

क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रवर्त्तते । पीडयन् हृदयं गत्वा शिरःशंखौ च पीडयेत् ॥ २८ ॥ धनुर्वन्नामयेद्गात्रा-

१—ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्गा धमनीः ।

ण्याक्षिपेन्मोहयेत्तथा । स कृच्छ्राद्युच्छ्वसेच्चापि स्तब्धाक्षोऽथ निमीलकः ॥ २९ ॥ कपोत इव कूजेच्च निस्संज्ञः सोऽपतंत्रकः । दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञां च हत्वा कण्ठेन कूजति ॥३०॥ हृदि मुक्ते नरः स्वास्थ्यं याति मोहं वृते पुनः । वायुना दारुणं प्राहुरेके तदपतानकम् ॥ ३१ ॥

रूक्षादि स्वकारणोंसे कोपको प्राप्त भई जो वायु सो अपने स्थानको छोड ऊपर जाकर प्राप्त हो और हृदयमें जाकर पीडा करे, मस्तक और कनपटी इनमें पीडा करे और देहको धनुषके समान नवाय देवे और चले तो मूर्च्छित कर दे, वह रोगी बडे कष्टसे श्वास ले, नेत्र जकड जावें अथवा मिच जावें, कबूतरके समान गूंजे तथा बेहोश हो इस रोगको अपतंत्रक कहते हैं । दृष्टिका स्तंभन हो जाय, संज्ञा जाती रहे, गलेमें घुरघुर शब्द होय, वायु जब हृदयको छोडे तब रोगीको होश होय और वायु हृदयको व्याप्त करे तब फेर मोह हो जाय । इस भयंकर रोगको कोई अपतानक ऐसे कहते हैं ॥

अब कहते हैं कि, दण्डापतानक, अन्तरायाम, बहिरायाम और अभिघात इन भेदोंसे आक्षेपकरोग चार प्रकारका है, उनके लक्षण लिखते हैं–

दंडापतानकके लक्षण ।

कफान्वितो भृशं वायुस्तास्वेव यदि तिष्ठति ।
दण्डवत्स्तंभयेद्देहं स तु दण्डापतानकः ॥ ३२ ॥

वायु अत्यन्त कफयुक्त होकर सब धमनी नाडियोंमें प्राप्त हो और सब देहको दण्ड (लकडी) के समान स्तब्ध जकड दे वह दंडापतानक होता है ॥

अब अन्तरायाम और बहिरायाम इनके साधारण रूपको कहते हैं–

धनुस्तुल्यं नमेद्यस्तु स धनुःस्तम्भसंज्ञितः ।

जो वायु धनुषके समान शरीरको बांका कर दे उसको धनुःस्तंभसंज्ञक कहते हैं ॥

अन्तरायामके लक्षण ।

अङ्गुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः । स्नायुप्रतानमनिलो यदा क्षिपति वेगवान् ॥ ३३ ॥ विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन् । अभ्यन्तरं धनुरिव यदा नमति मानवः ॥३४॥ तदा सोऽभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली ॥ ३५ ॥

पैरकी उंगली, घोंटू, हृदय, पेट, उरःस्थल और गला इन ठिकानोंमें रहा जो वायु वह वेगवान् होकर जो वहां नसोंका जाल उसको सुखाय बाहर निकाल दे उस मनुष्यके नेत्र स्थिर होजायँ, मोडा रहिजाय, पसवाडोंमें पीडा होय, मुखसे कफ गिरे और जिससमय मनुष्य धनुषके सदृश नीचेको नवजाय तब वह बली वायु अन्तरायाम रोगको करे ॥

बाह्यायामके लक्षण ।

बाह्यः स्नायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च ।
तमसाध्यं बुधाः प्राहुर्वक्षःकट्यूरुभञ्जनम् ॥ ३६ ॥

बाहरकी नसोंमें रहती जो वात सो बाह्यायाम अर्थात् पीठको बांकी कर दे उरस्थल कमर और जांघोंको मोड दे, ऐसे इस रोगको पंडित असाध्य कहते हैं ॥

अब पूर्वोक्त आक्षेपकको पित्तकफका अनुबन्ध होता है, उसको कहते हैं-

कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः ।
कुर्यादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमभिघातजम् ॥ ३७ ॥

कफपित्तयुक्त वायु अथवा केवल वायु आक्षेपकरोगको करे और दूसरा कहिये दण्डापतानकादि तीनोंकी अपेक्षा चतुर्थ अभिघातज आक्षेपक रोगको करे । इसके लक्षण-" यदा तु धमनीः सर्वाः " इत्यादि पूर्वोक्त सामान्यलक्षणोंसे जानने । इस श्लोकका गदाधरने ऐसा अर्थ करा है कि, 'कफपित्तान्वितः' इत्यादि निमित्तभेद करके चार प्रकारका आक्षेपकरोग प्रगट हो, सो ऐसे एक कफान्वित वायुसे, दूसरा पित्तान्वित वायुसे, तीसरा केवल वायुसे और चौथा दंडादिके चोट लगनेसे कुपित वायुसे । इस पक्षमें गर्भपात और रुधिरका अतिस्राव जो होता है सो केवल वातजन्य जानना और उस ठिकाने बारंबार आक्षेपक होता है । इसका कारण यह है कि, ये सब आक्षेपकके भेद हैं ॥

असाध्यत्वको कहते हैं-

गर्भपातनिमित्तश्च शोणितातिस्रवाच्च यः ।
अभिघातनिमित्तश्च न सिद्ध्यत्यपतानकः ॥ ३८ ॥

गर्भपातके होनेसे अथवा अति रक्तस्रावके होनेसे अथवा अभिघात कहिये दण्डादिकोंकी चोट लगनेसे जो प्रगट अपतानकरोग सो असाध्य है ॥

पक्षाघातके लक्षण ।

गृहीत्वाऽर्धं तनोर्वायुः शिराः स्नायू विशोष्य च ।
पक्षमन्यतरं हन्ति सन्धिबन्धान्विमोक्षयन् ॥ ३९ ॥

कृत्स्नोऽर्द्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः। एकाङ्गरोगं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः॥ ४०॥

वायु आधे शरीरको पकड सब शरीरकी नसोंको सुखायकर दहने या बांये अंगके बाहु कक्षा पार्श्वादिकोंमेंसे किसी एकको नाश करदे और सन्धिके बंधनोंको शिथिल करदे, पीछे उस रोगीके सब वा आधे अंग हलें चलें नहीं और उसको थोडा भी देखनेका स्पर्श आदिका ज्ञान नहीं रहे इसको एकांगरोग कहते हैं, दूसरे पक्षवध कहते हैं। इसीको पक्षाघात कहते हैं। लोकमें लकवा कहते हैं॥

सर्वांगरोगके लक्षण।

सर्वाङ्गरोगस्तद्वत्स्यात्सर्वकायाश्रितेऽनिले।

तद्वत् कहिये "शिरास्नायू" इत्यादि सम्प्राप्ति लक्षण इससे जानने। सर्व शिराओं (नाडियों) में वायु प्राप्त होनेसे उसको सर्वांगरोग कोई कहते हैं॥

अब साध्यासाध्यके ज्ञानार्थ और दोषोंका सम्बन्ध कहते हैं—

दाहसंतापमूर्च्छाः स्युर्वायौ पित्तसमन्विते। शैत्यशोथगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफान्विते॥ ४१॥ शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः। साध्यमन्येन संसृष्टमसाध्यं क्षयहेतुकम्॥ ४२॥ गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्स्रुतौ। पक्षाघातं परिहरेद्वेदनारहितो यदि॥ ४३॥

पक्षबंधकी वायु कफपित्तयुक्त होवे तो दाह, सन्ताप और मूर्च्छा होय और वही वायु कफयुक्त होय तो शीत सूजन भारीपन ये लक्षण होयँ और केवल वायुसे प्रगट पक्षाघात अत्यन्त कष्टसाध्य होता है और दोषोंसे (पित्तसे या कफसे) संसृष्ट होनेसे साध्य होता है। क्षयसे प्रगट भया पक्षाघात असाध्य होता है। गर्भिणी, प्रसूति, बालक, वृद्ध और क्षीण इनके भया तथा रुधिरके स्रावसे प्रगट भया पक्षाघात पीडारहित हो तो उसको वैद्य त्यागदे अर्थात् असाध्य जान चिकित्सा न करे॥

अर्दितरोगके लक्षण।

उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च। हसतो जृम्भतो वापि भाराद्विषमशायिनः॥ ४४॥ शिरोनासौष्ठचिबुकललाटेक्षणसन्धिगः। अर्दयत्यनिलो वक्त्रमर्दितं जनयत्यतः॥ ४५॥ वक्रीभवति वक्त्रार्धं ग्रीवा चाप्यपवर्तते। शिरश्चलति वाक्स्तंभो नेत्रादीनां च वैकृतम्॥ ४६॥ ग्रीवा-

चिबुकदन्तानां तस्मिन् पार्श्वे च वेदना । तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविशारदाः ॥ ४७ ॥

ऊंचे स्वरसे वेदादिकका पाठ करनेसे अथवा कठिन पदार्थ सुपारी आदिके खानेसे, बहुत हँसनेसे, बहुत जंभाईके लेनेसे, बोझा ढोनेसे, ऊंचे नीचे स्थानमें सोनेसे कोपको प्राप्त भई वायु मस्तक, नाक, होठ, ठोडी, ललाट और नेत्र इनकी संधियोंमें प्राप्त हो मुखमें पीडा करे, अर्दित रोग उत्पन्न हुए उस पुरुषका मुख आधा टेढा होजाय, ग्रीवा (नाड) टेढी होजाय, मस्तक हिला करे, अच्छी तरह बोला जाय नहीं, नेत्र, भृकुटी, गाल इनकी विकृति कहिये पीडा, फरकना, टेढा होना इत्यादि होयँ और जिस तरफ अर्दित रोग होय उस तरफ नाड, ठोडी और दांत इनमें पीडा होय । व्याधि जाननेमें जो कुशल वैद्य हैं वे इस व्याधिको अर्दित-रोग ऐसे कहते हैं । शंका–क्योंजी ! अर्दित रोगमें और पक्षाघातमें क्या भेद है ? उत्तर–वेग होनेसे अर्दितरोगमें कभी २ पीडा होती है और पक्षाघातमें सदा पीडा होती है । अर्दितरोग चार प्रकारका है ॥

अर्दितरोगके असाध्य लक्षण ।

क्षीणस्याऽनिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः ।
न सिध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ॥ ४८ ॥

क्षीण पुरुषके, पलक नहीं लगे ऐसे पुरुषके अत्यन्त शुद्ध बोले नहीं ऐसे पुरुषके, अर्दित रोगको प्रगट भये तीन वर्ष व्यतीत होगये हों अथवा त्रिवर्ष कहिये मुख, नाक और नेत्र इन तीनोंका स्राव होय ऐसा और कम्पयुक्त पुरुषको अर्दितरोग साध्य नहीं होय ॥

अब आक्षेपकसे लेकर आर्दितपर्यन्त रोगोंका वेग कहते हैं–

गते वेगे भवेत्स्वास्थ्यं सर्वेष्वाक्षेपकादिषु ।

आक्षेपकादि सब वातरोगोंमें वेग शांत होनेसे स्वास्थ्य कहिये पीडा कम होय जैसे मस्तकके ऊपरका भार (बोझा) उतारनेसे सुखकी प्राप्ति होती है ॥

हनुग्रहके लक्षण ।

जिह्वानिर्लेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः ।
कुपितो हनुमूलस्थः स्रंसयित्वाऽनिलो हनुम् ॥ ४९ ॥

---

१ अथवा यथोक्त सब लक्षणयुक्त अर्दितरोग है उससे विपरीत अर्धांगवातके लक्षण जानने । परन्तु सुश्रुतमें मुखमात्रमें ही अर्दितरोग लिखा है । अर्धशरीरको अर्धांगवात करके लब्ध होनेसे नहीं लिखा, सोई माधवने पाठ लिखा है ।

करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम् ।
हनुग्रहः स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥ ५० ॥

जिह्वाके अतिघर्षण करनेसे, चना आदि सूखी वस्तुके खानेसे अथवा किसी प्रकार चोटके लगनेसे हनुमूल (कपोल) के अर्थात् डाढकी जडमें रहनेवाली जो वायु सो कुपित होकर हनुमूलको नीचे कर मुखको खुला ही रखदे अथवा मुखको बन्द करदे, उसको हनुग्रहरोग कहते हैं। तब उस मनुष्यका खाना बोलना कठिनतासे होय ॥

मन्यास्तम्भके लक्षण ।

दिवास्वप्नासमस्थानविकृतोर्ध्वनिरीक्षणैः ।
मन्यांस्तम्भं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणा युतः ॥ ५१ ॥

दिनमें सोनेसे, नीचे ऊंचे स्थानमें सोनेसे, ऊंचेको विकृतिपूर्वक देखनेसे इन कारणोंसे कोपको प्राप्त भई जो वात सो कफयुक्त होकर मन्या (नाडी) स्तंभन करे, इस रोगको मन्यास्तंभरोग कहते हैं ॥

जिह्वास्तम्भके लक्षण ।

वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः ।
जिह्वास्तम्भः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ॥ ५२ ॥

वायु वाणीके बहनेवाली नाडियोंमें प्राप्त हो जिह्वाका स्तंभन करदे, उसको जिह्वा स्तंभ कहते हैं। यह अन्नपानकी तथा बोलनेकी सामर्थ्यका नाश करती है ॥

शिराग्रहके लक्षण ।

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्धधराः शिराः ।
रूक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्याच्छिराग्रहः ॥ ५३ ॥

वायु रुधिरका आश्रयकर मस्तकके धारण करनेवाली नाडीको रूखी पीडायुक्त और काली करदे, यह शिराग्रहरोग असाध्य है ॥

गृध्रसीके लक्षण ।

स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजङ्घापदं क्रमात् ।
गृध्रसी स्तंभरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पन्दते मुहुः ॥ ५४ ॥
वाताद्वातकफात्तन्द्रागौरवारोचकान्विता ॥ ५५ ॥

---

१ मन्या—गलेकी नाडीको कहते हैं। २ 'शिरोग्रहः' ऐसा भी पाठ है।

प्रथम स्फिक् कहिये कमरके नीचेका भाग जिसको कूला कहते हैं उसको स्तंभित कर दे, पीछे क्रमसे कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जंघा और पग इनको स्तम्भित करदे अर्थात् ये रहिजाय, वेदना और तोद कहिये चोटनेकीसी पीडा होय और बारम्बार कम्प होय, यह गृध्रसीरोग बादीसे होता है और वात कफसे होय तो इसमें तन्द्रा, भारीपना और अरुचि ये विशेष होयँ। इस प्रकार गृध्रसीरोग दो प्रकारका है ॥

विश्वाचीके लक्षण ।

तलं प्रत्यङ्गुलीनां याः कण्डरा बाहुपृष्ठतः ।
बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाची चेति सोच्यते ॥ ५६ ॥

बाहुके पिछाडीसे लेकर हाथके ऊपरले भागपर्यंत प्रत्येक उंगलीके नीचे मोटी नसें उनको दुष्ट कर हाथसे लेना देना पसारना मुट्टी मारनी इत्यादिक कार्योंका नाशकर्ता जो रोग होय उसको विश्वाचीरोग कहते हैं ॥

क्रोष्टुशीर्षके लक्षण ।

वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महारुजः ।
ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत् ॥ ५७ ॥

वातरक्तसे दोनों जानुओं (घोण्टुओं) की संधिमें अत्यन्त पीडाकारक सूजन हों और वे स्यार (गीदड) के मस्तकसमान मोटे हों उसको क्रोष्टुशीर्ष कहते हैं ॥

खंज और पांगुलेके लक्षण ।

वायुः कट्याश्रितः सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद्यदा ।
खञ्जस्तदा भवेज्जन्तुः पङ्गुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥ ५८ ॥

कमरमें रहा जो वात सो जंघाकी नसोंको ग्रहण कर एक पगको स्तंभित कर दे उसको खोडा कहते हैं और दोनों जंघाओंकी नसोंको पकड दोनों स्तम्भित कर दे उसको पांगुला कहते हैं ॥

कलायखंजके लक्षण ।

प्रकामं वेपते यस्तु खञ्जन्निव च गच्छति ।
कलायखञ्जं तं विद्यान्मुक्तसन्धिप्रबन्धनम् ॥ ५९ ॥

जो पुरुष चलते समय थरथर कांपे और खंज अर्थात् एक पैरसे हीन मालूम होय, इस रोगमें संधिके बंधन शिथिल होते हैं, इस रोगको कलायखंज कहते हैं ॥

वातकंटकके लक्षण ।

रुक्पादे विषमे न्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा ।
वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकंटकम् ॥ ६० ॥

ऊंची नीची जगहमें पैर पडनेसे अथवा श्रमके होनेसे कुपित वायु टकनोंमें प्राप्त होकर पीडा करे तो इस रोगको वातकण्टक कहते हैं ॥

पादहर्षके लक्षण ।

पादयोः कुरुते हर्षं पित्तासृक्सहितोऽनिलः ।
विशेषतश्च क्रमतः पादहर्षं तमादिशेत् ॥ ६१ ॥

जिसके पैर हर्षयुक्त झनझनाहट पीडायुक्त होंय और अत्यन्त सोय जावें उसको पादहर्ष रोग कहते हैं । यह कफवातके कोपसे होय है ॥

अंसशोष अपबाहुकके लक्षण ।

अंसदेशे स्थितो वायुः शोषयेदंसबन्धनम् ।
शिराश्चाकुंच्य तत्रस्थो जनयेदपबाहुकम् ॥ ६२ ॥

कन्धम रहा जो वायु सो कुपित होकर उसके बन्धनको सुखाय दे तब अंसशोष रोग प्रगट होय और कन्धेमें रहा जो वायु सो नसोंको संकोच करके अपबाहुक रोग प्रगट करे ॥

मूकादिक तीन रोगोंके लक्षण ।

आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः ।
नरान्करोत्यक्रियकान्मूकमिन्मिनगद्गदान् ॥ ६३ ॥

कफयुक्त वायु शब्दके बहनेवाली नाडियोंमें प्राप्त होकर मनुष्योंकी वचनक्रियारहित मूक, मिन्मिन और गद्गद ऐसा करदे । मूक कहिये जिससे बोला न जाय, मिन्मिन कहिये गिनगिनायकर नाकसे बोले और गद्गद बोलते समय बीचमें पद और व्यञ्जनोंको न बोले और मन्द बोले इन रोगोंके कारण सदृश होकर रोगोंके भिन्न भिन्न प्रकार होते हैं । वे दोषोंके उत्कर्ष करके अथवा प्रारब्धवशसे होते हैं ऐसा जानना ॥

तूनीरोगके लक्षण ।

अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता ।
भिन्दन्तीव गुदोपस्थं सा तूनी नाम नामतः ॥ ६४ ॥

पक्वाशय और मूत्राशयसे उठी जो पीडा सो नीचे जाकर प्राप्त हो और गुदा तथा उपस्थ कहिये स्त्रीपुरुषोंके गुह्यस्थान इनमें भेद करे अर्थात् पीडा करे उसको तूनीरोग कहते हैं ॥

---

१ अध इति गुदोपस्थम् ।

प्रतूनीके लक्षण ।

गुदोपस्थोत्थिता चैव प्रतिलोमं प्रधावति ।
वेगैः पक्काशयं याति प्रतूनी चेह सोच्यते ॥ ६५ ॥

गुदा और उपस्थ इनसे उठी जो पीडा उलटी ऊपर जायकर प्राप्त हो और जोरसें पक्काशयमें प्राप्त हो और तूनीके समान पीडा करे उसको प्रतूनी कहते हैं ॥

आध्मानरोगके लक्षण ।

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मानमुदरं भृशम् ।
आध्मानमिति जानीयाद्घोरं वातनिरोधजम् ॥ ६६ ॥

गुडगुडशब्दयुक्त अत्यन्त पीडायुक्त ऐसा उदर (पक्काशय) अत्यन्त फूले अर्थात् बादीसे भरकर चामकी थैलीके समान होजाय इस भयंकर रोगको आध्मानरोग कहते हैं, यह वातके रुकनेसे होता है ॥

प्रत्याध्मानके लक्षण ।

विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम् ।
प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलितानिलम् ॥ ६७ ॥

और वही आध्मानरोग आमाशयमें उत्पन्न होय तो उसको प्रत्याध्मान कहते हैं इसमें पसवाडे और हृदयमें पीडा नहीं होय और वायु कफकरके व्याकुल हो ॥

वातार्ष्ठीलाके लक्षण ।

नाभेरधस्तात्संजातः सञ्चारी यदि वाऽचलः ।
अष्ठीलावद् घनो ग्रन्थिरूर्ध्वमायत उन्नतः ॥
वाताष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्गावरोधिनीम् ॥ ६८ ॥

नाभीके नीचे उत्पन्न भई और इधर उधर फिरे अथवा अचल अष्ठीला (गोल-पाषाण) के समान कठिन ऊपरका भाग कुछ लम्बा होय और आडी कुछ ऊंची होय और बहिर्मार्ग कहिये अधोवायु, मल, मूत्र इनका अवरोध कहिये (रुकना) हो ऐसे गांठको वाताष्ठीला कहते हैं ॥

---

१ " श्रमातुरेण पानीयं पीत्वा वेगविधारणम् । धावतो वा पिबेत्तोयं भुञ्जतो वा विदाहि च ॥ तथा पयोऽम्बुपानाद्वा दुर्जरा पललेन वा । साऽष्ठीला नाम विख्याता गुर्वी कुक्षिश्रितापि वा " इति आत्रेयः ।

प्रत्यष्ठीलाके लक्षण।

एतामेव रुजायुक्तां वातविण्मूत्ररोधिनीम्।
प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्यगुत्थिताम् ॥ ६९ ॥

वाताष्ठीला ही अत्यन्त पीडायुक्त वात मूत्र मलके रोध करनेवाली और जो उदरमें तिरछी प्रगट भई होय उसको प्रत्यष्ठीला कहते हैं॥

मूत्रावरोधके लक्षण।

मारुते विगुणे बस्तौ मूत्रं सम्यक्प्रवर्तते।
विकारा विविधाश्चापि प्रतिलोमे भवन्ति हि ॥ ७० ॥

बस्ती (मूत्रस्थान) में वायु अनुलोमगतिसे गमन करे तो मूत्र अच्छी रीतिसे उतरे ऐसे प्रतिलोमसे गमन करे तो अनेक प्रकारके पथरी मूत्रकृच्छ्रादि विकार उत्पन्न होयँ॥

कंपवायुके लक्षण।

सर्वाङ्गकम्पः शिरसो वायुर्वेपथुसंज्ञकः ॥ ७१ ॥

सब अंगोंको और मस्तकको जो कम्पावे उस वायुको वेपथु (कम्प) वायु कहते हैं॥

खल्लीके लक्षण।

खल्ली तु पादजङ्घोरुकरमूलावमोटिनी।

और जो वायु पैर, जंघा, ऊरु और हाथके मूलमें कम्पन करे उसको खल्ली (मूलामना) रोग कहते हैं॥

ऊर्ध्ववातके लक्षण टीकाकारने लिखे हैं-

अधः प्रातिहतो वायुः श्लेष्मणा मारुतेन च।
करोत्युद्गारबाहुल्यमूर्ध्ववातं प्रचक्षते ॥ ७२ ॥

कफवातकरके पीडित नीचेकी वायु डकार बहुत लावे उस वातको ऊर्ध्व वात कहते हैं॥ परन्तु टोडरानन्दने कुछ विलक्षण लिखा है। यथा-

भुक्तेऽप्यभुक्ते सुप्ते वा यस्योद्गारः प्रजायते।
सततं घोषवांश्चाति ह्यूर्ध्ववातं तमादिशेत् ॥ ७३ ॥

भोजन करनेके पीछे अथवा भोजनके पहिले अथवा सोनेके समय डकार निरंतर शब्दवान् आवे उसको ऊर्ध्ववात कहते हैं॥

प्रलापके लक्षण ।

स्वहेतुकुपिताद्वातादसंबद्धानिरर्थकम् ।
वचनं यन्नरो ब्रूते स प्रलापः प्रकीर्तितः ॥ ७४ ॥

अपने हेतुओंसे कुपित भई जो वात सो असंबद्ध अर्थरहित वाणी बोले अर्थात् बकवाद करे अथवा बडबड शब्द करे उसको प्रलाप कहते हैं ॥

रसाज्ञानके लक्षण ।

भुञ्जानस्य नरस्यान्नं मधुरप्रभृतीन्रसान् ।
रसज्ञो यन्न जानाति रसाज्ञानं तदुच्यते ॥ ७५ ॥

जो मनुष्य भोजन करे उसकी जीभको मधुर (मीठा) खट्टा इत्यादिक रसोंका ज्ञान न होय उस रोगको रसाज्ञान कहते हैं ॥

अनुक्तवातरोगसंग्रहार्थ कहते हैं–

स्थानानामनुरूपैश्च लिङ्गैः शेषान्विनिर्दिशेत् ।
सर्वेष्वेतेषु संसर्गं पित्ताद्यैरुपलक्षयेत् ॥ ७६ ॥

स्थान और नाम इनके अनुरूप कहिये तुल्य ऐसे लक्षणोंसे शेष वातव्याधि जाननी । स्थानानुरूप कहिये जैसे कुक्षिशूल, नखभेद इत्यादिक । नामानुरूप कहिये जैसे शूलके कहनेसे कीलनिखातवत् पीडा जाननी । उसी प्रकार तोदभेदादिक करके भी पीडा विशेष जाननी चाहिये और पित्त, कफ, रुधिर इनके संसर्गसे द्विदोषज व्याधि जाननी चाहिये ॥

साध्यासाध्य विचार ।

हनुस्तंभार्दिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः ।
कालेन महताऽऽढ्यानां यत्नात्सिध्यन्ति वा न वा ॥ ७७॥
नरान्बलवतस्त्वेतान्साधयेन्निरुपद्रवान् ॥ ७८ ॥

हनुस्तंभ, अर्दित, आक्षेप, पक्षाघात, अपतानक ये वातव्याधि बहुत दिनमें बडे परिश्रमसे धनी पुरुषोंके ही यत्नसाध्य होती है अथवा कभी साध्य नहीं होयँ परन्तु बलवान् पुरुषके ये वातव्याधि नई प्रगट भई हों और उपद्रव रहित हों तो उनकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥

वातव्याधिके उपद्रव ।

विसर्पदाहरुक्संगमूर्च्छारुच्यग्निमांदवैः ।
क्षीणमांसबलं वाता घ्नन्ति पक्षवधादयः ॥ ७९ ॥

विसर्परोग, दाह, शूल, मलमूत्रका निरोध, मूर्च्छा, अरुचि, मंदाग्नि इन लक्षण-युक्त जो और बलक्षीण होगया होय ऐसे पुरुषोंको पक्षवधादिक विकार मारक अर्थात् प्राणके हरणकर्त्ता होते हैं ॥

असाध्य लक्षण।

शूनं सुप्तत्वचं भग्नं कम्पाध्माननिपीडितम्।
रुजार्तिमन्तं च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ ८० ॥

सूजनवाला, जिसकी त्वचा सोईगई होय अर्थात् जिसको स्पर्श होनेका ज्ञान न होय, जिसकी हड्डी टूटगई होय, कम्प और अफरा इनसे अत्यन्त पीडित होय, रुजा और आर्ति कहिये शूलयुक्त ऐसे मनुष्यको यह वातव्याधिरोग नाश करता है ॥

अब पांच प्रकारकी प्रकृतिस्थ वायुके लक्षण और कार्य कहते हैं—

अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः।
वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः समाः शतम् ॥ ८१ ॥

जिस पुरुषकी वायु अव्याहतगति और अपने आश्रयसे रहनेवाली और प्रकृतिस्थित कहिये न वृद्ध क्षीण होय, वह पुरुष निरोगी होकर "अधिकं समाः शतम्" कहिये एक सौ वीस वर्ष और पांच दिन पर्यन्त जीवे ॥

इति श्रीपंडितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां
वातव्याधिनिदानं समाप्तम् ॥

अथ वातरक्तनिदानम्।

शंका–क्योंजी ! सुश्रुतने तो वातव्याधि अध्यायमें वातरक्त कहा है फिर माधवने पृथक् क्यों कहा है ? उत्तर–तुमने कहा सो ठीक है, परन्तु क्रियाविशेष ज्ञापनार्थ माधवने अलग लिखा है और इसी रीतिसे चरकमें भी वातव्याधि अध्यायके पीछे वातरक्ताध्याय कहा है ॥

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः। क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥१॥ कुलित्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः। दध्यारनालसौवीरसूक्ततक्रसुरासवैः ॥ २ ॥ विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः। प्रायशः सुकुमाराणां

मिथ्याहारविहारिणाम् ॥ ३ ॥ स्थूलानां सुखिनां चाथ वात-रक्तं प्रकुप्यति ॥ ४ ॥

नोन, खटाई, कडवी, खारी, चिकना, गरम, कच्चा ऐसे भोजनसे, सडे और सूखे ऐसे जलसंचारी जीवोंके और जलके समीप रहनेवाले जीवोंके मांससे, पिण्याक (खल), मूली, कुलथी, उडद, निष्पाव (सेम), शाक (तरकारी), पलल (मांस), ईख, दही, कांजी, सौवीर मद्य, सूक्त (सिरका आदि) छाछ, दारू, आसव (मद्य विशेष), विरुद्ध जैसे दूध, मछली, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), क्रोध, दिनमें निद्रा, रातमें जागना इन कारणोंसे विशेष करके सुकुमार पुरुषोंके और मिथ्या आहार विहार करनेवाले पुरुषोंके और जो मोटा होय तथा सुखी होय ऐसे मनुष्योंके वातरक्त रोग होता है ॥

वातरक्तकी सम्प्राप्ति ।

हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतश्चाश्नतश्च विदाह्यन्नं सविदाहाशनस्य ।
कृत्स्नं रक्तं विदहत्याशु तच्च स्रस्तं दुष्टं पादयोश्चीयते तु ।
तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् ॥ ५ ॥

हाथी, घोडा, ऊंट इनपर बैठकर जानेसे (यह वायुके बढनेका और विशेष करके रुधिरके उतरनेका कारण है), विदाहकारी अन्नके खानेवाले पुरुषके इसीसे दग्ध-रुधिरकी वृद्धि होती है, गरमागरम अन्नके खानेवाले ऐसे पुरुषके सब शरीरके रुधिर दुष्ट होकर पैरोंमें इकट्ठा होय और वह दुष्ट वायुसे दूषित होकर मिलै, इस रोगमें वायु प्रबल है, इसीसे इस रोगको वातरक्त कहते हैं ॥

वातरक्तका पूर्वरूप ।

स्वेदोऽत्यर्थं न वा कार्ष्ण्यं स्पर्शाज्ञत्वं क्षतेऽतिरुक् । सन्धि-शैथिल्यमालस्यं सदनं पिटिकोद्गमः ॥ ६ ॥ जानुजङ्घोरु-कट्यंसहस्तपादाङ्गसन्धिषु । निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं सुप्तिरेव च ॥ ७ ॥ कण्डूः सन्धिषु रुग्भूत्वा भूत्वा नश्यति चासकृत् । वैवर्ण्यं मण्डलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम् ॥ ८ ॥

---

१ रुजस्तीव्राः ससन्तापाः इत्यादिना रक्तगतस्य वातस्य लक्षणं वातव्याधावेवोक्तं तत्रश्च वातरक्तविधानं पुनरुक्तं हि स्यात्, नैवं वातरक्तं दुष्टेन वातेन रक्तेन च विशिष्टसम्प्राप्तिकं पविकारान्तरमेवे । रक्तगतवाते तु वात एव दुष्टो रक्तमदुष्टमेव गच्छतीति भेदः ।

पसीने बहुत आवे अथवा नहीं आवें, शरीर काला होजाय, शरीरमें स्पर्शका ज्ञान जाता रहे और थोडीसी चोट लगनेसे पीडा अधिक होय, संधि ढीली होजायँ आलस्य आवे, ग्लानि हो, शरीरमें फुन्सी उठें, घोंटू, जंघा, ऊरू, कमर, कन्धा, हाथ, पैर, सन्धि और अंगोंमें सूईके चुभानेकीसी पीडा होय, स्फुरण (फरकना), तोडनेकीसी पीडा, भारीपण, बधिरता ये लक्षण होते हैं और संधियोंमें खुजली चले और शूल होकर वारंवार नाश होजाय, शरीरका विवर्ण होजाय, रुधिरके चकत्ता देहमें पडजायँ ये वातरक्तके पूर्वरूप होते हैं ॥

अब वातरक्तको अन्य दोषोंका संसर्ग होनेसे उसके लक्षण
न्यारे न्यारे लिखते हैं—

वाताधिकेऽधिकं तत्र शूलस्फुरणतोदनम् । शोथश्च रौक्ष्यं कृष्णत्वं श्यावतावृद्धिहानयः ॥ ९ ॥ धमन्यङ्गुलिसन्धीनां सङ्कोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् । शीतद्वेषानुपशयस्तंभवेपथुसुप्तयः १०

वाताधिक वातरक्तमें शूल, अंगोंका फरकना, चोटनेकीसी पीडा ये अधिक होते हैं। सूजन, रूखापना, नीलापना अथवा श्यामवर्णता एवं वातरक्तके लक्षणोंकी वृद्धि होय और क्षणभरमें हास (कम) हो, धमनी और अंगुलियोंकी संधियोंमें संकोच, शरीर जकडबंध होय, अत्यंत पीडा होय, सर्दी बुरी लगे और शीतके सेवन करनेसे दुःख होय, स्तम्भ होय, कम्प और शून्यता हो ये लक्षण होते हैं ॥

रक्ताधिकके लक्षण।

रक्ते शोफोऽतिरुक्क्लेदस्ताम्रश्चिमचिमायते ।
स्निग्धरूक्षैः शमं नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः ॥ ११ ॥

रक्ताधिक वातरक्तमें सूजन, अत्यन्त पीडा और उसमेंसे तांबेके रंगका क्लेद बहे, उस सूजनमें चिमचिम वेदना होय, स्निग्ध अथवा रूखे पदार्थोंसे शांति न होय, उसमें खुजली और पानी निकले ॥

पित्ताधिकके लक्षण।

पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्च्छा मदः सतृट् ।
स्पर्शासहत्वं रुग्रागः शोफः पाको भृशोष्णता ॥ १२ ॥

पित्ताधिक वातरक्तमें अत्यन्त दाह, इंद्रियोंको मोह, पसीना, मूर्च्छा, मस्त रहना, प्यास, स्पर्श बुरा मालूम हो, पीडा, लाल रंग, सूजन, छोटे छोटे पीले फोडे, अत्यंत गरमी ये लक्षण होते हैं ॥

कफाधिकके लक्षण।

कफे स्तैमित्यगुरुतासुप्तिस्निग्धत्वशीतताः।
कण्डूर्मन्दा च रुग्द्वन्द्वे सर्वलिङ्गं च सङ्करात् ॥ १३ ॥

कफाधिक वातरक्तमें स्तैमित्य (गीले कपडेसे आच्छादित समान), भारीपणा, शून्यता, चिकनापना, शीतलता, खुजली और मन्द पीडा ये लक्षण होते हैं । दो दोषोंके वातरक्तमें दो दोषोंके लक्षण और तीनों दोषोंके वातरक्तमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥

पैरोंमें वातरक्त हुआ होय उसकी उपेक्षा करनेसे हाथोंमें होय है,
उसको कहते हैं—

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि।
आखोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमनुसर्पति ॥ १४ ॥

वह वातरक्त पैरोंके मूलमें होकर कदाचित् हाथोंमें भी होय है । सो आखु (मूसे) के विष सदृश सर्व देहमें मन्द मन्द फैल जाय, यह वातरक्त चरकने दो प्रकारका कहा है एक उत्तान दूसरा गम्भीर, त्वचा और मांस इनमें होय सो उत्तान और गम्भीर इसकी अपेक्षा भीतरी होय है ॥

असाध्य लक्षण।

आजानुस्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रस्रुतं च यत्।
उपद्रवैर्यच्च जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः।
वातरक्तमसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम् ॥ १५ ॥

आजानु (जंघाके नीचेको भाग) पर्यन्त गया भया वातरक्त असाध्य है, जिसकी त्वचा फटगई होय, चिरगया होय और जो स्रावयुक्त होय ऐसा वातरक्त प्राणमांसक्षयादिक उपद्रवयुक्त होय, आदिशब्दसे जो आगे (श्रम अरोचक श्वास) इत्यादिक कहेंगे वे भी लक्षण होयँ सो भी असाध्य है। वातरक्त प्रगट भये वर्ष दिन व्यतीत होगया होय सो याप्य होय है. वर्ष दिनके पहिले साध्य होय है, परंतु उसमें स्फुटितादि लक्षण न होय तो साध्य है ॥

उपद्रव।

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः।
मूर्च्छार्तिमदरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः ॥ १६ ॥

हिक्कापाङ्गुल्यवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः॥ १७॥
अङ्गुलीवक्रतास्फोटदाहमर्मग्रहार्बुदाः।
एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यं मोहेनैकेन चापि यत्॥ १८॥

निद्रानाश, अरुचि, श्वास, मांसका सडना, मस्तकका जकडना, मूर्च्छा, अत्यन्त पीडा, प्यास, ज्वर, मोह, कम्प, हिचकी, पांगुलापना, विसर्परोग, पकना, नोचनेकीसी पीडा, भ्रम, अनायास श्रम, उंगली टेढी होजाय, फोडा, दाह, मर्मस्थानोंमें पीडा, अर्बुद (गांठ) हो इन उपद्रवयुक्त वातरक्तवाला रोगी असाध्य है अथवा एक मोहयुक्तही होय तो भी असाध्य जानना॥

साध्यासाध्यविचार।

"अकृत्स्नोपद्रवं याप्यं साध्यं स्यान्निरुपद्रवम्।
एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम्॥
त्रिदोषजमसाध्यं स्याद्यस्य च स्युरुपद्रवाः॥

जिस वातरक्तमें सब उपद्रव होवे नहीं वह याप्य है और निरुपद्रव साध्य, जो एक दोषका होय वह साध्य है और द्विदोषज याप्य और त्रिदोषज तथा उपद्रवयुक्त होय तो वातरक्त असाध्य है। यह श्लोक क्षेपक है माधवका नहीं है॥"

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां वातरक्तनिदानं समाप्तम्॥

अथोरुस्तंभनिदानम्।

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः। जीर्णाजीर्णे तथायाससंक्षोभस्वप्नजागरैः॥१॥ सश्लेष्ममेदःपवनः साममत्यर्थसंचितम्। अभिभूयेतरं दोषमूरू चेत्प्रतिपद्यते॥ २॥ सक्थ्यस्थीनि प्रपूर्यान्तः श्लेष्मणा स्तिमितेन च। तदा स्तभ्नाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ॥ ३॥ परकीयाविव गुरू स्यातामतिभृशव्यथौ। ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतंद्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः॥ ४॥ संयुतौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः। तमूरुस्तंभमित्याहुराढ्यवातमथापरे॥ ५॥

शीतल, गरम, पतले, शुष्क, भारी, चिकने ऐसे परस्पर विरुद्ध भोजनसे जीर्ण, अजीर्ण उसी प्रकार दंड कसरतके करनेसे, चित्तके क्षोभसे, दिनमें सोनेसे, रात्रिमें जागना इन कारणोंसे कफ मेदयुक्त अत्यन्त सञ्चित भया आमयुक्त वात इतर दोषों अर्थात् पित्तको आच्छादित कर ऊरुओंमें आयकर प्राप्त होय और ऊरुओंके हाडोंको आर्द्र कफसे परिपूर्ण करे, तब उनके ऊरु स्तंभित हों (जकड जायँ) और शीतल तथा निर्जीव हो जायँ और दूसरे पुरुषके ऊरुके समान उठरके चलना इस विषयमें असमर्थ होंय और भारी, अत्यन्त पीडायुक्त होंय, चिन्ता, अंगोंका गोडना, आर्द्रता (गीला), तन्द्रा, वमन, अरुचि और ज्वरसहित मनुष्यको दोनों ऊरु जकड जायँ, बडे कष्टसे चले और शून्यता होय इस रोगको ऊरुस्तम्भ कहते हैं और कोई आढ्यवात कहते हैं ॥

ऊरुस्तंभका पूर्वरूप ।

प्राग्रूपं तस्य निद्राऽतिध्यानं स्तिमितता ज्वरः ।
लोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्जङ्घोर्वोः सदनं तथा ॥ ६ ॥

निद्रा बहुत आवे, अत्यन्त चिन्ता, मन्दता, ज्वर, रोमांच, अरुचि, वमन, जंघा और ऊरु इनमें पीडा होय, यह ऊरुस्तम्भके पूर्वरूप होते हैं ॥

ऊरुस्तम्भके लक्षण ।

वातशङ्किभिरज्ञानात्तस्य स्यात्स्नेहनात्पुनः । पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा ॥ ७ ॥ जङ्घोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वद्दाहवेदना । पादं च व्यथतेऽत्यर्थं शीतस्पर्शं न वेत्ति च ॥ ८ ॥ संस्थाने पीडने गत्यां चलने चाप्यनीश्वरः । अन्यस्येव हि संभग्नावूरू पादौ च मन्यते ॥ ९ ॥

पैरोंका सोना, संकोच होना इत्यादिक वातरोगके समान चिह्न मिलनेसे उस मनुष्यको वातरोगकी शंका होय, तब मनुष्य तैलादिक स्नेहन चिकित्सा करे तो उसके दूना रोग बढे, पीडा होय तथा पैर सोय जावे तथा बडे कष्टसे पैर उठाया और धरा जाय, जंघा और ऊरुओंमें अधिक पीडा होय और निरन्तर दाह तथा वेदना होय, पैरोंमें व्यथा होय, शीतल पदार्थका स्पर्श मालूम न होय पैरके उठानेमें रगडनेमें अथवा चलनेमें अथवा हिलानेमें असमर्थ होय, पैर और ऊरु ये टूटेसे तथा अन्य मनुष्यकेसे मालूम हों ये लक्षण ऊरुस्तम्भके हैं । व्याधिके स्वभावसे यह ऊरुस्तम्भ त्रिदोषका एक ही है, वातादि भेदोंसे अनेक प्रकारका नहीं है ॥

असाध्यलक्षण।

यदा दाहार्तितोदार्तो वेपनः पुरुषो भवेत्।
ऊरुस्तम्भस्तदा हन्यात्साधयेदन्यथा नवम् ॥ १० ॥

जिस समय पुरुष दाह, शूल और तोद (नोचनेकीसी पीडा) इनसे पीडित होकर कंपयुक्त होय उस समय वह ऊरुस्तंभरोग उसका नाश करे है और ये लक्षण न होंय और रोग नया होय तो यह रोग साध्य है॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायाम् ऊरुस्तम्भनिदानं समाप्तम् ॥

अथामवातनिदानम्।

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च। स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा ॥ १ ॥ वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति। तेनात्यर्थं विदग्धोऽसौ धमनीः प्रतिपद्यते ॥ २ ॥ वातपित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः। स्रोतांस्यभिस्पन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः ॥ ३ ॥ जनयत्याशु दौर्बल्यं गौरवं हृदयस्य च। व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुणः ॥ ४ ॥ युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ। स्तब्धं च कुर्वतो गात्रमामवातः स उच्यते ॥ ५ ॥

विरुद्ध आहार (क्षीर-मत्स्यादि) और विरुद्ध विहार करनेवाले मनुष्यकी, मन्द अग्निवालेकी, जो दंडकसरत न करे और चिकना अम्ल खायकर दण्डकसरत करनेवाले ऐसे पुरुषकी आम वायुसे प्रेरित होकर कफके आमाशयादि स्थानके प्रति जायकर (प्राप्त होय) और उस कफसे अत्यन्त दूषित होकर वही आम धमनीनाडियोंमें प्राप्त होकर भीतर वह अन्नका रस (आम) वात और कफपित्तसे दूषित होकर नाडियोंके छिद्रोंमें भरजाय, वह अनेक प्रकारके रंगका अतिगाढा होय है और शीघ्र दुर्बलताको तथा हृदयको भारी करता है। व्याधिके उत्पन्न करनेका (आश्रय) स्थान है अर्थात् प्रायः रोग आमाशयके विकृत होनेपरही होता है। इस अत्यन्त भयंकर रोगकी आमसंज्ञा कही है। पीछे यह वात कफ एक ही कालमें

कुपित होकर त्रिकसंधियोंमें जायके प्रवेश करे तब देह जकडीसी हो जाय, इस रोगको आमवात कहते हैं ॥

आमवातके सामान्य लक्षण ।

अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णा आलस्यं गौरवं ज्वरः ।
अपाकः शूनताऽङ्गानामामवातः स उच्यते ॥ ६ ॥

अंगोंका टूटना, अरुचि, प्यास, आलस्य, भारीपना, ज्वर, अन्नका न पचना और देहमें सूजनसी हो जाय, इस रोगको आमवात कहते हैं ॥

जब आमवात अत्यन्त बढगया होय उसके लक्षण कहते हैं—

स कष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत् । हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकजानूरुसन्धिषु ॥ ७ ॥ करोति सरुजं शोथं यत्र दोषः प्रपद्यते । स देशो रुजतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः ॥ ८ ॥ जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचिगौरवम् । उत्साहहानिं वैरस्यं दाहं च बहुमूत्रताम् ॥ ९ ॥ कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्राविपर्ययम् । तृट्छर्दिभ्रममूर्च्छाश्च हृद्ग्रहं विड्विबन्धताम् ॥ १० ॥ जाड्यान्त्रकूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ॥ ११ ॥

यह आमवात जिस समय बढे उस समय रोगोंमें कष्टकर्त्ता होता है अर्थात् सब रोगोंसे बढकर कष्टदायक है । हाथ, पैर, मस्तक, घोंटू, त्रिकस्थान, जानु, जंघा इनकी सन्धियोंमें पीडायुक्त सूजन करे और जिस ठिकाने आम जाय उसी ठिकाने बीछूके डंक मारनेकीसी पीडा करे, यह रोग मंदाग्नि, मुखसे पानीका गिरना, अरुचि, देह भारी, उत्साहका नाश, मुखमें विरसता, दाह, बहुत मूत्रके उतरना, कूखमें कठिनता, शूल, दिनमें निद्रा आवे, रातिमें जाग, प्यास, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, हृदयमें दुःख, मलका अवरोध, जडता (काम करनेकी शक्तिसे रहित) आंतोंका गूंजना, अफरा तथा अत्यन्त उपद्रव कहिये वातव्याधिमें कहे कलायखंजादिकोंको करे ॥

---

१ अविपक्वरसं पक्वं दुर्गन्धं बहुपिच्छिलम् । सदनं सर्वगात्राणामाम इत्यभिधीयते ॥ आममन्नरसं केचित्केचित्तं मलसञ्चयम् । प्रथमां दोषदुष्टिं वा केचिदामं प्रचक्षते ॥ आहारस्य रसः शेषो यो न पक्वोऽग्निलाघवात् । स मूलं सर्वरोगाणामाम इत्यभिधीयते ॥

आमवातका विशेष लक्षण।

पित्तात्सदाहरागं च सशूलं पवनानुगम्।
स्तैमित्यं गुरु कण्डूकं कफजुष्टं तमादिशेत्॥ १२॥

पित्तसे जो आमवात होय उसमें दाह और लाल रंग होय है। वादीके आमवातमें शूल होय है। कफसम्बन्धी आमवातमें देहमें आर्द्रता (गीला) और भारीपन तथा खुजली चले है॥

साध्यासाध्यविचार।

एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते।
सर्वदेहचरः शोथः स कृच्छ्रः सान्निपातिकः॥ १३॥

एक दोषका आमवातरोग साध्य है, दो दोषोंका याप्य है और सर्वदेह विचरनेवाली सूजन अथवा त्रिदोषसे प्रगट आमवातरोग कष्टसाध्य जानना॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायाम् आमवातनिदानं समाप्तम्॥

अथ शूलनिदानम्।

दोषैः पृथक्समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत्।
सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः॥ १॥

वात, पित्त, कफ इनसे तीन प्रकारका, एक सन्निपातसे, एक आमसे और तीन द्वन्द्वज ऐसे सब मिलकर आठ प्रकारका शूलरोग है। इन सब शूलोंमें वादीका शूल प्रबल है। ज्वरके समान शूलरोगकी प्रथम उत्पत्ति हारीतमें कही है, सो इस प्रकार—कामदेवके नाश करनेके अर्थ शिवने क्रोधसे त्रिशूलको फेंका, उस त्रिशूलको अपने सन्मुख आता हुआ देख कामदेव भयभीत होकर विष्णु भगवान्के देहमें प्रवेश करगया। तदनन्तर वह त्रिशूल विष्णुकी हुंकारसे मूर्च्छित होकर गिरा तो पृथ्वीमें शूल इस नामसे प्रसिद्ध भया। तबसे वह शूल पञ्चभूतात्मकदेहधारी मनुष्योंको पीडा करने लगा। इस प्रकार इसकी उत्पत्ति है। शिवके त्रिशूलसे उत्पन्न भया तथा शूलके घावके समान पीडा करे है इसीसे इसको शूल कहते हैं॥

---

१ अनंगनाशाय हरस्त्रिशूलं मुमोच कोपान्मकरध्वजश्च। तमापतन्तं सहसा निरीक्ष्य भयार्दितो विष्णुतनुं प्रविष्टः॥ स विष्णुहुंकारविमोहितात्मा पपात भूमौ प्रथितः स शूलः। स पञ्चभूतानुगतः शरीरं प्रदूषयत्यस्य हि पूर्वसृष्टिः॥

वातशूलके कारण और लक्षण।

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात्।
कलायमुद्गाढकिकोरदूषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥ २ ॥
कषायतिक्तादिविरूढजान्नविरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकात्।
विट्शुक्रमूत्रानिलवेगरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यभाषात् ॥ ३ ॥
वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पार्श्वपृष्ठत्रिकबस्तिदेशे।
जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च शीते च कोपं समुपैति गाढम् ॥ ४ ॥
मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपौ विण्मूत्रसंस्तम्भनतोदभेदैः।
संस्वेदनाभ्यञ्जनमर्दनाद्यैः स्निग्धोष्णभोज्यैश्च शमं प्रयाति ॥ ५ ॥

दंडकसरत, बहुत चलना, अतिमैथुन, अत्यन्त जागना, बहुत शीतल जल पीना, मटर, मूंग, अरहर, कोदों अत्यन्त रूखे पदार्थके सेवनसे और अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), लकडी आदिके लगनेसे, कसैली, कडवी, भीगा अन्न जिसमें अंकुर निकस आये हों, विरुद्ध क्षीर-मछली आदि, सूखा मांस, सूखा शाक (कचरिया आदि) इनके सेवन करनेसे, मल, मूत्र, शुक्र और अधोवायु इनके वेगको रोकनेसे, शोकसे, उपवास (व्रत) के करनेसे, अत्यन्त हँसनेसे, बहुत बोलनेसे कोपको प्राप्त भई जो वात सो बढकर हृदय पसवाडा पीठ त्रिकस्थान और मूत्रस्थानमें शूलको करे और वह भोजन पचनेके पीछे प्रदोषकालमें, वर्षाकालमें, शीतकालमें इन दिनोंमें शूल अत्यन्त कोप करे और बारंबार कोप होय, मल मूत्रका अवरोध, पीडा और भेद ये लक्षण वातशूलके हैं तथा स्वेदन और अभ्यंजन तथा मर्दन इत्यादिकसे और चिकने गरम अन्नसे यह शूल शांत होता है॥

पित्तशूलके कारण और लक्षण।

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलित्थयूषैः।
कट्वम्लसौवीरसुराविकारैः क्रोधानलायासरविप्रतापैः ॥ ६ ॥
ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः पित्तं प्रकुप्याशु करोति शूलम्।
तृण्मोहदाहार्तिकरं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाभ्रमशोषयुक्तम् ॥७॥
मध्यंदिने कुप्यति चार्धरात्रे विदाहकाले जलदात्यये च॥
शीते तु शीतैः समुपैति शान्तिं सुस्वादुशीतैरपि भोजनैश्च ॥८॥

यवक्षार आदि खार, मिरच आदि तीखी और गरम, विदाहकारक, बांस और करील आदि, तेल, सिंबी, खल, कुलथी, यूष, कडुआ, खट्टा, सौवीर (कांजी), सुराविकार (मद्यविशेष), क्रोधसे, अग्निके समीप रहना, परिश्रम, सूर्यकी तीव्र धूपमें डोलना, अतिमैथुन करना, विदाहकारक अन्न आदि इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर नाभिस्थानमें शूल उत्पन्न करता है। वह शूल तृषा, मोह, दाह, पीडा इनको करे और पसीना, मूर्च्छा, भ्रम, शोष इनको करे, दुपहरके समय, मध्यरात्रिमें, अन्नके विदाहकालमें, शरत्कालमें शूल अधिक होय। शीतकालमें शीतल पदार्थसे और अत्यन्त मधुर मीठे शीतल अन्नसे यह शूल शांत होता है॥

कफशूलके कारण और लक्षण।

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैर्मांसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कुलीभिः। अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च श्लेष्मा प्रकोपमुपगम्य करोति शूलम्॥ ९॥ हृल्लासकाससदनारुचिसंप्रसेकैरामाशये स्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः। भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं सूर्योदये च शिशिरे कुसुमागमे च॥ १०॥

जलके समीप रहनेवाले पक्षियोंका मांस, मछली आदिका मांस, दही घृत मक्खन आदि दूधके विकार, मांस, ईखका रस, पिसा अन्न उडदकी पिट्ठी वगैरह, खिचडी, तिल, पूरी, कचौडी आदि और कफकारकपदार्थ खानेसे कफ कुपित होकर आमाशयमें शूलरोगको प्रगट करे। उसमें सूखी रद्द, खांसी, ग्लानि, अरुचि, मुखसे लार गिरे, बद्धकोष्ठता, मस्तक भारी हो ये लक्षण होयँ। भोजन करते समय पीडा होय, सूर्योदयके समय, शिशिरऋतुमें और वसन्तकालमें शूल बहुत होय॥

सन्निपातशूलके लक्षण।

सर्वेषु दोषेषु च सर्वलिङ्गं विद्याद्भिषक् सर्वभवं हि शूलम्। सुकष्टमेनं विषवज्रकल्पं विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥ ११॥

सम्पूर्ण दोषोंके कोप होनेमें वात पित्त कफ तीनों शूलके लक्षण होते हैं उसीको सन्निपातका शूल कहते हैं। यह बडा दुःखदायक है, विष और वज्रके तुल्य है, इसको विद्वान् असाध्य कहते हैं॥

आमशूलके लक्षण।

आटोपहृल्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यमानाहकफप्रसेकैः। कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोद्भवं शूलमुदाहरन्ति॥ १२॥

पेटमें गुडगुडाहट होय, उबकाइयोंका आना, रद्द, देह भारी, मन्दता, अफरा, मुखसे कफका स्राव इन लक्षणोंसे तथा कफशूल लक्षणोंके समान ऐसे शूलको आमशूल कहते हैं ॥

द्वंद्वजशूलोंके लक्षण ।

बस्तौ हृत्कण्ठपार्श्वेषु स शूलः कफवातिकः । कुक्षौ हृन्नाभिपार्श्वेषु स शूलः कफपैत्तिकः ॥ १३ ॥ दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपैत्तिकः । एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥ सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ १४ ॥

वस्ति (मूत्रस्थान), हृदय, कण्ठ, पसवाडे इन ठिकाने शूल होय वह (कफवातिक) जानना. कूख हृदय नाभि और पसवाडे इनमें कफपित्तका शूल होय है, दाहज्वर करनेवाला ऐसा भयंकर शूल होय वह वातापित्तका जानना । एक दोषका शूलरोग साध्य है, दो दोषोंका कृच्छ्रसाध्य और तीनों दोषोंका भयंकर और बहुत उपद्रवयुक्त होय वह शूल असाध्य जानना ॥

ग्रन्थांतरोक्तशूलके स्थान ।

वातात्मकं बस्तिगतं वदन्ति पित्तात्मकं चापि वदन्ति नाभ्याम् ।
हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसन्निविष्टं सर्वेषु देशेषु च सन्निपातात् ॥ १ ॥

वातका शूल बस्तिमें होता है, पित्तका नाभिमें, कफका हृदय पसवाडा कोखमें, सन्निपातका सब जगह होता है ॥

शूलके उपद्रव ।

वेदना च तृषा मूर्च्छा आनाहो गौरवारुची ।
कासश्वासौ च हिक्का च शूलस्योपद्रवाः स्मृताः ॥ २ ॥

वेदना, तृषा, मूर्च्छा, अफरा, गुरुता, अरुचि, कास, श्वास और हिचकी ये शूलके उपद्रव जानने ॥

परिणामशूलनिदान ।

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः सन्निहितस्तथा । कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्बली ॥ १५ ॥ भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् । तस्य लक्षणमप्येतत्समासेनाभिधीयते १६॥

अपने रौक्ष आदि कारणोंसे वायु कुपित होकर कफपित्तके समीप जाय उसको आवृत कर बली होकर शूलको उत्पन्न करे, आहार पचनेके समय जो शूल होय उसको परिणामशूल कहते हैं; उसके लक्षण संक्षेपसे कहता हूँ ॥

वातिक परिणामशूलके लक्षण।

आध्मानाटोपविण्मूत्रनिबन्धारातिवेपनैः।
स्निग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद्वदेद्भिषक् ॥ १७ ॥

पेटका फूलना तथा पेटमें गुडगुडशब्द, मलमूत्रका अवरोध, अराति (मनका न लगना), कम्प ये लक्षण हों और चिकना, गरम पदार्थसे शांत होय ऐसे शूलको वातिक कहते हैं ॥

पैत्तिक परिणामशूलके लक्षण।

तृष्णादाहारतिस्वेदकट्वम्ललवणोत्तरम्।
शूलं शीतशमप्रायं पैत्तिकं लक्षयेद् बुधः ॥ १८ ॥

प्यास, दाह, चित्तका न लगना, पसीना ये लक्षण होयँ। तीखा, खट्टा, नोनका ऐसे पदार्थ खानेसे बढनेवाला और शीतल पदार्थके सेवनसे शांत होय ऐसा शूल पित्तका जानना ॥

श्लैष्मिक परिणामशूलके लक्षण।

छर्दिहृल्लाससंमोहस्वल्परुग्दीर्घसन्तति।
कटुतिक्तोपशान्तं च तच्च ज्ञेयं कफात्मकम् ॥ १९ ॥

वमन, अफरा और संमोह (इंद्रिय और मनको मोह) ये लक्षण जिसमें बहुत होयँ, पीडा थोडी होय, शूल बहुत दिन रहे, कडुवे और तीखे पदार्थसे शांत होय उस शूलको कफात्मक जानना ॥

द्विदोषज और त्रिदोषजके लक्षण।

संसृष्टलक्षणं यच्च द्विदोषं परिकल्पयेत्।
त्रिदोषजमसाध्यं तु क्षीणमांसबलानलम् ॥ २० ॥

जिसमें दो दोषोंके लक्षण मिले हों उसको द्वंद्वज कहते हैं और तीन दोषोंके लक्षणोंसे त्रिदोषज जानना। मांस बल और अग्नि ये जिसके क्षीण होगये हों ऐसा शूलरोग असाध्य जानना ॥

अन्नके उपद्रवसे प्रगट शूलके लक्षण।

जीर्णे जीर्यत्यजीर्णे वा यच्छूलमुपजायते।
पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन च ॥
न शमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः ॥ २१ ॥

अन्न पचगया होय अथवा पचरहा हो अथवा अजीर्ण हो अर्थात् सर्वदा जो शूल प्रगट होय यह पथ्यापथ्यके योगसे अथवा भोजन करनेसे किंवा न भोजन करनेसे नियमसे शांत नहीं होय, उसको अन्नद्रवशूल कहते हैं, यह शूल त्रिदोष विकृतिसे एक प्रकारका है, परन्तु असाध्य नहीं है, क्योंकि इसकी चिकित्सा कही है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां परिणामशूलनिदानं समाप्तम् ॥

अथोदावर्तनिदानम् ।

उदावर्तके कारण ।

वातविण्मूत्रजम्भास्रक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः ।
क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्त्तसंभवः ॥ १ ॥

अधोवायु, विष्ठा, मूत्र, जम्भाई, अश्रुपात, छींक, डकार, वमन, शुक्र, भूँख, प्यास, श्वास और निद्रा इन तेरह वेगोंके रोकनेसे उदावर्त्तरोग उत्पन्न होता है । तेरहके नियमके करनेसे यह प्रयोजन है कि, क्रोध, लोभ, मन इत्यादि वेगोंके धारण करनेसे रोग उत्पन्न नहीं होता । क्योंकि, इनके रोकनेसे तो स्वस्थता प्राप्त होती है । सब उदावर्तोंमें मुख्य कारण वायु है । उदावर्त्तकी निरुक्ति इस प्रकार है- " उद्भूतेन वेगविधारणेन आवृतस्य वायोरावर्तनमुदावर्तः " ॥

तेरह उदावर्त्तोंके लक्षण क्रमसे कहते हैं-

वातमूत्रपुरीषाणां सङ्गो ध्मानं क्लमो रुजः ।
जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥ २ ॥

अधोवायुके रोकनेसे अधोवायु, मल, मूत्र ये बन्ध हो जायँ, पेट फूल जावे, अनायासश्रम और पेटमें बादीसे पीडा होय तथा और वातकृत तोद (शूलादि-पीडा) होय ॥

आटोपशूलौ परिकर्त्तिका च संगः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः ।
पुरीषमास्यादथ वा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ ३ ॥

मलके वेग रोकनेसे पेटमें गुडगुडाहट होय, शूल हो, गुदामें कतरनेकीसी पीडा होय, मल उतरे नहीं, डकार आवे, अथवा मल मुखके द्वारा निकले ॥

वस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा।
विनामो वंक्षणानाहः स्याल्लिङ्गं मूत्रनिग्रहे॥ ४॥

मूत्रके वेग रोकनेसे बस्ति (मूत्राशय) और शिश्न इंद्रिय इनमें पीडा होय, मूत्र कष्टसे उतरे, मस्तककी पीडासे शरीर सीधा होय नहीं, पेटमें अफरा होय॥

मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा जृंभोपरोधात्पवनात्मकाः स्युः।
तथाऽक्षिनासावदनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह कर्णरोगैः॥ ५॥

जम्भाई आती हुईके रोकनेसे, मन्या कहिये नाडीके पीछेकी नस और गला इनका और वातजन्य विकार मस्तकमें होयँ, उसी प्रकार नेत्ररोग, नासारोग, मुख-रोग और कर्णरोग ये तीव्र होते हैं॥

आनन्दजं वाप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुञ्चतो हि।
शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन॥ ६॥

आनन्दसे अथवा शोकसे प्रकट अश्रुपातका जो मनुष्य नहीं त्याग करे उसके इतने रोग प्रगट होयँ—मस्तक भारी रहे, नेत्ररोग और पीनस ये प्रबल हों॥

मन्यास्तम्भशिरःशूलमर्दितार्धावभेदकौ।
इन्द्रियाणां च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात्॥ ७॥

मन्या (नाडके पिछाडीकी नस) का स्तम्भ कहिये जकड जाना, शिरमें शूलका चलना, आधा मुख टेडा हो जाय, अर्धांगवात और सब इंद्रिय दुर्बल होजायँ इतने रोग आती हुई छींक रोकनेसे होते हैं॥

कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथवाऽप्रवृत्तिः।
उद्गारवेगेऽभिहते भवन्ति घोरा विकाराः पवनप्रसूताः॥ ८॥

आती हुई डकारके वेग रोकनेसे वातजन्य इतने रोग होते हैं—कण्ठ और मुख भारीसा मालूम होय, अत्यन्त नोचनेकीसी पीडा होय, अव्यक्त भाषण (जो समझमें न आवे)॥

कण्डूकोठारुचिव्यङ्गशोफपाण्ड्वामयज्वराः।
कुष्ठहृल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजा गदाः॥ ९॥

जो मनुष्य आतीहुई वमनके वेगको रोके उसके अंगोंमें खुजली चले, देहमें चकत्ते हो जायँ, अरुचि, मुखपर झांईसी पडे, सूजन, पांडुरोग, ज्वर, कुष्ठ, खाली रद्द, विसर्प ये होयँ॥

मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोथो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च ।
शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेच्च ते ते विकारा विहते च शुक्रे॥१०॥

मैथुन करते समय वीर्य निकलनेको जो मनुष्य रोके अथवा और प्रकारसे शुक्रके वेगको रोके उसके मूत्राशयमें सूजन होय तथा गुदामें और अंडकोशोंमें पीडा होय, मूत्र बडे कष्टसे उतरे, शुक्राश्मरी (पथरीके निदानमें आगे कहेंगे सो) होय, शुक्रका स्राव होय, ऐसे अनेक प्रकारके रोग होयँ ॥

तन्द्राङ्गमर्दावरुचिः श्रमश्च क्षुधाभिघातात्कृशता च दृष्टेः ।

भूखके रोकनेसे तन्द्रा, अंगोंका टूटना, अरुचि, श्रम और दृष्टिका मन्द होना ये रोग प्रगट होयँ । चकारसे कृशता और दुर्बलता होय यह अन्य ग्रन्थसे जानना ॥

कण्ठास्यशोषः श्रवणावरोधस्तृषाभिघाताद्धृदये व्यथा वै ॥११॥

प्यासके रोकनेसे कण्ठ और मुखका सूखना, कानोंसे मन्द सुनना और हृदयमें पीडा ये लक्षण होयँ ॥

श्रान्तस्य निःश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथवापि गुल्मः ।

जो मनुष्य हारगया और वह श्वासको रोके उसके हृदयरोग, मोह और वाय-गोला इतने रोग होयँ ॥

जृम्भाङ्गमर्दाक्षिशिरोऽतिजाड्यं निद्राभिघातादथ वापि तन्द्रा॥१२॥

आतीहुई निद्राके रोकनेसे जम्भाई, अंगोंका टूटना, नेत्र और मस्तककी अत्यन्त जडता होना और तन्द्रा होय । इस प्रकार वेग रोकनेसे प्रगट रोगोंको कहे ॥

अब रूक्षादिकारणोंसे कुपित वायुसे उत्पन्न होनेवाले उदावर्त्त रोगोंको कहते हैं–

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षकषायकटुतिक्तकैः । भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्तं करोति च ॥ १३ ॥ वातमूत्रपुरीषास्रकफमेदो-वहानि वै । स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्त्तयेत् ॥१४॥ ततो हृद्बस्तिशूलार्तो हृल्लासारतिपीडितः । वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः ॥ १५ ॥ श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोह-तृषाज्वरान् । वमिहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ॥१६॥ बहूनन्यांश्च लभते विकारान् वातकोपजान् ॥ १७ ॥

रूखा, कसैला, तीखा और कडुवा ऐसे भोजन करनेसे कोष्ठगत वायु मल, मूत्र, अश्रुपात, कफ और मेद इनके बहनेवाली नाडियोंके मार्गको रोकदे, मलको सुखाय दे, तब रोगी हृदय मूत्रस्थानमें शूलके होनेसे विकल हो, सूखी रद्द, अस्वस्थपना इनसे पीडित हो, मलमूत्र और वात ये कष्टसे उतरें और श्वास, खांसी, पीनस, दाह, मोह, प्यास, ज्वर, वमन, हिचकी, मस्तकरोग, मनकी भ्रांति, मन्द सुने तथा वातकोपसे और भी बहुतसे विकार होयँ ॥

आनाहरोगनिदान ।

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन ।
प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ १ ॥
तस्मिन्भवत्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः ।
आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृत्स्तंभ उद्गारविघातनं च ॥ २ ॥
स्तंभः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलेऽथ मूर्च्छा शकृतश्च छर्दिः ।
श्वासश्च पक्काशयजे भवन्ति तथाऽलसोक्तानि च लक्षणानि ॥३॥

आम अथवा पुरीष क्रमसे संचित हो विगुण वायुसे बारंबार विबद्ध होकर अपने मार्गसे अच्छी रीतिसे प्रवृत्त होय नहीं, इस विकारको आनाह कहते हैं । आमसे प्रगट अनाहरोगसे प्यास, पीनस, मस्तकमें दाह, आमाशयमें शूल, देहमें भारीपना, हृदयका जकड जाना, शूल, मूर्च्छा, डकार, कमर, पीठ, मल, मूत्र इनका रुकना, शूल, मूर्च्छा और विष्ठा मिलीहुई रद्द और श्वास ये लक्षण होयँ । पक्काशयमें आनाह रोग होनेसे अलसकरोगोक्त लक्षण (आध्मानवातरोधादिक) होते हैं ॥

असाध्य लक्षण ।

तृष्णार्दितं परिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् ।
शकृद्वमन्तं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ ४ ॥

प्यासंसे पीडित, क्लेशयुक्त, क्षीण, शूलसे पीडित और मलको रद्द करनेवाला ऐसे उदावर्त्तरोगीको वैद्य त्याग दे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायामुदावर्त्तनिदानं समाप्तम् ॥

अथ गुल्मनिदानम् ।

दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः ।
कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम् ॥
तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिबस्तयः ॥ १ ॥

मिथ्या आहार और मिथ्या विहार करनेसे अत्यन्त दुष्ट भये वातादि दोष कोष्ठ (पेट) में ग्रंथिरूप (गांठ) पांच प्रकारका गुल्मरोग उत्पन्न करे हैं । उस गुल्मरोगके पांच स्थान हैं, दोनों पसवाडे, हृदय, नाभि और बस्ति ॥

गुल्मके सामान्यरूप ।

हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वाऽचलः ।
वृत्तश्चयोपचयवान्स गुल्म इति कीर्तितः ॥ २ ॥

हृदय और नाभि तथा वस्ती (मूत्रस्थान) इनमें चलायमान अथवा निश्चल, गोल कभी घटे कभी बढे ऐसी ग्रन्थि (गांठ) हो उसको गुल्म[१] (गोला) का रोग कहते हैं । इस श्लोकमें नाभिशब्दसे बस्तीका ग्रहण करा है ॥

गुल्मकी सम्प्राप्ति ।

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः ।
पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ॥ ३ ॥

कुपित भये दोषोंसे पृथक् २ तीन और सब दोष मिलकर एक ये चार प्रकारके गुल्म पुरुषोंके होते हैं और स्त्रियोंके रक्त (रज) के दोषसे एक प्रकारका गुल्म होय है, परन्तु प्रथम जो लिख आये हैं कि, गुल्मरोग पांच प्रकारका है सो इसका निश्चय नहीं है क्योंकि, रक्तगुल्म स्त्रियोंके होता है, पुरुषोंके नहीं होता, धातुरूप रक्तज गुल्म जो है सो स्त्री पुरुष दोनोंके होता है, यह क्षीरपाणि[२]का मत है । पांच प्रकारका गुल्म है इसपर बहुत शास्त्रार्थ और मतमतांतर हैं जिनको देखनेकी इच्छा हो सो मधुकोश और आतंकदर्पण टीकामें देख लेवें ॥

गुल्मके पूर्वरूप ।

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धतृप्त्यक्षमत्वान्त्रनिकूजनानि ।
आटोपमाध्मानमपक्तिशक्तिरासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ४ ॥

---

१ सपिण्डितदोषो गुडकेन मीयत इति गुल्मः । २ क्षीरपाणिः—" स्त्रीणामार्तवजो गुल्मो न पुंसामुपजायते । अन्यस्त्वसृग्भवो गुल्मः स्त्रीणां पुंसां च जायते ॥"

डकार बहुत आवें, मलका अवरोध होय, अन्नमें अरुचि होय, सामर्थ्यका नाश होना, आंत बोले, पेटमें गुडगुड शब्द होय और अफरा होय, मंदाग्नि होना ये लक्षण होयँ तो जानना कि, गुल्म (गोला) रोग शीघ्र प्रगट होना चाहता है अर्थात् ये गुल्मके पूर्वरूपके लक्षण हैं ॥

गुल्मके साधारण लक्षण।

अरुचिः कृच्छ्रविण्मूत्रं वातेनान्त्रविकूजनम्।
आनाहश्चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षयेत् ॥ ५ ॥

अरुचि, मल-मूत्र कष्टसे उतरें, वादीसे आंत बोले, पेट फूल आवे, ऊर्ध्ववात होय ये लक्षण सब गुल्मोंमें होते हैं। सब गुल्मरोगमें वात कारण है सो चरक और सुश्रुतमें भी लिखा है ॥

वातगुल्मके कारण और लक्षण।

रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च।
शोकाभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगुल्महेतुः ॥ ६ ॥
यः स्थानसंस्थानरुजा विकल्पं विड्वातसङ्गं गलवक्त्रशोषम्।
श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरं च हृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजं च ॥ ७ ॥
करोति जीर्णेऽप्यधिकं च कोपं भुक्ते मृदुत्वं समुपैति पश्चात्।
वातात्स गुल्मो न च तत्र रूक्षं कषायतिक्तं कटु चोपशेते ॥ ८ ॥

रूखा, विषम और अतिमात्र ऐसे अन्नपान सेवन करनेसे, बलवान् पुरुषसे लडना, मल मूत्र आदि वेगोंके धारण करनेसे, शोक और अभिघात (लकडी आदिकी चोट) से, विरेचन आदिसे, मलका क्षय करना, उपवास ये सब वात-गुल्मके कारण हैं। जो गुल्म कभी नाभि, बस्ती, पसवाडेमें चला जाय तथा कभी लंबा कभी मोटा गोल अथवा छोटा होय, तथा उसमें पीडा कभी थोडी कभी बहुत होय, तोद भेद (सुई चुभानेकीसी पीडा) होय अथवा अनेक प्रकारकी पीडा होय, मलकी और अधोवायुकी अच्छी रीतिसे प्रवृत्ति होय नहीं, गला और मुख सूखे, शरीरका वर्ण नीला अथवा लाल होय, शीतज्वर, हृदय, कूख, पसवाडे, कंधा और मस्तक इनमें पीडा होय और गोला जीर्ण होनेपर अधिक कोप करे

---

१ गुल्मिनामनिलशांतिरुपायैः सर्वशो विधिवदाचरणीया। मारुतेऽत्र विजितेऽन्यमुदीर्णं दोषमल्पमपि कर्म निहन्यात् ॥ इति। २ कुपितानिलमूलत्वाद्गूढमूलोदयादपि। गुल्मवद्वा विशालत्वाद् गुल्म इत्यभिधीयते ॥ इति।

और भोजनके करनेके पिछाडी नरम हो जाय, वह गोला बादीसे प्रगट होय है उसमें रूखा कसैला कडुवा तीखा पदार्थ खानेसे सुख नहीं होय ॥

पित्तगुल्मके कारण और लक्षण ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षं क्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा ।
आमाभिघातो रुधिरं च दुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुक्तम् ॥ ९ ॥
ज्वरः पिपासा वदनाङ्गरागः शूलं महज्जीर्यति भोजने च ।
स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरूपम् ॥ १० ॥

कटु, खट्टा, तीक्ष्ण रस, दाहकारक (वंशकरीलादिक), रूखा ऐसे भोजन करनेसे, क्रोधसे, अति मद्यपानसे, सूर्यकी धूपमें डोलनेसे, अग्निके समीप रहनेसे, विदग्ध अजीर्णसे, दुष्ट भया रस उससे, अभिघात कहिये लकडी आदि लगनेसे रुधिरका बिगडना ये पित्तगुल्मके कारण कहे हैं । ज्वर, प्यास, मुख और अंगोंमें लालपना, अन्न पचनेके समय अत्यन्त शूल होय, पसीना आवे, जलन होय, फोडाके समान स्पर्श सहा न जाय ये पित्तगुल्मके लक्षण हैं ॥

कफके और सन्निपातके गुल्मके कारण और लक्षण ।

शीतं गुरु स्निग्धमचेष्टनं च संपूरणं प्रस्वपनं दिवा च ।
गुल्मस्य हेतुः कफसंभवस्य सर्वस्तु दुष्टो निचयात्मकस्य ॥ ११ ॥
स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि ।
शैत्यं रुगल्पा कठिनोन्नतत्वं गुल्मस्य रूपाणि कफात्मकस्य ॥ १२ ॥

शीतल, भारी, चिकने ऐसे पदार्थके सेवनसे, तृप्तिकी अपेक्षा अधिक भोजन करना, दिनमें सोना यह कफोत्पन्न गुल्म होनेके कारण हैं और जो वातजादि तीनों गुल्मके कारण कहे हैं वे सान्निपातगुल्मके कारण जानने । देहका गीलापना, शीतज्वर शरीरकी ग्लानि, सूखी रद (उबकी), खांसी, भारीपना, शीतका लगना, थोडी पीडा होय गुल्म (गोला) कठिन होय और ऊंचा होय इतने ये सब कफात्मकगुल्मके लक्षण हैं ॥

द्वन्द्वजगुल्मके लक्षण ।

निमित्तलिङ्गान्युपलभ्य गुल्मे संसर्गजे दोषबलाबलं च ।
व्यामिश्रलिङ्गानपरांश्च गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥ १३ ॥

द्वन्द्वज गुल्ममें कारण लक्षण और दोषोंका बलाबल जानकर चिकित्सा करनेके वास्ते मिश्र लक्षणसे और तीन गुल्म समझने चाहिये, अर्थात् एक दोष बल-

वान् होय तो चिकित्सा करनी चाहिये और द्विदोष बलवान् वा त्रिदोष बलवान् होयँ तो चिकित्सा न करे ॥

सन्निपातगुल्मके लक्षण।

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्घनोन्नतं शीघ्रविदाहदारुणम्।
मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत्॥ १४॥

भारी पीडा करनेवाला, दाहकरके व्याप्त, पत्थरके समान कठिन तथा ऊंचा और शीघ्र दाहकरके भयंकर, मन, शरीर, अग्नि और बल इनका नाश करनेवाला अर्थात् मनको विकल करनेवाला, शरीरको कृश करनेवाला और विवर्ण करनेवाला, अग्नि-वैषम्यादिकारक, असामर्थ्य करनेवाला, ऐसा त्रिदोषज गुल्म असाध्य जानना ॥

रक्तगुल्मके लक्षण।

नवप्रसूताऽहितभोजना या या चामगर्भं विसृजेदृतौ वा।
वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम्॥ १५ ॥
पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं विशेषणं चाप्यपरं निबोध।
यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः॥
स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः॥१६॥

नई प्रसूत भई स्त्रीके अपथ्य सेवन करनेसे, अथवा अपक्व गर्भपात होनेसे अथवा ऋतुकालके समय अपथ्य भोजन करनेसे वायु कुपित होकर उस स्त्रीके रुधिर (जो ऋतुसमय निकले उस) को लेकर गुल्म करे। वह गुल्म पीडायुक्त दाहयुक्त होय और पित्तगुल्मके जो लक्षण कहे हैं वे सब इसमें होजाते हैं और इसमें दूसरे विशेष लक्षण होते हैं, उनको कहता हूं सुनो—यह गुल्म बहुत देरमें गोल गोल हिले, अवयव कहिये हाथ पैरके साथ नहीं हिले शूलयुक्त होय, गर्भके समान सब लक्षण मिले अर्थात् मुखसे पानी छूटे, मुख पीला पडजाय, स्तनका अग्रभाग काला होजाय और दोहदादि लक्षण सब मिलें, ये सब लक्षण व्याधिके प्रभावसे होते हैं। जैसे क्षय रोगवालेको स्त्रीरमणकी इच्छा और काले नख तात्वादिक होते हैं। यह रक्तजगुल्म स्त्रियोंके होय है, दश महीने व्यतीत होजायँ तब इस रक्तगुल्मकी चिकित्सा करनी चाहिये। कोई कहते हैं कि, यह गर्भ है अथवा रक्तगुल्म है, यह शंका जानकर माधवाचार्यने (दश महीने व्यतीत होने-पर) ऐसा कहा है, कारण इसका यह है कि, नववां और दशवां महीना यह प्रसूत होनेका समय है। शंका—क्यों जी! " यः स्पन्दते पिंडित एव नांगैः " इत्यादिक

विशेषणोंसे स्पष्ट प्रतीति होय है, क्यों कि गर्भ तो निरंतर प्रत्येक अवयवके साथ शूलरहित फडकता है, और रक्तगुल्मके इससे विपरीत लक्षण हैं फिर दश महीने व्यतीत होनेपर चिकित्सा करनी चाहिये यह क्यों कहा ? उत्तर–इसका कारण इस प्रकार है कि, इस रोगमें जब दश महीने व्यतीत होजायँ तब चिकित्सा करे तो सुखसाध्य होय है, कुछ प्रसवके नियमसे नहीं कहा, क्योंकि प्रसव ग्यारह बारह महीनेमें भी होय है सो चरकमें भी लिखा है–" तं स्त्री प्रसूते सुचिरेण गर्भं स्पष्टो यदा वर्षगणैरपि स्यात् " जैसे जीर्ण ज्वर होनेपर दूध पीना और दस्तका लेना हितकारक होय है। इससे ग्रन्थान्तरोंमें भी लिखा है– "ज्वरे तुल्यर्तुदोषत्वं प्रमेहे तुल्यदूष्यता। रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् ॥ " इस रक्तगुल्मको दश महीने व्यतीत होनेपर पुरानपना होय है और जैज्जटने भी कहा है कि दश महीनेके पहिले मर्दनादि क्रिया करनेसे गर्भाशयके विकार होय हैं। क्योंकि, रुधिर उस ठिकानेपर जमा होय है और ग्यारहवें महीनेमें गुल्मका गोला बहुत अच्छा जम जाता है इसीसे ग्यारहवे महीनेमें स्नेहादिकरके सब शरीर मृदु (नरम) करनेसे मर्दन करे तो गर्भाशय भले प्रकार अच्छा रहे ॥

अब कहते हैं कि, बहुत दिनका गुल्मरोग ऐसी अवस्था होनेपर
असाध्य हो जाय है उसको कहते हैं–

सञ्चितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः। कृतमूलः शिरानद्धो यदा कूर्म इवोन्नतः ॥ १७॥ दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासच्छर्द्यरति-ज्वरैः। तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते न स सिध्यति ॥ १८ ॥

क्रमक्रमसे बढा गुल्म जब जब उदर (पेट)में फैलजाय और धातुओंमें उसका मूल जाय पहुँचे तथा उसपर नाडियोंका जाल लिपटजाय और कछुएकी पीठके समान गुल्म ऊंचा होय, तब इस रोगीके निःसत्त्वपना, अरुचि, सूखी रद्द, खांसी, वमन, अरति और ज्वर तथा प्यास, तन्द्रा और पीनस ये लक्षण होयँ ऐसा रोगी असाध्य है ॥

असाध्य लक्षण ।

गृहीत्वा सज्वरः श्वासश्छर्द्यतीसारपीडितम् ।
हृन्नाभिहस्तपादेषु शोथः क्षिपति गुल्मिनम् ॥ १९ ॥
श्वासः शूलं पिपासाऽन्नविद्वेषो ग्रन्थिमूढता ।
जायते दुर्बलत्वं च गुल्मिनां मरणाय वै ॥ २० ॥

वमन और अतिसार इनसे पीडित ऐसे गुल्मरोगीके हृदय, नाभी, हाथ, पैर इन ठिकाने सूजन होय और ज्वर, दमा जिसके होयँ ऐसे लक्षण होनेसे रोगी

बचे नहीं। श्वास, शूल, प्यास, अन्नमें अरुचि और गुल्मकी गांठका एकाएकी नष्ट होजाना और दुर्बलता ये लक्षण होनेसे जानना कि, गुल्मरोगवालेकी मृत्यु समीप है। शंका–क्यों जी ! अन्तर्विद्रधि और गुल्मरोग इनमें क्या भेद है। इन दोनोंके स्थान और स्वरूप तौ एकसे हैं फिर भेद क्या है ? उत्तर–तुमने कहा सो ठीक है अन्तर्विद्रधि पचता है गुल्म नहीं पचे है इसका कारण यह है कि गुल्म तो निराश्रय है। सो सुश्रुतने कहा भी है––

न निबन्धोऽस्ति गुल्मस्य विद्रधिः सनिबन्धनः।
गुल्मस्तिष्ठति दोषे स्वे विद्रधिर्मांसशोणिते ॥
विद्रधिः पच्यते तस्माद्गुल्मश्चापि न पच्यते ॥ २१ ॥

गुल्मका निर्बंध नहीं और विद्रधिका निर्बंध है, गुल्म अपने दोषोंमें रहता है और विद्रधिका ठिकाना मांस रुधिरमें है, इसीसे विद्रधिका पाक होय है और गुल्मका पाक नहीं होय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरी-
भाषाटीकायां गुल्मरोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ हृद्रोगनिदानम्।

अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिक्तैः श्रमाभिघाताध्यशनप्रसङ्गैः।
संचिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥

अतिगरम, अतिभारी, अतिखट्टा, अतिकषैला, अतिकडुवा ऐसे पदार्थ सेवन करनेसे, श्रम (धनुष आदिका खैंचना) अभिघात (हृदयमें चोट लगना) और भोजनके ऊपर भोजन नित्य करनेसे, संचिंतन (राजाके भयसे चिन्ता), मल मूत्र आदि वेगोंके रोकनेसे, वातादिकके क्षयसे और सन्निपातकरके तथा कृमिसे हृदयका रोग होता है, वह पांच प्रकारका है ॥

हृद्रोगकी सम्प्राप्ति और सामान्य लक्षण।

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः।
हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ २ ॥

कुपित भये दोष रसको (जो कि हृदयमें रहता है), दुष्ट करके हृदयमें अनेक प्रकारकी पीडा करे उसको हृदयरोग कहते हैं ॥

वातहृद्रोगके लक्षण ।

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा ।
निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोटयते पाटयतेऽपि च ॥ ३ ॥

वातज हृदयरोगमें हृदय ईंचासरीखा, सुईसे टोंनेसरीखा, फोडनेसरीखा, दो टुकडा करनेके समान, मथनेके समान, कुल्हाडीसे फोडनेके समान करे है ॥

पित्तके हृद्रोगके लक्षण ।

तृष्णोष्णदाहमोहाः स्युः पैत्तिके हृदयक्लमः ।
धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥ ४ ॥

पित्तके हृदयरोगमें प्यास, किंचित् दाह, मोह और हृदयकी ग्लानि, धूआं निकलतासा मालूम होय, मूर्च्छा, पसीना और मुखका सूखना ये लक्षण होते हैं ॥

कफके हृदयरोगके लक्षण ।

गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्निमार्दवम् ।
माधुर्यमपि चास्यस्य बलासो वर्तते हृदि ॥ ५ ॥

कफसे हृदय व्याप्त होनेसे भारीपना, कफका गिरना, अरुचि, हृदय जकडजाय, मन्दाग्नि, मुखमें मिठास ये लक्षण होते हैं ॥

त्रिदोषजहृद्रोगके लक्षण ।

विद्यात्त्रिदोषं त्वपि सर्वलिङ्गं–

जिसमें सब लक्षण मिलते होयँ वह त्रिदोषका हृद्रोग जानना इसमें कुछ भी अपथ्य होनेसे गांठ उत्पन्न होती है, उस गांठसे कृमि पैदा होती हैं, ऐसे चरकमें कहा है ॥

कृमिज हृद्रोगके लक्षण ।

–तीव्रार्तितोदं कृमिजं सकण्डु ।

उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः ।
अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥ ६ ॥

तीव्र पीडा करके तथा नोचनेकीसी पीडा करके तथा खुजली करके युक्त ऐसा हृद्रोग कृमिजन्य जानना । उत्क्लेद (ओकारी आनेके समान मालूम हो), थूकना, तोद (सुई चुभानेकीसी पीडा), शूल, हृल्लास, अँधेरा आवे, अरुचि, नेत्र काले पडजायँ और मुखशोष ये लक्षण कृमिज हृदयरोगमें होते हैं । जैज्जटका यह मत

---

१ त्रिदोषजे तु हृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते । तिलक्षीरगुडादींश्चेद्ग्रन्थिस्तस्योपजायते ॥ मर्मैकदेशे संक्लेदं रसश्चाप्युपगच्छति । संक्लेदात् कृमयश्चान्ये भवंत्युपहतात्मनः ॥

है कि, उत्क्लेदसे लेकर तमपर्यंत त्रिदोषके लक्षण कहे हैं। जैसे तोद, शूल ये वादीसे होयँ। उत्क्लेद, हल्लास और ष्ठीवन ये कफसे और तम यह पित्तसे लक्षण होता है और अरुचिसे लेकर शोषपर्यन्त कृमिज हृद्रोगके लक्षण जानने। इस विषयमें प्रत्येक आचार्योंके भिन्न २ मत हैं ॥

सबोंके उपद्रव।

क्लोम्नः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः।
कृमिजे कृमिजातीनां श्लैष्मिकाणां च ये मताः ॥ ७ ॥

क्लोम कहिये पिपासा (प्यास) के स्थान उसमें ग्लानि होय, भ्रम, शोष ये सब उन हृद्रोगोंके उपद्रव जानने और कफकी कृमिरोगके जो पिछाडी कह आये हैं सोई कृमिज हृद्रोगोंके लक्षण होते हैं। तथा " हल्लासमास्यस्त्रवणमविपाकमरोचकम् ।" इत्यादि ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां हृद्रोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रनिदानम्।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसंगानित्यद्रुतपृष्ठयानात्।
आनूपमांसाध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणामिहाष्टौ ॥१॥

व्यायाम (दण्डकसरत आदि), तीक्ष्णौषध (राई आदि) रूखा पदार्थ और नित्यप्राति मद्यपान करना इनसे और निरन्तर घोडेपर चढनेसे और जलसमीप रहनेवाली पक्षी (हंस, सारस, चकवा, आदि) का मांस खानेसे, भोजनके ऊपर भोजन करनेसे और कच्चे पदार्थ इत्यादिकोंके खानेसे मनुष्योंके आठ प्रकारका मूत्रकृच्छ्र रोग होता है। पृथक् दोषोंसे ३, सन्निपातसे १, चोट लगनेका १, मल रोकनेका १, वीर्य रोकनेका १ और पथरीका १ ये सब मिलकरके आठ भये ॥

मूत्रकृच्छ्रकी सम्प्राप्ति।

पृथङ्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य बस्तौ।
मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥ २ ॥

अपने अपने कारणोंसे कुपित भये जो वातादिक सब अलग दोष बस्तीमें कुपित होकर मूत्रके मार्गको पीडित करें, तब मनुष्यके बडे कष्टसे मूत्र उतरे ॥

वातिक मूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

तीव्रार्तिरुग्वंक्षणबस्तिमेढ्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात्।

वातके मूत्रकृच्छ्रसे वंक्षण (जंघा और ऊरु इनकी सन्धि), मूत्राशय और इंद्रिय इनमें पीडा और मूत्र बारम्बार थोडा २ उतरे॥

पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात्॥ ३॥

पैत्तिकमें पीला, कुछ लाल. पीडायुक्त, जलनके साथ बारम्बार कष्टसे मूत्र उतरे॥

कफमूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

बस्तेः सलिङ्गस्य गुरुत्वशोथौ मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे।

कफके मूत्रकृच्छ्रमें लिंग और मूत्राशय भारी हो, सूजन और मूत्र चिकना होय॥

सन्निपातमूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपाताद्भवन्ति तत्कृच्छ्रतमं हि कृच्छ्रम्॥ ४॥

सन्निपातके मूत्रकृच्छ्रमें सर्व लक्षण होते हैं। यह मूत्रकृच्छ्र कष्टसाध्य है॥

शल्यजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च।
मूत्रकृच्छ्रं तदाघाताज्जायते भृशदारुणम्॥
वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिङ्गानि लक्षयेत्॥ ५॥

मूत्र बहानेवाले स्रोत (मार्ग) शल्य (तीर आदि) से बिंधजायँ अथवा पीडित होयँ तो उस घातसे भयंकर मूत्रकृच्छ्र होय है, इसके लक्षण वातमूत्रकृच्छ्रके समान होयँ॥

मलके मूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः।
आध्मानं वातसङ्गं च मूत्रसङ्गं करोति च॥ ६॥

मल (विष्ठा) के अवरोध होनेसे वायु विगुण (उलटा) होकर अफरा वात-शूल और मूत्रनाश करे तब मूत्रकृच्छ्र प्रगट होय॥

अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र।

अश्मरीहेतु तत्पूर्वं मूत्रकृच्छ्रमुदाहरेत्॥ ७॥

पथरीके योगसे जो मूत्रकृच्छ्र होय उसको पथरीका मूत्रकृच्छ्र कहते हैं॥

शुक्रजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

शुक्रे दोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधारिते।
सशुक्रं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्वस्तिमेहनशूलवान् ॥ ८ ॥

दोषोंके योगसे शुक्र (वीर्य) दुष्ट होकर मूत्रमार्गमें गमन करे, तब उस मनुष्यके मूत्राशय और लिङ्ग इनमें शूल होय और मूतते समय मूत्रके सङ्ग वीर्य पतन होय ॥

अश्मरी और शर्करा इनके साम्य और अवान्तरभेद।

अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसम्भवलक्षणे। विशेषणं शर्करायाः शृणु कीर्त्तयतो मम ॥ ९ ॥ पच्यमानाऽश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना। विमुक्तकफसन्धाना क्षरन्ती शर्करा मता ॥ १० ॥ हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षावग्निश्च दुर्बलः। तया भवति मूर्च्छा च मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् ॥ ११ ॥

अश्मरी (पथरी) और शर्करा इन दोनोंकी संप्राप्ति और लक्षण समान है परन्तु इनमें थोडासा भेद है उसको कहता हूं सुनो, पित्तसे पकनेवाली और वायुसे शुष्क होनेवाली ऐसी पथरी कफसंबन्धी न होय, तब मूत्रके मार्गसे रेतके समान झरने लगे, उसको शर्करा कहते हैं। उस शर्करायोगसे हृदयमें पीडा, कम्प, कूखमें शूल, मन्दाग्नि, मूर्च्छा और भयंकर मूत्रकृच्छ्र ये रोग होयँ ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां मूत्रकृच्छ्रनिदानं समाप्तम् ॥

अथ मूत्राघातनिदानम्।

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश।
प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकादयः ॥ १ ॥

मूत्रके वेग रोकनेसे (आदिशब्दसे मल शुक्रादि वेग रोकना और रूक्ष भोजन आदि जानना) कुपित भये दोषोंसे वातकुण्डलिकादि तेरह प्रकारके मूत्राघातरोगको करे ॥

वातकुण्डलिकाके लक्षण।

रौक्ष्याद्वेगविघाताद्वा वायुर्वस्तौ सवेदनः।

मूत्रमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः ॥ २ ॥
मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं संप्रवर्तते ।
वातकुण्डलिकां तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम् ॥ ३ ॥

रूखे पदार्थ खानेसे अथवा मलमूत्रादिवेगोंके धारण करनेसे कुपित भई जो वायु सो बस्ती (मूत्राशय) में प्राप्त हो पीडा करे और मूत्रसे मिलकर मूत्रके वेगको विगुण (उलटा) करके वहां आय कुण्डलके आकार (गोलाकार) मूत्राशयमें विचरे तब मनुष्य उस वातसे पीडित हो मूत्रको बारंबार थोडा थोडा पीडाके साथ त्याग करे, इस दारुण व्याधिको वातकुण्डलिकारोग कहते हैं ॥

अष्ठीलाके लक्षण ।

आध्मापयन्बस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोन्नताम् ।
कुर्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलां मूत्रमार्गावरोधिनीम् ॥ ४ ॥

बस्ति (मूत्राशय) और गुदा इनमें यह वायु अफरा करे तथा बस्ति और गुदाकी वायुको रोककर चञ्चल और उन्नत (ऊंची) ऐसी अष्ठीला (पत्थरकी पिण्डीके सदृश) को प्रगट करे, यह मूत्रके मार्गको रोकनेवाली और भयंकर पीडा करनेवाली है ॥

वातबस्तिके लक्षण ।

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः ।
निरुणद्धि मुखं तस्य बस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः ॥ ५ ॥
मूत्रसङ्गो भवेत्तेन बस्तिकुक्षिनिपीडितः ।
वातबस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥ ६ ॥

जो मनुष्य अड (जिद्द) से मूत्रबाधाको रोके उसके बस्ति (मूत्राशय) का वायु बस्तिके मुखको बन्द करदे तब उसका मूत्र बंद होजाय और वह वायु बस्तिमें और कूखमें पीडा करे, उस व्याधिको वातबस्ति ऐसे कहते हैं । यह बडे कष्टसे साध्य होय ॥

मूत्रातीतके लक्षण ।

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्तते ।
मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥ ७ ॥

मूत्रको बहुत देर रोकनेसे पीछे वह जल्दी नहीं उतरे । मूतते समय धीरे धीरे उतरे इस रोगको मूत्रातीत कहते हैं ॥

मूत्रजठरके लक्षण ।

मूत्रस्य वेगेऽभिहते तदुदावर्तहेतुकः । अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद् भृशम् ॥ ८ ॥ नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम् । तन्मूत्रजठरं विद्यादधोबस्तिनिरोधजम् ॥ ९ ॥

मूत्रके वेग रोकनेसे मूत्रवेगधारणजनित, उदावर्त्तका कारणभूत ऐसी अपान वायु कुपित होकर पेट बहुत फूलजाय और नाभिके नीचे तीव्र वेदनासंयुक्त अफरा करे, अधोबस्तिका रोध करनेवाला ऐसे इस रोगको मूत्रजठर कहते हैं ॥

मूत्रोत्संगके लक्षण ।

बस्तौ वाप्यथवा नाले मणौ वा यस्य देहिनः ।
मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥ १० ॥
स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाथ नीरुजम् ।
विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः ॥ ११ ॥

प्रवृत्त भया मूत्र बस्तिमें अथवा शिश्न (लिंग) में अथवा शिश्नके अग्रभागमें अटक जाय और बलसे मूत्रको करे भी तो वादीसे बस्तिको फाडकर जो मूत्र निकले वह मंद मंद थोडा थोडा पीडाके साथ अथवा पीडारहित रुधिरसहित निकले ऐसे विगुणवायुसे उत्पन्नहुई इस व्याधिको मूत्रोत्संग कहते हैं ॥

मूत्रक्षयके लक्षण ।

रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ।
मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥ १२ ॥

रूखा भया अथवा श्रांत (थकगया) देह जिसका ऐसे पुरुषके बस्ति (मूत्राशय) में स्थित जो पित्त और वायु सो मूत्रको क्षय करे और पीडा तथा दाह होता है उसको मूत्रक्षय ऐसे कहते हैं ॥

मूत्रग्रन्थिके लक्षण ।

अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् ।
अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥ १३ ॥

बस्तिके मुखमें गोल स्थिर छोटीसी गांठ अकस्मात् होय उसमें पथरीके समान पीडा होय इस रोगको मूत्रग्रन्थि कहते हैं ॥

मूत्रशुक्रके लक्षण ।

मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम् ।
स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक्पश्चाद्वा प्रवर्तते ॥ १४ ॥
भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ।

मूत्रबाधाको रोकके जो मनुष्य स्त्रीसंग करे उसके वायु शुक्रको उडाय स्थानसे भ्रष्ट करे, तब मूतनेके पहिले अथवा मूतनेके पीछे शुक्र गिरे और उसका वर्ण राख मिले पानीके समान होय, उसको मूत्रशुक्र कहते हैं ॥

उष्णवातके लक्षण ।

व्यायामाध्वातपैः पित्तं बस्तिं प्राप्यानिलायुतम् ॥ १५ ॥
बस्तिं मेढ्रं गुदं चैव प्रदहेत्स्रावयेदधः ।
मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव च ॥
कृच्छ्रात्पुनःपुनर्जन्तोरुष्णवातं वदन्ति तम् ॥ १६ ॥

व्यायाम (दण्ड कसरत), अति मार्गका चलना और धूपमें डोलना इन कारणोंसे कुपितभया जो पित्त सो बस्तिमें प्राप्त हो वायुसे मिल बस्ति, लिंग और गुदा इनमें दाह करे और हलदीके समान अथवा कुछ रक्तसे युक्त वा लाल ऐसा मूत्रका स्राव बारम्बार कष्टसे होय, उसको उष्णवात रोग कहते हैं । यही रोग सुजाकके नामसे भाषामें बोला जाता है ॥

मूत्रसादके लक्षण ।

पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येतेऽनिलेन चेत् ।
कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत् ॥ १७ ॥
सदाहं रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेत्तु तत् ।
शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥ १८ ॥

पित्त अथवा कफ वा दोनों वायुकरके बिगडे हुए होयँ, तब मनुष्य पीला, लाल, सफेद, गाढा ऐसा कष्टसे मूते और मूतनेके समय दाह होय और जब वह मूत्र पृथ्वीमें सूख जाय तब गोरोचन, शंखका चूर्ण ऐसा वर्ण होय अथवा सर्व वर्णका होय इस रोगको मूत्रसाद कहे हैं ॥

विड्विघातके लक्षण ।

रूक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावर्त्तं शकृद्यदा ॥ १९ ॥
मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत विड्विसृष्टं तदा नरः ।
विड्गन्धं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातं विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

रूक्ष और दुर्बल पुरुषके शकृत् (मल) जब वायुकरके प्रेरित उदावर्तको प्राप्त हो तब वह मल मूत्रके मार्गमें आवे उस समय मनुष्य मूतने लगे तौ बडे कष्टसे मूत्र उतरे और उसके मूत्रमें विष्ठाकीसी दुर्गंध आवे, उसको विड्विघात कहते हैं ॥

बस्तिकुण्डलरोगके लक्षण।

द्रुताध्वलङ्घनायासैरभिघातात्प्रपीडनात् । स्वस्थानाद्बस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥ २१ ॥ शूलस्पन्दनदाहार्तो बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि । पीडितस्तु सृजेद्धारां संरम्भोद्वेष्टनार्तिमान् ॥ २२ ॥ बस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम् । पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः ॥ २३ ॥

जल्दी चलनेसे, लंघन करनेसे, परिश्रमसे, लकडी आदिकी चोट लगनेसे पीडासे बस्ति अपने स्थानको छोड ऊपर जाय मोटी होकर गर्भके समान कठिन रहे उससे शूल, कम्प और दाह ये होयँ । मूतकी एक एक बून्द गिरे, यदि बास्त जोरसे पीडित होय तो बडी धार पडे, वेगसे हटनेके समान पीडा होय। इस रोगको बस्तिकुण्डल ऐसे कहते हैं । यह शस्त्रके समान जल्दी प्राणनाशक और विषके समान कालांतरमें प्राणका नाशकर्त्ता भयंकर है । इसमें प्रायः वायु प्रबल है, मन्द बुद्धिवाले वैद्योंसे इसका निवारण (चिकित्सा) करना कठिन है ॥

इसको अन्य दोषोंके सम्बन्ध होनेसे जो लक्षण होते हैं उनको कहता हूँ--

तस्मिन्पित्तान्विते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता ।
श्लेष्मणा गौरवं शोथः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम् ॥ २४ ॥

वही बस्तिकुण्डल पित्तयुक्त होनेसे दाह और मूत्रका बुरा रंग होय और कफयुक्त होनेसे जडत्व, सूजन, मूत्र चिकना, गाढा, सफेद ऐसा होय ॥

साध्यासाध्यके लक्षण।

श्लेष्मरुद्धबिलो बस्तिः पित्तोदीर्णो न सिध्यति ।
अविभ्रान्तबिलः साध्यो न च यः कुण्डलीकृतः ॥ २५ ॥

कफ करके जिसका मुख बन्द होय ऐसी और पित्तकरके व्याप्त भई ऐसी बस्ति साध्य नहीं होय और जिस बस्तिका मुख खुला होय तथा कुण्डलीकृत होय सो साध्य नहीं है ॥

कुण्डलीभूतके लक्षण।

स्याद्बस्तौ कुण्डलीभूते तृण्मोहः श्वास एव च ॥ २६ ॥

बस्ति कुण्डलीभूत होनेसे प्यास मूर्च्छा और श्वास ये लक्षण होयँ ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्यदीपिकायां माथुरीभाषाटीकायां मूत्राघातनिदानं समाप्तम् ॥

अथाऽश्मरीरोगनिदानम् ।

वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजाऽपरा ।
प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्यः स्युर्यमोपमाः ॥ १ ॥

वात, पित्त, कफ इनसे ३, चौथी शुक्रसे अश्मरी (पथरी) रोग होय है यह पथरी विशेषकरके कफाश्रित है। " यमोपमा " कहिये अच्छी चिकित्सा न होय तो ये अवश्य प्राणनाशक हैं ॥

अश्मरीकी सम्प्राप्ति ।

विशोषयेद्बस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा ।
यदा तदाऽश्मर्युपजायते च क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥ २ ॥

जिस मनुष्योंका वायु बस्तिमें प्राप्त हुआ, शुक्रयुक्त अथवा पित्तयुक्त मूत्र अथवा कफको सुखावे तब उस स्थानमें पथरी प्रगट होती है, जैसे गऊके पित्तमें गोरोचन जमे है उसी प्रकार बस्तिमें वीर्यसे पथरी होय ॥

अश्मरीका पूर्वरूप ।

नैकदोषाश्रयाः सर्वा अश्मर्याः पूर्वलक्षणम् ।
बस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक्॥
मूत्रे बस्तसगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः ॥ ३ ॥

सब अश्मरी (पथरी) एक दोषके आश्रय नहीं हैं अर्थात् अनेक दोषाश्रित हैं बस्तिका फूलना, बस्तिके आसपास अत्यन्त पीडा होनी, मूत्रमें बकरेके पेशाबकीसी दुर्गन्ध आवे, मूत्रकृच्छ, ज्वर, अरुचि ये पथरीके पूर्वरूप जानने ॥

पथरीके सामान्य लक्षण ।

सामान्यलिङ्गं रुङ्नाभिसेवनीबस्तिमूर्धसु । विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गे निरोधिते ॥ ४ ॥ तद्व्यपायात्सुखं मेहेदच्छगोमेदकोपमम् । तत्संक्षोभात्क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत् ॥ ५ ॥

नाभि सेवनी (अण्डकोशके समीपका सीमनका भाग) और बस्तिका अग्रभाग इनमें शूल होय, पथरीके योगसे मूत्रमार्ग रुकनेसे मूत्रकी धार फटी निकले, पथरी मूत्रमार्गके पाससे हट जाय तौ मूत्र अच्छी रीतिसे उतरे और स्वच्छ गोमेद मणिके समान होय, अश्मरी (पथरी) के योगसे बस्तिमें घाव होनेसे रुधिर मिला मूत्र उतरे, और मूतते समय जोर करनेसे बडा क्लेश और पीडा होय ये सामान्य लक्षण जानने ॥

वातकी पथरीके लक्षण ।

तत्र वाताद् भृशं चार्तो दन्तान्खादति वेपते ।
मथ्नाति मेहनं नाभिं पीडयत्यनिशं क्वणन् ॥ ६ ॥
सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति विन्दुशः ।
श्यावा रूक्षाऽश्मरी चास्य स्याच्चिता कण्टकैरिव ॥ ७ ॥

वायुकी पथरीसे रोगी अत्यन्त पीडा करके व्याप्त होय, दांतोंको चबावे, कांपे, लिंगको हाथसे रगडे, नाभिको रगडे और रातदिन दुःखसे रोवे और मूत्र आनेके समय पीडा होनेके कारण अधोवायुका परित्याग करे, मूत्र बारम्बार टपक २ गिरे, उसके पथरीका रंग नीला और रूखा होय, उसके ऊपर कांटे होयँ ॥

पित्तकी पथरीके लक्षण ।

पित्तेन दह्यते बस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् ।
भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्ता पीता सिताऽश्मरी ॥ ८ ॥

पित्तकी पथरीके रोगीके बस्तिमें दाह होवे और खारसे जैसा दाह होय ऐसी वेदना होय, बस्तिके ऊपर हाथ धरनेसे गरम मालूम होय और भिलावेकी मींगीके समान होय, लाल, पीली, काली होय ॥

कफकी पथरीके लक्षण ।

बस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः ।
अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाथवा सिता ॥ ९ ॥

कफकी पथरीसे वस्तिमें सुई चुभनेकीसी पीडा होय, शीतलपना होय और पथरी बडी मुर्गीके अण्डेसमान, चिकनी और मद्य (दारू) के रंगकीसी अर्थात् कुछ पीली सफेद हुईसी होय ॥

यह कफकी पथरी बहुधा बालकोंके होती हैं सो कहे हैं—

एता भवन्ति बालानामेषामेव च भूयसा ।
आश्रयोपचयाल्पत्वाद्ग्रहणाहरणे सुखा ॥ १० ॥

पूर्वोक्त त्रिदोषज अश्मरी (पथरी) विशेषकरके बालकोंके होती है, भूयसा इस पदके कहनेसे त्रिदोषज अश्मरी बालकोंके अतिरिक्त बडोंके भी होती है, कारण उनका भारी मीठा शीतल चिकना आहार है और उनकी बस्ति छोटी तथा पुष्टता थोडी होय है, इसीसे वैद्योंको उसका चीरना फाडना काटना निकालना कठिन नहीं होय सो सुश्रुतने भी कहा है ॥

शुक्राश्मरीके लक्षण।

शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात् ॥ ११ ॥ स्थाना-
च्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः। शोषयत्युपसंहृत्य
शुक्रं तच्छुष्कमश्मरी ॥ १२ ॥ बस्तिरुक्कृच्छ्रमूत्रत्वं मुष्क-
श्वयथुकारिणी। तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विली-
यते ॥ १३ ॥ पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्नश्मर्येव च शर्करा।

शुक्राश्मरी पथरी यह शुक्र (वीर्य) के रोकनेसे बडे मनुष्योंको ही होती है। मैथुन करनेके समय अपने स्थानसे चलायमान होगया वह वीर्य उस समय मैथुन न करे तब शुक्र (वीर्य) बाहर नहीं निकले, भीतर ही रहे तब वायु उस शुक्रको उठाकर सुखा देता है। उसीको शुक्रजाश्मरी कहेते हैं। इस करिके अंडकोषोंमें सूजन, वस्तिमें पीडा और मूत्रकृच्छ्रता होती है। शुक्राश्मरीकी आदिमें लिंग और अंडकोष पेडु इनमें पीडा होती है। वीर्यके नाश होनेके कारण पथरीकी नाईं शर्करा उत्पन्न होती है ॥

पथरीशर्कराके उपद्रव।

अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे ॥ १४ ॥ निरेति
सह मूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते। मूत्रस्रोतःप्रवृत्ता सा सक्ता
कुर्यादुपद्रवान् ॥ १५ ॥ दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिशूल-
मथारुचिम्। पाण्डुत्वमुष्णवातं च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम् ॥ १६ ॥

वायु बस्तिमें अनुलोमगतिसे प्रवेश होय तौ वह शर्करा वायुकरके छोटी २ इकठी होकर मूत्रके साथ बाहर निकले, और यदि वायु प्रतिलोम होय तो मूत्रमार्गको रोक दे, यदि मूत्रमार्गमें प्राप्त होय तो मूत्रके बहनेवाले छिद्रोंको रोक दे, फिर इतने उपद्रवोंको प्रगट करे। दुर्बलता, ग्लानि, कृशता, कूखमें शूल, अरुचि, पाण्डुरोग, उष्णवात, प्यास, हृदयमें पीडा, वमन ये सब उपद्रव होयँ ॥

असाध्य लक्षण।

प्रशूननाभिवृषणं बद्धमूत्रं रुजान्वितम्।
अश्मरी क्षपयत्याशु शर्करा सिकतान्विता ॥ १७ ॥

जिसकी नाभि और वृषण सूजजाय, मूत्र उतरे नहीं, शूलसे पीडित होय ऐसे पुरुषके शर्करा और सिकतायुक्त पथरी प्राणनाश करै ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषा-
टीकायामश्मरीनिदानं समाप्तम् ॥

माधवनिदानम् ।

भाषाटीकासमेतम् ।

उत्तर भाग ।

अथ प्रमेहनिदानम् ।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि ।
नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ १ ॥

बैठनेके सुखसे, निद्राके सुखसे अथवा स्वप्नसुख कहिये स्वप्नमें स्त्रीप्रसंग आदि सुखसे, दही, ग्रामके संचारी जीव भेड बकरी आदि, जलके संचारी जीव मच्छी कछुआ आदि, अनूप (जलसमीप) के रहनेवाले जीव हंस चकवा आदि प्राणियोंके मांसरस, दूध, नया अन्न और नया जल तथा शर्करा आदि गुडके पदार्थ अथवा गुडके विकार ये और जितने कफकारक पदार्थ हैं सो सब प्रमेह होनेके कारण हैं ॥

कफपित्तवातप्रमेहोंकी क्रमसे सम्प्राप्ति ।

मेदश्च मांसं च शरीरजं च क्लेदं कफो बस्तिगतः प्रदूष्य ।
करोति मेहान्समुदीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि ॥ २ ॥
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून्संदूष्य मेहान्कुरुतेऽनिलश्च ।
साध्याः कफोत्था दश पित्तजाः षड् याप्या न साध्याः पवनाच्चतुष्काः॥
समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमं ते ॥ ३ ॥

बस्ति (मूत्रस्थान) गत कफ मेद मांस और शरीरके क्लेदको बिगाडकर प्रमेहको उत्पन्न करे है, उसी प्रकार गरम पदार्थसे पित्त कुपित होकर पूर्वोक्त मेद मांसको बिगाडकर प्रमेहको उत्पन्न करे है और लंघन रूक्षादि पदार्थोंके सेवनसे कुपित भया वायु दोष (पित्तकफ) के क्षीण होनेसे धातु (वसा मज्जा ओज लसीका) को ईंचकर वस्तिके मुखपर लायकर प्रमेहको प्रगट करे है । कफसे प्रगट दश प्रमेह साध्य हैं । कारण इसका यह है कि, कफ दोष और मेदःप्रभृति दूष्य इनपर कटुतिक्तादि क्रिया समान है अर्थात् कटु तिक्तादिकोंसे विकृत कफ तथा मेद मांसादि शांत होते हैं । इस रोगमें रोगका ही प्रभाव ऐसा है कि, इसमें तुल्य[1] दूष्यको साध्य कहा है और प्रमेहके विना और रोगोंको अतुल्य (असमान

---

१ ज्वरे तुल्यर्तुदोषत्वं प्रमेहे तुल्यदूष्यता । रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् ॥

दूष्यत्व साध्य) का हेतु होय है । पित्तकी छः प्रमेह विषम चिकित्सा करनेसे याप्य होय हैं अर्थात् पित्त हरण करनेवाले जो शीत मधुर आदि द्रव्य वह मेदको बढानेवाले हैं और मेद हरणकर्ता उष्ण कटुकादि द्रव्य वह पित्तकर्त्ता है ऐसी क्रिया विषम है । वादीसे प्रगट चार प्रमेह मज्जादि गम्भीर धातुके आकर्षण करनेसे अत्यन्त पीडा कर्त्ता है और इनकी (महात्यय) बडी कठिन क्रिया है । कोई कोई चकारसे विषमक्रिया ही कहते हैं इसीसे ये चार असाध्य हैं ॥

प्रमेहका दोषदूष्यसंग्रह ।

कफः सपित्तं पवनश्च दोषा मेदोऽस्रशुक्राम्बुवसालसीकाः[1] ।
मज्जारसौजः पिशितं च दूष्याः प्रमेहिनां विंशतिरेव मेहाः ॥ ४ ॥

कफ पित्त और वादी ये दोष और मेद रुधिर शुक्र जल मांस स्नेह (चर्बी) लसीका (मांसका जल) मज्जारस ओज और मांस ये दूष्य जानने । इन दोष और दूष्य दोनोंसे बीस प्रकारके प्रमेह होते हैं ॥

प्रमेहका पूर्वरूप ।

दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः ।
दाहश्चिक्कणता देहे तृट्श्वासश्चोपजायते ॥ ५ ॥

दांतोंमें आदिशब्दसे जिह्वा तालु आदिका ग्रहण जानना इनमें मैल बहुत रहे, हाथ पैरमें दाह, अङ्गका चिकनापना, प्यास, श्वास, चकारसे केशों (बालों) का आपसमें लिपट जाना और नखोंका बढना ये प्रमेहके पूर्वरूप होते हैं ॥

सामान्य लक्षण ।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता ॥ ६ ॥

बहुत और गाढा मूत्र उतरे ये प्रमेहके सामान्य लक्षण हैं ।

प्रमेहके कारण ।

दोषदूष्यविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ।
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ॥ ७ ॥

दोष और दूष्य इनके भेद न होनेसे परन्तु दोष और दूष्य इनके संयोगभेदसे मूत्र वर्णादि भेद करके प्रमेहमें भेद होते हैं । दश छः चार इत्यादिक दोष (वात पित्त कफ) दूष्य (मांस मेद मज्जादि) जैसे सफेद पीला काला तांबेके रंगका और श्याम इन पांच रंगोंके संयोग करनेसे पिंगल पाटलादि अनेक वर्णभेद होते हैं इसी प्रकार दोषादिकोंके संयोगसे नानाप्रकारके प्रमेह होते हैं ॥

---

१ यत्तु मांसत्वगन्तरे उदकं तल्लसीकाशब्दं लभते ।

संयोग भेदकी कैसे प्रतीति हो ऐसे कोई पूछे तो उसके वास्ते कहते हैं–मूत्रके वर्णादिभेदसे समान कारणोंके भेद कल्पना करने चाहिये जैसे–घट (घडा) बनानेके समय मृत्तिकादि कारण सामग्रीमें भेद नहीं है परन्तु कुम्भकारादि (कुम्हार आदि) प्रयत्नभेद करके घडा सरवा मटकना आदि अनेक जातिभेद हो जाते हैं और यह तो तत्तत् (उन उन) आहारादिकोंका जो अदृष्ट फल है वेही संयोगभेदके हेतु हैं॥

कफकी १० प्रमेहके लक्षण।

अच्छं बहु सितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम्। मेहत्युदकमेहेन किंचिदाविलपिच्छिलम्॥८॥ इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः। सान्द्रीभवेत्पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति॥९॥ सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम्। संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम्॥१०॥ शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति। मूत्राणून्सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान्॥११॥ शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम्। शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति॥ लालातन्तुयुतं मूत्रं लालमेहेन पिच्छिलम्॥१२॥

१–उदकप्रमेहकरके स्वच्छ बहुत सफेद शीतल गन्धरहित पानीके समान कुछ गाढा और चिकना मूते है। २–इक्षुप्रमेहसे ईखके रससमान अत्यन्त मीठा ऐसा मूत्र होय। ३–सांद्रप्रमेहसे रात्रिमें पात्रमें धरनेसे जैसा होवे ऐसा मूत्र होय। ४–सुराप्रमेहसे–दारूके समान ऊपर निर्मल और नीचे गाढा ऐसा मूते। ५–पिष्टप्रमेहसे पिसे चावलोंके पानीसमान सफेद और बहुत मूते तथा मूतते समय रोमांच होय। ६–शुक्रप्रमेहसे शुक्र (वीर्य) के समान अथवा शुक्रमिला मूत्र होय। ७–सिकतामेहसे मूत्रके कण और बालूरेतके समान मलके रवा गिरे। ८–शीतमेहसे मधुर तथा अत्यन्त शीतल ऐसा बारबार बहुत मूते। ९–शनैर्मेहसे धीरे २ और मन्द मन्द मूते। १०–लालाप्रमेहसे लारके समान तारयुक्त और चिकना मूत्र होय है॥

पित्तकी ६ प्रमेहके लक्षण।

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत्॥१३॥ नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मषीनिभम्। हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं दहेत्॥१४॥ विस्रं माञ्जिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम्। विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः॥१५॥

११–क्षारप्रमेहसे खारी जलके समान गन्ध वर्ण रस और स्पर्श ऐसा मूत्र होवा है। १२–नीलप्रमेहसे नीले रंगका अर्थात पपैया पक्षीके पंखके सदृश मूते।

१३—कालप्रमेहसे स्याईके समान काला मूते । १४—हारिद्रप्रमेहसे तीक्ष्ण हलदीके समान और दाहयुक्त मूते। १५—मांजिष्ठप्रमेहसे आम दुर्गंध और मंजीठके समान मूते। १६—रक्तप्रमेहसे दुर्गंधयुक्त गरम खारी और रुधिरके समान लाल मूत्र करे ॥

वातकी ४ प्रमेहके लक्षण ।

वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः । मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ कषायमधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहं वदेद् बुधः । हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् ॥ सालसीकं विबद्धं च हस्तिमेही प्रमेहति ॥ १७ ॥

१७—वसाप्रमेही वसा (चर्वी) युक्त अथवा वसाके समान मूते । १८—मज्जाप्रमेही मज्जाके समान अथवा मज्जा मिला बारम्बार मूते । १९—क्षौद्रप्रमेही कसैला मीठा और चिकना ऐसा मूते । २०—हस्तिप्रमेही मस्त हाथीके समान निरन्तर वेगरहित जिसमें तार निकले और ठहर ठहरके मूते ॥

कफप्रमेहके उपद्रव ।

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्ज्वरः कासः सपीनसः ।
उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥ १८ ॥

अन्नका परिपाक न होय, अरुचि, वमन, ज्वर, खांसी, पीनस ये कफप्रमेहके उपद्रव हैं ॥

पित्तप्रमेहके उपद्रव ।

बस्तिमेहनयोः शूलं मुष्कावदरणं ज्वरः ।
दाहस्तृष्णाम्लिकामूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥ १९ ॥

बस्ति और लिंगमें पीडा होय, अण्डकोशोंका पककर फटना, ज्वर, प्यास, खट्टी डकार, मूर्च्छा और पतला दस्त होय ये पित्तप्रमेहके उपद्रव हैं ॥

वातप्रमेहके उपद्रव ।

वातजानामुदावर्तकण्ठहृद्ग्रहलोलताः ।
शूलमुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥ २० ॥

उदावर्त, गला, हृदय इनका रुकना, लोलता (सर्वरसभक्षणेच्छा), शूल, निद्रानाश, शोष, सूखी खांसी, श्वास ये वातप्रमेहके उपद्रव हैं ॥

प्रमेहके असाध्य लक्षण ।

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेव च ।
पिडिकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ २१ ॥

ऊपर कहि आये अविपाकादि उपद्रव वे सब होंय, जिसके मूत्रका स्राव बहुत हुआ होय, शराविका आदि जो पिडिका आगे कहेंगे वे होयँ, रोगका अंगमें प्रवेश होय ऐसे लक्षण होनेसे वह प्रमेह मनुष्यको मार डाले ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

जातः प्रमेही मधुमेहिनो वा न साध्यरोगः स हि बीजदोषात् ।

मधुमेही पुरुषसे उत्पन्न भया जो प्रमेहवान् पुरुषका रोग वह बीजदोषके कारणसे साध्य नहीं होय । इस जगह मधुमेहशब्दसे साधारण प्रमेह जानना । इस जगह भी मधुकोशटीकावालेने मधुमेहशब्दपर बहुतसा शास्त्रार्थ लिखा है ॥

कुलपरंपरागत अन्यविकारोंका असाध्यत्व कहते हैं-

ये चापिकेचित्कुलजा विकाराभवन्ति तांस्तान्प्रवदन्त्यसाध्यान्॥२२

जो कोई कुष्ठादिक कुलपरंपरागत विकार हैं वे सब असाध्य हैं ॥

सर्व प्रमेहकी उपेक्षा करनेसे मधुमेह होता है, उसको कहते हैं-

सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः ।
मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि ॥ २३ ॥

सब प्रमेह औषधके विना काल करके मधुमेहत्वको प्राप्त होते हैं, तब वे असाध्य हो जाते हैं । धातुक्षय और आवरण इनसे कुपित भयी वायु मधुमेहका हेतु होती है॥

मधुमेहे मधुसमं जायते स किल द्विधा ।
क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा ॥ २४ ॥

मधुमेहमें मूत्र मधु (शहद) के समान होय है, सो दो प्रकारका है, एक जो धातुक्षय होनेसे वायु कुपित होकर होय और दूसरा दोषों करके पवनका मार्ग आवृत (ढकने) करके होय है ॥

आवरणके लक्षण ।

आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् ।
क्षीणः क्षणात्पुनः पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥ २५ ॥

आवृत वायुसे प्रगट मधुमेह जिस पित्तादि दोष करके आच्छादित होय उसके लक्षण अकस्मात् दीखें, क्षणभरमें क्षीण होय, क्षणमें पूर्ण होय वह कष्टसाध्य जानना॥

मधुमेहशब्दकी प्रवृत्ति विषय निमित्त ।

मधुरं यच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति ।
सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः ॥ २६ ॥

प्रमेहोंमें रोगी प्रायशः मधु (शहद) के समान मीठा मूते और सब शरीरको मीठा करदे इसीसे सर्व प्रमेहको मधुप्रमेह संज्ञा दीनी है और अमृतसागरमें जो छः प्रमेह आत्रेयके मतसे लिखे हैं वे प्रमाणरहित हैं और प्रसिद्धमें भी प्रमेह बीस प्रकारके हैं इसीसे हमने छोडदीने हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीभाषाटीकायां
प्रमेहनिदानं समाप्तम् ॥

अथ प्रमेहपिडिकानिदानम् ।

शराविका कच्छपिका जालनी विनताऽलजी । मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका ॥ १ ॥ विद्रधिश्चेति पिडिकाः प्रमेहोपेक्षया दश । सन्धिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥२॥

प्रमेहकी उपेक्षा करनेसे शराविकादि दश पिडिका सन्धि मर्म और मांसल ठिकानोंमें होती हैं ॥

सबके लक्षण ।

अन्तोन्नता च तद्रूपा निम्नमध्या शराविका । सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥ ३ ॥ जालनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता । अवगाढरुजोत्क्लेदा पृष्ठे वाप्युदरेऽपि वा ॥ ४ ॥ महती पिडिका नीला सा बुधैर्विनता स्मृता । रक्ता सिता स्फोटवती दारुणा त्वलजी भवेत् ॥ ५ ॥ मसूरदलसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका । गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा च सर्षपी ॥६॥ महत्यल्पाचिता ज्ञेया पिडिका चापि पुत्रिणी । विदारीकन्दवद्वृत्ता कठिना च विदारिका ॥ विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका तु सा ॥ ७ ॥

१ शराविका—यही पिटिका ऊपरके भागमें ऊंची और मध्यमें बैठीसी होय जैसा मिट्टीका शराव होय है ऐसी होय है । २ कच्छपिका—ये कछुएके पीठके समान

कुछ दाहयुक्त ऐसी होय है। ३ जालनी–ये तीव्र दाहकरके संयुक्त और मांसके जालसे व्याप्त होय है। ४ विनता–ये फुन्सी पीठमें अथवा पेटमें होय है इसकी पीडा बहुत होय, ठंडी होय तथा बडी और नीले रंगकी होय है। ५ अलजी–लाल काली बारीक फोडोंकरके व्याप्त भयंकर होय है। ६ मसूरिका–मसूरकी दालके समान बडी होय है। ७ सर्षपिका–सफेद सरसोंके समान बडी होय है। ८ पुत्रिणी–ये बीचमें एक बडी फुन्सी होय उसके चारों ओर छोटी २ फुन्सी और होय उसको पुत्रिणी कहते हैं। ९ विदारिका–यह विदारीकंदके समान गोल और करडी होय है। १० विद्रधिका–यह विद्रधिके लक्षण करके युक्त होय है। भोज और सुश्रुतके मतसे नौ पिडिका हैं और चरकके मतसे सात ही हैं ॥

पिटिकाकी उत्पत्ति।

ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः ॥ ८ ॥
विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः।
तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः ॥ ९ ॥

जो प्रमेह जिस दोषकरके उल्वण होय है तिसकरके तिसी दोषके उल्वणकरके पिटिका होती है। ये पिटिका प्रमेहके विना दुष्ट मेदके होनेसे भी प्रगट होती है। जब-तक इनकी गांठ नहीं बन्धे तबतक नहीं दीखें। 'ये यन्मयाः स्मृता मेहाः' इस पदके ऊपर मधुकोशवालेने शास्त्रार्थ लिखा है, ग्रन्थ बढनेके भयसे हमने नहीं लिखा ॥

असाध्यपिटिकाके लक्षण।

गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः।
सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिडिकाः परिवर्जयेत् ॥ १० ॥

गुदामें हृदयमें शिरमें कन्धेमें पीठमें और मर्मस्थानमें उठी पिटिका और उप-द्रवयुक्त हो तथा दुर्बलाग्नि पुरुषकी पिटिका त्याज्य है। पिटिकाके उपद्रव चरकने कहे हैं सो इस प्रकार–"तृट्कासमांससंकोचमोहहिक्कामदज्वराः। विसर्पमर्मसंरोधाः पिटिकानामुपद्रवाः ॥" इसका अर्थ सुगम है इसीसे नहीं लिखा। **शंका**–क्यों जी ! स्त्रियोंको प्रमेह क्यों नहीं होय ? **उत्तर**–इसका कारण और ग्रन्थोंमें इस प्रकार लिखा है–" रजःप्रसेकान्नारीणां मासि मासि विशुध्यति। कृत्स्नं शरीरं दोषाश्च न प्रमेहन्त्यत स्त्रियः ॥ " स्त्रियोंके महीनेके महीने रज बहा करै है इसीसे सर्व देह और दोष शुद्ध होते हैं इसीसे स्त्रियोंको प्रमेह होना कहीं नहीं देखा, यह भी एक बलवान् कारण है और सोमादिक रोग होते हैं। कदाचित कोई कहे कि और रोगका होना

असम्भव है तो यह केवल झगडेका स्थान है, इसका किसीने यथार्थ निर्णय नहीं करा । प्रमेहनिवृत्तिके लक्षण सुश्रुतमें कहे हैं, यथा-" प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम् । विशदं कटु तिक्तं च तदारोग्यं प्रचक्षते ॥ "

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां प्रमेहपिटिकानिदानं समाप्तम् ॥

अथ मेदोनिदानम् ।

मेदका कारण और सम्प्राप्ति ।

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः ।
मधुरोऽन्नरसः प्रायः स्नेहान्मेदो विवर्द्धते ॥ १ ॥
मेदसाऽऽवृतमार्गत्वात्पुष्यन्त्यन्ये न धातवः ।
मेदस्तु चीयते यस्मादशक्तः सर्वकर्मसु ॥ २ ॥

दंड कसरतके न करनेसे, दिनमें सोनेसे और कफकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे ऐसी रीतिसे वर्त्तनेवाले पुरुषका अन्नरस केवल मधुर कहिये आमरूप हो स्नेहकरके मेदको बढावे । मेद करके मार्ग बन्द होनेसे अन्य धातु (हाड मज्जा वीर्य आदि) पुष्ट नहीं होते और मेद बढे तब वह पुरुष सर्व कर्म करनेको अशक्त होय ॥

मेदस्वीपुरुषके लक्षण ।

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसादनैः । युक्तः क्षुत्स्वेददुर्गन्धैरल्पप्राणोऽल्पमैथुनः ॥ ३ ॥ मेदस्तु सर्वभूतानामुदरेष्वस्थिषु स्थितम् । अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ ४ ॥

क्षुद्र श्वास " रूक्षायासोद्भवः " इत्यादि पिछाडी कहि आये सो तृषा मोह निद्रा अकस्मात् श्वासका रोग अंगग्लानि भूख पसीना और दुर्गन्धि इन लक्षणों-करके वह पुरुष युक्त होय, उसकी शक्ति घटजाय और मैथुन करनेमें उत्साह न होय । मेद यह सब प्राणिमात्रोंके उदर और हड्डियोंमें रहे इसीसे मेदवाले पुरुषका पेट बढा करता है ॥

मेदस्वीकी अवस्थाविशेष ।

मेदसावृतमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः । चरन्संधुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि ॥ ५ ॥ तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारं

चापि कांक्षति । विकारांश्चाश्नुते घोरान्कांश्चित्कालव्यतिक्रमात् ॥ ६ ॥ एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ । एतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावानलो यथा ॥ ७ ॥

मेदसे मार्ग रुकजानेसे कोठेमें पवनका सञ्चार विशेष होय तब अग्निको यह पवन बढावे, भोजनकिये आहारको तुरन्त शोषण करे, तब वह आहार शीघ्र पच कर फिर भोजनकी इच्छाको प्रगट करे और भोजन करनेमें कालका व्यतिक्रम होनेसे भयंकर वातके रोग उत्पन्न होय । यह अग्नि और वायु बडा उपद्रव करै है, जैसे दावानल (वन अग्नि) वनको जलावै है उसी प्रकार ये दोनों उस स्थूल (मोटे) पुरुषको जलाती है ॥

अत्यन्त मेद बढनेका परिणाम ।

मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः ।
विकारान्दारुणान्कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितम् ॥ ८ ॥

मेद अत्यन्त बढनेसे वायु आदि ये अकस्मात् भयंकर विकार (प्रमेह पिटिका ज्वर भगन्दर विद्रधि वातरोग इत्यादि) उत्पन्न करके शीघ्रही जीवनका नाश करैं ॥

स्थूललक्षण ।

मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः ।
अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ९ ॥

मेद और मांस ये अत्यन्त बढनेसे जिस पुरुषके कूले पेट और स्तन ये थलथल हले और उसके शरीरकी स्थूलता बढी होय अर्थात् जैसी चाहिये तैसी न होय तथा उत्साह (होशियारी) न रहे ऐसे मनुष्यको अतिस्थूल कहते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां मेदोनिदानं समाप्तम् ॥

अथ कार्श्यनिदानम् ।

प्रसंगवशासे कार्श्य (क्षीणता) रोगका निदान ग्रन्थान्तरसे लिखते हैं—

वातो रूक्षान्नपानानि लङ्घनं प्रमिताशनम् । क्रियातियोगः शोकश्च वेगनिद्राविनिग्रहः ॥ १ ॥ नित्यं रोगोऽरतिर्नित्यं व्यायामो भोजनाल्पता । भीतिर्धनादिचिन्ता च कार्श्यकारण-

मीरितम् ॥ २ ॥ क्रोधोऽतिमैथुनं चैव शुक्रव्याधिस्तथैव च ।
कार्श्यस्य हेतवः प्रोक्ताः समस्तैरपि तान्त्रिकैः ॥ ३ ॥

कुपित वायु, रूखा अन्न (चना कांगुनी सामकिया आदि) रूक्ष पान (औटाया जल आदि), लंघन, (थोडा भोजन), क्रियातियोग कहिये वमन विरेचनका बहुत होना, शोक (बन्धुवियोगादिक), मूत्र मल आदि वेगोंका रोकना, निद्राका रोकना, नित्य ही रोगी रहना, सर्वदा अरति होना, व्यायाम (दण्डकसरत) और मार्गका चलना आदि श्रम, अतिभय, धन आदिकी चिन्ता, क्रोध, अतिमैथुन, शुक्र, व्याधि (प्रमेहरोगादिक) ये सर्व कार्श्य (क्षीणता) होनेके कारण वैद्य कहते हैं ॥

कृश मनुष्यके लक्षण ।

शुष्कस्फिगुदरग्रीवाधमनीजालसन्ततिः ।
अस्थिशेषोऽतिकृशतः स्थूलपर्वा नरो मतः ॥ ४ ॥

जिसके कूले, पेट, गरदन और धमनी कहिये नाडियोंका जाल ये सब सूख जायँ तथा हड्डी सूख जायँ और पर्व कहिये जोड मोटे होयँ वह पुरुष कृश (लटा) कहाता है ॥

अतिकृशको वर्जनीय वस्तु ।

व्यायाममतिसौहित्यं क्षुत्पिपासा महौषधम् ।
न कृशः सहते तद्वदतिशीतोष्णमैथुनम् ॥ ५ ॥

व्यायाम (दण्डकसरत) का करना, अतिसौहित्य (अतितृप्त होवे तबतक भोजन), भूख, प्यास, उत्कट औषध तथा अतिशीतलता, अतिगरमी और अतिमैथुन इनको कृश मनुष्य नहीं सह सके हैं इसीसे इनको त्याग दे ॥

अतिकृशके जो रोग होते हैं उनको कहते हैं–

प्लीहा कासः क्षयः श्वासगुल्मार्शांस्युदराणि च ।
भृशं कृशं प्रधावन्ति रोगाश्च ग्रहणीमुखाः ॥ ६ ॥

जो मनुष्य ज्वरादि रोगोंसे कृश होय अथवा वातरूक्षान्नपानादिकोंसे कृश होय और वह कुपथ्य करे तौ इतने रोग होयँ जो विदाही और अभिष्यन्दी वस्तु खाय तौ प्लीहा (तापतिल्ली) होय और खटाई खाय तौ खांसी होय और अतिमैथुन करे तौ क्षयीका रोग होय और व्यायाम शीतल भोजनपानादिक करे तौ श्वास रोग होय, रूखा अन्नपान कडुवा खट्टा भक्षण और शीतल भारी चिकना आदिका सेवन करे तो गुल्म (गोला) होय और अर्श (बवासीर) कारक पदार्थ सेवनसे बवासीर होय । इसी प्रकार उदररोग संग्रहणी आदि रोग होते हैं ॥

अब कहते हैं कि, कोई कृश भी बलवान् होय हैं इसमें क्या हेतु है ?–

आधानसमये यस्य शुक्रभागोऽधिको भवेत् ।
मेदोभागस्तु हीनः स्यात्स कृशोऽपि महाबलः ॥ ७ ॥

गर्भ रहनेके समय शुक्रका भाग अधिक होय और मेदका भाग थोडा होय तो मेद थोडे होनेसे तो कृश होय और शुक्राधिक्य होनेसे बलवान् होय ॥

कोई स्थूल होनेपर निर्बल होता है इसका कारण कहते हैं–

मेदसोंऽशोऽधिको यस्य शुक्रभागोऽल्पको भवेत् ।
स स्निग्धोऽपि सुपुष्टोऽपि बलहीनो विलोक्यते ॥ ८ ॥

गर्भ रहते समय मेदका भाग अधिक होय और शुक्रका भाग थोडा होय तो वह पुष्ट भी है परन्तु बलहीन होता है ॥

यथा पिपीलिका स्वल्पा यथा च वरटी बलात् ।
स्वतश्चतुर्गुणं भारं नीत्वा गच्छति सम्मुखम् ॥ ९ ॥

दृष्टान्त–जैसे पिपीलिका (चैंटी) आप अतिकृश है और खानेकी वस्तु दाल चावल आदि भारी भी हैं परन्तु उनको खींचकर बिलमें लेजाती है और वरटी (पीली झांखी) झींगर आदि आपसे चौगुना भारी भी हो परन्तु खींचकर अपने स्थानमें लेजाती है इसी प्रकार बलवान् पुरुष जानना ॥

असाध्यकार्श्य कहते हैं–

स्वभावात्कृशकायो यः स्वभावादल्पपावकः ।
स्वभावादबलो यश्च तस्य नास्ति चिकित्सितम् ॥ १० ॥

जिसका स्वतः स्वभावसे कृश शरीर है और जिसकी स्वभावसे मन्दाग्नि है और जो स्वभावसे बलहीन है उसकी चिकित्सा नहीं है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां कार्श्यरोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथोदररोगनिदानम् ।

अग्निका दुष्ट होना यही उदररोगका विशेषकरके कारण है–

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च ।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसञ्चयात् ॥ १ ॥

---

१ तेषामग्निबले हीने कुप्यंति पवनादयः । इति । २ तात्स्थ्यतद्धर्मताभ्यां च तत्समीपतयापि च । तत्साहचर्याच्छब्दानां वृत्तिरेषा चतुर्विधा॥ इति । ३अतिसंचितदोषाणां पापकर्म च कुर्वताम् । उदराण्युपजायन्ते मन्दाग्नीनां विशेषतः ॥

अग्नि मन्द होनेसे सब रोग होते हैं और उदर रोग तो विशेषकरके होय है। कारण यह है कि अग्निमांद्य यह त्रिदोषजनक है और अजीर्णसे, मलिन अन्न (विरुद्ध-अध्यशनादिक) से और मल (दोष तथा पुरीषादिक) इनके संचयसे उदररोग होय है। इस जगह उदरशब्दकरके उदरस्थित रोग जानने, सो ग्रन्थान्तरमें लिखे हैं ॥

उदरकी सम्प्राप्ति ।

रुद्ध्वा[1] स्वेदाम्बुवाहीनि[2] दोषाः स्रोतांसि सञ्चिताः ।
प्राणाग्न्यपानान्संदूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥ २ ॥

वातादिदोष स्वेद (पसीना) बहनेवाली और जलको बहनेवाली नाडियोंके मार्गको रुद्ध (रोक) कर और वे दोष बढकर प्राणवायु, अग्नि और अपानवायु इनको अत्यन्त दुष्ट कर मनुष्योंके उदररोग उत्पन्न करे हैं। उदररोगका पूर्वरूप सुश्रुतमें लिखा है–" तत्पूर्वरूपं बलवर्णकांक्षा वलीविनाशो जठरे तु राज्यः। जीर्णापरिज्ञानविदाहवत्यो बस्तौ रुजः पादगतश्च शोथः ॥"

उदरके सामान्यरूप ।

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता ।
शोथः सदनमङ्गानां सङ्गो वातपुरीषयोः ॥
दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि ॥ ३ ॥

अफरा, चलनेकी शक्तिका नाश, दुर्बलता, मन्दाग्नि, सूजन, अंगग्लानि, वायुका तथा मलका रुकना, दाह, तन्द्रा ये लक्षण सब उदरमें होते हैं ॥

उदररोगकी संख्या ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः ।
संभवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिङ्गं पृथक्छृणु ॥ ४ ॥

पृथक् दोषोंसे अर्थात् वातसे, पित्तसे, कफसे, सन्निपातसे (सन्निपातोदर), प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर और जलोदर सब मिलाकर ८ भये । उनके लक्षण पृथक् पृथक् कहते हैं ॥

वातोदरके लक्षण ।

तत्र वातोदरे शोथः पाणिपन्नाभिकुक्षिषु ।
कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक्पर्वभेदनम् ॥ ५ ॥

---

१ स्रोतोरोधश्चात्र बाहिरेव न पुनरन्तः। यदुक्तं चरके–" स्वेदस्तु बाह्येषु स्रोतःसु प्रतिहतगतिस्तिर्यगवतिष्ठमानस्तदेवोदकमाप्यायाति " अतएवोदरपूर्णता अन्नरसेन भवति ।
२ स्वेदाम्बुवहानां स्रोतसां भेदानाह–स्वेदवहानां भेदोमूलं लोमकूपश्च, उदकवहानां स्रोतसां तालुमूलं क्लोम च ।

शुष्ककासोऽङ्गमर्दोऽधो गुरुता मलसंग्रहः ॥ ६ ॥
श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिह्रासवत् ।
सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णशिराततम् ॥ ७ ॥
आध्मातदृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च ।
वायुश्चात्र सरुक्छब्दो विचरेत्सर्वतो गतिः ॥ ८ ॥

वातोदरमें हाथ, पैर, नाभि और कूख इनमें सूजन होय, सन्धियोंका टूटना, तथा कूख, पसवाडे, पेट, कमर, पीठ इनमें पीडा, सूखी खांसी, अंगोंका टूटना, कमरसे नीचेके भागमें भारीपना, मलका संग्रह होना, त्वचा नख नेत्रादिकका काला लाल होना, पेट अकस्मात् (निमित्तके विना) बडा हो जाय, अथवा छोटा हो जाय, सुई चुभानेकीसी तथा नोचनेकीसी पीडा होय, पेटमें चारोंतरफ बारीक काली शिराओं (नाडियों) से व्याप्त होय, चुटकी मारनेसे फूली पखालके समान शब्द होय। इस उदरमें वायु चारों तरफ डोलकर शूल करे तथा गूँजे ॥

पित्तोदरके लक्षण।

पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता।
भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित् ॥ ९ ॥
पीतताम्रशिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते।
धूमायते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १० ॥

पित्तके उदररोगमें ज्वर, मूर्च्छा, दाह, प्यास, मुखमें कडुआट, भ्रम, अतिसार, त्वगादिक (नख नेत्र) इनमें पीलापना, पेट हरा होय, पीली तामेकी नाडियोंसे उदर व्याप्त हो, पसीना आवे, गरमीसे सब देहमें दाह होय, आंतोंसे धूँआंसा निकलता दीखे, हाथके स्पर्श करनेसे नरम मालूम हो, शीघ्र पाक होय अर्थात् जलोदरत्वको प्राप्त होय और उसमें घोर पीडा होय ॥

कफोदरके लक्षण।

श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं स्वापश्वयथुगौरवम् ।
निद्रोत्क्लेशोऽरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता ॥ ११ ॥
उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीततं महत् ।
चिराभिवृद्धिकठिनशीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥ १२ ॥

कफके उदररोगमें हाथ पैर आदि अंगोंमें शून्यता हो और जकड जाय, सूजन हो, अंग भारी हो जाय, निद्रा आवै, वमन होयगी ऐसी मालूम होय, अरुचि होय,

श्वास, खांसी होय, त्वचा नख नेत्रादिक सफेद हों पेट निश्चल चिकना सफेद नाडियोंसे व्याप्त हो, इनकी वृद्धि बहुत कालमें होय, पेट करडा और शीतल मालूम होय तथा भारी और स्थिर होय ॥

सन्निपातोदरके लक्षण ।

स्त्रियोऽन्नपानं नखरोममूत्रविडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः ।
यस्मै प्रयच्छंत्यरयो गरांश्च दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाद्वा ॥ १३ ॥
तेनाशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्युः सुघोरं जठरं त्रिलिंगम् ।
तच्छीतवाते भृशदुर्दिने वा विशेषतः कुप्याति दह्यते च ॥ १४ ॥
स चातुरो मूर्च्छति हि प्रसक्तं पाण्डुः कृशः शुष्यति तृष्णया च ।
दूष्योदरं कीर्तितमेतदेव–

खोटे आचरणवाली स्त्री जिस पुरुषको नख केश (बाल) मल मूत्र आर्तव (रजोदर्शनका रुधिर) मिला अन्नपान देय, अथवा जिसका शत्रु विष देवे अथवा दुष्टांबु (जहर मिला मछली तिनका पित्ता आदि औटा हुआ ऐसा जल) और दूषीविष (मन्दविष) इनके सेवन करनेसे रुधिर और वातादिक दोष शीघ्र कुपित होकर अत्यन्त भयंकर त्रिदोषात्मक उदररोग उत्पन्न करे हैं, वे शीतकालमें अथवा शीतल पवन चले उस समय, अथवा जिस दिन वर्षाका झड लगे उस दिन विशेष करके कोपको प्राप्त हो और दाह होय (इसका कारण यह है कि, उस समय दूषीविषका कोप होय है) वह रोगी निरन्तर विषके संयोगसे मूर्च्छित होय देहका पीला वर्ण तथा कृश होय और परिश्रम करनेसे शोष होय, प्यास होय तो इसको दूष्योदर कहते हैं ॥

प्लीहोदरके लक्षण ।

–प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ १५ ॥
विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च ।
प्लीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धौ प्लीहोत्थमेतज्जठरं वदन्ति ॥ १६ ॥
तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र ।
मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः ॥ १७ ॥

---

१ यदुक्तम्–जीर्णं विषघ्नोषधिभिर्हतं वा दावाग्निना वाऽऽतपशोषितं वा ।
स्वभावतो वा गुणविप्रहीणं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥ इति ॥

१ एतदेव सन्निपातोदरं दूष्योदरं कीर्तितं न पुनरधिकम् इत्यर्थः । रक्तं दूष्यं दूषयित्वा भवतीति दूष्योदरं किंवा परस्परं दूषयन्तीति दोषा एव दूष्यास्तैः कृतमुदरम् दूष्योदरम् ॥

अब प्लीहोदरके लक्षण कहता हूँ तू सुन। विदाही (वंशकरीरादि अर्थात् दाह करनेवाली) और अभिष्यन्दी (दध्यादि) अर्थात् स्रोत (छिद्र) रोकनेवाली ऐसे अन्न निरन्तर सेवन करनेवाले पुरुषके अत्यन्त दुष्ट भये जो रुधिर और कफ बढकर प्लीहा (तापतिल्ली) को बढावें इस उदरको प्लीहोत्थ उदर कहते हैं, यह बाई-तरफ बढता है । इस अवस्थामें रोगी बहुत दुःख पाता है. देहमें मन्दज्वर होय. मन्दाग्नि होय तथा कफ पित्तोदरके लक्षण इसमें मिलते हैं, बल क्षीण हो अत्यन्त पीला वर्ण होय ॥

यकृद्दाल्युदरके लक्षण।

सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रदुष्टे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव ॥ १८ ॥

दहने तरफ जो यकृत् कहिये कलेजा है वह दुष्ट कहिये रोगके होनेसे प्लीहोदरके समान उदर होय उसको यकृद्दाल्युदर कहते हैं। दोषोंकरके यकृतका भेद होय है इसीसे यकृद्दालि उदर कहते हैं ॥

इसमें दोषोंका सम्बन्ध कहते हैं-

उदावर्तरुजानाहैर्मोहतृड्दहनज्वरैः ।
गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान्क्रमात् ॥ १९ ॥

उदावर्त्त, शूल, अफरा इनसे वायु, मोह, प्यास, ज्वर इनसे पित्त और भारीपना, अरुचि, कठिनता इनसे कफ ऐसे क्रमपूर्वक दोषोंका सम्बन्ध जानना ॥

बद्धगुदोदरके लक्षण।

यस्यांत्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्मभिर्वा पिहितं यथावत् ।
संचीयते तस्य मलः सदोषः शनैः शनैः संकरवच्च नाड्याम् ॥ २० ॥
निरुध्यते तस्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादतिचाल्पमल्पम् ।
हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति ॥ २१ ॥

जिस पुरुषकी आंत उपलेप कहिये गाढे अन्न करके (शाकादिक अथवा बाल तथा बारीक पत्थरके टुकडे करके) बद्ध हो जाय, उस पुरुषका दोषयुक्त मल धीरे धीरे आंतडीकी नलीमें होकर जैसे बुहारीसे झारा तृण धूर आदि क्रमसे बढै है इसी प्रकार बढे और वह मल बडे कष्टसे गुदद्वारा थोडा थोडा निकलै, जब मलका निकलना बन्द हो जाय तब मल दोषोंकरके गुदासे ऊपर आवै इसीसे उदर बढै है अर्थात् हृदय और नाभिके मध्य अन्नपाकस्थानकी वृद्धि हो इसीसे इस उदरको

---

१ यकृद्दालयति दोषैर्भेदयतीति यकृद्दाल्युदरम्।

बद्धगुदोदर कहते हैं । अथवा गुदाके ऊपर आंतोंको बद्ध होनेसे बद्धगुद कहते हैं । यह चरकका मत है ॥

क्षतोदरके लक्षण ।

शल्यं तथान्नोपहितं यदन्त्रं भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा ।
तस्मात्स्रुतोऽन्त्रात्सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः॥२२॥
नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम् ।
एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं-

कांटा धूल आदिके साथ मिलकर पेटमें चला जाय अथवा पक्वाशयसे शल्यादियुक्त अन्न विलोम (टेढा तिरछा) चलाजाय तब आंतोंको काटे और सीधा जाय तो नहीं काटे, अथवा जम्भाई अति अशन करनेसे आंत फटजाय सो चरकमें[1] लिखा भी है उन फटे आंतोंके गलित पानीके समान स्राव पुनः गुदाके मार्ग होकर झरै, नाभिके नीचेका भाग बढै, नोचनेकीसी तथा भेद (चीरने) कीसी पीडासे अत्यन्त व्यथित होय, इस क्षतोदरको ग्रन्थान्तरमें परिस्रावि उदर कहते हैं और इसीको छिद्रोदर कहते हैं यह गयदासका मत है ॥

जलोदरकी उत्पत्ति और लक्षण ।

-दकोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ २३ ॥
यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वान्तो विरक्तोऽप्यथवा निरूढः ।
पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दूष्यन्ति हि तद्वहानि ॥ २४॥
स्नेहोपलिप्तेष्वथ वापि तेषु दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति ।
स्निग्धं महत्तत्परिवृद्धनाभि समाततं पूर्णमिवाम्बुना च ॥
यथा दृतिः क्षुभ्यति कम्पते च शब्दायते चापि दकोदरं तत् ॥२५॥

अब जलोदर कैसे होय है! उसको कहते हैं सुनो, जिसने स्नेह (घृततैलादि) पान करा होय अथवा अनुवासनबस्ति करी हो, वमन करा हो अथवा दस्त करे हों अथवा निरूहवस्ति करी होय, ऐसा पुरुष शीतलजल पीवे तब उसकी जल बहनेवाली नसोंके मार्ग तत्काल दुष्ट होय हैं, वे उदक बहनेवाले स्रोत (मार्ग) स्नेहसे उपलिप्त (चिकने) होनेसे पूर्ववत् (अर्थात् अन्नरस उपस्नेह न्यायकरके अर्थात् इनको बाहर लायकर उदरको उत्पन्न करे) जलोदर होय है उसमें चिकनापन दीखे, ऊंचा होय,

१ "शर्करातृणलोष्ठास्थिकंटकैरन्नसंयुतैः। भिद्येतान्त्रं यदा भुक्तैर्जृंभयात्यशनेन वा ॥" इति॥

नाभिके पास बहुत ऊंचा होय, चारों ओर तनासा मालूम होय, पानीकी पोट भरीसी होय जैसे पानीसे भरी पखालमें जल हलै है उसी प्रकार हले, गडगड शब्द-करे, कांपे इनको जलोदर अर्थात् जलन्धर कहते हैं ॥

साध्यासाध्यविचार।

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं विदुः ॥ २६ ॥
बलिनस्तदजाताम्बु यत्नसाध्यं नवोत्थितम्।

सर्व प्रकारके उदर जन्मसे ही प्रायः अत्यन्त कष्टसाध्य होते हैं। बलवान् पुरुषके नवीन प्रकट भया हो और उसमें पानी नहीं प्रगट भया हो ऐसा बडे यत्नसे साध्य होय ॥

पानी नहीं प्रगट भया हो ऐसे उदरके लक्षण चकरमें कहे हैं–

अशोथमरुणाभासं सशब्दं नातिभारिकम् ॥ २७ ॥
सदा गुडगुडायन्तं शिराजालगवाक्षितम्।
नाभिं विष्टभ्य पायौ तु वेगं कृत्वा प्रणश्यति ॥ २८ ॥
हृद्वंक्षणकटीनाभिगुदं प्रत्येकशूलिनः।
कर्कशं सृजतो वातं नातिमन्दे च पावके ॥ २९ ॥
लालया विरसे चास्ये मूत्रेऽल्पे संहते विशि।
अजातोदकमित्येतैर्युक्तं विज्ञाय लक्षणैः ॥ ३० ॥

जातोदकके लक्षण भी चरकमें इस प्रकार कहे हैं सो लिखते हैं–

पयःपूर्णा दृतिरिव क्षोभे शब्दकरं मृदु।
अप्रव्यक्तशिरं शूनं नितान्तमुदरं महत ॥ ३१ ॥
आलस्यमास्यवैरस्यं मूत्रं बहुशकृत्स्रुतम्।
जातोदकस्य लिङ्गं स्यान्मंदोऽग्निः पाण्डुतापि च ॥३२॥ इति।
पक्षाद्बद्धगुदं तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं तथा।
प्रायो भवत्यभावाय च्छिद्रान्त्रं चोदरं नृणाम् ॥ ३३ ॥

बद्धगुदोदर १५ दिवसके पिछाडी असाध्य होता है, उसी प्रकार सब प्रकारके उदक (पानी) उत्पन्न होनेसे नाशकारक होता है, और छिद्रांत्रोदर यह प्रायः नाशक होता है। कदाचित् शल्य अथवा शस्त्रचिकित्सा जैसी होनी चाहिये ऐसी होय तो उदक (पानी) प्रगट भया उदररोग छिद्रांत्र अथवा बद्धगुद साध्य होता है. यह प्रायः इस पदसे सूचना करी ॥

असाध्य लक्षण।

शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम्।
बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणं च वर्जयेत्॥ ३४॥

जिस उदररोगीके नेत्रोंपर सूजन होय लिंग टेढा हो गया हो, पेटकी त्वचा गीली तथा पतली होगई हो, बल, रुधिर, मांस और अग्नि ये जिसके क्षीण हो गये हों ऐसा रोगी त्याज्य है॥

दूसरे असाध्य लक्षण।

पार्श्वभङ्गान्नविद्वेषशोथातीसारपीडितम्।
विरिक्तं चाप्युदरिणं पूर्यमाणं विवर्जयेत्॥ ३५॥

पार्श्वभंग (पसलियोंमें पीडा), अन्नमें अरुचि, शोथ, अतिसार इनसे पीडित और दस्त करानेसे जिसका पेट फिर पानीसे भरजाय, ऐसे उदररोगीको वैद्य त्यागदेय॥

इति श्रीपंडितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायाम् उदररोगनिदानं समाप्तम्॥

अथ शोथरोगनिदानम्।

शोथकी सम्प्राप्ति।

रक्तपित्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान्बहिः शिराः।
नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम्॥
सोत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः॥ १॥

कुपित भई वायु स्वकारणसे दुष्टभये रक्तपित्तकफको बाह्यशिरा (बाहरकी नाडियों) में प्राप्त करके पुनः उनहीं रक्तपित्त कफसे रुकगया है मार्ग जिसका ऐसा यह पवन त्वचा और मांस इनके आश्रयसे सूजन उत्पन्न करे, वह सूजन ऊंची और कठिन होय, इसको रक्तसहित त्रिदोषोंका सम्न्वध है, इससे इस शोथको सन्निपातात्मक कहते हैं " त्वङ्मांससंश्रयम् " इस पदसे व्रणशोथसे शोथका भेद दिखाया क्योंकि व्रणशोथकी उत्पत्ति आठ व्रणवस्तुओंमें होती है, सो कहा भी है-" त्वङ्मांसशिरास्नाय्वस्थिसन्धिकोष्ठमर्माणि इति अष्टौ व्रणवस्तूनि भवंति " इति॥

सर्वहेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम्।
दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि॥ २॥

वह सूजन कारणभेदसे कार्यभेद होकर ९ नौ प्रकारका होय है । यथा–अलग अलग दोषोंसे ३, द्वन्द्वज ३, सन्निपातज १, अभिघातज १ और विषसे १ ऐसे सब मिलकर नौ प्रकारका शोथ रोग भया ॥

शोथका निदान ।

शुद्धामया भक्तकृशा बलानां क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा ।
दध्याममृच्छाकविरोधिपिष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च ॥ ३ ॥
अर्शांस्यचेष्टा वपुषो ह्यशुद्धिर्मर्माभिघातो विषमा प्रसूतिः ।
मिथ्योपचारः प्रतिकर्मणां च निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः ॥४॥

वमन आदि, ज्वरादिक, अभोजन (विगुणभोजन) इनसे जो कृश और बलहीन मनुष्योंके क्षारादिकका सेवन सूजनेका कारण होय है। तहां नोन, खटाई, तीखी, उष्ण, भारी वस्तुओंका सेवन, दही अपक्व, मिट्टी, निषिद्ध साग, विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादिक), पिठी या मैदा वगैरहकी वस्तु, संयोगजविषसे दूषित भये अन्नके सेवन करनेसे, बवासीर, दण्डकसरतके न करनेसे, शोधनके योग्य दोषोंके न शोधनेसे, हृदयादि दोषज कर्मोंके उपघातसे, कच्चा गर्भपात होना, वमनादि पञ्चकर्मोंका मिथ्यायोग ये सर्वदोषज सूजनके कारण कहे हैं ॥

शोथका पूर्वरूप ।

तत्पूर्वरूपं दवथुः शिरायामोऽङ्गगौरवम् ॥ ५ ॥

सन्ताप, नसोंकी तननेके समान पीडा, देह भारी ये लक्षण सूजन होनेवाले पुरुषके होते हैं ॥

शोथका सामान्य लक्षण ।

सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमूष्मा च शिरातनुत्वम् ।
सलोमहर्षश्च विवर्णता च सामान्यलिङ्गं श्वयथोः प्रदिष्टम् ॥ ६ ॥

अंग भारी हो, चित्तमें स्वस्थता न होना, ऊंची सूजन और दाह, नस पतली होंजायँ, रोमांच और देहका रंग बदल जाय ये सूजनके सामान्य लक्षण हैं ॥

वातजशोथक लक्षण ।

चलस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोऽसितः ससुप्तिहर्षार्तियुतोऽनिमित्ततः ।
प्रशाम्यति प्रोन्नमतिप्रपीडितो दिवाबलीस्याच्छ्वयथुः समीरणात् ॥७॥

---

१ बाह्य हेतुसे उत्पन्न हुआ जो मर्मोंका उपघात वह तो आगन्तुज शोथकाही हेतु है ।

बादीकी सूजन चञ्चल, त्वचा पतली हो जाय, कठोर हो, लाल, काली तथा त्वचा शून्य पडजाय, भिन्न भिन्न वेदना हों अथवा रोमांच और पीडा हो, कदाचित् निमित्तके बिना शांति हो जाय, उस सूजनके दाबनेसे तत्क्षण ऊपरको उठ आवे, दिनमें जोर बहुत करे ॥

पित्तशोथके लक्षण ।

मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान् भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः ।
य उष्यते स्पर्शरुगक्षिरागकृत्स पित्तशोथो भृशदाहपाकवान् ॥ ८ ॥

पित्तकी सूजन नरम, कुछ दुर्गन्धयुक्त, काली, पीली और लाल होय, उसके होनेसे भ्रम, ज्वर, पसीना, प्यास और मस्तपना ये लक्षण होयँ, दाह होय, हाथ लगानेसे दूखे, इसीसे नेत्र लाल हों, उसमें अत्यन्त दाह तथा पाक होय ॥

कफजशोथके लक्षण ।

गुरुः स्थिरः पाण्डुररोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्यकृत् ।
सकृच्छ्रजन्माप्रशमो निपीडितो नचोन्नमेद्रात्रिबली कफात्मकः ॥ ९ ॥

कफकी सूजन भारी, स्थिर, पीली होय है, इसके योगसे अन्नद्वेष, लारोंका गिरना, निद्रा, वमन, मन्दाग्नि ये लक्षण होयँ तथा इस सूजनकी उत्पत्ति और नाश बहुतकालमें होय, इसको दबानेसे ऊपरको नहीं उठे, रात्रिमें इसकी प्रबलता हो ॥

द्वन्द्वज और सन्निपातज शोथके लक्षण ।

निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्वयथुः स्याद् द्विदोषजः ।
सर्वाकृतिः संनिपाताच्छोथो व्यामिश्रलक्षणः ॥ १० ॥

दो दोषोंका लक्षण और कारण एकत्र मिलनेसे द्वन्द्वज शोथ जानना और सन्निपातसे सूजन होय उसमें वातादिक तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥

अभिघातजशोथके लक्षण ।

अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः ।
हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः ॥ ११ ॥
रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान् ।
भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥ १२ ॥

काष्ठादिककी चोट लगनेसे, शस्त्रादिकसे छेदन होनेसे, पत्थर आदिसे फूटनेसे अथवा घावके होनेसे, आदि शब्दसे लकडी आदिके प्रहार, शीतल पवन लगनेसे

समुद्रकी पवन लगनेसे, भिलावेके तेल लग जानेसे और कौंचकी फलीके स्पर्श होनेसे जो सूजन होय सो चारों तरफ फैल जाय, अत्यन्त दाह होय, उसका रंग लाल होय और विशेषकरके इससे पित्तके लक्षण होते हैं ॥

विषजशोथके लक्षण।

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात्।
दंष्ट्रादन्तनखाघातादविषप्राणिनामपि ॥ १३ ॥
विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्रसंकरात्।
विषवृक्षानिलस्पर्शाद्गरयोगावचूर्णनात् ॥ १४ ॥
मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः।

विषवाले प्राणियोंके अंगपर चलनेसे अथवा मूतनेके अथवा निर्विष (विषरहित मनुष्यादिक) प्राणियोंके दाढ दांत नख लगनेसे अथवा सविष प्राणियोंकी विष्ठा मूत्र शुक्र इनसे भरा अथवा मलिन वस्त्र अंगमें लगनेसे अथवा विषवृक्षकी हवाके लगनेसे अथवा संयोगज विषके अंगमें लगनेसे जो सूजन उत्पन्न होय सो विषज कहलाती है। वह सूजन नरम, चंचल, भीतर प्रवेश करनेवाली, जलदी प्रगट होनेवाली, दाह और पीडा करनेवाली होती है ॥

जिस जिस ठिकाने दोष सूजन उत्पन्न करें उनको कहते हैं-

दोषाः श्वयथुमूर्ध्वं हि कुर्वन्त्यामाशयस्थिताः ॥ १५ ॥
पक्काशयस्था मध्ये तु वर्चःस्थानगतास्त्वधः।
कृत्स्नदेहमनुप्राप्ताः कुर्युः सर्वरसं तथा ॥ १६ ॥

आमाशयस्थित दोष ऊपर (उरःस्थानादिकोंमें) सूजनको करें, पक्काशयमें स्थित दोष मध्य कहिये उर और पक्काशय इन दोनोंके बीचमें सूजन करें, मूलस्थानगत दोष नीचेके स्थान (पैर आदि) में सूजन करें और सर्व देहमें दोष स्थित होनेसे सब देहमें सूजनको करते हैं ॥

सूजनके कृच्छ्रादिभेद।

यो मध्यदेशे श्वयथुः स कष्टः सर्वगश्च यः।
अधोऽङ्गेऽरिष्टभूतः स्याद्यश्चोर्ध्वं परिसर्पति ॥ १७ ॥

जो सूजन मध्यदेशमें तथा सब शरीरमें होय अथवा सान्निपातिक होय वह कष्टसाध्य है और पुरुषके नीचेके अंगमें प्रगट हो, ऊपरको चढे वह असाध्य है और चकारसे स्त्रीकी सूजन ऊपरसे नीचेको उतरे वह भी असाध्य है ॥

असाध्यलक्षण ।

श्वासः पिपासा छर्दिश्च दौर्बल्यं ज्वर एव च ।
यस्य चान्ने रुचिर्नास्ति शोथिनं परिवर्जयेत् ॥ १८ ॥

श्वास, प्यास, वमन, दुर्बलता, ज्वर ये लक्षण होयँ और जिसकी अन्नमें अरुचि होय ऐसे सूजनवाले रोगीको वैद्य त्याग दे ॥

अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः ।
पुरुषं हन्ति नारीं तु मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥
नवोऽनुपद्रवः शोथः साध्योऽसाध्यः पुरेरितः ॥ १९ ॥

अन्यरोगोंके उपद्रवसे प्रगट न भई हो अर्थात् शोथकेही उपद्रवसे पैदा हुई ऐसी सूजन पहिले पैरोंमें उत्पन्न हो फिर मुखआदि ऊपरके स्थानोंमें प्राप्त होय (उसको उलटी सूजन कहते हैं) वह पुरुषका नाश करे और जो प्रथम मुखपर होकर पीछे पैरोंपै उतरे वह सूजन स्त्रियोंको घातक है और जो प्रथम बस्तिमें होकर सब देहमें व्याप्त हो वह स्त्रीपुरुष दोनोंकी नाशक है । नवीन और उपद्रवरहित जो सूजन होय वह साध्य और "अधोऽङ्गेऽरिष्टभूतः" इत्यादि श्लोकमें कही हुई सूजन असाध्य है ॥

शोथके उपद्रव ।

छर्दिस्तृष्णाऽरुचिः श्वासो ज्वरोऽतीसार एव च ।
सप्तकोऽयं सदौर्बल्यः शोथोपद्रवसंग्रहः ॥ २० ॥

छर्दी, प्यास, अरुचि, श्वास, ज्वर, अतिसार, दुर्बलता ये सात सूजनके उपद्रव हैं यह चरकमें लिखा है ॥

विवर्जयेत्कुक्ष्युदराश्रितं च तथा गले मर्मणि संश्रितं च ।
स्थूलः खरश्चापि भवेद्विवर्ज्यो यश्चापि बालस्थविराबलानाम् ॥ २१ ॥

जो सूजन कोख और उदरमें हो तथा कण्ठ और मर्मस्थानमें हो, मोटी और खरखरी हो तो असाध्य जाननी चाहिये, बालक तथा वृद्ध स्त्रीके भी स्थूल और खरखरी हुई सूजन असाध्य जानकर छोड देनी चाहिये ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां शोथरोगनिदानं समाप्तम् ॥

---

१ अनन्यस्य उपद्रवास्तद्विपरीता अनन्योपद्रवाः। एतेनायमर्थः-शोथस्यैव ये उपद्रवास्तैः कृतः अथवा अन्यमुपद्रवं करोतीत्यन्योपद्रवकृत् नान्योपद्रवकृदित्यनन्योपद्रवकृत्ततोऽनन्योपद्रवकृत स्वनिदानाजात इति शेषः। २ "यस्तु पादाभिनिर्वृत्तः शोथः सर्वाङ्गजो भवेत् । पुरुषं हन्ति नारीं च मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥"

अथाण्डवृद्धिनिदानम् ।

अण्डवृद्धिकी सम्प्राप्ति ।

क्रुद्धोऽनूर्ध्वगतिर्वायुः शोथशूलकरश्चरन् ।
मुष्कौ वंक्षणतः प्राप्य फलकोशाभिवाहिनीः ॥
प्रपीड्य धमनीर्वृद्धिं करोति फलकोशयोः ॥ १ ॥

कुपित भई अधोगमनशील (नीचे विचरनेवाली) तथा सूजन और शूल उत्पन्न करनेवाली वायु संचार करती हुई वंक्षण (लिंग और जंघोंकी सन्धि) से अण्डकोशोंमें आयकर अण्ड और कोश अथवा अण्डोंके कोशोंके बहनेवाली धमनियोंको दुष्ट कर अण्डकोशकी (दोनों अंडोंकी अथवा एक ओरके अण्डकी) वृद्धि करै है॥

दोषास्रमेदोमूत्रान्त्रैः स वृद्धिः सप्तधा गदः ।
मूत्रान्त्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलम् ॥ २ ॥

वह वृद्धिरोग तीनों दोषोंसे ३, रुधिरसे १, मेदसे १, मूत्रसे १ और आंतोंसे १ ऐसे सात प्रकारका है[1] । मूत्रज और अन्त्रजवृद्धि ये दोनों वायुसे होती हैं, परन्तु इन दोनोंका निदान चिकित्सामें भेद होनेसे पृथक् ग्रहण करा है । सो लिखा भी है— " मूत्रांत्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलम् " इति ॥

वातकी अण्डवृद्धिके लक्षण ।

वातपूर्णादतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरुक् ॥ ३ ॥

वातसे भरी मसक जैसी हाथके लगनेसे मालूम होय ऐसा मालूम होय, रूक्ष और विना कारण दुखने लगे, वह वातकी अंडवृद्धि जाननी ॥

पित्तकी अंडवृद्धिके लक्षण ।

पक्वोदुम्बरसंकाशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान् ।

पित्तकी अंडवृद्धि पके गूलरके समान होय है तथा दाह और गरमी तथा पकनेवाली होय है ॥

कफकी अंडवृद्धिके लक्षण ।

कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कण्डूमान्कठिनोऽल्परुक् ॥ ४ ॥

---

१ क्योंकि कहा भी है—दोषदूष्यसंसर्गादायतनविशेषात् निमित्ततश्चैषां व्याधीनां भेदः ॥

कफसे अंडवृद्धि शीतल, भारी, चिकनी तथा खुजलीयुक्त कठिन और थोडी पीडायुक्त होय है ॥

रक्तजवृद्धिके लक्षण ।

कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिङ्गैश्च पित्तजः ।

काले फोडाओंसे व्याप्त तथा जिसमें पित्तवृद्धिके लक्षण मिलते होयँ, उस अण्ड-वृद्धिको पित्तकी तथा रक्तकी कहते हैं ॥

मेदोजअंडवृद्धिके लक्षण ।

कफवन्मेदसो वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः ॥ ५ ॥

मेदसे जो अंडवृद्धि होय है वह कफकी वृद्धिके समान मृदु (नरम) तथा ताल-फलके समान हो अर्थात् पीले रंगकी और गोल होय ॥

मूत्रवृद्धिके लक्षण ।

मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स च गच्छति ।
अम्भोभिः पूर्णदृतिवत्क्षोभं याति सरुङ्मृदुः ॥
मूत्रकृच्छ्रमधः स्याच्च चालयन्फलकोशयोः ॥ ६ ॥

मूत्रको रोकनेका जिसका स्वभाव होय उसको यह रोग होय है, वह पुरुष जब चले तब पानीसे भरी पखालके समान डबक डबक हले तथा बजे, उसमें और पीडा थोडी होय, हाथके छूनेसे नरम मालूम होय, उसमें मूत्रकृच्छ्रकीसी पीडा होय, फल और कोश दोनों इधर उधर चलायमान होयँ ॥

अन्त्रवृद्धिके लक्षण ।

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः ।
धारणेरणभाराध्वविषमार्गप्रवर्तनैः ॥ ७ ॥
क्षोभणैः क्षुभितोऽन्यैश्च क्षुद्रान्त्रावयवं यदा ।
पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् ॥
कुर्याद्वंक्षणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभं श्वयथुं तदा ॥ ८ ॥

वातकोपकारक आहारके सेवन करनेसे, शीतल जलमें प्रवेश करके स्नान करनेसे, उपस्थित मूत्रादिवेगोंके धारण करनेसे, अप्राप्त वेग अर्थात् करनेकी इच्छा न होय उसको बलपूर्वक प्रेरणा करनेसे, भारी बोझके उठानेसे, अति मार्गके चलनेसे अंगोंकी विषम चेष्टा (अर्थात् टेढा तिरछा अंगोंकरके गमनादिक करना), बल

वान्से वैर करना, कठिन धानुषका ईंचना इत्यादिक ऐसे और कारणोंसे कुपित भई जो वायु सो छोटी आंतोंके अवयवोंके एकदेशको विगाडकर अर्थात् उसका संकोच कर अपने रहनेके स्थानसे उसको नीचे ले जाय तब वंक्षणसंधिमें स्थित होकर उस स्थानमें गांठके समान सूजनको प्रगट करे ॥

इसकी औषधि न करनेका परिणाम ।

उपेक्षमाणस्य च मुष्कवृद्धिमाध्मानरुक्स्तंभवतीं स वायुः ।
प्रपीडितोऽन्तः स्वनवान्प्रयाति प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः ॥ ९ ॥

जिस अण्डवृद्धिसे अफरा होय, पीडा होय, जडता होय उसकी उपेक्षा करनेसे अर्थात् औषध न करनेसे तथा अण्डकोशोंके दबानेसे जो वायु कोंकों शब्द करै तथा हाथके दाबनेसे वायु ऊपरको चढ जाय और छोडनेसे फिर नीचे उतरकर अण्डोंको फुलाय दे ये होते हैं ॥

असाध्य लक्षण ।

क्षुद्रान्त्रावयवाच्छ्लेष्मा मुष्कयोर्वातसञ्चयात् ।
अण्डवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः ॥ १० ॥

छोटी आंतोंके अवयव (अंगवाला) कफ वातके सञ्चयसे मुष्कके विषे प्राप्त होय तथा जिसमें वातके लक्षण कहे वे सब मिलते होयँ वह अण्डवृद्धि असाध्य है ॥

वर्ध्म अर्थात् बदरोगका निदान ग्रन्थान्तरमें लिखा है यथा—

वर्ध्मरोगनिदान ।

अत्यभिष्यन्दिगुर्वामसेवनान्निचयं गतः ॥ ११ ॥
करोति ग्रन्थिवच्छोफं दोषो वंक्षणसन्धिषु ।
ज्वरशूलाङ्गदाहाढ्यं तं वर्ध्ममिति निर्दिशेत् ॥ १२ ॥
यस्य पूर्वं फिरंगाख्यो रोगो भूत्वा प्रशाम्यति ।
तस्य जन्तोर्वर्ध्मरोग इत्युक्तं सुश्रुतादिभिः ॥ १३ ॥
तथोष्णवातजुष्टस्य मेढ्रव्रणयुतस्य च ।
तस्य पुंसो वर्ध्मरोगं प्रवदन्ति भिषग्वराः ॥ १४ ॥

अभिष्यंदि वस्तुके खानेसे, भारी अन्नके खानेसे, कच्चे अन्नके खानेसे वृद्धिके प्राप्त हुए दोष अथवा "अत्यभिष्यंदिगुर्वाम" इस जगह "अत्यभिष्यंदिगुर्वन्नशुष्कपूज्यामिषाशनात्" ऐसा भी पाठ है अर्थात् अभिष्यंदि भारी अन्नके खानेसे तथा सूखा

और पूज्य कहिये गौ आदिके मांस खानेसे दोष (वात पित्त कफ) कुपित होकर वंक्षणकी संधिमें अर्थात् बस्ति स्थानके समीप जिनको नल कहते हैं उनमें सूजनको प्रगट करे, उस सूजनके होनेसे ज्वर होय तथा सूजनमें पीडा होय, अंगोंमें अत्यन्त दाह होय, जिस मनुष्यके पहले फिरंग (गरमी) का रोग होकर शान्त होगया होय उसके यह बदका रोग होता है अथवा गरमीवाले पुरुषके लिंगमें व्रण घाव होय उसके यह बदरोग होता है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायाम्
अण्डवृद्धिनिदानं समाप्तम् ॥

अथ गलगण्डनिदानम्।

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले।
महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डं तमादिशेत् ॥ १ ॥

जिसके गलेमें अनुबंधयुक्त बडी अथवा छोटी अंडकोशके समान सूजन होकर लटके उसको गलगंड कहते हैं ॥

गलगंडकी सम्प्राप्ति।

वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टो मन्ये समाश्रित्य तथैव मेदः।
कुर्वन्ति गण्डं क्रमशस्त्रिलिङ्गैः समन्वितं तं गलगण्डमाहुः ॥ २ ॥

गलेमें दुष्ट भये वात कफ और उसी प्रकार मेद गलेकी दोनों मन्यानाडियोंका आश्रय लेकर क्रमसे आप अपने लक्षणसंयुक्त गंड (गोला) उत्पन्न करे है उसको गलगंडरोग कहते हैं। यह रोग वात कफ और मेद इन कारणोंसे तीन प्रकारका है। यह रोग अपने ही स्वभावसे पैत्तिक नहीं होय है, जैसे चातुर्थिक-ज्वर अपने प्रभावसे जंघोंमें कफका और मस्तकमें वातका प्रथम आता है इसमें भी पित्तका नहीं होय है, उसी प्रकार इस रोगमें भी जानो ॥

वातिक-गलगंडके लक्षण।

तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धः श्यावोऽरुणो वा पवनात्मकस्तु।
पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्धिपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥
वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ॥ ३ ॥

वातकी गलगण्ड काली नसोंसे व्याप्त होय और उसमें सुईके चुभानेकीसी पीडा होय, उसका रंग काला और लाल होय, तथा कठोर हो, बहुतकालमें बढे तथा पके नहीं और जो पके तो कदाचित् यदृच्छापूर्वक पके, उस रोगीके मुखमें विरसता होय तथा तालु व गलेमें शोष होय ॥

कफज गलगंडके लक्षण।

स्थिरः सवर्णो गुरुरुग्रकण्डूः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु ॥ ४ ॥
चिराभिवृद्धिं भजते चिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित्।
माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥ ५ ॥

कफकी गलगण्ड स्थिर, त्वचाके रंगके समान वर्ण होय, भारी हो, खुजली बहुत चले, शीतल और बडी होय है, वह बहुत दिनमें बढे और बहुत कालमें पके, पीडा थोडी होय, मुखमें मिठास होय तथा गलेमें और तालुएमें कफ लिहसासा होय ॥

मेदज गलगण्डके लक्षण।

स्निग्धो गुरुः पाण्डुरनिष्टगन्धो मेदोभवः स्वल्परुजोऽतिकण्डूः।
प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥
स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुशब्दं कुरुते च नित्यम् ॥ ६ ॥

मेदसे प्रगट गलगण्ड चिकना होय, भारी, पीला वर्ण, दुर्गंधयुक्त, मन्द पीडा करनेवाला और अत्यन्त खुजली चले, वह तुम्बीफलके समान लम्बा होय, उसकी जड छोटी होय और देहानुरूप क्षय और वृद्धि इनसे युक्त होय अर्थात् देहके क्षीण होनेसे क्षीण होजाय, देहके बढनेसे बढजाय, उसका मुख तेल लगा होय ऐसा चिकना होय और बोलते समय गलेसे दो शब्द निकलें ॥

असाध्य लक्षण।

कृच्छ्राच्छ्वसन्तं मृदुसर्वगात्रं संवत्सरातीतमरोचकार्तम्।
क्षीणं च वैद्यो गलगण्डजुष्टं भिन्नस्वरं चापि विवर्जयेत्तु ॥ ७ ॥

बडे कष्टसे श्वासलेनेवाला, नरम शरीरवाला, जिसके गलगण्ड होकर वर्षदिन व्यतीत होगया हो, अरुचिसे पीडित, क्षीण होगया हो और स्वरभेदयुक्त ऐसे गलगण्डपीडित मनुष्यको वैद्य त्यागदे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां गलगण्डनिदानं समाप्तम् ॥

अथ गण्डमालानिदानम् ।

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु ।
मेदःकफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद्गण्डमाला बहुभिश्च गण्डैः ॥ १ ॥

मेद और कफ इनसे प्रगट भया कांख, कन्धा, नाडके पिछाडी मन्या नाडीमें, गलेमें और वंक्षण (जानुमेढ्रसन्धि) इन ठिकाने छोटे बेरके बराबर, बडे बेरके समान, आमलेके समान, ऐसी अनेंक प्रकारकी गण्ड होती हैं, वे बहुत दिनमें हौले हौले पकें उनको गण्डमाला कहते हैं ॥

अपचीके लक्षण ।

ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाकाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये ।
कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ २ ॥

अब गण्डमालाका भेद अपची है उसको कहते हैं—पूर्वोक्त गण्डमालाकी गांठ पके नहीं अथवा पाक होनेसे स्रवे, कोई नष्ट होजाय, दूसरी नवीन उठे ऐसी पीडा बहुत दिन रहे उसको कोई अपची कहते हैं ॥

असाध्य और साध्यके लक्षण ।

साध्या स्मृता पीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुता न साध्या ।

पूर्वोक्त अपची रोग साध्य है और उसमें पीनस होय, पसवाडोंमें शूल, खांसी, ज्वर, वमन ये होयँ तो अपची असाध्य है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां गण्डमाला (अपची) निदानं समाप्तम् ॥

अथ ग्रन्थिनिदानम् ।

वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः सन्दूष्य मेदश्च तथा शिराश्च ।
वृत्तोन्नतं विग्रथितं तु शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥ १ ॥

अत्यन्त दुष्ट हुए वातादि दोष मांस, रुधिर और मेद, उसी प्रकार शिरा (नस) इनको दुष्ट कर (इस जगह दुष्टका अर्थ वृद्धि करना चाहिये, क्षयरूप न करना चाहिये कारण इसका यह है कि, क्षीण विकारोंकी सामर्थ्य रोग करनेकी नहीं होती है) गोल ऊंची गांठके समान अथवा कठिन सूजनको उत्पन्न करे उसको ग्रन्थि (गांठ) कहते हैं ॥

वातजग्रन्थिके लक्षण ।

आयम्यते वृश्च्यति तुद्यते च प्रत्यस्यते मथ्यति भिद्यते च ।
कृष्णो मृदुर्बस्तिरिवाततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम् ॥ २ ॥

वादीकी गांठ तनेके समान करडी मालूम हो, छीलनेके समान मालूम हो, सुई चुभनेकीसी पीडा होय, मानो गिरा चाहती है, मथनेकीसी पीडा होय, फोडनेकीसी पीडा होय, काला वर्ण हो, नरम हो, बस्तिके समान चौडी और भारी होय और उसके टूटनेसे स्वच्छ रुधिर निकले ॥

पित्तकी ग्रन्थिके लक्षण ।

दन्दह्यते धूप्यति चूष्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि ।
रक्तः सपीतोऽप्यथवापि पित्ताद्भिन्नः स्रवेदुष्णमतीव चास्रम् ॥ ३ ॥

पित्तकी गांठ आगसे भरेके समान अत्यन्त दाह करे, आंतोंसे धूआं निकलतासा मालूम हो, चूष्यते कहिये मानो सिंगी लगायके कोई चूसे है, खार लगानेके सदृश पका मालूम होय, अग्निके समान जलीसी मालूम होय, उस गांठका रंग लाल अथवा किंचित् पीला होय और टूटनेसे उसमेंसे दुष्ट रुधिर बहुत निकले ॥

कफकी ग्रन्थिके लक्षण ।

शीतो विवर्णोऽल्परुजोऽतिकण्डूः पाषाणवत्संहननोपपन्नः ।
चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥ ४ ॥

कफकी ग्रन्थि (गांठ) शीतल, प्रकृति समान वर्ण, (कोई किंचित् विवर्ण हों ऐसे कहते हैं) थोडी पीडा हो अत्यन्त खुजली चले, पत्थरके समान कठिन बडी होय और चिरकालमें बढनेवाली होय, फूटनेसे उसमेंसे सफेद गाढी राध निकले ॥

मेदजग्रन्थिके लक्षण ।

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान्कण्डुयुतो गुरुश्च ।
मेदःकृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमं तु मेदः ॥ ५ ॥

मेदकी ग्रंथि शरीरके बढनेसे बढे और शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण होजाय, चिकनी बडी खुजलीयुक्त पीडारहित होय है और जब वह फूट जाय तब उसमेंसे तिल-कलकके समान अथवा घृतके समान मेदा निकले ॥

शिराजग्रन्थिके लक्षण ।

व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुस्तु शिराप्रतानम् ।
संकुच्य संपीड्य विशोष्य चापि ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥ ६ ॥

निर्बलपुरुष शरीरको परिश्रमकारक कर्म करे तब वायु कुपित होकर शिराके जालको संकुचित कर एकत्रकर और सुखायकर ऊंची गांठको शीघ्र प्रगट करै है ॥

साध्यासाध्यके लक्षण।

ग्रन्थिः शिराजः स च कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च।
अरुक्स एवाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः ॥ ७ ॥

वह शिरा (कहिये नस) की गांठ कृच्छ्रसाध्य है, यदि वह पीडायुक्त तथा चञ्चल होय तो वह गांठ साध्य है, और पीडारहित तथा निश्चल बडी और मर्मस्थानमें प्रगट भई होय तो वह असाध्य है, उसको वैद्य त्याग दे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां ग्रन्थिनिदानं समाप्तम् ॥

अथार्बुदनिदानम्।

अर्बुदकी सम्प्राप्ति।

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः समुच्छ्रिता मांसमसृक्प्रदूष्य।
वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम् ॥
कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ॥ १ ॥

शरीरके किसी भागमें दुष्ट भये जो दोष सो मांस रुधिरको दुष्ट कर गोल, स्थिर, मन्दपीडायुक्त, यह ग्रन्थिरोगसे बडी होय है, बडी जिसकी जड होय, बहुत कालमें बढनेवाली तथा पकनेवाली न होय ऐसी मांसकी गांठ उठे उसको वैद्य अर्बुद कहते हैं ॥

वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा च।
तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति ॥ २ ॥

वह अर्बुदरोग बादीसे, पित्तसे, कफसे, रुधिरसे, मांससे और मेदसे ऐसे छः प्रकारका है। उसके लक्षण सर्वदा ग्रंथिके सदृश होते हैं ॥

रक्तार्बुदके लक्षण।

दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिराश्च संकुच्य संपीड्य ततस्त्वपाकम्।
सास्रावमुन्नह्यति मांसपिण्डं मांसाङ्कुरैराचितमाशु वृद्धम् ॥ ३ ॥

करोत्यजस्रं रुधिरप्रवृत्तिमसाध्यमेतद्रुधिरात्मकं तु ।
रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पाण्डुर्भवेत्सोऽर्बुदपीडितस्तु ॥ ४ ॥

दुष्ट भये दोष रुधिरको तथा नसोंको संकोच कर तथा पीडित कर मांसके गोलेको प्रगट करे वह यत्किंचित् पकनेवाला तथा कुछ स्रावयुक्त हो, मांसपिंडको ऊंचा करता हो और मांसांकुरसे व्याप्त और शीघ्र बढनेवाला होता है. उसमें रुधिर निरन्तर बहा करें, यह रक्तार्बुद असाध्य है । वह रक्तार्बुदपीडितरोगी रक्तक्षयके उपद्रवोंकरके पीडित होनेसे उसका वर्ण पीला हो जाय । ये रक्तार्बुदके लक्षण हैं ॥

मांसार्बुदकी संप्राप्ति ।

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे मांसं प्रदुष्टं जनयेद्धि शोथम् ॥ ५ ॥
अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ।
प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ ६ ॥
मांसार्बुदं त्वेतदसाध्यमुक्तं-

मुक्काआदिका लगनेसे अंगमें पीडा होय, उस पीडासे दुष्ट भया मांस सो सूजन उत्पन्न करे, उस सूजनमें पीडा नहीं होय और वह चिकनी देहके वर्ण होय पके नहीं, पत्थरके समान कठिन, हले नहीं ऐसा होय है। जिस मनुष्यका मांस बिगड जाय और नित्य मांसको खाया करे उसको यह अर्बुदरोग होता है। यह मांसार्बुद असाध्य कहा है । कोई मांसार्बुदका भेद रसोली कहते हैं ॥

साध्यमें असाध्य प्रकार ।

-साध्येष्वपीमानि तु वर्जयेच्च ।
संप्रस्रुतं मर्मणि यच्च जातं स्रोतःसु या यच्च भवेदचाल्यम् ॥ ७ ॥

साध्यमें भी यह इन लक्षणोंवाला अर्बुदरोग वर्जित है, स्राव (झरे) और मर्मस्थानमें प्रगट भया हो, अथवा नासा आदि स्रोत (मार्ग) में प्रगट हो और जो स्थित हो, वह असाध्य है ॥

अध्यर्बुदके लक्षण ।

यज्जायतेऽन्यत्खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः ।

पहले जिस ठिकानेपर अर्बुद भया होय उसी ठिकानेपर दूसरा अर्बुद प्रगट होय उसको अध्यर्बुद कहते हैं ॥

द्विरर्बुदके लक्षण।

यद्द्वन्द्वजातं युगपत्क्रमाद्वा द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ ८ ॥

एक कालमें दो अर्बुद, अथवा एकके पिछाडी दूसरा अर्बुद क्रमसे प्रगट होय उसको द्विरर्बुद कहते हैं, यह असाध्य हैं ॥

अर्बुद न पकनेका कारण।

न पाकमायान्ति कफाधिकत्वान्मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु।
दोषस्थिरत्वाद् ग्रथनाच्च तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ ९ ॥

कफ अधिक होनेसे अथवा विशेषकरके मेद अधिक होनेसे, तथा दोषोंके स्थिर होनेसे अथवा दोषोंके ग्रन्थिरूप होनेसे सर्व प्रकारकी अर्बुद स्वभावसे ही पके नहीं हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकाया-
मर्बुदनिदानं समाप्तम् ॥

अथ श्लीपदनिदानम्।

श्लीपदकी सम्प्राप्ति।

यः सज्वरो वंक्षणजो भृशार्तिः शोथो नृणां पादगतः क्रमेण।
तच्छ्लीपदं स्यात्करकर्णनेत्रशिश्नौष्ठनासास्वपि केचिदाहुः ॥ १ ॥

जो सूजन अत्यन्त पीडायुक्त प्रथम वंक्षणमें उत्पन्न होकर धीरे धीरे पैरोंमें आवै उसके साथ ज्वर भी हो सो इस रोगको श्लीपद कहते हैं। यह श्लीपद हाथ, कान, नेत्र, शिश्न, ओठ, नाक इनमें भी होती है, ऐसे कोई कहते हैं ॥

वातजश्लीपद।

वातजं कृष्णरूक्षं च स्फुटितं तीव्रवेदनम्।
अनिमित्तरुजं तस्य बहुशो ज्वर एव च ॥ २ ॥

वातकी श्लीपद काली, रूखी, फटी और जिसमें तीव्र पीडा होय, विना कारणके दूखे और उसमें ज्वर बहुत होय ॥

पित्तजश्लीपद ।

पित्तजं पीतसंकाशं दाहज्वरयुतं मृदु ।

पित्तकी श्लीपद पीले रंगकी, दाह और ज्वरयुक्त होय तथा नरम होय है ॥

श्लैष्मिकश्लीपद ।

श्लैष्मिकं स्निग्धवर्णं च श्वेतं पाण्डु गुरु स्थिरम् ॥ ३ ॥

कफकी श्लीपदका वर्ण चिकना, सफेद, पीला, भारी और कठिन होय है ॥

असाध्य लक्षण ।

वल्मीकमिव सञ्जातं कण्टकैरुपचीयते ।
अब्दात्मकं महत्तच्च वर्जनीयं विशेषतः ॥ ४ ॥

सर्पकी बांबीके समान बढी हुई और जिसके ऊपर कांटे होयँ, ऐसी एक वर्षकी होगई हो और बडी होय उसको वैद्य त्याग दे ॥

श्लीपदमें कफको प्राधान्य अव्यभिचारकरके है उसको कहते हैं-

त्रीण्यप्येतानि जानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् ।
गुरुत्वं च महत्त्वं च यस्मान्नास्ति विना कफात् ॥ ५ ॥

इन पूर्वोक्त तीनों श्लीपदोंमें कफकी अधिकता है कारण इसका यह है कि, भारी और महत्त्व ये दोनों कफके विना नहीं होते ॥

श्लीपद कौनसे देशमें उत्पन्न होता है उसको कहते हैं-

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्तुषु च शीतलाः ।
ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ ६ ॥

वर्षाऋतुमें पानी अधिक वर्षे परन्तु पृथ्वीके नीचे होनेसे सूखे नहीं इसीसे पुराने पानीका संचय (इकट्ठा) होय और सर्व ऋतुमें सरदी रहाकरे ऐसे जो अनूपदेश (पूर्व आदि देश) उनमें यह श्लीपदरोग विशेषकरके होय है । जांगल देशोंमें अग्निका अधिक अंश होय है इससे उन देशोंमें जलको पुराणत्व नहीं होय है और अनूपदेशमें गरमी मन्द पडनेसे उष्ण ऋतुमें भी शीतलता होय है, हाथ कान आदिमें श्लीपदरोगकी शंका होनेसे दोषोंके कोपद्वारा ज्वर करके श्लीपदको जान ले ॥

असाध्य लक्षण ।

यच्छ्लेष्मलाहारविहारजातं पुंसः प्रकृत्या च कफात्मकस्य ।
सास्रावमत्युन्नतसर्वलिङ्गं सकण्डुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यम् ॥ ७ ॥

जो श्लीपद कफकारक आहार विहारसे प्रगट भया तथा कफप्रकृतिवाले पुरुषके कफसे प्रगट भया होय, तथा स्रावयुक्त तथा जिस दोषसे प्रगट भया होय उस दोषके लक्षण उसमें बढ गये होयँ, जिसमें खुजली बहुत होय और कफयुक्त होय सो श्लीपदरोगी वैद्यकरके त्याज्य है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरानिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां श्लीपदनिदानं समाप्तम् ॥

अथ विद्रधिनिदानम् ।

त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः ।
दोषाः शोथं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम् ॥ १ ॥
महाशूलं रुजावन्तं वृत्तं वाप्यथवायतम् ।
स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयः षड्विधश्च सः ॥ २ ॥
पृथग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा ।
षण्णामपि हि तेषां तु लक्षणं संप्रचक्षते ॥ ३ ॥

अत्यन्त बढे तथा अस्थि (हड्डी) का आश्रय करके रहनेवाले वातादिदोष त्वचा, रुधिर, मांस और मेद इनको दुष्ट कर धीरे धीरे भयंकर शोथ उत्पन्न करे, उसकी जड हड्डीपर्यन्त पहुँच जाय, उत्पत्तिकालमें अत्यंत पीडाकारक तथा गोल अथवा लंबा जो शोथ (सूजन) होय उसको विद्रधि कहते हैं पृथक् दोषोंसे ३, सान्निपातसे १, क्षत (घाव) से १ और रुधिरसे १ मिलकर छः प्रकारकी विद्रधि होय हैं, उन छःहों विद्रधिके लक्षण कहते हैं ॥

वातजविद्रधिके लक्षण ।

कृष्णोऽरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदनः ।
चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसंभवः ॥ ४ ॥

जो विद्रधि काली लाल विषम कहिये कदाचित् छोटी कदाचित् मोटी हो अत्यन्त वेदनायुक्त और उसका प्रगट होना तथा पाक ये नाना प्रकारके होयँ उसको वातविद्रधि कहते हैं ॥

पित्तकी विद्रधिके लक्षण ।

पक्वोदुम्बरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान् ।
क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसंभवः ॥ ५ ॥

पित्तकी विद्रधि पके गूलरके समान होय, अथवा काला वर्ण होय, ज्वर, दाह-करनेवाली प्रगट होय और उसका पाक शीघ्र होय ॥

कफकी विद्रधिके लक्षण।

शरावसदृशः पाण्डुः शीतः स्निग्धोऽल्पवेदनः।
चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफसंभवः ॥ ६ ॥

कफकी विद्रधि शराव (मिट्टीके शराव) सदृश बडी होय, पीला वर्ण, शीतल, चिकनी, अलपपीडा होय, उसकी उत्पत्ति और पाक देरमें होय है ॥

पकनेके अनन्तर उनका स्राव।

तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाः क्रमशः स्मृताः।

ये तीन प्रकार विद्रधि पकनेके अनन्तर होते हैं । इनसे वातादिकोंके क्रमसे अर्थात् वातसे पतली, पित्तसे पीली, कफसे सफेद राध निकलती है ॥

सन्निपातकी विद्रधिका लक्षण।

नानावर्णरुजा स्रावो घाटालो विषमो महान्।
विषमं पच्यते चापि विद्रधिः सान्निपातिकः ॥ ७ ॥

सन्निपातकी विद्रधिमें अनेक प्रकारका वर्ण काला पीला आदि अनेक प्रकारका पीडा, जैसे तोद, दाह, खुजली, पीडा तथा अनेक प्रकारकी स्राव जैसे पतला पीला सफेद स्राव होय 'घाटाल' कहिये नीचे स्थूल होय और ऊपर पतली होय अर्थात् अग्रभाग अति ऊंचा होय, छोटी बडी कदाचित् पके कदाचित् नहीं पके ऐसी होय॥

आगन्तुजविद्रधिकी सम्प्राप्ति।

तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यकारिणः।
क्षतोष्मावायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयेत् ॥ ८ ॥
ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायते तस्य देहिनः।
आगन्तुर्विद्रधिर्ज्ञेयः पित्तविद्रधिलक्षणः ॥ ९ ॥

तिन तिन भाव कहिये लकडी पत्थर ढेला आदिका अभिघात (चोट लगना पिच जाना इत्यादि) होनेसे, अथवा तलवार, तीर बरछी इत्यादिके लगनेसे, घाव होजानेसे, अपथ्य करनेवाले पुरुषके कुपित वायुकरके विस्तृत (फैला) क्षतोष्मा (घावकी गरमी) और रुधिरसहित पित्तको कोप करे, उस पुरुषके ज्वर, प्यास और दाह होयँ और उसमें पित्तकी विद्रधिके लक्षण मिलते हों इनको आगंतुज विद्रधि जाननी ॥

रक्तजविद्रधिके लक्षण।

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाकरः।
पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ॥ १० ॥

काले फोडोंसे व्याप्त, श्यामवर्ण, पीडा और ज्वर ये उसमें तीव्र होयँ तथा पित्तकी विद्रधिके लक्षणों करके युक्त होंय, उसको रक्तविद्रधि जानना ॥

अन्तर्विद्रधिके लक्षण।

पृथक् संभूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम्।
वल्मीकवत्समुन्नद्धमंतः कुर्वंति विद्रधिम् ॥ ११ ॥

कुपित भये पृथक् २ अथवा मिलेहुये दोष शरीरमें गोलेके और बांबीके समान बडी विद्रधि उत्पन्न करे हैं ॥

विद्रधिके स्थान।

गुदे बस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वंक्षणयोस्तथा।
वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति हृदये क्लोम्नि चाप्यथ ॥ १२ ॥
एषामुक्तानि लिङ्गानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः।
गुदे वातनिरोधस्तु बस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता ॥ १३ ॥
नाभ्यां हिक्का तथाऽऽटोपः कुक्षौ मारुतकोपनम्।
कटिपृष्ठग्रहस्तीव्रो वंक्षणोत्थे च विद्रधौ ॥ १४ ॥
वृक्कयोः पार्श्वसंकोचः प्लीह्न्युच्छ्वासावरोधनम्।
सर्वाङ्गप्रग्रहस्तीव्रो हृदि कम्पश्च जायते।
श्वासो यकृति हिक्का च क्लोम्नि पेपीयते पयः॥ १५ ॥

गुद, बस्ति, मुख, नाभि, कूख, वंक्षण, वृक्क, (कूख पिंडी प्लीह) यकृत् (कलेजा), हृदय, क्लोम (प्यासका स्थान) इन ठिकानोंपर विद्रधि होती है, इनके लक्षण बाह्यविद्रधिके समान जानने। गुदामें विद्रधि होनेसे अधोवायुका रोध होय। वस्तिमें-अर्थात् मूत्राशयमें होनेसे कठिनतासे थोडा २ मूते, नाभिमें होनेसे हिचकी तथा गुडगुड शब्द होता है। कूखमें-होनेसे पवनका कोप होय। वंक्षणमें-होनेसे कमर और पीठका बलपूर्वक जकड जाना होय। कूखके पिंडमें होनेसे पसवाडोंका संकोच होय। प्लीहामें होनेसे श्वास रुकजाय। हृदयमें-होनेसे सब अंग जकडजाय और कम्प होय। कलेजेमें होनेसे श्वास और हिचकी होय। क्लोममें-अर्थात् पिपासा-स्थानमें विद्रधि होनेसे बारंबार पानी पीनेकी इच्छा होय है॥

स्रावनिर्गम।

नाभेरुपरिजाः पक्का यान्त्यूर्ध्वमितरे त्वधः।
अधः स्रुतेषु जीवेत्तु स्रुतेषूर्ध्वं न जीवति ॥ १६ ॥

नाभिके ऊपर जो विद्रधि होय उनके पकनेसे जो स्राव कहिये राध आदिका बहना होय वह मुखके रास्ते होय है और नाभिके नीचे होनेसे जो स्राव होय वह गुदाके मार्गसे होय है और नाभिके समीप होनेवाली विद्रधियोंका स्राव दोनों मार्गोंसे होय। जिनका स्राव नीचेके मार्ग हो वह रोगी जीवे और ऊपरके मार्ग जिसका स्राव होय वह रोगी बचे नहीं ॥

विद्रधिमें साध्यासाध्य।

हृन्नाभिबस्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु बाह्यतः।
जीवेत्कदाचित्पुरुषो नेतरेषु कथंचन ॥ १७ ॥
साध्या विद्रधयः पञ्च विवर्ज्यः सान्निपातिकः।
आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोथवदादिशेत् ॥ १८ ॥

हृदय, नाभि और बस्ति इन ठिकानोंको छोडकर प्रगट जो विद्रधि अर्थात् प्लीहा क्लोम इत्यादि ठिकाने बाहर फूटनेसे कदाचित् पुरुष बचजाय और ठिकानेपर फूटनेसे नहीं बचे। पहली पांच विद्रधि साध्य हैं, सन्निपातकी विद्रधि असाध्य है, इन विद्रधियोंको आम, पक्व और विदग्ध ये तीन अवस्था शोथरोगके समान जाननी चाहिये ॥

असाध्य लक्षण।

आध्मातं बद्धनिष्यन्दं छर्दिहिक्कातृषान्वितम्।
रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ १९ ॥

अफरायुक्त, मूत्र रुकगया होय, हिचकी, वमन और प्यास इनसे पीडित शूल, श्वास इन करके युक्त ऐसे मनुष्यके विद्रधिरोग असाध्य होय है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां विद्रधिनिदानं समाप्तम् ॥

अथ व्रणनिदानम्।

एकदेशोत्थितः शोथो व्रणानां पूर्वलक्षणम्।
षड्विधः स्यात्पृथक् सर्वरक्तागन्तुनिमित्तजः॥ १॥
शोथाः षडेते विज्ञेयाः प्रागुक्तैः शोथलक्षणैः।
विशेषः कथ्यते तेषां पक्वापक्वविनिश्चये॥ २॥

एक ठिकानेपर सूजन उत्पन्न होनेसे जाने कि, इसके व्रण (फोडा) होगा सो व्रणरोग पृथक् दोषोंसे ३, सन्निपातसे १, रुधिरसे १ और आगंतुज १ ऐसे मिलकर छः प्रकारका है, इन छहों व्रणोंमें जो प्रथम सूजन होय उसके लक्षण शोथरोगलक्षणके समान जानने। इनमें पक्व (पकने) अपक्व (न पकने) के विषयमें जो विशेषता है उसको इस जगह कहते हैं॥

वातादिभेदसे व्रणके पाक।

विषमं पच्यते वातात्पित्तोत्थश्चाचिराच्चिरम्।
कफजः पित्तवच्छोफो रक्तागंतुसमुद्भवः॥ ३॥

बादीसे विषम पाक होय अर्थात् कहीं पके, कहीं नहीं पके, पित्तसे बहुत जल्दी पके, कफका फोडा देरमें पके और रुधिरका तथा आगन्तुज फोडेका पकना पित्तके समान अर्थात जल्दी पके है॥

कच्चे फोडेका लक्षण।

मन्दोष्मताऽल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णता।
मन्दवेदनता चैव शोथानामामलक्षणम्॥ ४॥

सूजन हाथके छूनेसे थोडी गरम लगे, थोडी सूजन होय, फोडेका स्थान करडा होय तथा देहके रंग समान उसका रंग होय और इसमें पीडा मन्द होय ये कच्ची सूजनके लक्षण हैं॥

पच्यमानव्रणके लक्षण।

दह्यते दहनेनेव क्षारेणेव च पच्यते।
पिपीलिकागणेनेव दश्यते छिद्यते तथा॥ ५॥
भिद्यते चैव शस्त्रेण दंडेनेव च ताडयते।
पीडयते पाणिनेवान्तः सूचीभिरिव तुद्यते॥ ६॥

शोषश्चोषो विवर्णः स्यादंगुल्येवावपाड्यते ।
आसने शयने स्थाने शांतिं वृश्चिकविद्धवत् ॥ ७ ॥
न गच्छेदाततः शोथो भवेदाध्मातवस्तिवत् ।
ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैव पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ८ ॥

जिस समय व्रण पकनेको होय उस समय ये लक्षण होते हैं–फोडेके स्थानमें अग्निसे जलेहुएके समान जलन होय, खार लगानेकासा चिनमिनावे, चेंटी काटनेकीसी पीडा होय, वह दो टूक करनेके समान तथा शस्त्रसे फाडनेके समान, दण्ड आदिके मारनेके समान तथा हाथसे मीडनेके समान तथा भीतर सूईसे छेदनेके समान पीडा और उसमें अत्यन्त दाह होय, अग्निसे सेकनेके समान उसमें वेदना होय, उस फोडेका रंग बदल जाय, उंगलीके लगानेसे उखारनेकीसी पीडा होय, बैठनेमें सोनेमें खडे रहनेमें बीछू काटनेकीसी घोर पीडा होय, वो पीडा कभी शांत नहीं होय, वो सूजन फूली हुई बस्ती (मूत्रस्थान) के सदृश तनीसी होय, उसमें ज्वर, प्यास, अरुचि ये लक्षण होते हैं ॥

पक्वव्रणके लक्षण ।

वेदनोपशमः शोथो लोहितोऽल्पो न चोन्नतः ।
प्रादुर्भावो वलीनां च तोदः कण्डूर्मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥
उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटनं त्वचाम् ।
बस्ताविवाम्बुसंचारः स्याच्छोथेऽङ्गुलिपीडिते ॥ १० ॥
पूयस्य पीडयत्येकमन्तमन्ते च पीडिते ।
भक्ताकांक्षा भवेच्चैव शोथानां पक्वलक्षणम् ॥ ११ ॥

व्रण पकनेसे पीडा शांत हो जाय, उसकी सूजन तांबेके रंगकी होय और थोडी होय, ऊंची न होय, उसमें गुलझट पडे, सुई चुभानेकीसी पीडा होय, बारंबार खुजली चले, पित्तके कोपसे दाहादि उपद्रवोंकी शांति हो, स्वभावसे ही व्रणकी जगह गढेला होजाय, त्वचायें फटजाँय, सूजन, अंगुलिसे दबानेसे जैसे बस्तिमें पानी इधर उधर होय उसी प्रकार शोथमें राध इधर उधर होय, व्रणके अन्त अवयवके दबाने-पर राध एकदेशको पीडित करती है अर्थात राध एक जगहसे निकलने लगती है, अन्नमें इच्छा हो ये पक्वव्रणके लक्षण हैं ॥

एक दोषसे सूजन उत्पन्न होय उसमें पकनेके समय तीनोंका सम्बन्ध होय है ।

नर्त्तेऽनिलाद्रुङ्न विना न पित्तं पाकः कफं वापि विना न पूयः ।
तस्माद्धि सर्वे परिपाककाले पचन्ति शोथास्त्रिभिरेव दोषैः ॥ १२ ॥

बादीके विना पीडा नहीं होय, पित्तके विना पाक नहीं होय और कफके विना राध नहीं होय अर्थात् पकनेके समय तीनों दोषोंके मिलनेसे सब प्रकारकी सूजन पकती है । रक्तपाकलक्षण ग्रन्थांतरोंमें कहे हैं, यथा–" कफजेषु च शोथेषु गम्भीरं पाकमेत्यसृक् । पक्वं स्निग्धं ततः स्पष्टं यत्र स्यात्क्लिन्नशोफता ॥ त्वक्सावर्ण्यं रुजोऽल्पत्वं घनस्पर्शित्वमश्मवत् । रक्तपाकमिति ब्रूयात्तं प्राज्ञो मुक्तसंशयः ॥"

राध न निकालनेसे जो परिणाम होय है उसको दृष्टांत देकर कहते हैं–

कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वाय्वीरितः संदहति प्रसह्य ।
तथैव पूयोऽप्यविनिःसृतो हि मांसं शिराः स्नायु च खादतीह ॥१३॥

फूँसके गंजमें लगीहुई आग पवनकी सहायता पाकर जैसे वह फूंसको जलाकर खाक करदे उसी प्रकार व्रणमें राध न निकालनेसे वह राध मांस, शिरा और स्नायु इनको खाय लेती है ॥

आमादि लक्षणज्ञानसे वैद्यके गुणदोष दिखाते हैं—

आमं विदह्यमानं च सम्यक् पक्कं च यो भिषक् ।
जानीयात्स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥ १४ ॥

आम (कच्चा) पच्यमान और जो अच्छी रीतिसे पकगया हो ऐसे व्रणके लक्षण जो वैद्य जाने है, उसीको वैद्य जानना चाहिये, बाकी सब चोर हैं ॥

अपक्वका छेदन और पकेकी उपेक्षा करनेमें दोष ।

यश्छिनत्त्याममज्ञानाद्यश्च पक्कमुपेक्षते ।
श्वपचाविव मन्तव्यौ तावनिश्चितकारिणौ ॥ १५ ॥

जो अज्ञानसे कच्चे फोडेको पका समझकर फोडे और जो पके फोडेको कच्चा समझकर चीरे नहीं ये दोनों अविचारवान् वैद्य चांडालके समान जानने ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरी-
भाषाटीकायां व्रणशोथनिदानं समाप्तम् ॥

अथ शारीरव्रणनिदानम् ।

द्विधा व्रणः स विज्ञेयः शारीरागन्तुभेदतः ।
दोषैराद्यस्तयोरन्यः शस्त्रादिक्षतसंभवः ॥ १ ॥

शारीर और आगन्तुक इन भेदोंसे वह व्रण दो प्रकारका है, पहिला शारीर दोषोंके कोपसे होय है और दूसरा शस्त्रादि करके घावके होनेसे होता है ॥

वातिकव्रण ।

स्तब्धः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्रावो महारुजः ।
तुद्यते स्फुरति श्यावो व्रणो मारुतसंभवः ॥ २ ॥

बादीसे प्रगट व्रणमें जकडना तथा हाथके छूनेसे कठिन मालूम होय, उसमेंसे थोडा स्राव होय तथा पीडा बहुत होय सुईके चुभनेकीसी पीडा होय तथा फडकता होय और उसका रंग नीला होय ॥

पित्तव्रणके लक्षण ।

तृष्णामोहज्वरक्लेददाहदुष्टयवदारणैः ।
व्रणं पित्तकृतं विद्याद्गंधैः स्रावैश्च पूतिकैः ॥ ३ ॥

प्यास, मोह, ज्वर, क्लेद, दाह, सडना चिदासा होय, बास आवै, दुर्गंधयुक्त स्राव होय, ये पित्तव्रणके लक्षण हैं ॥

कफव्रणके लक्षण ।

बहुपिच्छो गुरुः स्निग्धः स्तिमितो मन्दवेदनः ।
पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदी चिरपाकी कफोद्भवः ॥ ४ ॥

कफका स्राव अत्यन्त गाढा, भारी, चिकना, निश्चल, मन्द पीडा, पीला रंग, थोडा स्रवनेवाला और बहुत कालमें पके ॥

रक्तजद्वन्द्वजव्रण ।

रक्तो रक्तस्रुती रक्ताद्द्वित्रिजः स्यात्तदन्वयैः ॥ ५ ॥

जो रक्तके कोपसे व्रण होय वह रक्तवर्ण, उसमेंसे रुधिर स्रवे । एक दोष और रुधिरके सम्बन्धसे जो होय वह द्वन्द्व और दो दोष अथवा तीन दोष तथा रुधिर

---

१ "व्रण गात्रविचूर्णने" इत्यस्माद्धातोर्व्रणस्य साधुत्वम् । व्रणनिरुक्तिश्च सुश्रुते-"व्रणोति यस्माद्रूढेऽपि व्रणवस्तु न नश्यति । आदेहधारणाज्जन्तोर्व्रणस्तस्मान्निरुच्यते ॥" इति ॥

इनके मिलनेसे सन्निपातका व्रण जानना इस प्रकार तीनों दोषोंमें रुधिरके सम्ब-न्धकी कल्पना करनी चाहिये ॥

सुखव्रणके लक्षण।

त्वङ्मांसजः सुखे देशे तरुणस्यानुपद्रवः।
धीमतोऽभिनवः काले सुखसाध्यः सुखव्रणः ॥ ६ ॥

जो व्रण त्वचा और मांस तथा मर्मरहित स्थानमें उपद्रवरहित होय और जो तरुण तथा हिताहित जाननेवाला पुरुषके हेमन्त शिशिरकालमें नवीन प्रगट होय उसको सुखव्रण कहते हैं, वह सुखसाध्य है ॥

कृच्छ्रसाध्य और असाध्य लक्षण।

गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततः कृच्छ्रो व्रणः स्मृतः।
सर्वैर्विहीनो विज्ञेयः सोऽसाध्यो निरुपक्रमः ॥ ७ ॥

जा पूर्व श्लोकमें लक्षण कह आये उनमेंसे कुछ लक्षण थोडे होनेसे व्रण कृच्छ्र-साध्य होय है और सब गुणरहित होय, बहुत उपद्रवयुक्त होय, वह असाध्य है। उसकी चिकित्सा न करनी चाहिये ॥

दुष्टव्रणके लक्षण।

पूतिपूयातिदुष्टासृक्स्राव्युत्संगी चिरस्थितिः।
दुष्टो व्रणोऽतिगन्धादिः शुद्धलिङ्गविपर्ययः ॥ ८ ॥

जिसमेंसे दुर्गंधयुक्त राध और अत्यन्त सडा भया रुधिर बहे, जो ऊपरसे उठा हुआ हो, बहुत दिन रहनेवाला हो, अत्यन्त दुर्गंध दुर्वर्ण स्राव पीडायुक्त होय उसको दुष्टव्रण कहते हैं। वह वक्ष्यमाण शुद्धलिंगसे विपरीत होता है ॥

शुद्धव्रणके लक्षण।

जिह्वातलाभोऽतिमृदुः श्लक्ष्णः स्निग्धोऽल्पवेदनः।
सुव्यवस्थो निरास्रावः शुद्धो व्रण इति स्मृतः ॥ ९ ॥

जो व्रण जीभके नीचे भागके समान अत्यन्त नरम होय, स्वच्छ, चिकना, थोडी पीडायुक्त, भले प्रकारका कहिये ऊंचा आदि जो दुष्ट व्रणादिकमें लक्षण कहे हैं वे न होय, दोषकृत रक्तादिस्रावरहित होय उसको शुद्धव्रण जानना ॥

भरनेवाले व्रणके लक्षण।

कपोतवर्णप्रतिमो यस्यांताः क्लेदवर्जिताः।
स्थिराश्च पिडिकावन्तो रोहतीति तमादिशेत् ॥ १० ॥

जिसका घाव कबूतरके रंगसदृश होय और जिसमें क्लेद न बहता होय और घाव स्थिर हो, जिसमें फुन्सीसी मालूम हों उसको वैद्य जाने कि, यह व्रण (घाव) स्थिर भरनेवाला है ॥

जो व्रण भरगया हो उसके लक्षण ।

रूढवर्त्मानमग्रंथिमशूनमरुजं व्रणम् ।
त्वक्सवर्णं समतलं सम्यग्रूढं तमादिशेत् ॥ ११ ॥

जिसका मार्ग भरगया होय, गांठ रहित होय, सूजन और पीडा जिसमें नहीं होय, त्वचाके समान वर्ण होगया हो, घावका गढेला भरकर बराबर हो गया हो वह व्रण उत्तम भरा जानना ॥

व्याधिविशेषकरके व्रण कृच्छ्रसाध्य होता है सो कहते हैं-

कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ।
व्रणाः कृच्छ्रेण सिध्यन्ति येषां चापि व्रणे व्रणाः ॥ १२ ॥

कोढी पुरुष, विषवाला पुरुष, क्षयीरोगवाला, मधुमेही पुरुष ऐसोंका व्रण बडे कष्टसे साध्य होता है और जिसके पहले व्रणमें व्रण प्रगट होय, उसके ये व्रण कष्टसाध्य होते हैं ॥

साध्यासाध्य लक्षण ।

वसां मेदोऽथ मज्जानं मस्तुलुङ्गं च यः स्रवेत् ।
आगन्तुजो व्रणः सिध्येन्न सिध्येद्दोषसंभवः ॥ १३ ॥

जिस व्रणमेंसे चर्बी, मेद, मज्जा और बस्तिस्नेह ये बहें वह व्रण आगन्तुज होय तो साध्य है और दोषकृत होय तो साध्य नहीं होय ॥

असाध्यव्रणके लक्षण ।

मद्यागुर्वाज्यसुमनःपद्मचन्दनचम्पकैः ।
सुगन्धा दिव्यगन्धाश्च मुमूर्षूणां व्रणाः स्मृताः ॥ १४ ॥

मद्य, अगर, घृत, फूल, कमल, चन्दन और चम्पाके फूलके समान अथवा चमत्कारी पारिजात आदि फूलकीसी गन्ध जिस व्रणमेंसे आवे यह व्रण मरनेवाले रोगीके जानना ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

ये च मर्मस्वसंभूता भवंत्यत्यर्थवेदनाः ।
दह्यन्ते चान्तरत्यर्थं बहिः शीताश्च ये व्रणाः ॥ १५ ॥
दह्यन्ते बहिरत्यर्थं भवंत्यंतश्च शीतलाः ।

प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचकपीडिताः ॥ १६ ॥
प्रवृद्धपूयरुधिरा व्रणा येषां च मर्मसु ।
क्रियाभिः सम्यगारब्धा न सिध्यन्ति च ये व्रणाः ।
वर्जयेदेव तान्वैद्यः संरक्षन्नात्मनो यशः ॥ १७ ॥

जो व्रण मर्मस्थानमें प्रगट हुए हों और उनमेंसे अत्यन्त पीडा होय वे तथा जिस व्रणके भीतर दाह होय और बाहर शीतल होय वे अथवा बाहर दाह होय और भीतर शीतलता होय वे तथा जिनमें बल मांस इनका क्षय होय, श्वास, खांसी, अरुचि इनसे अत्यन्त पीडित होय ऐसे अथवा जो व्रण मर्मस्थानमें प्रगट भये हों उनमेंसे राध, रुधिर बहुत बहे वे अथवा जिन व्रणोंकी अच्छी चिकित्सा करनेसे भी अच्छे न होयँ ऐसे व्रणोंको अपने यशकी रक्षा करनेवाला वैद्य त्याग दे ॥

व्रणरोगमें अपथ्य ।

व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात् ।
तौ च रुक् च दिवास्वापात्ताश्च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ १८ ॥

परिश्रम करनेसे व्रणमें सूजन होती है और जागनेसे ललोही होती है और दिनमें सोनेसे सूजनपर लाली आकर पीडा होती है और मैथुन करनेसे सूजन लाली पीडा मृत्यु होय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थदीपिकायां माथुरीभाषाटीकायां शारीरव्रणनिदानं समाप्तम् ॥

अथागन्तुजव्रणनिदानम् ।

नानाधारामुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः ।
भवंति नानाकृतयो व्रणास्तांस्तान्निबोध मे ॥ १ ॥

अनेक प्रकारकी धारवाले तथा मुखवाले शस्त्र अनेक ठिकानेपर लगानेसे अनेक प्रकारकी आकृति (स्वरूप) के व्रण होते हैं उनको कहता हूं ॥

व्रणकी संख्या और सम्प्राप्ति ।

छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्चितमेव च ।
घृष्टमाहुस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २ ॥

छिन्न, भिन्न, विद्ध, क्षत, पिच्चित और छठा घृष्ट ऐसे आगन्तुज व्रण छः प्रकारके होते हैं उनके लक्षण कहता हूं ॥

छिन्नके लक्षण।

तिर्यक्छिन्न ऋजुर्वापि यो व्रणस्त्वायतो भवेत्।
गात्रस्य पातनं तद्धि छिन्नमित्यभिधीयते ॥ ३ ॥

जो व्रण तिरछा छिद्रयुक्त, सरल (सीधा) अथवा लम्बा होय शरीरके अवयवके एकदेशको गिरानेवाला होय उसको छिन्न व्रण कहते हैं ॥

भिन्नके लक्षण।

शक्तिकुंतेषुखड्गाग्रविषाणैराशयो हतः।
यत्किंचित्स्रवते तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ४ ॥

बर्च्छी, भाला, बाण, तरवारके अग्रभाग, विषाण (दांत सींग) इनसे आशय (धात्वाशय और मलाशय)को वेधकर थोडासा स्राव होय अर्थात् रुधिर मूत्रादि आशयोंमेंसे जो आशय भिन्न हुआ हो उससे उसका स्राव हो, जैसे बस्तिके भिन्न होनेपर मूत्र निकले उसको भिन्न कहते हैं ॥

कोष्ठके लक्षण।

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च।
हृदुण्डुकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥ ५ ॥

आमाशय, अग्न्याशय, पक्वाशय, रक्ताशय (यकृत् प्लीहा) हृदय, मलाशय और फुप्फुस इन स्थानोंकी कोष्ठसंज्ञा है ॥

कोष्ठके भेदोंके लक्षण।

तस्मिन्भिन्ने रक्तपूर्णे ज्वरो दाहश्च जायते।
मूत्रमार्गगुदास्येभ्यो रक्तं घ्राणाच्च गच्छति ॥ ६ ॥
मूर्च्छा श्वासतृषाध्मानमभक्तच्छन्द एव च।
विण्मूत्रवातसङ्गश्च स्वेदास्रावोऽक्षिरक्तता ॥ ७ ॥
लोहगंधित्वमास्यस्य गात्रदौर्गंध्यमेव च।
हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि विशेषं चात्र मे शृणु ॥ ८ ॥

वह कोष्ठ भिन्न होकर रुधिरसे भरजावे तब ज्वर दाह होय है, मूत्रमार्ग, गुदा, मुख और नाक इनमेंसे रुधिर बहै, मूर्च्छा, श्वास, प्यास पेटका फूलना, अन्नमें अरुचि, मल, मूत्र, अधोवायु इनका अवरोध, पसीना बहुत आवे, नेत्रोंमें लाली, मुखमें

लोहेकीसी वास आवे, अंगोंमें दुर्गंध, हृदय और पसवाडोंमें शूल ये लक्षण होते हैं। इनसे जो विशेष लक्षण हैं उनको मुझसे सुन ॥

आमाशयस्थित रक्तके लक्षण ।

आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयत्यपि ।
आध्मानमतिमात्रं च शूलं च भृशदारुणम् ॥ ९ ॥

आमाशयमें रुधिरका संचय होनेसे रुधिरकी वमन, पेट बहुत फूले और अत्यन्त भयंकर शूल होय ॥

पक्वाशयस्थके लक्षण ।

पक्वाशयगते चापि रुजा गौरवमेव च ।
अधःकाये विशेषेण शीतता च भवेदिह ॥ १० ॥

पक्वाशयमें रुधिरका सञ्चय होनेसे शूल, देहमें भारीपना और कमरसे लेकर नीचेके भागमें शीतलता होय है ॥

विद्धव्रणके लक्षण ।

सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदङ्गं त्वाशयं विना ।
उत्तुंडितं निर्गतं वा तद्विद्धमिति निर्दिशेत् ॥ ११ ॥

बारीक अग्रभागवाले सुई आदि शल्यसे आमादि आशय विना जो अंग है उनमें वेध होनेसे 'तुंडित' कहिये उनमेंसे वह शल्य न निकला होय, 'निर्गत' कहिये शल्य निकल गया हो उसको विद्धव्रण कहते हैं ॥

क्षतके लक्षण ।

नातिच्छिन्नं नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम् ।
विषमं व्रणमंगेषु तत्क्षतं त्वभिनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥

जिसमें अंग अतिछिन्न तथा अतिभिन्न न भया हो और दोनोंके लक्षण मिलते हों तथा व्रण तिरछा वाँका होय, उसको क्षतव्रण कहते हैं ॥

पिच्चितके लक्षण ।

प्रहारपीडनाभ्यां तु यदङ्गं पृथुतां गतम् ।
सास्थि तत्पिच्चितं विद्यान्मज्जारक्तपरिप्लुतम् ॥ १३ ॥

---

१ शल्यं नाम–विविधतृणकाष्ठपाषाणपांसुलोहलोष्टास्थिवालनखपूयास्रावान्तर्गर्भादयः ।

जो अंग हाडसहित प्रहार कहिये मुद्गर आदिकी चोट अथवा किंवाड आदिके दबना इत्यादि योगसे पिच जाय, मज्जा रुधिर करके युक्त होय, घाव न होय उसको पिच्चितव्रण कहते हैं ॥

घृष्टके लक्षण।

घर्षणादभिघाताद्वा यदंगं विगतत्वचम्।
उषास्रावान्वितं तद्धि घृष्टमित्यभिनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥

कठिन वस्तु आदिके घर्षण (घिसने) से, चोटके लगनेसे जिस अंगके ऊपरकी त्वचा जाती रहे तथा आगके समान गरम रुधिर चुचाय उसको घृष्ट कहते हैं ॥

सशल्यव्रणके लक्षण।

श्यावं सशोथं पिटिकान्वितं च मुहुर्मुहुः शोणितवाहिनं च।
मृदूद्गतं बुद्बुदतुल्यमांसं व्रणं सशल्यं सरुजं वदंति ॥ १५ ॥

जो व्रण नीला, सूजनयुक्त, मरोडिनसे व्याप्त अथवा बारंबार उनमेंसे रुधिर बहै और नरम होकर ऊपर बबूलेके समान उठा हुआ जिसका मांस होय उस व्रणको सशल्य जानना चाहिये ॥

कोष्ठभेदके लक्षण।

त्वचोऽतीत्य शिरादीनि भित्त्वा वा परिहृत्य वा।
कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्यादुक्तानुपद्रवान् ॥ १६ ॥

सप्त त्वचामें व्याप्त होकर शिरा, नस, हड्डी इनकी सन्धियोंको वेधकर अथवा सिरा आदिको छोड जो शल्य कोष्ठमें रहा है, उससे आगे कहे हुए लक्षण होते हैं ॥

असाध्यकोष्ठभेद।

तत्रांतर्लोहितं पांडु शीतपादकराननम्।
शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानद्धं परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥

जिसका रुधिर आंतोंमें संचित होय अर्थात् बाहर नहीं बहे और जो पीला वर्ण, जिसके हाथ पैर शीतल होय और जो शीतल श्वासको छोडे, जिसके लाल नेत्र होयँ तथा आनाह कहिये पेट फूलना ऐसे रोगीको वैद्य त्याग देय ॥

मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और सन्धि इन मर्मोंमें चोट लगनेके सामान्य लक्षण।

भ्रमः प्रलापः प्रतनं प्रमोहो विचेष्टनं ग्लानिरथोष्णता च।
स्रस्तांगता मूर्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रा रुजो वातकृताश्च तास्ताः ॥ १८ ॥
मांसोदकाभं रुधिरं च गच्छेत्सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव।
दशार्द्धसंख्येष्वथ विक्षतेषु सामान्यतो मर्मसु लिङ्गमुक्तम् ॥ १९ ॥

भ्रम, अनर्थभाषण, गिरना, इन्द्रिय और मन इनको मोह, हाथ पैरका फैलाना, ग्लानि, उष्णता, अंगोंमें शिथिलता, मूर्च्छा, श्वासका चढना, वातजन्य तीव्र पीडा, मांसका धोया हुआ पानी ऐसा रुधिर बहे, सर्व इन्द्रिय विकल होयँ अर्थात् सब इन्द्रियोंका व्यापार बन्द हो जाय ये लक्षण मांस आदि पाच मर्मविद्ध होनेसे होते हैं ॥

मर्मरहितशिराविद्धके लक्षण।

सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूतं रक्तं स्रवेत्तत्क्षणजश्च वायुः।
करोति रोगान्विविधान्यथोक्ताञ्छिरासु विद्धास्वथवा क्षतासु ॥२०॥

शिरा कहिये (नाडी) बिंध जाय, अथवा शिरामें घाव हो जाय उसमेंसे इन्द्रगोप (वीरबहूटी कीडों) के समान लाल तथा पुष्कल रुधिर स्रवे तथा रक्तक्षय होनेसे वायु कुपित होकर अनेक प्रकारके (आक्षेपकादि) रोग उत्पन्न करे है ॥

स्नायुविद्धके लक्षण।

कौब्ज्यं शरीरावयवावसादः क्रियास्वशक्तिस्तुमुला रुजश्च।
चिराद्व्रणो रोहति यस्य चापि तं स्नायुविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥ २१ ॥

कुबडापना, शरीरके अवयवोंका गिरना, काम करनेसे असमर्थपना, बहुत पीडा और जिसका व्रण बहुत दिनमें भरे, उसकी स्नायु विद्धभई ऐसे जाने ॥

सन्धिविद्धके लक्षण।

शोथाभिवृद्धिस्तुमुला रुजश्च बलक्षयः पर्वसु भेदशोथौ।
क्षतेषु संधिष्वचलाचलेषु स्यात्सर्वकर्मोपरमश्च लिङ्गम् ॥ २२ ॥

चल अथवा अचल संधिका वेध होनेसे सूजन बढे, पीडा बहुत होय, शक्तिका नाश होय, संधिमें भेदके समान पीडा होय, सूजन होय, कुछ कार्य करे परन्तु उसमें उपराम होय ॥

हड्डी विंधगई हो उसके लक्षण।

घोरा रुजो यस्य निशादिनेषु सर्वास्ववस्थासु च नैति शांतिम्।
भिषग्विपश्चिद्विदितार्थसूत्रस्तमस्थिविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥ २३ ॥

जिस पुरुषके रातदिन घोर पीडा होय, जाग्रदादि तीनों अवस्थासे शांति नहीं होय उसके अस्थि (हड्डी) विंधी है ऐसे श्रेष्ठ वैद्य जाने ॥

मर्मरहितशिरादिकोंके विद्धलक्षण कहके शिरादिमर्मविद्ध लक्षणोंका हवाला देते हैं—

यथास्वमेतानि विभावयेत्तु लिङ्गानि मर्मस्वभिताडितेषु।

मर्मके ठिकाने चोटके लगनेसे ये पूर्वोक्त लक्षण जानने चाहिये। तुशब्दसे लक्षण और सामान्य लक्षण होते हैं ऐसे जानना ॥

मांसमर्मके लक्षण नहीं कहे उनको कहते हैं—

पांडुर्विवर्णः स्पृशितं न वेत्ति यो मांसमर्मस्वभिताडितः स्यात्॥२४॥

जो पुरुष मांसमर्मके ठिकाने विद्ध होता है, उसका पीला वर्ण, देहका विवर्ण होय और स्पर्शका ज्ञान न होय॥

सर्व व्रणके उपद्रव।

विसर्पः पक्षघातश्च शिरास्तम्भोऽपतानकः।
मोहोन्मादव्रणरुजाज्वरतृष्णा हनुग्रहः॥ २५॥
कासश्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासः सवेपथुः।
षोडशोपद्रवाः प्रोक्ता व्रणानां व्रणचिन्तकैः॥ २६॥

विसर्प, पक्षाघात, शिरास्तम्भ, अपतानक, मोह, उन्माद, ज्वर, व्रणकी पीडा, प्यास, हनुग्रह, खांसी, वमन, अतिसार, हिचकी, श्वास और कंप ये व्रणरोगके सोलह उपद्रव व्रणरोगके जाननेवालोंने कहे हैं॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां
आगन्तुव्रण (सद्योव्रण) निदानं समाप्तम्॥

अथ भग्ननिदानम्।

भग्न दो प्रकारका है एक सव्रण और दूसरा व्रणरहित, इनमें सव्रणको कहकर व्रणरहितको कहते हैं—

भग्नं समासाद्द्विविधं हुताश काण्डे च संधौ च हि तत्र संधौ।

हे अग्निवेश ! कांडभंग और संधिभंग मिलकर संक्षेपसे भग्नरोग दो प्रकारका है॥

सन्धिभंगके लक्षण।

उत्पिष्टविश्लिष्टविवर्तितं च तिर्यक्च विक्षिप्तमधश्च षोढा॥ १॥

तहां संधिस्थानका भग्नरोग छः प्रकारका है। उनके नाम कहते हैं—उत्पिष्ट, विश्लिष्ट, विवर्तित, तिर्यक्, विक्षिप्त और अधःक्षिप्त। भग्ननाम टूटनेका है॥

संधिभंगके सामान्य लक्षण।

प्रसारणाकुंचनवर्तनोग्रा रुक्स्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम्।
सामान्यतः सन्धिगतस्य लिङ्ग—

---

१ "कांडमस्थिकांडः" काण्डेन नलककपालवलयतरुणरुचकानां ग्रहणम्। २ द्वयोरस्थ्नोः सैषानं संधिः॥

फैलाते समय, सकोरनेके समय, नीचे करनेसे घोर पीडा होय और स्पर्श सहा न जाय ये संधिभग्नके सामान्य लक्षण हैं ॥

—उत्पिष्टसन्धेः श्वयथुः समन्तात् ।

विशेषतो रात्रिभवा रुजा च—

उत्पिष्टमें संधिके चारों ओर सूजन होय और रात्रिमें पीडा बहुत होय, संधिके हाड दोनों आपसमें घिसे उसको उत्पिष्ट ऐसे कहते हैं ॥

विश्लिष्टजे तौ च रुजा च नित्यम् ॥ २ ॥

विश्लिष्ट संधियोंमें सूजन और रात्रिमें पीडा ये होकर सर्व कालमें अत्यन्त पीडा होय और उत्पिष्टकी अपेक्षा इतने लक्षण विश्लिष्टमें विशेष होते हैं अर्थात् संधि शिथिलमात्र होय इसमें हाडके हटनेसे बीचमें गलेटा हो जाय ॥

विवर्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्राः—

विवर्तित संधिमें दोनों तरफके हाड संधिसे पलटजायँ तब अत्यन्त पीडा होय इस सांधिमें हाड दोनों तरफ फिरा करें ॥

तिर्यग्गते तीव्ररुजो भवन्ति ।

हड्डीके तिरछे हटनेसे पीडा बहुत हो और एक हड्डी संधिस्थान छोडकर टेढी होजाय ॥

क्षिप्तेऽतिशूलं विषमा रुगस्थ्नोः—

संधिहड्डी एक ऊपरको हटजाय तो अत्यन्त पीडा होय और हाडोंमें कम ज्यादा पीडा होय, इस जगह हड्डीकी क्रियासे अथवा दोनों हड्डियोंकी क्रियाकरके दोनों हाड परस्पर समीपसे दूर होजाय ॥

—क्षिप्ते त्वधो रुग्विघटश्च सन्धेः ॥ ३ ॥

संधिकी हड्डी एक नीचेको हटजाय तो पीडा होय और संधिकी विरुद्ध चेष्टा होय, इसमें संधिके हाड परस्पर दूर होयँ परन्तु किंचित् नीचेको गमन करे ॥

अब कांडभग्नको कहते हैं—

काण्डे त्वतः कर्कटकाश्वकर्णविचूर्णितं पिच्चितमस्थिछल्लिका ।
काण्डेषु भग्नं त्वतिपातितं च मज्जागतं च स्फुटितं च वक्रम् ॥ ४ ॥
छिन्नं द्विधा द्वादशधापि काण्डे—

कांडभग्न बारह प्रकारके हैं—१ कर्कटक, २ अश्वकर्ण, ३ विचूर्णित, ४ पिच्चित, ५ अस्थिछल्लिका, ६ कांडभग्न, ७ अतिपातित, ८ मज्जागत, ९ स्फुटित,

१० वक्र और दो प्रकारके छिन्न। १ कर्कटक-अर्थात् हाड दोनों ओरसे दबकर बीचमें ऊंचासा होय। २ अश्वकर्ण-घोडेके कानके समान जो हाड हो जाय। ३-विचूर्णित चुरकट होगया हो, वह शब्दसे अथवा स्पर्शसे जाना जाय। ४ पिच्चित-पिचा भया हाड। ५ अस्थिछल्लिका--हाडका कोई भाग छिलकेके समान उखड कर रहा है सो। ६ कांडभग्न-हड्डीका कुंड टूटना। ७ अतिपात-सब हाड टूटे सो। ८ मज्जागत--हड्डीके अवयव मज्जामें प्रवेश कर मज्जाको बाहर निकाले। ९ स्फुटित-जिस हड्डीके बहुत टुकटे होजायँ। १० वक्र--हड्डी तिरछी होजाय वह भी भग्नमें गिनी जाती है। ११-१२ छिन्न-१ बारीक बारीक बहुतसे टुकडे होजायँ सो और दूसरा एक ओरसे टूटकर दूसरी तरफ निकले है॥

कांडभग्नके सामान्य लक्षण।

-स्रस्तांगता शोथरुजातिवृद्धिः।
सम्पीड्यमाने भवतीह शब्दः स्पर्शासहस्पंदनतोदशूलाः॥ ५॥
सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो भग्नस्य काण्डे खलु चिह्नमेतत्।

अंगोंमें शिथिलता, सूजन, घोर पीडा, जिस स्थानकी हड्डी टूटी होय उसजगह पीडाके साथ शब्द होय, हाथके लगानेसे सहा न जाय, हड्डी फडके, सुई छेदने-कीसी पीडा होय और शूल होय, कभी चैन न पडे। 'कांड' इस शब्दसे, नलक, कपाल, वलय, तरुण और रुचक इन पांच प्रकारकी हड्डियोंका संग्रह होय है॥

कांड भग्नके (१२) बारह भेदोंसे अधिक भेद होते हैं उनको कहते हैं।

भग्नं तु कांडे बहुधा प्रयाति समासतो नामभिरेव तुल्यम्॥ ६॥

कांडोंमें अनेक प्रकारके भंग होते हैं, सो जिस ठिकाने जैसी आकृतिका होय उसका उसी प्रकारका नाम कहना चाहिये॥

कष्टसाध्यके लक्षण।

अल्पाशिनोऽनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च।
उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिध्यति॥ ७॥

थोडा खानेवाला और जिसकी इन्द्रिय स्वाधीन न होय वात प्रकृतिवालेकी ज्वरादि उपद्रवसंयुक्त ऐसे पुरुषकी हड्डी टूटनेसे बडे कष्टसे साध्य होती है॥

असाध्य लक्षण।

भिन्नं कपालं कट्यां तु संधिमुक्तं तथा च्युतम्।
जघनं प्रतिपिष्टं च वर्जयेत्तु विचक्षणः॥ ८॥

कमरकी कपाल हड्डी टूटगई हो अथवा संधिके पासकी हड्डी हटगई हो अथवा स्थानसे छूटगई हो, जंघाकी हड्डीका चूर होगया हो ऐसे रोगीको वैद्य त्याग दे ॥

असंश्लिष्टकपालं च ललाटे चूर्णितं च यत् ।
भग्नं स्तनान्तरे पृष्ठे शंखे मूर्ध्नि च वर्जयेत् ॥ ९ ॥

ललाटकी हड्डी टुकडे टुकडे हो परस्पर दूर हो जाय, जुडनेके कामके न रहे, अथवा स्तनके बीचकी अथवा पीठकी अथवा शंख (कनपटी) की हड्डी, मस्तककी हड्डी टूट गई हो उसको वैद्य त्याग दे ॥

सावधानता न करनस असाध्यता दिखाते हैं-

सम्यक्संधितमप्यस्थि दुर्निक्षेपनिबंधनात् ।
संक्षोभाद्वापि यद्गच्छेद्विक्रियां तच्च वर्जयेत् ॥ १० ॥

हड्डी भली प्रकार जुड भी गई हो उसको अच्छी रीतिसे न राखे अथवा अच्छी रीतिसे बांधे नहीं, उसमें किसीका धक्का लगनेसे फिर जैसेका तैसा हो जाता है और यह साध्य नहीं होय इसको वैद्य त्याग दे ॥

अस्थिविशेष करके भग्नविशेष कहते हैं-

तरुणास्थीनि नम्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि च ।
कपालानि विभज्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि च ॥ ११ ॥

तरुण हड्डी नम जाती है या टेढी हो जाती है, नलक हड्डी चिर जाती है। कपालास्थि फूट टूक कर टूक हो जाय, रुचकास्थि (दन्तादिक) हड्डी टुकडा होकर गिरपडे ॥

इति श्रीपंडितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां भग्ननिदानं समाप्तम् ॥

---

१ सुश्रुते–जानुनितंबांसगण्डतालुशंखवंक्षणशिरःसु कपालानीति ।

अथ नाडीव्रणनिदानम् ।

नाडी व्रणकी सम्प्राप्ति ।

यः शोथमाममतिपक्वमुपेक्षतेऽज्ञो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः । अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः सपूयः ॥ १ ॥ तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु नाडीव यद्वहति तेन मता तु नाडी ।

जो मूर्खमनुष्य पकेहुए फोडेको कच्चा समझकर उपेक्षा करे किंवा बहुत राध पडे फोडेकी उपेक्षा करदे, तब वह बढीहुई राध पूर्वोक्त त्वङ्मांसादिक स्थानमें जाकर उनको भेद कर वह बहुत भीतरही पहुँच जाय, तब एक मार्ग कर उसमें वह राध नाडीके समान बहे इसीसे इसको नाडीव्रण (नासूर) कहते हैं ॥

नाडीव्रणकी संख्यारूप सम्प्राप्ति ।

दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च
संमूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥ २ ॥

पृथक् पृथक् दोषोंसे ३, सन्निपातसे १ और शल्यसे १ ऐसे नाडीव्रण पांच प्रकारका है ॥

वातज नाडीव्रणके लक्षण ।

तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला
फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु ।

बादीसे नाडीव्रणका मुख रूखा तथा छोटा होय और शूल होय, उसमेंसे फेनयुक्त स्राव होय, रात्रिमें अधिक स्रवे ॥

पित्तके नाडीव्रणके लक्षण ।

पित्तात्तु तृड्ज्वरकरी परिदाहयुक्ता
पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहःसु चापि ॥ ३ ॥

पित्तके नाडीव्रणमें प्यास, ज्वर और दाह होय, उसमेंसे पीले रंगका और बहुत गरम राध स्रवे और दिनमें स्राव अधिक होय ॥

कफजनाडीव्रणके लक्षण ।

ज्ञेया कफाद्बहुघनाऽर्जुनपिच्छिलास्रा
स्तब्धा सकंडुररुजा रजनीप्रवृद्धा ।

कफज नाडीव्रणमें सफेद, गाढी, चिकनी राध निकले, खुजली चले, रातमें स्राव बहुत होय ॥

सन्निपातज नाडीव्रणके लक्षण ।

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा यस्यां भवन्ति विहितानि च लक्षणानि । तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपाद्घोरामसुक्षयकरीमिव कालरात्रिम् ॥ ४ ॥

जिस नाडीव्रणमें दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, मुखका सूखना और पूर्वोक्त लक्षण होय उसको त्रिदोषकोपजन्य नाडीव्रण जानना, इसको भयंकर प्राणनाश करनेवाले कालरात्रिके समान जानना ॥

शल्यज नाडीव्रण ।

नष्टं कथंचिदनुमार्गमुदीरितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति । सा फेनिलं मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं स्रावं करोति सहसा सरुजं च नित्यम् ॥ ५ ॥

किसी प्रकारसे शल्य (कण्टकादि) उक्तस्थानमें पहुँचकर टूट जाय तो नाडीव्रणको उत्पन्न करे, उस नाडीव्रणमेंसे झाग मिला तथा रुधिरयुक्त मथेके समान गरम नित्य राध बहे तथा पीडा होय ॥

साध्यासाध्य लक्षण ।

नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिध्येच्छेषाश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः ॥ ६ ॥

त्रिदोषजन्य नाडीव्रण साध्य नहीं होय, बाकीके चार नाडीव्रण यत्न करनेसे साध्य होते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीभाषाटीकायां
नाडीव्रणरोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ भगन्दरनिदानम् ।

गुदस्य द्व्यंगुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिटिकाऽऽर्तिकृत् ।
भिन्नो भगन्दरो ज्ञेयः स च पंचविधो मतः ॥ १ ॥

गुदाके समीप दो अंगुल ऊंची पिछाडी एक पिडिका (फुन्सी) हो उसमें बहुत पीडा होय, पिडिका फूटजाय उसको भगन्दररोग कहते हैं, सुश्रुतने इसकी निरुक्ति इस प्रकार करी है यथा-" गुदभगवस्तिप्रदेशदारणात् भगन्दरः " इति । भगशब्द इस जगह गुदावाचक है । सो भोजने कहा भी है-" भगः परिसमन्ताच्च गुदं बस्तिस्तथैव च । भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो भगन्दरः ॥ " इति । यह भगन्दररोग पांच प्रकारका है, यह संख्या कहना केवल रक्तज द्वन्द्वज भगन्दर सम्भावना निवारणार्थ जानना ॥

इसके पूर्वरूप ग्रन्थांतरोंसे लिखते हैं-

कटीकपालनिस्तोददाहकण्डूरुजादयः ।
भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यति भगन्दरे ॥ २ ॥

कमरमें, कपालास्थिमें सुईसी चुभे, दाह होय, खुजली चले, पीडा होय ये लक्षण जब भगन्दर होनहार होय है तब होते हैं, इस जगह भी कपालास्थि पूर्वोक्त जाननी अर्थात् जो नाडीव्रणमें कह आये हैं ॥

शतपोनकके लक्षण ।

कषायरूक्षैरतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशे पिडिकां करोति याम् ।
उपेक्षणात्पाकमुपैति दारुणं रुजा च भिन्नारुणफेनवाहिनी ॥
तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ॥ ३ ॥

कसैले और रूखे पदार्थ खानेसे वायु अत्यन्त कुपित होकर गुदास्थानमें जो पिडिका (फुन्सी) प्रगट करे, उनकी उपेक्षा करनेसे वे फुन्सियां पकें और फूट जायँ तब पीडा होय तथा लाल झाग मिलि राध बहे तथा उसमें अनेक छिद्र हो जायँ उन छिद्रोंमें होकर मूत्र मल और रेत (शुक्र) बहे, चालनीकेसे अनेक छिद्र होयँ इसी कारण इस रोगको शतपोनक कहते हैं । शतपोनक नाम संस्कृतमें चालनीका है ॥

उष्ट्रशिरोधरके लक्षण ।

प्रकोपणैः पित्तमतिप्रकोपितं करोति रक्तां पिडिकां गुदाश्रिताम् ।
तदाशुपाकाहिमपूयवाहिनीं भगंदरं तूष्ट्रशिरोधरं वदेत् ॥ ४ ॥

पित्तकारक पदार्थ खानेसे कुपितभया जो पित्त सो गुदामें लाल रंगकी पिडिका उत्पन्न करे, वह शीघ्र पककर उनमेंसे गरम राध बहे । ये पिडिका (फुन्सी) ऊँटकी नाडके समान होयँ इसीसे इसको उष्ट्रशिरोधर नाम कहते हैं ॥

परिस्त्रावीभगन्दरके लक्षण ।

कण्डूयनो घनस्त्रावी कठिनो मंदवेदनः ।
श्वेतावभासः कफजः परिस्त्रावी भगंदरः ॥ ५ ॥

कफसे प्रगट भये भगन्दरमें खुजली चले तथा गाढी राध बहे, पिंडिका कठिन होयँ, पीडा थोडी होय, वर्ण सफेद होय, उसको परिस्त्रावी भगन्दर कहते हैं ॥

शम्बूकावर्तके लक्षण ।

बहुवर्णरुजास्त्रावाः पिंडिका गोस्तनोपमाः ।
शंबूकावर्तवन्नाडी शंबूकावर्तको मतः ॥ ६ ॥

जिसमें गौके थनके समान अनेक पिंडिका होयँ, उनका रंग पीला और स्त्राव अनेक प्रकारका होय, व्रण शंखके आँटेके समान होय, इसको शम्बूकावर्त कहते हैं ॥

उन्मार्गिभगन्दरके लक्षण ।

क्षताद्गतिः पायुगता विवर्धते ह्युपेक्षणात्स्युः कृमयो विदार्यते ।
प्रकुर्वते मार्गमनेकधामुखैर्व्रणैस्तदुन्मार्गिभगंदरं वदेत् ॥ ७ ॥

गुदामें कांटे आदिके लगनेसे क्षत (घाव) हो जाय, उस घावकी उपेक्षा करनेसे कृमि पडजायँ, वे कृमि उस क्षतको विदारण करें ऐसे वह घाव गुदापर्यंत बढकर पहुंचे तथा कृमि उसमें अनेक मुखवाले (व्रण) घाव करलेवें इसको उन्मार्गिभगन्दर कहते हैं ॥

साध्यासाध्य लक्षण ।

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भगंदराः ।
तेष्वसाध्यास्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः ॥ ८ ॥

सब भगन्दर दुःसाध्य हैं तिनमें भी त्रिदोषका भगन्दर असाध्य है और क्षतज विशेषकर असाध्य है ॥

असाध्यके लक्षण ।

वातमूत्रपुरीषाणि क्रिमयः शुक्रमेव च ।
भगंदरात्प्रस्त्रवन्ति नाशयन्ति तमातुरम् ॥ ९ ॥

जिस भगन्दरमेंसे अधोवायु, मूत्र, विष्ठा, कृमि और वीर्य बहे उस रोगीका नाश होय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां भगन्दरनिदानं समाप्तम् ॥

अथोपदंशनिदानम् ।

उपदंशके कारण ।

हस्ताभिघातान्नखदन्तघाताद्धावनाद्वत्यतिसेवनाद्वा ।
योनिप्रदोषाच्च भवंति शिश्ने पंचोपदंशा विविधापचारैः ॥ १ ॥

हाथकी चोट लगनेसे, नख, दांतके लगनेसे, अच्छी रीतिसे न धोनेसे, अत्यन्त स्त्रीसंगके करनेसे अथवा योनिके दोषसे अर्थात् दीर्घ कडे बाल जिसके ऊपर होयँ अथवा खारी गरम जलके धोनेसे, ब्रह्मचर्यवाली स्त्रीसे गमन करनेसे इत्यादिक कारणोंसे लिंगमें उपदंश (गर्मीका रोग) होय है । वह पांच प्रकारका है ॥

वातोपदंशके लक्षण ।

सतोदभेदस्फुरणैः सकृष्णैः स्फोटैर्व्यवस्येत्पवनोपदंशम् ।

लिंगेन्द्रियके ऊपर काले फोडे उठे, उनमें चोटनेकीसी पीडा होय, तोडनेकीसी पीडा होय और स्फुरण ये लक्षण वातोपदंशके जानने ॥

पित्तोपदंश व रक्तोपदंशके लक्षण ।

पीतैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तात्पिशितावभासैः ॥ २ ॥

पित्तके उपदंशकरके पीले रंगके फोडे होते हैं । उनमेंसे पानी बहुत बहै, दाह होय, रुधिरके उपदंशसे मांसके समान लाल रंगके फोडे होयँ ॥

कफोपदंशके लक्षण ।

सकण्डुरैः शोथयुतैर्महद्भिः शुक्लैर्घनस्रावयुतैः कफेन ।

कफके उपदंश करके सफेद मोटे फोडे होयँ, उनमें खुजली चले, सूजन होय और गाढी राध बहे ॥

सन्निपातोपदंशके लक्षण ।

नानाविधस्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ॥ ३ ॥

जिस उपदंशमें अनेक प्रकारका स्राव होय, पीडा होय यह त्रिदोषज उपदंश असाध्य है ॥

असाध्य लक्षण ।

विशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जयेत्तु ।

जिस उपदंश करके लिंगका मांस गल गया हो और कृमि लिंगको खाय जावें केवल अण्डकोश मात्र रहजाय, उसको वैद्य त्याग दे ॥

असाध्य लक्षण ।

संजातमात्रे न करोति मूढः क्रिया नरो यो विषये प्रसक्तः ।
कालेन शोथक्रिमिदाहपाकैर्विशीर्णशिश्नो म्रियते स तेन ॥ ४ ॥

उपदंशके होतेही जो मूर्ख मनुष्य विषयमें आसक्त होकर समयपर इसका उपचार नहीं करै उसका लिंग थोडे दिनमें सूजनयुक्त हो और कीडे पडें और उसमें दाह और पाकभी होय, पीछे वह गलजाय ऐसा रोगी मरजाय ॥

लिंगवर्तिके लक्षण ।

अंकुरैरिव सङ्घातैरुपर्युपरि संस्थितैः ।
क्रमेण जायते वर्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा ॥ ५ ॥
कोशस्याभ्यन्तरे संधौ सर्वसंधिगतापि वा ।
लिङ्गवर्तिरिति ख्याता लिङ्गार्श इति चापरे ॥ ६ ॥
कुलित्थाकृतयः केचित्केचित्पद्मदलोपमाः ।
मेढ्रसन्धौ नृणां केचित्केचित्सर्वाश्रयाः स्मृताः ॥ ७ ॥
रुजादाहार्तिबहुलास्तृष्णातोदसमन्विताः ।
स्त्रीणां पुंसां च जायंते उपदंशाः सुदारुणाः ॥ ८ ॥

मुरगेकी चोटीके समान लिंगके ऊपर मांसके अंकुर एकके ऊपर एक प्रगट होयँ, कोषकी भीतरकी मणिमें अथवा सर्व सन्धियोंमें तो इस रोगको लिंगवर्ति कहते हैं और कोई लिंगार्श कहते हैं, यह त्रिदोषजन्य है । इसमें मांसके अंकुर कुल्थीके समान और कोई पद्मदलके समान, किसीके अण्डकोशकी संधिमें किसीके सर्व आशयमें होते हैं और पीडा, दाह बहुत होय, प्यास, नोचनेकीसी पीडा होय, स्त्री पुरुषोंके यह उपदंश घोर पीडाकारक होते हैं । इसमें " कुलित्थाकृतयः " यहांसे लेकर "स्त्रीणां पुंसां च जायन्ते" यहांतक पाठ क्षेपक है, माधवका नहीं और स्त्रियोंके भी गरमीका रोग होय है यह मत सुश्रुतका है परन्तु यह आर्ष पाठ नहीं है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायाम् उपदंशनिदानं समाप्तम् ॥

अथ फिरंगरोगनिदानम्।

उपदंशरोगका ही भेद फिरंगरोग है उसको ग्रन्थान्तरसे लिखते हैं-

फिरंगशब्दकी निरुक्ति।

फिरङ्गसंज्ञके देशे बाहुल्येनैष यद्भवेत्।
तस्मात्फिरंग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः॥ १॥

फिरंगियोंके देशमें यह रोग बहुधा होता है, इसीसे वैद्य फिरंगरोग कहते हैं॥

विप्रकृष्ट निदान।

गन्धरोगः फिरंगोऽयं जायते देहिनां ध्रुवम्।
फिरंगिणोऽङ्गसंसर्गात्फिरंगिण्याः प्रसंगतः॥
भवेत्तं लक्षयेत्तेषां लक्षणैर्भिषजां वरः॥ २॥

गन्धरोग यह फिरंग रोग है सो मनुष्योंके अंग्रेजोंके संसर्गसे अथवा फिरंगिणी (मेम) के प्रसंग करनेसे होता है, इसको इसके आगे जो लक्षण कहेंगे उनसे जानना॥

इसका रूप।

फिरंगस्त्रिविधो ज्ञेयो बाह्य आभ्यन्तरस्तथा।
बहिरन्तर्भवश्चापि तेषां लिङ्गानि च ब्रुवे॥ ३॥

फिरंगरोग तीन प्रकारका है-१ बाहर होय, २ भीतर होय है और तीसरा बाहर भीतर दोनों स्थानमें होय है, उनके लक्षण कहता हूं॥

तत्र बाह्यः फिरंगः स्याद्विस्फोटसदृशाल्परुक्।
स्फुटितो व्रणवद्वैद्यैः सुखसाध्योऽपि स स्मृतः॥ ४॥

तहां बाहरका फिरंगरोग फोडेके समान थोडी पीडाकर्त्ता होय है और फोडेके समान ही फूटे हैं, यह सुखसाध्य है॥

संधिष्वाभ्यन्तरः स स्यादुभयोर्लक्षणैर्युतः।
कष्टदोऽतिचिरस्थायी कष्टसाध्यतमश्च सः॥ ५॥

और जो फिरंग सन्धियोंके भीतर होय अथवा दोनों बाहर और भीतरकी फिरंगके लक्षण मिलते होंय, वह अतिकष्ट देनेवाला बहुत कालतक रहनेवाला कष्टसाध्य है॥

फिरंगरोगके उपद्रव।

कार्श्यं बलक्षयो नासाभंगो वह्नेश्च मंदता।
अस्थिशोषोऽस्थिवक्रत्वं फिरंगोपद्रवा अमी॥ ६॥

देह कृश होजाय, बल नाश होजाय, नाक बैठ जाय, अग्नि मन्द हो जाय, हड्डी सूखे तथा हड्डी टेढी हो जाय, ये फिरंगके उपद्रव हैं ॥

साध्यासाध्य कष्टसाध्य ।

बहिर्भवो भवेत्साध्यो नूतनो निरुपद्रवः ।
आभ्यन्तरस्तु कष्टेन साध्यः स्यादयमामयः ॥ ७ ॥
बहिरंतर्भवो जीर्णः क्षीणस्योपद्रवैर्युतः ।
बोध्यो व्याधिरसाध्योऽयमित्यूचुर्मुनयः पुरा ॥ ८ ॥

जो फिरंग बाहर होय, नया और उपद्रवरहित होय वह साध्य है और भीतर होय वह कष्टसाध्य है और जो बाहर भीतर दोनों ठिकानेपर होय तथा पुराना पडजाय और उपद्रवयुक्त होय, वह फिरंगरोग असाध्य है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां फिरंगरोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ शूकरोगनिदानम् ।

अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः ।
व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥ १ ॥

जो मन्दबुद्धिवाला पुरुष शास्त्रोक्त क्रमके बिना लिंगको मोटा करा चाहै वह विषकृमिका लिंगके ऊपर लेपादिक करे अथवा जलयोग वात्स्यायनऋषिके कहे उनका साधन करे उसके १८ प्रकारके शूकरोग होते हैं ॥

सर्षपिकाके लक्षण ।

गौरसर्षपसंस्त्याना शूकदुर्भग्नहेतुका ।
पिडिका श्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका च सा ॥ २ ॥

दुष्टजलजन्तुका दुष्टरीतिसे लेप करनेसे कफ, वात कुपित होकर सफेद सरसोंके समान जो पिडिका (फुन्सी) होय उसको सर्षपिका कहते हैं ॥

अष्ठीलाके लक्षण ।

कठिना विषमैर्भुग्नैर्वायुनाऽष्ठीलिका भवेत् ।

अप्रसक्त शूकोंके लेपसे वायु कुपित होकर करडी निहाईके समान पिडिका होय और विषम कहिये कोई छोटी और कोई बडी और भुग्न कहिये टेढे ऐसे शूक कहिये मांसांकुरोंसे व्याप्त होय उसको अष्ठीला कहते हैं ॥

ग्रन्थितके लक्षण।

शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्ग्रंथितं नाम तत्कफात् ॥ ३ ॥

निरन्तर शूकलेप करनेसे लिंगेन्द्रियके ऊपर गांठ पैदा होय, उसे ग्रन्थित कहते हैं ॥

कुंभिकाके लक्षण।

कुंभिका रक्तपित्तोत्था जांबवास्थिनिभाऽशुभा।

रक्तपित्तसे जामुनकी गुठलीके समान, काले रंगकी पिडिका होय, उसको कुंभिका ऐसे कहते हैं ॥

अलजीके लक्षण।

तुल्यजां त्वलजीं विद्याद्यथाप्रोक्तं विचक्षणैः ॥ ४ ॥

यह पिडिका प्रमेहपिटिकामें जो अलजी नाम पिडिका कह आये हैं उनके समान लाल काले फोडोंसे व्याप्त होय तथा उसके लक्षण पूर्वोक्त पिडिकाकेसे होय हैं ॥

मृदितके लक्षण।

मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वातकोपतः।

शूकपीडा होनेके अनन्तर लिंगको हाथोंसे मीडनेसे अथवा दाबनेसे वायुके कोपसे लिंग सूज जाय ॥

संमूढपिडिकाके लक्षण।

पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढपिडिका भवेत् ॥ ५ ॥

लेप करनेके अनन्तर जब लिंगमें खुजली चले तब उसको दोनों हाथोंसे खूब खुजावे तब एक मूढ (विना मुखकी) पिडिका होय उसको संमूढपिडिका कहते हैं ॥

अवमंथके लक्षण।

दीर्घा बह्वयश्च पिडिका दीर्यन्ते मध्यतस्तु याः।
सोऽवमंथः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ॥ ६ ॥

कफरक्तसे लम्बी और अनेक तथा बीच बीचमें फूटी हुई ऐसी जो पिडिका लिंगमें होयँ, उसके होनेसे रोमाञ्च और पीडा होय, इस रोगको अवमंथ ऐसे कहते हैं ॥

पुष्करिकाके लक्षण।

पित्तशोणितसंभूता पिडिका पिडिकाचिता।
पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिका च सा ॥ ७ ॥

पित्तरक्तसे उत्पन्न हुई पिडिका उसके चारों तरफ अनेक छोटी २ फुन्सियां होय और वह कमलके भीतरकी केसरके समान सब फुन्सी होयँ उसको पुष्करिका ऐसे कहते हैं ॥

स्पर्शहानिके लक्षण ।

स्पर्शहानिं तु जनयेच्छोणितं शूकदूषितम् ।

शूकका लेप करनेसे रुधिर दूषित होकर त्वचाके स्पर्शज्ञानको नष्ट करे है ॥

उत्तमाके लक्षण ।

मुद्गमाषोपमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवाश्च याः ।
व्याधिरेषोत्तमा नाम शूकोऽजीर्णनिमित्तजः ॥ ८ ॥

शूकका वारम्वार लेप करनेसे रक्तपित्त कुपित होकर मूंग उडदके समान लाल फुन्सी लिंगेन्द्रियमें होयँ उसको उत्तमा कहते हैं ये अजीर्णके कारण होती है ॥

शतपोनकके लक्षण ।

छिद्रैरणुमुखैर्लिंगं चितं यस्य समंततः ।
वातशोणितजो व्याधिर्विज्ञेयः शतपोनकः ॥ ९ ॥

जिस पुरुषके लिंगमें अनेक बारीक छिद्र हो जायँ, यह व्याधि वातशोणितसे प्रगट होती है इसको शतपोनक कहते हैं ॥

त्वक्पाकके लक्षण ।

वातपित्तकृतो यस्तु त्वक्पाको ज्वरदाहवान् ॥ १० ॥

वातपित्तसे लिंगकी त्वचा पक जाय और उसमें ज्वर दाह होय है ॥

शोणितार्बुदके लक्षण ।

कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिडिकाभिर्निपीडितम् ।
यस्य वास्तुरुजा चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ॥ ११ ॥

जिस पुरुषकी लिंगेन्द्रियके ऊपर काले लाल फफोले और पिडिका (फुंसियां) हों वे पीडित हों तथा व्रणके स्थानमें पीडा होय उसको शोणितार्बुद कहते हैं ॥

मांसार्बुदके लक्षण ।

मांसदोषेण जानीयादर्बुदं मांससम्भवम् ।

मांस दुष्ट हानेसे मांसार्बुद प्रगट होता है ॥

मांसपाकके लक्षण ।

शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः ।
विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥ १२ ॥

जिसकी इन्द्रियका मांस गलजाय और अनेक प्रकारकी पीडा होय यह व्याधि त्रिदोषज है, इस व्याधिको मांसपाक कहते हैं ॥

विद्रधिके लक्षण।

विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

विद्रधिनिदानमें जो सन्निपातविद्रधिके लक्षण कहे हैं वे ही यहां विद्रधिशूकके लक्षण जानने ॥

तिलकालकके लक्षण।

कृष्णानि चित्राण्यथ वा शूकानि सविषाणि तु।
पातितानि पचंत्याशु मेढ्रं निरवशेषतः ॥ १४ ॥
कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यंते यस्य देहिनः।
सन्निपातसमुत्थांस्तु तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ १५ ॥

काले अथवा चित्रविचित्र रंगकेसे विषशूकोंके लेप करनेसे तत्काल सर्व लिङ्ग पक जाय तथा सब मांस तिलके सदृश काला होकर गलजाय, इस त्रिदोषोत्पन्न व्याधिको तिलकालक कहते हैं ॥

असाध्य शूकदोषके लक्षण।

तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः।
विद्रधिश्च न सिध्यंति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ १६ ॥

तिस शूकदोषमें मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये चार असाध्य हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां शूकदोषानिदानं समाप्तम् ॥

अथ कुष्ठनिदानम्।

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च।
भजतामागतां छर्दिं वेगांश्चान्यान्प्रतिघ्नताम् ॥ १ ॥
व्यायाममतिसन्तापमतिभुक्त्वा निषेविणाम्।
शीतोष्णलंघनाहारान्क्रमं मुक्त्वा निषेविणाम् ॥ २ ॥
घर्मश्रमभयार्त्तानां द्रुतं शीतांबुसेविनाम्।
अजीर्णाध्यशनानां च पंचकर्मापचारिणाम् ॥ ३ ॥

नवान्नदधिमत्स्यातिलवणाम्लनिषेविणाम् ।
माषमूलकपिष्टान्नतिलक्षीरगुडाशिनाम् ॥ ४ ॥
व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने निद्रां च भजतां दिवा ।
विप्रान्गुरून्धर्षयतां पापं कर्म च कुर्वताम् ॥ ५ ॥
वातादयस्त्रयो दुष्टास्त्वग्रक्तं मांसमंबु च ।
दूषयंति स कुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः ॥
अतः कुष्ठानि जायंते सप्त चैकादशैव च ॥ ६ ॥

विरोधी कहिये क्षीरमत्स्यादि, पतले, स्नेहयुक्त, भारी ऐसे अन्नपानके सेवन करनेसे रद्दके वेगको रोकनेसे और अन्य वेग कहिये मलमूत्रादिवेगोंके रोकनेसे, भोजन करके अत्यन्त व्यायाम (दण्डकसरत) अथवा अतिसंताप (सूर्यका ताप) सहनेसे, शीत, गरमी, लंघन और आहार इनके सेवन उक्त क्रम छोडकर करनेसे धूप, श्रम और भय इनसे पीडित होय और उसी समय शीतल जल पीवे, कच्चा अन्न भक्षण करनेसे तथा भोजनके ऊपर भोजन करनेसे, वमन, विरेचन, निरूहण, अनुवासन, नस्यकर्म इन पंचकर्मके करते समय अपथ्य करनेसे, नया अन्न, दही, मछली, अत्यन्त खारी खट्टा पदार्थके सेवन करनेसे, उडद, मूरी, पिट्ठीकी बनी वस्तु, तिल, दूध, गुड इनके खानेसे, अन्नके पचे विना स्त्रीसंग करनेसे तथा दिनमें सोनेसे, ब्राह्मण गुरु इनका तिरस्कार करनेसे, पापकर्मके आचरण करनेसे ऐसे पुरुषोंके वातादिक तीनों दोष त्वचा, रुधिर, मांस और जल इनको दुष्ट कर कुष्ठरोग (कोढ) उत्पन्न करे, कुष्ठ होनेके वातादि तीनों दोष और त्वचादि दूष्य ये सात पदार्थ अवश्य कारणभूत हैं इनसे ही अठारह प्रकारके कुष्ठ होते हैं, तिनमें सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्र कुष्ठ हैं ॥

कुष्ठोंको त्रिदोषजत्व भी होनेसे दोषाधिक्यसे वे सात प्रकारके हैं सो कहते हैं—

कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वंद्वैः समागतैः ।
सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिको मतः ॥ ७ ॥

पृथक् पृथक् दोषों करके ३, द्वन्द्वज ३ और सन्निपातसे १ सब मिलकर सात कुष्ठ भये। सब कुष्ठ त्रिदोष होनेपर भी जो दोष अधिक होय उसीसे व्यवहार करना चाहिये अर्थात् जिस दोषके लक्षण मिलें उसी दोषका कुष्ठ जानना जैसे " वातेन कुष्ठं कापालं " अर्थात् वाताधिक्य होनेसे कापाल कुष्ठ होता है ॥

कुष्ठके पूर्वरूप ।

अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णता ॥ ८ ॥

दाहः कंडूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोष्ठोन्नतिः क्लमः।
व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ॥ ९ ॥
रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम्।
रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥ १० ॥

जिस ठिकाने कुष्ठ होनहार होय उस जगह हाथोंसे अत्यन्त चिकना मालूम होय अथवा खरदरा मालूम होय, उस ठिकाने पसीने आवे अथवा नहीं आवे तथा उस ठिकानेका वर्ण पलट जाय, दाह होय, खुजली चले, त्वचाको स्पर्श मालूम न होय, नोचनेकीसी पीडा होय, विषैली माखीके काटनेके सदृश चकत्ते उठे, परिश्रम करे विना देहमें श्रम होय, व्रणमें पीडा अधिक होय, उन फोडोंकी उत्पत्ति शीघ्र होकर बहुत दिवसपर्यंत रहै, जब फोडा भरनेको होय तब रूखे रहें उनका थोडे निमित्त होनेसे कोप होय, रोमांच होय और रुधिर काला पडजाय, ये कुष्ठ होनेके पूर्वरूप होते हैं ॥

सप्त महाकुष्ठोंके लक्षण।

कृष्णारुणकपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु।
कापालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम् ॥ ११ ॥

कापालकुष्ठ जो काले तथा लाल खोपडीके सदृश, रूखे, खरखरे, पतले ऐसे त्वचावाले तथा नोंचनेकीसी अधिक पीडायुक्त होयँ, वे दुश्चिकित्स्य हैं अर्थात् चिकित्सा करनेमें कठिन हैं। इसको कापालकुष्ठ कहते हैं ॥

औदुम्बरकुष्ठके लक्षण।

रुग्दाहरागकंडूभिः परीतं लोमपिंजरम्।
उदुंबरफलाभासं कुष्ठमौदुंबरं वदेत् ॥ १२ ॥

औदुम्बरकुष्ठ शूल, दाह लाल और खुजली इनसे व्याप्त होय, इसमें बाल कपिलवर्णके होयँ तथा ये गूलरफलके समान होते हैं ॥

मण्डलकुष्ठके लक्षण।

श्वेतं रक्तं स्थिरं स्त्यानं स्निग्धमुत्सन्नमंडलम्।
कृच्छ्रमन्योन्यसंयुक्तं कुष्ठं मंडलमुच्यते ॥ १३ ॥

मण्डलकुष्ठ सफेद, लाल, कठिन, गीला अथवा जलयुक्त, चिकना, जिसका आकार मण्डलके सदृश ऊपरको उठा होय तथा एक दूसरेसे मिला होय, ऐसा यह मण्डलकुष्ठ कष्टसाध्य है ॥

ऋक्षजिह्वकुष्ठके लक्षण ।

कर्कशं रक्तपर्यन्तमन्तः श्यावं सवेदनम् ।
यदृक्षजिह्वासंस्थानमृक्षजिह्वं तदुच्यते ॥ १४ ॥

ऋक्षजिह्वकुष्ठ कठोर, अन्तविषे लाल होय, बीचमें काला होय, पीडा करे तथा रीछके जीभके समान होय है ॥

पुण्डरीककुष्ठके लक्षण ।

सश्वेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम् ।
सोत्सेधं च सरागं च पुंडरीकं प्रचक्षते ॥ १५ ॥

पुण्डरीककुष्ठ पुण्डरीक (श्वेतकमल) पत्रके समान सफेद होय और उसके अन्त-भाग लाल होयँ, यत्किञ्चित् ऊंचा निकल आवे और मध्यमें थोडा लाल होय है ॥

सिध्मकुष्ठके लक्षण ।

श्वेतं ताम्रं च तनु यद्रजो घृष्टं विमुंचति ।
प्रायेणोरसि तत्सिध्ममलाबुकुसुमोपमम् ॥ १६ ॥

सिध्मकुष्ठ सफेद, लाल, पतली, खुजानेसे भूसीसी उडे । यह विशेषकरके छातीमें होता है (छातीमें कफ प्रधान होनेसे) । प्रायः इसके कहनेसे छातीके अतिरिक्त और स्थानमें भी होय हैं और घीयाके फूलके आकार होय है ॥

काकणकुष्ठके लक्षण ।

यत्काकणंतिकावर्णं सपाकं तीव्रवेदनम् ।
त्रिदोषलिङ्गं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिध्यति ॥ १७ ॥

काकणकुष्ठ चिरमिटीके समान लाल अर्थात् बीचमें काला होय और आसपास लाल होय अथवा बीचमें लाल होय और आसपास काला होय, किञ्चित् पका तीव्र, पीडायुक्त, जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों यह कुष्ठ अच्छा नहीं होय ॥

ग्यारह क्षुद्रकुष्ठोंके लक्षण ।

अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम् ।
तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहलं हस्तिचर्मवत् ॥ १८ ॥

चर्मकुष्ठ पसीनारहित, बहुत जगह व्यापनेवाला, मछलीकी त्वचासमान और जिसका चर्म हाथीके चर्म समान मोटा और कठोर होय उसको चर्मकुष्ठ कहते हैं ॥

किटिभकुष्ठके लक्षण ।

श्यावं किणखरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम् ।

किटिभकुष्ठ नीलवर्ण, व्रणकी चटके समान कठोर स्पर्श मालूम होय और परुष कहिये रूक्ष होय ॥

वैपादिककुष्ठके लक्षण ।

वैपादिकं पाणिपादस्फोटनं तीव्रवेदनम् ॥ १९ ॥

वैपादिक जिसमें हाथ और पैर फटजायँ और पीडा बहुत होय, इस विपादिकाको बिवाई नहीं जानना, क्योंकि बिवाई केवल पैरमें ही होती है और बिवाईको शास्त्रमें पाददारी कहते हैं और विपादिकामें हाथ पैरोंमें फुन्सी श्यामरंगकी होती हैं और वे फुन्सी चुचाती हैं तथा खुजाती हैं, इसीसे पाददारी भिन्न और विपादिका भिन्न है ॥

अलसकुष्ठके लक्षण ।

कण्डूमद्भिः सरागैश्च गण्डैरलसकं चितम् ।

खुजलीयुक्त और लाल फफोलोंसे व्याप्त जो कुष्ठ हो उसको अलसककुष्ठ कहते हैं ॥

दद्रुमंडलकुष्ठके लक्षण ।

सकण्डूरागपिटिकं दद्रुमंडलमुद्गतम् ॥ २० ॥

दद्रुमंडलकुष्ठ इसमें खुजली होय, लाल होय और फोडा होय और ये ऊंचे उठ आवें मंडलके आकार गोल उत्पन्न होय, इसीसे इसको दद्रुमंडल कहते हैं ॥

चर्मदलकुष्ठके लक्षण ।

रक्तं सशूलं कंडूमत्स्फोटं यद्दलयत्यपि ।
तच्चर्मदलमाख्यातमस्पर्शसहमुच्यते ॥ २१ ॥

चर्मदलकुष्ठ यह लाल हो, शूलयुक्त, खुजलीयुक्त, फफोलोंसे व्याप्त होकर फूटजाय, इसमें हाथ लगानेसे सहा न जाय, इसमें त्वचा फटजाय ॥

पामाकुष्ठके लक्षण ।

सूक्ष्मा बह्व्यः पीडिकाः स्राववत्यः
पामेत्युक्ताः कण्डुमत्यः सदाहाः ।

पामाकुष्ठ पिडिका छोटी और बहुत होयँ उनमेंसे स्राव होय तथा खुजली चले और दाह होय इस कुष्ठको पामा (खाज) कहते हैं ॥

कच्छुकुष्ठके लक्षण ।

सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता
ज्ञेया पाण्योः कच्छुरुग्रा स्फिचोश्च ॥ २२ ॥

कच्छुकुष्ठ वही पामा मोटे फोडोंकरके तथा तीव्रदाहयुक्त होय और हाथोंमें हो, उसको कच्छु कहते हैं । उग्रा यह चूतडमें होती है ॥

विस्फोटककुष्ठके लक्षण ।

स्फोटाः श्यावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः ।

विस्फोटक फोडे काले व लाल रंगके होयँ और जिनकी त्वचा पतली होय उसको विस्फोटक कहते हैं ॥

शतारुकुष्ठके लक्षण ।

रक्तं श्यावं सदाहार्ति शतारु स्याद्बहुव्रणम् ॥ २३ ॥

शतारु लाल, होय, श्याम होय, जलन होय, शूल होय तथा जिनमें अनेक फोडे होयँ उसको शतारुकुष्ठ कहते हैं ॥

विचार्चिकाके लक्षण ।

सकण्डूः पिडिका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका ।

विचर्चिका खुजलीयुक्त, काले रंगकी जो फुन्सी (माताके समान) होय तथा उसमेंसे स्राव बहुत होय, उसको विचार्चिका कहते हैं । चर्मकुष्ठसे लेकर विचर्चिका-कुष्ठ पर्यंत १२ कुष्ठ होते हैं और पीछे क्षुद्र कुष्ठ ११ कहैं हैं, ऐसी कोई शंका करे उसके निमित्त कहते हैं। विचर्चिका पैरोंमें होकर फूटकर अर्थात् विपादिका होय हैं ऐसे कहनेसे संख्या नहीं बढे इस विषयमें भोजका यह मत है ॥

वातजादि कुष्ठोंके लक्षण ।

खरं श्यावारुणं रूक्षं वातात्कुष्ठं सवेदनम् ॥ २४ ॥
पित्तात्प्रकुपितं दाहरागस्रावान्वितं स्मृतम् ।
कफात्क्लेदि घनं स्निग्धं सकण्डूशैत्यगौरवम् ।
द्विलिंगं द्वंद्वजं कुष्ठं त्रिलिंगं सान्निपातिकम् ॥ २५ ॥

वायुके योगसे कुष्ठ खरदरा, काले रंगका अथवा लालवर्ण रूखा और पीडा-युक्त ऐसा होय है। पित्तके योगसे कुपित कुष्ठमें दाह, लाली और स्रावयुक्त होय है। कफके योगसे क्लेदयुक्त, सघन, चिकना, खुजली, शीतलता युक्त और भारी ऐसा होय है। द्वंद्वज कुष्ठमें दो दोषोंके लक्षण होते हैं। सान्निपातिक कुष्ठमें तीन दोषोंके लक्षण होते हैं ॥

---

१ दोषाः प्रदूष्य त्वङ्मांसं पाणिपादसमाश्रिताः । पिडिकां जनयंत्याशु दाहकण्डूसमन्विताम् ॥ दाल्यते त्वक् खरा रूक्षा पाण्योर्ज्ञेया विचर्चिका ॥ पादे विपादिका ज्ञेया स्थानान्यत्वाद्विचार्चिका ॥

रसादिसप्तधातुगत कुष्ठोंके क्रमसे लक्षण ।

त्वक्स्थे वैवर्ण्यमंगेषु कुष्ठे रौक्ष्यं च जायते ।
त्वक्स्वापो रोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्तनम् ॥ २६ ॥

रसधातुगत कुष्ठ होनेसे अंगका वर्ण पलट जाय है, अंग रूखा होय, त्वचा शून्य होय, रोमाञ्च हो और पसीना बहुत आवे ॥

रक्तगत कुष्ठके लक्षण ।

कण्डूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रये ॥ २७ ॥

रक्तगत कुष्ठमें खुजली और राध बहुत होय ॥

मांसगत कुष्ठके लक्षण ।

बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडिकोद्गमः ।
तोदः स्फोटः स्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥ २८ ॥

मांसगत कुष्ठ होनेसे मुख बहुत सूखे, अंगमें कर्कशपना होय, देहमें फुन्सी पैदा होय, सुई नोचनेकीसी पीडा होय, फोडे होयँ वे बहुत दिन रहैं ॥

मेदोगत कुष्ठके लक्षण ।

कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां संभेदः क्षतसर्पणम् ।
मेदःस्थानगते लिङ्गं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ २९ ॥

मेदमें कुष्ठ होनेसे कौण्य कहिये हाथ गिरपडे, चलनेकी शक्ति मारी जाय हडफूटन होय, घाव फैल जाय और पूर्वोक्त लक्षण (रसरक्तमांसगतकुष्ठके लक्षण) होयँ ॥

अस्थिमज्जागत कुष्ठके लक्षण ।

नासाभंगोऽक्षिरागश्च क्षतेषु कृमिसंभवः ।
स्वरोपघातश्च भवेदस्थिमज्जासमाश्रिते ॥ ३० ॥

अस्थि (हड्डी) और मज्जागत कुष्ठ होनेसे नाक गिरपडे, नेत्र लाल होयँ, घावमें कीडे पड जाँय, स्वर बैठ जाय ये लक्षण होयँ ॥

शुक्रार्त्तवगत कुष्ठके लक्षण ।

दंपत्योः कुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः ।
यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ ३१ ॥

जिन स्त्रीपुरुषोंके रुधिर शुक्र कुष्ठाधिक्यसे दुष्ट होयँ, उस दुष्ट हुए वीर्य और रजसे प्रगट भई जो सन्तान सो भी कोढी होती है, इस जगह दुष्टहुए शुक्र और

---

१ त्वक्शब्देनात्र रसोऽभिधीयते धातुप्रस्तावात् त्वक्शब्देन रसस्याभिधानं तात्स्थ्यात

आर्त्तव सर्वथा बीजत्व नष्ट न होनेसे संतानके करनेवाले होते हैं और जीवसंक्रमण कालमें कदाचित् बीज दुष्ट होय तो विषके कीडेके न्याय करके सन्तान प्रगट होती है अर्थात् जैसे विष प्राणियोंके प्राणका नाशक है परन्तु उसमें भी विषका कीडा प्रगट होता है और वह उससे नहीं मरता है यह वाग्भटका मत है ॥

साध्यादिभेद ।

साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकं च यत् ।
मेदसि द्वन्द्वजं याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंस्तृतम् ॥ ३२ ॥
कृमिहृल्लासमन्दाग्निसंयुक्तं यत्त्रिदोषजम् ।
प्रभिन्नं प्रसृताङ्गं च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥
पंचकर्मगुणातीतं कुष्ठं हंतीह कुष्ठिनम् ॥ ३३ ॥

रस रुधिर मांस इन धातुओंके पर्यंत गये जो कुष्ठ वे साध्य होते हैं तथा जिस कुष्ठमें वायु और कफ प्रधान होय वह भी साध्य है और मेदोधातुगत कुष्ठ तथा द्वंद्वजकुष्ठ याप्य जानना । मज्जा अस्थि इन दोनों धातुमें कुष्ठ पहुँच गया हो तथा जो शुक्रगत हो वह कुष्ठ असाध्य है तथा जिस कुष्ठमें कृमि, वमन, मन्दाग्नि इन करके युक्त होय तथा त्रिदोषज होय वह असाध्य है । जो कुष्ठ फूटकर बहने लगे तथा जिस कुष्ठसे रोगीके नेत्र लाल होयँ अथवा स्वर बैठ गया होय और वमन विरेचनादि पंचकर्मके गुण जिस पुरुषके नहीं होयँ ऐसा रोगी मर जाय ॥

कुष्ठमें प्रधानदोषके लक्षण ।

वातेन कुष्ठं कापालं पित्तेनौदुंबरं कफात् ॥ ३४ ॥
मंडलाख्यं विचर्चीं च ऋक्षाख्यं वातपित्तजम् ।
चर्मैककुष्ठं किटिभं सिध्मालसविपादिकाः ॥ ३५ ॥
वातश्लेष्मोद्भवाः श्लेष्मपित्ताद्दद्रूशतारुषी ।
पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा ॥ ३६ ॥
सर्वैः स्यात्काकणं पूर्वं त्रिकं दद्रूः सकाकणा ।
पुंडरीकर्क्षजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु ॥ ३७ ॥

वादीसे कापालकुष्ठ, पित्तसे औदुंबर, कफसे मण्डल और विचर्चिका, वातपित्तसे ऋक्षजिह्व, वातकफसे चर्मकुष्ठ, किटिभ, सिध्म, अलस और विपादिका, कफपित्तसे दद्रु, शतारु, पुंडरीक, विस्फोटक, पामा, चर्मदल, त्रिदोषसे काकणकुष्ठ होय है, पहिले तीन (कापाल, उदुंबर और मण्डल), दद्रु, काकण, पुंडरीक और ऋक्षजिह्व ये सात महाकुष्ठ जानने ॥

किलासनिदान।

कुष्ठैकसम्भवं श्वित्रं किलासं चारुणं भवेत्।
निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥ ३८ ॥

कुष्ठ होनेके जो कारण (विरुद्धभोजन पापकर्मादि) कहे हैं उन्हीं कारणोंसे श्वित्र (सफेद कोढ) और किलास (लाल कोढ) ये होते हैं इनमें स्राव नहीं होय तथा ये तीन धातुओंका आश्रय करके रहते हैं अर्थात् तीन दोष और रुधिर मांस तथा मेद इनका आश्रय करके रहते हैं ॥

वातादिभेदसे उनके लक्षण।

वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत्।
सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥ ३९ ॥
सकंडूरं क्रमाद्रक्तमांसमेदस्सु चादिशेत्।
वर्णेनैवेदृगुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ४० ॥

बादीसे रूक्ष और लाल होय, पित्तसे ताम्बेके वर्ण समान तथा कमलपत्रके समान लाल आकृति होय और उसमें दाह होय, उसकें ऊपरके बाल गिरपडे, कफके योगसे वह कोढ सफेद, गाढा और भारी होय और उसमें खुजली चले, रुधिर, मांस और मेदमें क्रमसे लाल ताम्र श्वेतवर्णसे किलास जानना अर्थात् दोष रक्ताश्रित होनेसे लाल, मांसाश्रित होनेसे तामेके रंग और मेदाश्रित होनेसे सफेद किलास होय है और वर्णसेही दोषसे उत्पन्न तथा व्रणसे उत्पन्न हुआ किलास, श्वित्र उत्तरोत्तर (रसगतसे मांसगत और मांसगतसे मेदोगत) कृच्छ्रसाध्य हैं ॥

श्वित्रके साध्यासाध्य लक्षण।

अशुक्लरोम बहलमसंश्लिष्टमथो नवम्।
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वितं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ ४१ ॥

जिस श्वित्र कोढके ऊपरके बाल काले हों तथा जो पतले होकर आपसमें मिले नहीं, तथा नवीन श्वित्र हो, अग्निदग्ध न हो, वह श्वित्रकोढ साध्य जानना, इससे विपरीत असाध्य है ॥

---

१ कुष्ठेन सह एकं समानं विरुद्धाशनपापकर्मादिसम्भवो निदानं यस्य तत् कुष्ठैकसम्भवम्। २ त्रिधातूद्भवसंश्रयमिति–त्रिधातवस्त्रयो दोषास्तथा रक्तमांसमेदांसि उद्भवाय संश्रयोऽधिष्ठानं यस्य तत्तथा ॥

किलासके असाध्य लक्षण ।

गुह्यपाणितलौष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम् ।
वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥ ४२ ॥

गुदास्थानमें, हाथोंमें, पैरोंके तलुओंमें, होठोंमें प्रगट भया किलास कुष्ठ थोडे दिनका होय तौ भी यश मिलनेकी इच्छावाला वैद्य छोड दे ॥

सांसार्गिक रोग ।

प्रसंगाद्गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात् ।
सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ४३ ॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥ ४४ ॥

मैथुनादि प्रसंगसे अथवा शरीरके स्पर्शसे, श्वासके लगनेसे, साथ बैठकर एकपात्रमें भोजन करनेसे, एक साथ एक शय्या (पलंग) पर सोनेसे तथा एकसाथ मिलकर बैठनेसे, पास रहनेसे, धारण कियेहुए वस्त्रको धारण करनेसे, सूंघे हुए पुष्पको सूंघनेसे अथवा पहरीहुई मालाको धारण करनेसे, लगायेहुए चन्दनमेंसे चन्दन लगानेसे कोढ ज्वर धातुशोष (क्षयी रोग), नेत्ररोग (आंख दुखना) औपसर्गिक रोग कहिये शीतलादिक और भूतोपसर्गादिक ये सांक्रामिकरोग एक पुरुषसे उडकर दूसरे मनुष्यके हो जाते हैं, इसीसे पूर्वोक्त रोगियोंका प्रसंगादिक न करे ॥ ४४ ॥

म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्य तद्भवेत् ।
नातो निन्द्यतरो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्तितम् ॥ ४५ ॥

कुष्ठरोगी मरें तौ फिर उसके दूसरे जन्ममें यह कुष्ठरोग होय है, इस कुष्ठरोगके समान और दूसरा निंद्यरोग नहीं है । कुष्ठरोगकी निरुक्ति-" कुत्सितं तिष्ठतीति " । " कुष्ठं भेषजरोगयोः " इति हैमः ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां कुष्ठरोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ शीतपित्तोदर्दकोठनिदानम् ।

शीतपित्तके निदान और संप्राप्ति ।

शीतमारुतसंस्पर्शात्प्रदुष्टौ कफमारुतौ ।
पित्तेन सह संभूय बहिरन्तर्विसर्पतः ॥ १ ॥

शीतलपवनके लगनेसे कफ वायु दुष्ट होकर पित्तसे मिल भीतर रक्तादिकोंमें और बाहर त्वचामें विचरते हैं ॥

पूर्वरूप ।

पिपासारुचिहृल्लासमोहसादाङ्गगौरवम् ।
रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

प्यास, अरुचि, मुखमेंसे पानी गिरना, अंग टूटना और भारी होना, नेत्रमें लाली ये पूर्वरूप शीतपित्तके जानने ॥

उदर्दके लक्षण ।

वरटीदष्टसंस्थानः शोथः सञ्जायते बहिः ।
सकण्डूस्तोदबहुलश्छर्दिज्वरविदाहवान् ॥ ३ ॥
उदर्दमिति तं विद्याच्छीतपित्तमथापरे ।

वरटी (ततैया) के काटनेके समान त्वचाके ऊपर चकत्ता होजाय उसमें खुजली चले और सूई चुभानेकीसी पीडा होय, इसके संयोगसे वमन, ज्वर, सन्ताप और दाह होय, इस रोगको उदर्द कहते हैं, कोई इसको शीतपित्त कहते हैं, इसको लौकिकमें पित्ती कहते हैं, इसमें खुजली होय है, सो कफसे जानना, चोटनी बादीसे होय है और ओकारी सन्ताप और दाह ये पित्तसे होते हैं ऐसे जानना ॥

वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः ॥ ४ ॥

शीतपित्तमें वात प्रधान तथा उदर्द कफप्रधान जानना ॥

उदर्दका दूसरा धर्म ।

सोत्संगैश्च सरागैश्च कण्डूमद्भिश्च मण्डलैः ।
शैशिरः कफजो व्याधिरुदर्दः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥

सरदीसे कफका कोप होकर अंगके ऊपर लाल लाल चकत्ता उठें, उनमें खुजली बहुत चले और वे मण्डलके आकार गोल हों, बीचमें कुछ नीचे और आसपास ऊंचे होयँ, इस रोगको उदर्द कहते हैं ॥

कोठके लक्षण ।

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः ।
मण्डलानि सकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च ।
उत्कोठः सानुबन्धश्च कोठ इत्यभिधीयते ॥ ६ ॥

वमनकारक औषध सेवन करनेसे, अच्छी रीतिसे वमन न होनेसे, पित्त और कफ कुपित होनेसे अथवा स्वतः वमनके वेग आये भयेको रोकनेसे, देहके ऊपर लाल और बहुत चकत्ता उठें, उनमें खुजली चले, इस रोगको उत्कोठ कहते हैं और जो क्षणभरमें उत्पन्न होकर नाश हो जाय उसको कोठ कहते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां शीतपित्तोदर्दकोठनिदानं समाप्तम् ॥

अथाम्लपित्तनिदानम् ।

निदानपूर्वक अम्लपित्तका स्वरूप ।

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम् ।
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ १ ॥

विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि) और दुष्टान्न, खट्टा, दाहकारक, पित्त बढानेवाला ऐसा अन्न पानके सेवन करनेसे वर्षादिक ऋतुमें जलौषधिगत विदाहादि स्वकारणसे सञ्चित भया पित्त दुष्ट होय उसको अम्लपित्त कहते हैं ॥

अम्लपित्तके लक्षण ।

अविपाकक्लमोत्क्लेदतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः ।
हृत्कंठदाहारुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्भिषक् ॥ २ ॥

अन्नका न पचना, विना परिश्रम करे परिश्रमसा मालूम हो, वमन, कडुवी तथा खट्टी डकार आवे, देह भारी रहे, हृदय और कण्ठमें दाह होय, अरुचि होय थे लक्षण होनेसे अम्लपित्त वैद्य जाने ॥

अम्लपित्त दो प्रकारका-एक ऊर्ध्वगत तथा दूसरा अधोगत, उसमें प्रथम अधोगतके लक्षण ।

तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम् ।
हृल्लासकोठानलसादकर्णस्वेदांगपीतत्वकरं कदाचित् ॥ ३ ॥

अम्लपित्त अधोगत होनेसे प्यास, दाह, मोह, (इन्द्रियमोह) मूर्च्छा, भ्रम, (मनो) मोह, सूखी रद्द, मन्दाग्नि, कोठ, कानमें पसीना, देहमें पीलापन ये लक्षण होकर गुदाके द्वारा काले लाल दुर्गन्धयुक्त अनेक वर्णके पित्त गिरें॥

ऊर्ध्वगत अम्लपित्तके लक्षण।

वान्तं हरित्पीतकनीलकृष्णमारक्तरक्ताभमतीव चाम्लम्।
मांसोदकाभं त्वतिपिच्छलाच्छश्लेष्मानुयातं विविधं रसेन॥ ४॥
भुक्ते विदग्धे त्वथवाप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित्
उद्गारमेवंविधमेव कण्ठे हृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजं च॥ ५॥

ऊर्ध्वगत पित्तसे हरे, पीले, नीले, काले, थोडे लाल अथवा रक्तके सदृश अत्यन्त खट्टा, मांस धोयेहुए जलके समान, अत्यन्त रेसदार, स्वच्छ, कफमिश्रित, खारी, कसेला आदि संयुक्त ऐंसे पित्त गिरे, कभी कभी भोजन करे अन्न विदग्धावस्थाको प्राप्त होकर अथवा भोजन करनेके पहिले कडुवी खट्टी ऐसे वमन होय तथा ऐसीही डकारें आवें, कण्ठ, कूख, हृदय इनमें दाह होय, माथा दूखे॥

कफपित्तजन्य अम्लपित्तके लक्षण।

करचरणदाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरं च कफपित्तम्।
जनयाति कण्डूमण्डलपिडिकाशतनिचितगात्ररोगचयम्॥ ६॥

हाथ पैरोंमें दाह, गरमी, अन्नमें अरुचि, ज्वर, कण्डू (खुजली), रुधिरके बिगडनेसे देहमें मण्डल हो, सैकडों पिटिका, अविपाकादि अनेक उपद्रव ये लक्षण कफपित्तसे होते हैं॥

साध्यासाध्य विचार।

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात्संसाध्यते नवः।
चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कृच्छ्रसाध्यः स कस्यचित्॥ ७॥

यह अम्लपित्तरोग नया होय तो यत्न करनेसे साध्य होय और बहुत दिनका होय तो याप्य जानना और जो अपथ्यसेवन करनेवाले पुरुष हैं उनके यह अम्लपित्तरोग कृच्छ्रसाध्य होय है॥

अम्लपित्तमें केवल वायुका और वातकफका संसर्ग होय सो कहते हैं-

सानिलं सानिलकफं सकफं तच्च लक्षयेत्।
दोषलिङ्गेन मतिमान्भिषङ्मोहकरं हि तत॥ ८॥

वातयुक्त अम्लपित्त, वातकफयुक्त अम्लपित्त और कफयुक्त अम्लपित्त ऐसे तीन प्रकारका अम्लपित्त बुद्धिमान् वैद्य दोषोंके लक्षणोंसे जाने । कारण इसका यह है कि, ऊर्ध्वगत अम्लपित्तमें छर्दि (रद्द) रोगका भास होय है और अधोगत अम्लपित्तमें अतिसारकीसी चेष्टा मालूम होय, इसीसे वैद्यको मोह होय है इसीसे वैद्यको इस रोगकी सूक्ष्म रीतिसे परीक्षा करनी चाहिये ॥

वातयुक्त अम्लपित्तके लक्षण ।

कम्पप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि ।
तमसो दर्शनविभ्रमविमोहहर्षाश्च वातयुते ॥ ९ ॥

वातयुक्त अम्लपित्तमें कंप, प्रलाप, मूर्च्छा, चिमचिमा (चीटी काटनेसे प्रगट खुजलीके समान), देह टूटना, पेट दूखना, नेत्रोंके आगे अन्धकार दीखें, भ्रांति होना- इन्द्रिय मनको मोह, रोमाञ्च हों ये लक्षण होते हैं ॥

कफयुक्त अम्लपित्तके लक्षण ।

कफनिष्ठीवनगौरवजडताऽरुचिशीतसादवमिलेपाः ।
दहनबलसादकण्डूर्निद्रा चिह्नं कफानुगते ॥ १० ॥

कफयुक्त अम्लपित्तमें कफके ढेले गिरें, शरीरका अत्यन्त भारीपना, इन्द्रियोंमें जडपना, अरुचि, शीत लगे, अंग टूटना, वमन, मुख कफसे लिहसा रहे, मन्दाग्नि, बलनाश, खुजली और निद्रा ये लक्षण होते हैं ॥

वातकफयुक्त अम्लपित्तके लक्षण ।

उभयमिदमेव चिह्नं मारुतकफसम्भवे भवत्यम्ले ।

वातकफयुक्त अम्लपित्तमें ऊपर कहे हुए दोनोंके लक्षण होते हैं ॥

कफपित्तके लक्षण ।

भ्रमो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजः ।
प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥ ११ ॥

भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, मस्तकपीडा, मुखसे पानी बहना, मुखमें मिठास ये कफपित्तके लक्षण हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायाम्
अम्लपित्तनिदानं समाप्तम् ॥

अथ विसर्पनिदानम्।

विसर्पकी निदानपूर्वक संख्यारूप सम्प्राप्ति और निरुक्ति।

लवणाम्लकटूष्णादिसंसेवादोषकोपतः।
विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥

खारी, खट्टा, कडुवा, गरम आदि पदार्थ सेवन करनेसे वातादि दोषोंका कोप होकर सात प्रकारका विसर्प रोग होय है, वह सर्वत्र फैलजाय, इसीसे इसको विसर्प कहते हैं सो चरकमें लिखा भी है ॥

पृथक् त्रयस्त्रिभिश्चैको विसर्पा द्वंद्वजास्त्रयः।
वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सान्निपातिकः ॥
चत्वार एते वीसर्पा वक्ष्यन्ते द्वंद्वजास्त्रयः ॥ २ ॥
आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः।
यस्तु कर्दमको घोरः स पित्तकफसम्भवः ॥ ३ ॥

वातिक १, पैत्तिक १, श्लैष्मिक १, सान्निपातिक १, द्वन्द्वज ३ इस तरह सात प्रकारका विसर्परोग है। २ वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक ये चार प्रकारके विसर्प हैं और तीन जो द्वन्द्वज उनको अब कहेंगे, वातपित्तसे आग्नेय, कफवातसे ग्रन्थ्याख्य, कफपित्तसे घोर कर्दमके नामवाला विसर्प होता है ॥

सर्वप्रकारके विसप रक्तादिक चार दूष्य और वातादि तीन दोष इनसे होते हैं सो कहते हैं—

रक्तं लसीकात्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः।
विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातवः ॥ ४ ॥

रुधिर, मांसका जल, त्वचा, मांस ये दूष्य और वातादि तीन दोष ये सात धातु विसर्पके उत्पन्न होनेके कारण हैं ॥

वातविसर्पके लक्षण।

तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमाकृतिः।
शोफस्फुरणनिस्तोदभेदपामार्तिहर्षवान् ॥ ५ ॥

---

१ विविधं सर्पति यतो विसर्पस्तेन स स्मृतः।
परिसर्पोऽथ वा नाम्ना सर्वतः परिसर्पणात् ॥ इति।

बादीसे विसर्प जो होय उसके लक्षण वातज्वरके समान होते हैं तथा उसमें सूजन, फरकना, नोंचनेकीसी पीडा, तोडनेकीसी पीडा, दर्द और रोमांच खडे हों, तथा वह विसर्प लम्बा होय है ॥

पित्तविसर्पके लक्षण ।

पित्ताद् द्रुतगतिः पित्तज्वरलिङ्गोऽतिलोहितः ।

पित्तके विसर्पकी गति शीघ्र होय अर्थात् वह जलदी फैल जाय तथा पित्तज्वरके लक्षण इसमें मिलते हों तथा अत्यन्त लाल होय ॥

कफविसर्पके लक्षण ।

कफात्कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ॥ ६ ॥

कफकी विसर्पमें खुजली बहुत होय तथा चिकनी होय और उसमें कफज्वरकीसी पीडा होय ॥

सन्निपातविसर्पके लक्षण ।

सन्निपातसमुत्थश्च सर्वरूपसमन्वितः ।

सन्निपातजन्य विसर्पमें जो वातादिकोंके लक्षण कहे हैं सो सब होयँ ॥

अग्निविसर्पके लक्षण ।

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छातीसारतृड्भ्रमैः ॥ ७ ॥
अस्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ।
करोति सर्वमङ्गं च दीप्तांगारावकीर्णवत् ॥ ८ ॥
यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेच्च सः ।
शांतांगारासितो नीलो रक्तो वाऽऽशूपचीयते ॥ ९ ॥
अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद् द्रुतं च सः ।
मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः ॥ १० ॥
व्यथेताङ्गं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ।
हिक्कां च स ततोऽवस्थामीदृशीं लभते नरः ॥ ११ ॥
क्वचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ।
चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहसमुद्भवाम् ॥
दुर्बोधामश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥ १२ ॥

वातपित्तसे प्रगट विसर्प ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास, भौंर, हड-फूटन, मन्दाग्नि, अन्धकारदर्शन, अन्नद्वेष इन लक्षणों करके संयुक्त होय,

इसके संयोगसे सर्व शरीर अङ्गारोंसे भरासा मालूम होय, जिस जिस ठिकाने वह विसर्प फैले उसी ठिकानेपर अग्निरहित अङ्गारके समान काला नीला लाल होकर शीघ्र सूजे, आगसे फूँकेके समान ऊपर फफोला होय और उस विसर्पकी शीघ्र गति होनेसे जल्दी हृदयमें जाकर मर्मानुसारी विसर्प होय और उससे वायु अत्यन्त बलवान् होय, अंगोंको व्यथा करे, संज्ञा और निद्रा इनका नाश होय, श्वास बढावे, हिचकी उत्पन्न करे, ऐसी मनुष्यकी अवस्था होनेके कारण धरती, तेज, आसन इत्यादिकोंमें सुख नहीं होय, हलने चलसेसे क्लेश होय, मन तथा देहको क्लेश होनेसे उत्पन्न भई ऐसी दुर्बोध निद्रा (मरणरूपी निद्रा) को प्राप्त होय, इस रोगको अग्निविसर्प कहते हैं ॥

ग्रन्थि विसर्पके लक्षण।

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम् ॥ १३ ॥
रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्छिरास्नायुमांसगम्।
दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम् ॥ १४ ॥
ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम्।
श्वासकासातिसारास्यशोषहिक्कावमिभ्रमैः ॥ १५ ॥
मोहवैवर्ण्यमूर्च्छांगभंगाग्निसदनैर्युतम्।
इत्ययं ग्रंथिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ॥ १६ ॥

स्वहेतुसे कुपित भया कफ सो रुकी हुई वमन कफको भेदकर अथवा बढे हुए रुधिरको भेदकर त्वचा, नस, नाडी और मांस इनमें प्राप्त हो और इनको दुष्ट कर लम्बी, छोटी, गोल, मोटी, खरदरी, लाल गांठोंकी माला प्रगट करे. इन गांठोंमें पीडा अधिक होय, ज्वर होय. श्वास, खांसी, अतिसार, मुखमें पपडी पडे. हिचकी, वमन, भ्रमता, मोह, वर्णका पलटना, मूर्च्छा, अंगोंका टूटना, मन्दाग्नि ये लक्षण होते हैं, इस रोगको ग्रन्थिविसर्प कहते हैं, यह कफवायुके कोपसे उत्पन्न होता है, (इसको सुश्रुत अपची कहते हैं) ॥

कर्दमविसर्पके लक्षण।

कफपित्ताज्ज्वरः स्तंभो निद्रा तंद्रा शिरोरुजा।
अंगावसादविक्षेपप्रलापारोचकभ्रमाः ॥ १७ ॥
मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम्।
आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स विसर्पति ॥ १८ ॥

प्रायेणामाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् ।
पिडिकैरिव कीर्णोऽतिपीतलोहितपांडुरैः ॥ १९ ॥
स्निग्धोऽसितो मेचकाभो मलिनः शोफवान् गुरुः ।
गंभीरपाकः प्राज्योष्मा स्पष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यंते ॥ २० ॥
पंकवच्छीर्णमांसश्च स्पष्टस्नायुशिरागणः ।
शवगंधी च वीसर्पं कर्दमाख्यमुशांति तम् ॥ २१ ॥

कफपित्तसे ज्वर, अंगोंका जकडना, निद्रा, तन्द्रा, मस्तकशूल, अङ्गग्लानि, हाथ-पैरोंका पटकना, बकवाद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, मन्दाग्नि, हडफूटन, प्यास, इंद्रियोंका जकडना, आमका गिरना, मुखादि स्रोतों (छिद्रों) में कफका लेप इत्यादि लक्षण होते हैं तथा वह विसर्प आमाशयमें उत्पन्न हो पीछे सर्वत्र फैले, उसमें पीडा थोडी होय, उसमें सर्वत्र पीली तांबेके रंगकी सफेदरंगकी पिडिका होयँ तथा वह विसर्प चिकनी स्याहीके समान काली, मलिन, सूजनयुक्त, भारी, गम्भीरपाक कहिये भीतरसे पकी हो उसमें घोर दाह और वह दबानेसे तत्क्षण गीली होजाय तथा वह फटजाय तथा कीचके समान होकर उसका मांस गल जाय, उसमें सिरा नाडी (नस) ये दीखने लगें, उसमें मुर्देकीसी वास आवे, इस विसर्पको कर्दमविसर्प कहते हैं ॥

क्षतजविसर्पके लक्षण ।

बाह्यहेतोः क्षतात्क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन् ।
विसर्पं मारुतः कुर्यात्कुलित्थसदृशैश्चितम् ॥ २२ ॥
स्फोटैः शोथज्वररुजादाहाढ्यं श्यावशोणितम् ॥ २३ ॥

बाह्यकारण करके क्षत (घाव) होकर उसमें वायु कुपित होकर वह रुधिर, सहित पित्तको व्रणमें प्राप्त कर विसर्परोग उत्पन्न करे, उसमें कुलथीके समान श्याम-वर्णके फोडे होते हैं, सूजन हो, ज्वर होय, पीडा होय और दाह होय, उसका रुधिर काला निकले इस विसर्पको पित्तविसर्पके अन्तर्गत जाननेसे संख्यामें विरुद्ध नहीं पडे अन्यथा संख्या बढजाती है यह भोजका मत है ॥

उपद्रव ।

ज्वरातिसारवमथुस्तृण्मांसदरणं क्लमः ।
अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुपद्रवाः ॥ २४ ॥

ज्वर, आतिसार, वमन, प्यास, मांसका गलना, अनायास श्रम, अरुचि, अन्न न पचना ये विसर्परोगके उपद्रव हैं ॥

साध्यासाध्य लक्षण।

सिध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः सर्वात्मकः कफकृतश्च न सिद्धिमेति। पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः कृच्छ्राश्च मर्मसु भवंति हि सर्व एव ॥ २८ ॥

वात पित्त कफ इनसे प्रगट जो विसर्प सो साध्य होय है, सन्निपातज और क्षतज विसर्प साध्य नहीं होय, पित्तसे प्रगट भई विसर्प जिसका काजलके समान अंग होय वह असाध्य और जो विसर्प मर्म ठिकानेपर होंय वे सब कष्टसाध्य होते हैं॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां विसर्परोगनिदानं समाप्तम्॥

अथ विस्फोटकनिदानम्।

विस्फोटकके लक्षण।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च।
तथर्तुदोषेण विपर्ययेण कुप्यंति दोषाः पवनादयस्तु ॥ १ ॥
त्वचमाश्रित्य ते रक्तमांसास्थीनि प्रदूष्य च।
घोरान्कुर्वन्ति विस्फोटान्सर्वाञ्ज्वरपुरःसरान् ॥ २ ॥

कड़ुआ, खट्टा, तीखा (मरिचादि), गरम, दाहकारक, रूखा, खारा, अजीर्ण, भोजनके ऊपर भोजन और धूप, ऋतुदोष कहिये शीतोष्णका अतियोग अथवा ऋतुविपर्यय (ऋतुका पलटना) इन कारणोंसे वातादि दोष कुपित हो त्वचाका आश्रय कर रुधिर मांस और हड्डी इनको दूषित कर भयंकर विस्फोटक (फोडे) उत्पन्न करें उनके होनेके पूर्व घोर ज्वर होय है॥

विस्फोटकस्वरूप।

अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः।
क्वचित्सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति ते स्मृताः ॥ ३ ॥

रक्तपित्तसे प्रगटहुए ऐसे अग्निकरके जरेके समान फोडे अंगमें किसी एक ठिकाने अथवा सब देहमें होते हैं उनके होनेसे ज्वर होय, उनको विस्फोटक कहते हैं । इस रोगमें भी वातका अनुबन्ध होता है सो भोजने[1] कहा है॥

---

1 यदाह भोजः—" यदा रक्तं च पित्तं च वातेनानुगतं त्वचि । अग्निदग्धनिभान्स्फोटान् कुरुतः सर्वदेहगान्। सज्वरान्सपरीदाहान्विद्याद्विस्फोटकांस्तु तान्॥ " इति।

वातविस्फोटकके लक्षण ।

शिरोरुक्छूलभूयिष्ठं ज्वरतृट्पर्वभेदनम् ।
सुकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ४ ॥

मस्तकमें पीडा, शूल, देहमें पीडा, ज्वर, प्यास, संधियोंमें पीडा, फोडोंका वर्ण काला होय, ये वातविस्फोटकके लक्षण हैं ॥

पित्तविस्फोटकके लक्षण ।

ज्वरदाहरुजास्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम् ।
पीतलोहितवर्णं च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥

ज्वर, दाह, पीडा, स्राव, फोडोंका पकना, प्यास, देह पीला हो अथवा लाल होय ये पित्तविस्फोटकके लक्षण हैं ॥

कफविस्फोटकके लक्षण ।

छर्द्यरोचकजाड्यानि कंडूकाठिन्यपांडुताः ।
अवेदनश्चिरात्पाकी स विस्फोटः कफात्मकः ॥ ६ ॥

वमन, अरुचि, जडता तथा फोडा खुजलीयुक्त हो, कठिन, पीले और उनमें पीडा होय नहीं और वे बहुत कालमें पकें, यह विस्फोटक कफका जानना ॥

कफपित्तात्मकविस्फोटकके लक्षण ।

कण्डूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरेतैस्तु कफपैत्तिकः ।

खुजली, दाह, ज्वर और वमन इन लक्षणोंसे कफपित्तजन्य विस्फोट जानना ॥

वातपित्तात्मकके लक्षण ।

वातपित्तकृतो यस्तु कुरुते तीव्रवेदनाम् ॥ ७ ॥

वातपित्तके विस्फोटकमें तीव्र पीडा होती है ॥

कफवातात्मकके लक्षण ।

कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम् ।

खुजली, गीलापना, भारीपना इन लक्षणोंसे कफवातका विस्फोटक जानना ॥

सन्निपातविस्फोटकके लक्षण ।

मध्ये निम्नोन्नतोऽन्ते च कठिनोऽल्पप्रपाकवान् ॥ ८ ॥
दाहरागतृषामोहच्छर्दिमूर्च्छारुजो ज्वरः ।
प्रलापो वमथुस्तंद्रा सोऽसाध्यश्च त्रिदोषजः ॥ ९ ॥

जो फोडा बीचमें नीचे होय और ओरपासके ऊंचा होय, कठिन कुछ पका होय है तथा जिसके योगसे दाह, अंगमें लाली, प्यास, मोह, वमन, मूर्च्छा, पीडा, ज्वर, प्रलाप, कम्प, तन्द्रा ये लक्षण होते हैं वह सन्निपातका विस्फोटक असाध्य है ॥

रक्तजविस्फोटकके लक्षण।

रक्ता रक्तसमुत्थाना गुञ्जाफलनिभास्तथा।
वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना ॥
न ते सिद्धिं समायांति सिद्धैर्योगशतैरपि ॥ १० ॥

रुधिरसे प्रगट भया विस्फोटक तांबेके रंगका, गुंजा (चिरमिटी) के समान लाल, वह रुधिरके दुष्ट होनेसे अथवा पित्तके दुष्ट होनेसे होय है, इसमें सैकडों अनुभव-कारी औषधके करनेसे साध्य नहीं होय है ॥

साध्यासाध्यविचार।

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः।
सर्वरूपान्वितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ ११ ॥

एक दोषसे प्रगट भया जो विस्फोटक वह साध्य है, द्विदोषका कष्टसाध्य है और सर्वलक्षणयुक्त होय सो भयंकर तथा जिसमें उपद्रव बहुत होयँ वह विस्फोटक असाध्य है ॥

विस्फोटकके उपद्रव।

हिक्का श्वासोऽरुचिस्तृष्णा अङ्गसादो हृदि व्यथा।
विसर्पज्वरहृल्लासा विस्फोटानामुपद्रवाः ॥ १२ ॥

हिचकी, श्वास, अरुचि, प्यास, अंगग्लानि, हृदयमें पीडा, विसर्परोग, ज्वर, वमन ये विस्फोटकके उपद्रव जानने ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां विस्फोटकनिदानं समाप्तम् ॥

अथ मसूरिकानिदानम्।

कारण और सम्प्राप्ति।

कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः।
दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टपवनोदकैः ॥ १ ॥
क्रूरग्रहेक्षणाद्वापि देहे दोषाः समुद्धताः।

जनयंति शरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेन संगताः ॥
मसूराकृतिसंस्थानाः पिडिकाः स्युर्मसूरिकाः ॥ २ ॥

कडुआ, खट्टा, नोनका, खारी, विरुद्ध भोजन, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), दुष्ट अन्न, निष्पाव (शिंबीबीज उडद मूँग) आदि, शाक, विषैले फूल आदिसे मिला पवन तथा जल, शनैश्चरादि खोटे ग्रहोंका देखना इन सब कारणों करके शरीरमें वातादिदोष कुपित होकर दुष्ट रुधिरमें मिलकर मसूरके समान देहमें अनेक मरोरी उत्पन्न करें, उनको मसूरिका (माता) कहते हैं। " दुष्टरक्तेन संगताः " इस पद धरनेसे रुधिरका कटु अम्लादि हेतु करके विशेष कोप दिखाया इसीसे ग्रन्थोन्तरोंमें लिखा भी है ॥

मसूरिकाके पूर्वरूप।

तासां पूर्वं ज्वरः कण्डूर्गात्रभङ्गोऽरुचिर्भ्रमः।
त्वचि शोफः सवैवर्ण्यं नेत्ररागस्तथैव च ॥ ३ ॥

तिस माता शीतलाके पूर्व ज्वर होय, खुजली चले, देहमें फूटनी होय, अन्नमें अरुचि, भ्रम होय, अंगके ऊपरकी त्वचामें सूजन होय तथा वर्ण पलटजाय, नेत्र लाल होयँ ये शीतलाके पूर्वरूप होते हैं ॥

वातकी मसूरिकाके लक्षण।

स्फोटाः कृष्णारुणा रूक्षास्तीव्रवेदनयाऽन्विताः।
कठिनाश्चिरपाकाश्च भवंत्यनिलसम्भवाः ॥ ४ ॥
सन्ध्यस्थिपर्वणां भेदः कासः कम्पोऽरतिः क्लमः।
शोषस्ताल्वोष्ठजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता ॥ ५ ॥

वातमसूरिकाके फोडे काले, लाल और रूक्ष होते हैं, उनमें तीव्र पीडा होय' कठिन होय, शीघ्र पके नहीं, इसके योगसे सन्धि हाड और पर्वोंमें फोडनेकीसी पीडा, खांसी, कम्प, चित्त स्थिर न हो, विना परिश्रमके श्रम होय, तालुआ, होठ और जीभ ये सूखने लगें, प्यास, अरुचि ये लक्षण होते हैं ॥

पित्तकी मसूरिकाके लक्षण।

रक्ताः पीताः सिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः।
भवंत्यचिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः ॥ ६ ॥

---

१ पित्तं शोणितसंसृष्टं यदा दूषयति त्वचम्। तदा करोति पिडिकाः सर्वगात्रेषु देहिनाम् ॥ मसूरमुद्गमाषाणां तुल्याः कालोपमा इति। मसूरिकास्तु ता ज्ञेयाः पित्तरक्ताधिका बुधैः ॥ इति।

विड्भेदश्चांगमर्दश्च दाहस्तृष्णाऽरुचिस्तथा ।
मुखपाकोऽक्षिपाकश्च ज्वरस्तीक्ष्णः सुदारुणः ॥ ७ ॥

पित्तकी मसूरिकाका मुख पीला, सफेद होय है, उसमें दाह तथा पीडा बहुत होय और यह शीतला शीघ्र पके, इसके योगसे मल पतला होय, अंग टूटे, दाह, प्यास, अरुचि, मुखपाक और नेत्रपाक होय, ज्वर तीव्र हो ये लक्षण होयँ हैं ॥

रक्तजमसूरिकाके लक्षण ।

रक्तजायां भवंत्येते विकाराः पित्तलक्षणाः ॥ ८ ॥

रक्तज मसूरिकामें पित्तज मसूरिकाके लक्षण होते हैं ॥

कफजमसूरिकाके लक्षण ।

कफप्रसेकः स्तैमित्यं शिरोरुग्गात्रगौरवम् ।
हृल्लासः सारुचिर्निद्रा तंद्रालस्यसमन्विता ॥ ९ ॥
श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः कण्डुरा मंदवेदनाः ।
मसूरिकाः कफोत्थाश्च चिरपाकाः प्रकीर्तिताः ॥ १० ॥

कफकी मसूरिकामें मुखके द्वारा कफका स्राव होय, अंगमें आर्द्रता तथा भारीपना, मस्तकमें शूल, वमनआनेकीसी इच्छा होय, अरुचि, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य ये होयँ और फोडे सफेद चिकने अत्यन्त मोटे होयँ, इनमें खुजली बहुत चले, पीडा मन्द होय और वे बहुत दिनमें पकें ॥

त्रिदोषजमसूरिकाके लक्षण ।

नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजः ।
चिरपाकाः पूतिस्रावाः प्रभूताः सर्वदोषजाः ॥ ११ ॥

त्रिदोषज मसूरिकाके फोडे नीले, चिपटे, लंवे, बीचमें नीचे ऐसे होयँ, उसमें पीडा अत्यन्त होय तथा वे बहुत दिनमें पकें और उनमेंसे दुर्गन्धयुक्त स्राव होय, फोडे सर्व दोषके बहुत होय हैं ॥

चर्मपिडिकाके लक्षण ।

कण्ठरोधोऽरुचिस्तन्द्राप्रलापारातिसंयुताः ।
दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिडिकाश्चर्मसंज्ञिताः ॥ १२ ॥

जिस फोडेके होनेसे कण्ठ रुक जाय, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप, चैन न पडना ये लक्षण होते हैं, जिनकी औषधि नहीं हो सके ऐसी चर्मसंज्ञक पिडिका जाननी ॥

रोमांतिकाके लक्षण ।

रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः ।
कासारोचकसंयुक्ता रोमांत्यो ज्वरपूर्विकाः ॥ १३ ॥

कफपित्तसे केशों (बालों) के छिद्रके समान बारीक और लाल ऐसी मसूरिका होयँ, इनके होनेसे खांसी, अरुचि होय तथा इनके होनेसे पहिले ज्वर होय, इनको रोमांतिका (कसूमीमाता) ऐसे कहते हैं ॥

रसादि सप्त धातु ।

रसगतमसूरिकाओंके लक्षण ।

तोयबुद्बुदसंकाशास्त्वग्गताश्च मसूरिकाः ।
स्वल्पदोषाः प्रजायंते भिन्नास्तोयं स्रवंति च ॥ १४ ॥

रसगत मसूरिका पानीके बबूलेके सदृश हों, इनके फूटनेसे पानी बहे, वह त्वग्गत मसूरिका है, कारण इसका यह है कि दोष स्वल्प हैं ॥

रक्तगतमसूरिकाके लक्षण ।

रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः ।
साध्या नात्यर्थदुष्टास्तु भिन्ना रक्तं स्रवंति च ॥ १५ ॥

रुधिरगत मसूरिका तांबेके रंगकी, जलदी पकनेवाली होती हैं, उनके ऊपरकी त्वचा पतली होय है, यह अत्यन्त दुष्ट नहीं होनेसे साध्य होय और इनके फूटनेसे इनमेंसे रुधिर निकले ॥

मांसगतके लक्षण ।

मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाकास्तनुत्वचः ।
गात्रशूलोऽरतिः कंपमूर्च्छादाहतृषान्विताः ॥ १६ ॥

मांसस्थ मसूरिका कठिन चिकनी होय हैं, ये बहुत दिनमें पकें तथा इनकी त्वचा पतली होय, अंगोंमें शूल होय, चैन पडे नहीं, खुजली चले, मूर्च्छा, दाह और प्यास ये लक्षण होते हैं ॥

मेदोगतके लक्षण ।

मेदोजा मंडलाकारा मृदवः किंचिदुन्नताः ।
घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः कृष्णाः सवेदनाः ॥
संमोहारतिसंतापाः कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत् ॥ १७ ॥

मेदोगत मसूरिका मण्डलके आकार अर्थात् गोल, नरम, कुछ ऊंची, मोटी तथा काली होती हैं, इनके होनेसे भयंकर ज्वर, पीडा, इंद्रिय मनको मोह, चित्तका अस्थिर होना, सन्ताप ये लक्षण होते हैं। इन मसूरिकासे कोई मनुष्य बचता होगा इससे यह दिखाया कि, ये अत्यन्त कृच्छ्रसाध्य हैं॥

अस्थिमज्जागतके लक्षण।

क्षुद्रा गात्रसमारूढाश्चिपिटाः किंचिदुन्नताः।
मज्जोत्था भृशसम्मोहवेदनारतिसंयुताः॥ १८॥
छिन्दंति मर्मधामानि प्राणानाशु हरंति ताः।
भ्रमरेणेव विद्धानि भवंत्यस्थीनि सर्वतः॥ १९॥

अस्थि मज्जागत मसूरिका बहुत छोटी, देहके समान, रूक्ष, चिपटी, कुछ ऊँची होय हैं, अत्यन्त चित्तविभ्रम, पीडा, अस्वस्थता ये होते हैं, वह मर्मस्थानोंके भेद करके शीघ्र प्राणहरण करें इसके होनेसे हड्डियोंमें भौंरेके काटनेके समान पीडा होय है॥

शुक्रगतके लक्षण।

पक्वाभाः पिडिकाः स्निग्धाः श्लक्ष्णाश्चात्यर्थवेदनाः।
स्तैमित्यारतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः॥ २०॥
शुक्रजायां मसूर्यां तु लक्षणानि भवन्ति च।
निर्दिष्टं केवलं चिह्नं दृश्यते न तु जीवितम्॥ २१॥

शुक्रधातुगत मसूरिका पकेके समान चिकनी अलग अलग होय हैं, इनमें अत्यन्त पीडा होय, इनके होनेसे गीलापना, अस्वस्थता, पीडा, मोह, दाह, उन्माद ये लक्षण होते हैं, रोगी बचे ऐसे इसमें कोई लक्षण नहीं दीखे इसीसे इसको असाध्य जानना॥

सप्तधातुगतमसूरिकाके दोषके सम्बन्धसे लक्षण कहते हैं-

दोषमिश्रास्तु सप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः।

ये सप्तधातुगत मसूरिका वातादिकोंके लक्षणों करके तीन दोषोंकरके मिश्रित, प्रगट भई जाननी॥

धातुगत और दोषज मसूरिकामें कौन साध्य हैं? सो कहते हैं-

त्वग्गता रक्तजाश्चैव पित्तजाः श्लेष्मजास्तथा॥ २२॥
पित्तश्लेष्मकृताश्चैव सुखसाध्या मसूरिकाः।
एता विनापि क्रियया प्रशाम्यंति शरीरिणाम्॥ २३॥

रसगत, रक्तगत, पित्तज, कफज, पित्तकफज ये मसूरिका सुखसाध्य हैं। ये औषधके विना भी शांत होती हैं ॥

कष्टसाध्य।

वातजा वातपित्तोत्था वातश्लेष्मकृताश्च याः।
कृच्छ्रसाध्या मतास्तास्तु यत्नादेता उपाचरेत् ॥ २४ ॥

वातज, वातपित्तज, वातकफज मसूरिका कष्टसाध्य हैं इनकी यत्नपूर्वक चिकित्सा करे ॥

असाध्यमसूरिकाके लक्षण।

असाध्याः सन्निपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम्।
प्रवालसदृशाः काश्चित्काश्चिज्जम्बूफलोपमाः ॥ २५ ॥
लोहजालसमाः काश्चिदतसीफलसन्निभाः।
आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः ॥ २६ ॥

सन्निपातज मसूरिका असाध्य हैं उनके लक्षण कहता हूं. कोई मूंगाके समान लाल होंय, कोई जामुनके समान और कोई लोहजालके समान तथा अलसीके बीजके समान होती हैं। दोषोंके भेद करके इनके अनेक प्रकारके रंग होते हैं ॥

सर्वमसूरिकाके अवस्थाविशेषकरके लक्षण।

कासो हिक्काथ मोहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः।
प्रलापारतिमूर्च्छाश्च तृष्णा दाहोऽतिघूर्णता ॥ २७ ॥
मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा।
कण्ठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थदारुणम् ॥ २८ ॥
मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निश्वसेत्।
स भृशं त्यजति प्राणांस्तृष्णार्तो वायुदूषितः ॥ २९ ॥

खांसी, हिचकी, मोह, तीव्रज्वर, प्रलाप, असन्तोष, मूर्च्छा, प्यास, दाह, नेत्र टेढे तिरछे बांके फटेसे ये लक्षण होते हैं, मुख, नाक और नेत्र इनके मार्ग होकर रुधिर गिरे, कण्ठमें घुरघुर शब्द होय और भयंकर श्वास ले, जो मसूरिकापीडित रोगी केवल नाकके द्वारा श्वास लेय, वह पुरुष वायु और तृषा इनसे पीडित होकर तत्काल प्राणत्याग करे ॥

मसूरिकाके उपद्रव ।

मसूरिकान्ते शोथः स्यात्कूर्परे मणिबन्धके ।
तथांसफलके वापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः ॥ ३० ॥

मसूरिका (शीतला) के अन्तमें कूर्पर (कोहनी), पहुंचा तथा कन्धा इनमें सूजन होय, (इसको व्यवहारमें गुरु ऐसे कहते हैं) यह चिकित्सा करनेमें कठिन है॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां मसूरिकानिदानं समाप्तम् ॥

अथ क्षुद्ररोगनिदानम् ।

अजगल्लिकाके लक्षण ।

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा ।
कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ १ ॥

बालकको कफवातसे चिकनी, त्वचाके वर्णके समान वर्ण होय, गांठसी बन्धी रुजा (पीडा) रहित तथा मूंगके सदृश जो पिडिका होय उसको अजगल्लिका कहते हैं ॥

यवप्रख्याके लक्षण ।

यवाकारा सुकठिना ग्रथिता मांससंश्रिता ।
पिडिका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति चोच्यते ॥ २ ॥

कफवातसे प्रगट, जौके समान कठिन, गांठके सदृश मांसमिश्रित जो पीडिका होय उसको यवप्रख्या कहते हैं भोजके मतसे इसीको अन्त्रालजी कहते हैं ॥

अन्त्रालजीके लक्षण ।

घनामवक्त्रां पिडिकामुन्नतां परिमंडलाम् ।
अन्त्रालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ ३ ॥

कफवातसे प्रगट, कठिन, जिसमें मुख न हो, तथा ऊंची ऐसी पिडिका होय तथा जिसके चारोंओर मण्डलाकार हो और जिसमें राध थोडी होय, उसको अन्त्रालजी कहते हैं ॥

---

१ अन्त्रालजी स्नायुगता भोजादवगन्तव्या । यदुक्तम्–"श्लेष्मानिलौ श्रितौ स्नायुं पिडिकां पित्तमण्डलाम् । दुष्टौ जनयतोऽवक्त्रामल्पपूयामकण्डुराम् ॥ आमोदुम्बरसंकाशां विद्यादन्त्रालजीं तु ताम् ॥"

विवृतापिडिकाके लक्षण ।

विवृतास्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसन्निभाम् ।
परिमंडलां पित्तकृतां विवृतां नाम तां विदुः ॥ ४ ॥

पित्तके योगसे फटे मुखकी, अत्यन्त दाहयुक्त, पके गूलरके समान, चारों ओर बल पडी हुई जो पिडिका होय उसको विवृता कहते हैं ॥

कच्छपिकाके लक्षण ।

ग्रथिता पञ्च वा षड् वा दारुणाः कच्छपोन्नताः ।
कफानिलाभ्यां पिडिका ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥ ५ ॥

कफ वायुसे प्रगट गांठ बन्धी, पांच अथवा छः, कठिन कछुएके पीठके समान ऊंची जो पिडिका होयँ उनको कच्छपिका कहते हैं ॥

वल्मीकपिडिकाके लक्षण ।

ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे संधौ गले वा त्रिभिरेव दोषैः ।
ग्रन्थिः सवल्मीकवदक्रियाणां जातः क्रमेणैव गतः प्रवृद्धिम् ॥ ६ ॥
मुखैरनेकैः स्रुतितोदवद्भिर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः ।
वल्मीकमाहुर्भिषजो विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात् ॥७॥

नाड, कन्धा, कूख, हाथ, पैर, सन्धि, गला इन ठिकाने तीनों दोषोंसे सर्पकी बांबीके समान गांठ होय, उसका उपाय न करे तब वह धीरे धीरे बढे, उसमें अनेक मुख हो जायँ, उसमेंसे स्राव होय, नोचनेकीसी पीडा होय तथा वह मुखक ऊपर कुछ ऊंची होकर विसर्पके समान फैल जाय, इस रोगको वैद्य वल्मीक कहते हैं। इसके ऊपर औषध उपचार नहीं चले और पुराने होनेसे विशेष असाध्य जाननी ॥

इन्द्रवृद्धाके लक्षण ।

पद्मकर्णिकवन्मध्ये पिडिकाभिः समाचिताम् ।
इन्द्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ ८ ॥

कमलकर्णिकाके समान बीचमें एक पिडिका होय, उसके चारोंओर छोटी छोटी फुन्सी होयँ, उसको इन्द्रवृद्धा कहते हैं, यह वात पित्तसे उत्पन्न होय है ॥

गर्दभिकाके लक्षण ।

मंडलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पिडिकाचितम् ।
रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥ ९ ॥

वातपित्तसे प्रगट एक गोल ऊंचा तथा लाल और फोडोंसे व्याप्त ऐसा मंडल होय वह बहुत दूखे उसको गर्दभिका कहते हैं ॥

पाषाणगर्दभके लक्षण।

वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसंधिजः।
स्थिरो मन्दरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः ॥ १० ॥

वातकफसे ठोडीकी सन्धिमें कठिन, मन्द पीडा करनेवाली चिकनी ऐसा सूजन होय उसको पाषाणगर्दभ कहते हैं ॥

पनसिकाके लक्षण।

कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिडिकामुग्रवेदनाम्।
स्थिरां पनसिकां तां तु विद्याद्वातकफोत्थिताम् ॥ ११ ॥

कानके भीतर वात पित्त कफसे जो फुन्सी उग्रवेदनासहित प्रगट होय और वह स्थिर होय, उसको पनसिका कहते हैं ॥

जालगर्दभके लक्षण।

विसर्पवत्सर्पति यः शोथस्तनुरपाकवान्।
दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ १२ ॥

पित्तसे विसर्पके समान इधर उधरको फैलनेवाली पतली तथा कुछ पकनेवाली ऐसी सूजन होय, उसमें दाह होय और ज्वर होय, इसको जालगर्दभ कहते हैं, कोई आचार्य कहते हैं कि, इसमें पकना नहीं होय ॥

इरिवेल्लिकाके लक्षण।

पिडिकामुत्तमांगस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम्।
सर्वात्मिकां सर्वलिंगां जानीयादिरिवेल्लिकाम् ॥ १३ ॥

त्रिदोषसे प्रगट मस्तकमें गोल अत्यन्त पीडा और ज्वर करनेवाली त्रिदोषके लक्षण संयुक्त ऐसी पिडिका होय उसको इरिवेल्लिका कहते हैं ॥

कक्षा (कखलाई) के लक्षण।

बाहुकक्षांसपार्श्वे तु कृष्णस्फोटां सवेदनाम्।
पित्तकोपसमुद्भूतां कक्षामित्यभिनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥

---

१ कफवातौ प्रकुपितौ मांसमाश्रित्य कर्णयोः। समन्ततः परिस्तब्धां कुरुतः पिडिकां स्थिराम् ॥ विषमां दाहसंयुक्तां विद्यात्पनसिकां तु ताम् ॥ २ पित्तोत्कटास्त्रयो दोषा जनयंति त्वगाश्रिताः। श्यावं रक्तं तनुं शोथमपाकं बहुवेदनम् ॥ विसर्पिणं सदाहं च तृष्णाज्वरसमन्वितम्। विसर्पमाहुस्तं व्याधिमपरे जालगर्दभम् ॥

बाहु (भुजा) की जड, कंधा और पसवाडे इन ठिकाने पित्त कुपित होकर काले फोडोंसे व्याप्त तथा वेदनायुक्त जो पिडिका होय उसको कक्षा वा कखलाई कहते हैं॥

गन्धमालाके लक्षण।

एकामेतादृशीं दृष्ट्वा पिडिकां स्फोटसन्निभाम्।
त्वग्गतां पित्तकोपेन गन्धमालां प्रचक्षते ॥ १५ ॥

पित्तके कोपसे जो कक्षामें कही हुई काले फोडेके समान एक पिडिका त्वचाके भीतर होय उसको गन्धमाला कहते हैं ॥

अग्निरोहिणी (काली फुन्सी)।

कक्षाभागेषु ये स्फोटा जायन्ते मांसदारुणाः।
अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसन्निभाः ॥ १६ ॥
सप्ताहाद् द्वादशाहाद्वा पक्षाद्वा हंति मानवम्।
तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सान्निपातिकीम् ॥ १७ ॥

कांखके आसपास मांसके विदारण करनेवाले जो फोडे होते हैं तिसकरके अन्तर्दाह होय तथा ज्वर होय वे फोडे प्रदीप्त अग्निके समान लाल होयँ, इन फोडोंमें वायु अधिक होनेसे सात दिन, पित्ताधिक्यसे बारह दिन और कफाधिक्यसे १५ दिनमें रोगी मरे, यह अग्निरोहिणी नामक त्रिदोषजा पिडिका असाध्य है ॥

चिप्पके लक्षण।

नखमांसमधिष्ठाय वातः पित्तं च देहिनाम्।
कुर्वाते दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्पमादिशेत् ॥ १८ ॥

वायु और पित्त नखोंके मांसमें स्थित होकर दाह और पाकको करे, इस रोगको चिप्प ऐसे कहते हैं, यह अल्प दोषोंसे होय तो इसको कुनख कहते हैं ॥

अनुशयके लक्षण।

गभीरामल्पसंरम्भां सवर्णामुपरि स्थिताम्।
पादस्यानुशयीं तां तु विद्यादन्तः प्रपाकिनीम् ॥ १९ ॥

पैरोंमें त्वचाके समान वर्ण यत्किंचित् सूजनयुक्त भीतरसे पकी जो पिडिका होय उसको अनुशयी कहते हैं ॥

विदारिकाके लक्षण।

विदारिकन्दवद् वृत्ता कक्षावंक्षणसन्धिषु।
विदारिका भवेद्रक्ता सर्वजा सर्वलक्षणा ॥ २० ॥

विदारीकंदके समान गोल, कांखमें अथवा वंक्षणस्थानमें जो गांठ तांबेके रंगकीसी होय उसको विदारिका कहते हैं, यह सन्निपातसे होय है, इसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥

शर्करा।

प्राप्य मांसशिरास्नायु श्लेष्मा मेदस्तथाऽनिलः।
ग्रंथिं करोत्यसौ भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिभम् ॥ २१ ॥
स्रवत्यास्रावमनिलस्तत्र वृद्धिं गतः पुनः।
मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत्ततः ॥ २२ ॥

कफ मेद वायु ये मांस शिरा और स्नायु इनमें प्राप्त हो गांठ बांधते हैं, जब वह फूटे तब उसमेंसे शहत, घृत, चर्बी इनके समान स्राव हो तिसकरके वायु पुनः बढकर मांसको सुखाय उसकी बारीक खिचीसी गांठ करे, उसको शर्करा कहते हैं ॥

शर्करार्बुदके लक्षण।

दुर्गंधि क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः।
सृजंति रक्तं सहसा तद्विद्याच्छर्करार्बुदम् ॥ २३ ॥

शर्करा होनेके अनन्तर नाडियोंसे दुर्गन्ध क्लेदयुक्त अनेक प्रकारके घृत, मेद और वसा इनके वर्णका रुधिर स्रवै, उसको शर्करार्बुद कहते हैं परन्तु भोजने शर्करार्बुदको शर्करा रोगके अंतर्गत कहा है ॥

पाददारीके लक्षण।

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः।
पादयोः कुरुते दारीं पाददारीं तमादिशेत् ॥ २४ ॥

जिस पुरुषको बहुत चलना पडे है उसके पैर वायुके योगसे अत्यन्त रूक्ष होकर विदीर्ण हों (फाटें) उसको पाददारी कहते हैं अर्थात् विवाई कहते हैं। विपादिका कुष्ठ फटे नहीं है, यह फूट निकले है, यह इनमें भेद जानना ॥

कदर (ठेक) के लक्षण।

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कंटकादिभिः।
ग्रंथिः कोलवदुत्सन्नो जायते कदरं तु तत् ॥ २५ ॥

---

१ तमेव भिन्नदुर्गन्धं घृतमेदोनिभं शिराः। स्रवंति स्रावमनिशं तदा स्याच्छर्करार्बुदम् ॥१॥

पैरोंमें कंकर छिदनेसे अथवा कांटे लगनेसे बेरके समान उंची गांठ प्रगट होय उसको कदर अर्थात् ठेक कहते हैं अथवा 'ग्रंथिः कोलवदुत्सन्नो' इस जगह 'ग्रंथिः कीलवदुत्सन्नो' ऐसा भी पाठ है अर्थात् कीलके समान जो गांठ होय, उसको कदर कहते हैं। यह कदररोग हाथोंमें भी होय है सो भोजने लिखा भी है॥

अलस (खारुआ) के लक्षण।

क्लिन्नांगुल्यंतरौ पादौ कण्डूदाहरुजान्वितौ।
दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विभावयेत्॥ २६॥

दुष्ट कीचमें डोलनेसे (वर्षा आदिका पानी और सडी कीचमें डोलनेसे) पैरोंकी उंगली गीली रहनेसे उंगलियोंके बीचमें सफेद चकत्ते हो जायँ, उनमें खुजली, दाह और गीलापन होय, तथा पीडा होय उसको अलस अर्थात् खारुआ कहते हैं, यह कफरक्तके दोषसे होता है॥

इन्द्रलुप्त (चाई) के लक्षण।

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम्।
प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः॥ २७॥
रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसंभवः।
तादिंद्रलुप्तं खालित्यं रुह्येति च विभावयेत्॥ २८॥

पित्त बादीके साथ कुपित होकर रोमकूपोंमें अर्थात् बालोंके छिद्रोंमें प्राप्त हो तब मस्तक अथवा अन्य स्थानके बाल झडने लगें, पीछे कफ और रुधिर रोमकूप कहिये बालोंके प्रगट होनेके स्थानको रोकदे उससे फिर बाल नहीं ऊगें, इस रोगको इन्द्रलुप्त खालित्य चाचा (चाई) कहते हैं, यह रोग स्त्रियोंके नहीं होय, कारण इसका यह है कि उनका रुधिर महीनेके महीने शुद्ध होता रहे है और निकलता रहै है इससे वह रोमकूपोंको नहीं रोके है, सो विदेहाचार्य्यने भी लिखा है और इसी रोगको खालित्य और रुह्या कहते हैं सो भोजने लिखा है परन्तु कार्तिकाचार्य कहते हैं कि इन्द्रलुप्त रोग कुछ दाढीमें होय है और खालित्यरोग शिरमें होय है और रुह्यारोग पीडासहित होय है॥

---

१ 'हस्तयोः पादयोश्चापि गम्भीरानुमतं स्थिरम्। मांसकीलं जनयतः कुपितौ कफमारुतौ। सशल्यमिव तं देशं मन्यते तेन पीडितम्। शर्कराकदरं केचिन्मन्यन्ते वातकंटकम्॥ २ अत्यन्तसुकुमाराङ्गयो रजो दुष्टं स्रवंति च। अव्यायामरता यस्मात्तस्मान्न स्खलतिः-स्त्रियाः॥ इति। ३ "इन्द्रलुप्तं श्मश्रुणि भवति खालित्यं शिरस्येव रुह्या सर्वदेहे।"

दारुणकके लक्षण।

दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः प्रपच्यते।
कफमारुतकोपेन विद्याद्दारुणकं तु तम्॥ २९॥

कफवायुके कोपसे केशोंकी जमीन अतिकठिन होकर खुजावे, खरदरी होय तथा बारीक फुन्सी होकर पके उसको दारुणक कहते हैं, कफवातके कोपसे यह रोग होय है. इसका कारण यह है कि बिना पित्तके पाक नहीं होय सो विदेहने कहा भी है॥

अरूंषिकाके लक्षण।

अरूंषि बहुवक्राणि बहुक्लेदीनि मूर्धनि।
कफासृक्कृमिकोपेन नृणां विद्यादरूंषिकाम्॥ ३०॥

रुधिर कफ और कृमि इनके कोपसे माथेमें बहुत फुन्सी हो जायँ, उनमेंसे चोप विशेष निकले और क्लेदयुक्त होयँ इन फुन्सियोंको अथवा व्रणोंको अरूंषिका कहते हैं॥

पलित (सफेद बाल) के लक्षण।

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः।
पित्तं च केशान्पचति पलितं तेन जायते॥ ३१॥

क्रोध शोक और श्रमके करनेसे उत्पन्न भई जो शरीरमें ऊष्मा (गरमी) और पित्त सो मस्तकमें जाकर बालोंको पकाय दे अर्थात् सफेद करदे उस करके यह पलितरोग होय है। पलित रोगपर मधुकोशटीकाकारने तथा भावप्रकाशने शास्त्रार्थ लिखा है॥

मुखदूषिकाके लक्षण।

शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमरुतकोपजाः।
जायन्ते पिडिका यूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः॥ ३२॥

कफवायुके कोपसे सेमरके कांटेके समान तरुण (जवान) पुरुषके मुखके ऊपर जो फुन्सी होयँ उनको मुखदूषिका अर्थात् मुहांसे कहते हैं। इनके होनेसे मुख बुरा हो जाता है॥

---

१ यदत्र पाटलाभासं सरजस्कं शिरस्त्वाची। परुषं जायते जन्तोस्तस्य रूपं विशेषतः॥ दोषैः समन्वितं वातात्सकण्डूगौरवं कफात्। सपिपासं सदाहार्तिरोगं पित्तासृजं तथा॥

पद्मिनीकण्टकके लक्षण ।

कण्टकैराचितं वृत्तं मंडलं पाण्डु कण्डुरम् ।
पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥ ३३ ॥

कमलके कांटेके समान कांटे चारोंओर युक्त हों, गोल, पीले रंगका, खुजली जिसमें चलती होय ऐसा एक मण्डल होय उसको पद्मिनीकण्टक कहते हैं, यह कफवायुसे होय है ॥

जतुमणि (लहसन) के लक्षण ।

सममुत्सन्नमरुजं मण्डलं कफरक्तजम् ।
सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जतुमणिः स्मृतः ॥ ३४ ॥

कफरक्तसे जन्मसे ही चिकना तथा कुछ ऊंचा, जिसमें पीडा होय नहीं ऐसे गोल मण्डलके समान देहमें चिह्न होय उसको लक्ष्म तथा कोई कोई लक्ष्य जतुमणि कहते हैं । यह स्त्रीपुरुषोंके अंगभेद करके शुभाशुभ फलदायक है, इसको लोकमें (लहसन) कहते हैं ॥

माष (मस्सा) के लक्षण ।

अवेदनं स्थिरं चैव यस्मिन् गात्रे प्रदृश्यते ।
माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्मषकं तु तत् ॥ ३५ ॥

बादीसे शरीरके ऊपर उडदके समान काला, पीडारहित, स्थिर, कठिन, कुछ ऊंची गांठसी प्रगट होय, उसको माष (मस्सा) ऐसे कहते हैं । इस श्लोकमें जो चकार है उससे कफमेदसे भी मस्से होते हैं यह दिखाया, सो भोजने कहा भी है ॥

तिलकालक (तिल) के लक्षण ।

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च ।
वातपित्तकफोत्सेकात्तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ ३६ ॥

वात पित्त कफके कोपसे काले तिलके समान पीडारहित त्वचासे मिले, ऐसे अंगमें दाग होयँ उनको तिलकालक (तिल) कहते हैं । " वातपित्तकफोत्सेकात् " इस पाठमें वात पित्त हेतु करके कफका शोष होय है उसीसे तिल होते हैं परन्तु चरकके मतसे पित्त रुधिरके शोष होनेसे तिल होते हैं । "यस्य पित्तं प्रकुपितं शोणितं प्राप्य शुष्याति । तिलको विप्लवा व्यंगा नीलिका चास्य जायते ॥ " इस वचनसे वात भी रुधिरको शोषण करे है । अन्य ग्रन्थमें वात पित्त कफ ये तीनों रुधिरको

---

१ वातोरेते त्वचि यदा दूष्येते कफमेदसी । श्लक्ष्ण मृदु सवर्ण च कुरुते मषकं वदेत् ॥

शोषण करे हैं। यथा-" मारुतः पित्तमादाय कफरक्तसमाश्रितः। चिनोति तिलमात्राणि त्वचि ते तिलकालकाः॥"

न्यच्छके लक्षण।

महद्वा यदि वाऽत्यल्पं श्यावं वा यदि वा सितम्।
नीरुजं मण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभीधीयते॥ ३७॥

मुखके विना अन्य स्थानमें शरीरके ऊपर बडा अथवा छोटा, काला अथवा सफेद और पीडा रहित दाग होय, उसको न्यच्छ कहते हैं, यह भी व्यंगका भेद है॥

व्यंग (झांई) के लक्षण।

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः।
मुखमागत्य सहसा मण्डलं विसृजत्यतः॥ ३८॥
नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यङ्गं तमादिशेत्।

क्रोध और श्रम इनसे कुपित भया वायु पित्तसंयुक्त होकर मुखमें प्राप्त होकर एक मण्डल उत्पन्न करे, वह दूखे नहीं, पतला तथा श्यामवर्ण होय, उसको व्यंग कहते हैं॥

नीलिकाके लक्षण।

कृष्णमेवंगुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः॥ ३९॥

पूर्वोक्त व्यंगके लक्षण सदृश जो काला मण्डल अंगमें होय अथवा मुखर होय उसको नीलिका कहते हैं। भोजने इस जगह नीलिकागात्र ऐसा कहा है अर्थात् सर्व देह नीली होय है॥

परिवर्तिकाके लक्षण।

मर्दनात्पीडनाद्वापि तथैवाप्यभिघाततः।
मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन्॥ ४०॥
तदा वातोपसृष्टत्वात्तच्चर्म परिवर्त्तते।
मणेरधस्तात्कोशस्तु ग्रंथिरूपेण लंबते॥ ४१॥
सवेदनं सदाहं च पाकं च व्रजाति क्वचित्।
परिवर्तिकेति तां विद्यात्सरुजां वातसंभवाम्॥
सकंडूः कठिना वापि सैव श्लेष्मसमुत्थिता॥ ४२॥

---

१ मारुतः क्रोधहर्षाभ्यामूर्ध्वगो मुखमाश्रितः। पित्तेन सह संयुक्तः करोति वदनं त्वचि॥ नीरुजं तनुकं श्यावं व्यंगं तमिति निर्दिशेत्। कृष्णामेव त्वचं गात्रे नीलिकां तां विनिर्दिशेत्॥

लिंगको मर्दन करनेसे अथवा रगडनेसे, उसी प्रकार लिंगमें किसी प्रकारकी चोट लगनेसे व्यानवायु कुपित होकर उसके चर्ममें प्रवेश कर सर्वत्र विचरे उस समय वातसंस्पर्श हेतु करके लिंगकी चर्म पृथक् होजाय और शिश्नका कोश सूजकर मणिके नीचे गांठके समान होकर लटके, उसमें पीडा होय, दाह होय और कभी कभी वह पकजाय, इस पीडाको परिवर्तिका कहते हैं, यह वातसे होय है और जो कफसे होय तो उसमें खुजली तथा कठिनता होती है ॥

अवपाटिकाके लक्षण ।

अल्पीयःखां यदा हर्षाद्बलाद्गच्छेत्स्त्रियं नरः ।
हस्ताभिघातादथवा चर्मण्युद्वर्तिते बलात् ॥ ४३ ॥
मर्दनात्पीडनाद्वापि शुक्रवेगविघाततः ।
यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥ ४४ ॥

जिसकी योनिका छिद्र बारीक होय ऐसी स्त्रीसे बलपूर्वक मैथुन करनेसे अथवा हाथके अभिघात (चोट) से बलसे लिंगके चामको उलटनेसे अथवा मीडनेसे अथवा जोरपूर्वक दाबनेसे अथवा शुक्रके वेगको धारण करनेसे उस पुरुषके लिंगकी चाम फट जाय, इस पीडाको अवपाटिका कहते हैं । इस अवपाटिका रोगमें तीनों दोषोंके लक्षण पृथक् २ होते हैं यह मत भोजका है ॥

निरुद्धप्रकाशके लक्षण ।

वातोपसृष्टे मेढ्रे तु चर्म संश्रयते मणिम् ॥ ४५ ॥
मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च ।
निरुद्धप्रकशे तस्मिन्मंदधारमवेदनम् ॥ ४६ ॥
मूत्रं प्रवर्तते जंतोर्मणिर्विव्रीयते न च ।
निरुद्धप्रकशं विद्यात्सरुजं वातसंभवम् ॥ ४७ ॥

वायुके योगसे लिंग पीडित होनेसे चामडी सूजकर मणिभागमें प्राप्त होय वह मणि चर्मके संकोच होनेसे मूत्रके मार्गको रोके तब मूत्रका रोध होय, तब उस पुरुषका मूत्र ठहर ठहरकर निकले, परन्तु पीडा नहीं होय और मणि बाहर नहीं निकले, इस रोगयुक्त वातजन्य पीडाको निरुद्धप्रकाश कहते हैं, चर्मके संकोच होनेको निरुद्ध कहते हैं, और मूत्रकी धार मन्द निकलनेको प्रकाश कहते हैं।

---

१ मर्दनादभिघाताद्वा कन्यायोनिप्रपीडनात् । लक्ष्यते यदि मेढ्रस्य चर्म दभरिव क्षतम् ॥ अवपाटिकेति तां विद्यात्पृथग्दोषैः समन्विताम् । वातात्सा परुषा रूक्षा शूलनिस्तोदकारिणी ॥ पित्तात्सदाहा रक्ताद्वा दाहतृष्णासमन्विता । श्लैष्मिकी कठिना स्निग्धा कण्डूमत्यल्पवेदना ॥

'अवेदनम्' यह जो मूलमें पाठ है इस जगह कोई 'सवेदनम्' ऐसा कहते हैं। भोज-आचार्यका मत भोजसंहितामें लिखा भी है॥

सन्निरुद्धगुदके लक्षण।

वेगसंधारणाद्वायुर्विहतो गुदसंस्थितः।
निरुणद्धि महास्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च॥ ४८॥
मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति।
सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेनं विद्यात्सुदारुणम्॥ ४९॥

मलमूत्रादिकोंके वेग रोकनेसे गुदाश्रित अपानवायु कुपित होकर महास्रोत (गुदा) का अवरोध करे और वह द्वारको छोटा करे, पीछे मार्ग छोटा होनेसे उस पुरुषका मल बडे कष्टसे बाहर निकले, इस भयंकर रोगको सन्निरुद्धगुद कहते हैं। इस रोगमें भी निरुद्धप्रकाशके समान चर्मका संकोच होनेसे सन्निरुद्धगुद होय है अर्थात् अपानवायुके रुकनेसे पुरीष (मल) का अनिर्गम होय है॥

अहिपूतनके लक्षण।

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत्।
स्विन्ने वा स्नाप्यमाने वा कण्डूरक्तकफोद्भवा॥ ५०॥
ततः कण्डूयनात्क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते।
एकीभूतं व्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम्॥ ५१॥

बालकके मलमूत्र करनेके अनन्तर गुदाके न धोनेसे अथवा पसीना आनेसे तथा धोनेके अनन्तर रुधिर कफसे खुजली उत्पन्न होय, तदनन्तर खुजानेसे शीघ्र फोडा उत्पन्न होय और उनसे स्राव होय; पीछे ये सब मिलकर इस भयंकर व्याधिको प्रगट करें। इसे अहिपूतन कहते हैं। यह रोग बहुधा बाल लोम (छोटे २ रोम) में होय है। भोज कहता है कि, यह रोग दुष्टस्तन्यपान अर्थात् माताके दुष्ट दूधके पीनेसे बालकके होय हैं॥

वृषणकच्छूके लक्षण।

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थितः।
यदा प्रक्लिद्यते स्वेदात्कण्डूः सञ्जायते तदा॥ ५२॥

---

१ मेढ्रान्ते चर्मणि यदा मारुतः कुपितो भृशम्। द्वारं निरुणद्धि शनैः प्रकाशं च मुहुर्भवेत्॥ मूत्रं मूत्रयते कृच्छ्रात्प्रकाशं तु यदा भवत्। वातोपसृष्टमेढ्रं च मणिर्न च विदीर्यते। निरुद्धं च प्रकाशं च व्याधिं विद्यात्सुदारुणम्॥ २–दुष्टस्तन्यस्य पानेन मलस्याच्छादनेन च। कंडूदाहरुजावद्भिः पिडितैश्च समाचिता॥ अहिपूतना सम्भवति यथादोषं च दारुणा॥ इति।

कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते ।
प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ ५३ ॥

जो मनुष्य स्नान करते समय लगेहुए मलको नहीं धोवे, उस पुरुषका मल अण्डकोशोंमें सञ्चित होय पीछे वह पसीना आनेसे गीला होय तब अण्डकोशोंमें घोर पीडा होय और खुजानेसे तत्काल फोडा होय, पीछे वह फोडा स्रवकर आपसमें मिलजाते हैं, कफरक्तसे होनेवाली इस व्याधिको वृषणकच्छू कहते हैं ॥

गुदभ्रंशके लक्षण ।

प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः ।
रूक्षदुर्बलदेहस्य गुदभ्रंशं तमादिशेत् ॥ ५४ ॥

जिस पुरुषका देह रूक्ष और अशक्त होय, उस पुरुषके प्रवाहण (कुन्थन) तथा अतीसार हेतुकरके गुदा बाहर निकल आवे, अर्थात् कांच बाहर निकल आवे उस रोगको गुदभ्रंश रोग कहते हैं, इस रोगमें धातुक्षय होनेसे वात कुपित होय है ॥

सूकरदंष्ट्रके लक्षण ।

सदाहो रक्तपर्यंतस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः ।
कण्डूमाञ्ज्वरकारी च स स्याच्छूकरदंष्ट्रकः ॥ ५५ ॥

दाहयुक्त चारों ओर लाल होय, जिसकी त्वचा पकनेवाली होय, तीव्र पीडायुक्त, खुजली संयुक्त तथा ज्वर करनेवाली ऐसी सूजन अथवा व्रण होय उसको सूकरदंष्ट्र अर्थात् वराहडाढ कहते हैं ॥

इति श्रीपंडितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां
क्षुद्ररोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ मुखरोगनिदानम् ।

संख्या ।

दन्तेष्वष्टावोष्ठयोश्च मूलेषु दश पंच च ।
नव तालुनि जिह्वायां पंच सप्तदशामयाः ॥
कंठे त्रयः सर्वसरा एकषष्टिचतुःपरे ॥ १ ॥

दन्तरोग ८, होठके रोग ८, दन्तमूलके रोग १५, तालूके रोग ९, जिह्वाके ५, कण्ठके रोग १७, और सर्वसर ३ ऐसे सब मिलकर पैंसठ ६५ मुखरोग हैं, " ये श्लोक माधवके नहीं हैं भोजसंहिताके हैं " ॥

तिनमें ८ होठके रोगोंकी संप्राप्ति।

अनूपपिशितक्षीरदधिमाषादिसेवनात्।
मुखमध्ये गदान्कुर्युः क्रुद्धा दोषाः कफोत्तराः॥ २॥

जलसंचारी प्राणियोंके मांस, दूध, दही, उडद आदि पदार्थोंके सेवन करनेसे कुपित भये कफादिक दोष मुखमें रोग उत्पन्न करते हैं॥

वातिक ओष्ठरोगके लक्षण।

कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ कृष्णौ तीव्ररुजान्वितौ।
दाल्येते परिपाट्येते ओष्ठौ मारुतकोपतः॥ ३॥

वादीके कोपसे होठ कर्कश, खरदरे, कठोर और काले होते हैं उनमें तीव्र पीडा होय व दो टुकडोंके समान होजाय तथा होठकी त्वचा किंचित् फटजाय॥

पैत्तिकके लक्षण।

चीयते पिडिकाभिस्तु सरुजाभिः समन्ततः।
सदाहपाकपिडिकौ पीतभासौ च पित्ततः॥ ४॥

पित्तसे होठ चारों ओर फुन्सियोंसे व्याप्त हों, उनमें पीडा होय तथा पकजावे और पीलेसे दीखें इसमें जो दाह और पाक कहे हैं सो विशेषताके सूचक हैं॥

श्लैष्मिकके लक्षण।

सवर्णाभिस्तु चीयेते पिडिकाभिरवेदनौ।
भवतस्तु कफादोष्ठौ पिच्छिलौ शीतलौ गुरू॥ ५॥

कफसे होठ त्वचाके समान वर्णवाली फुन्सियोंसे व्याप्त हों, कुछ दूखें, तथा मलाईके समान और शीतल तथा भारी हों॥

सान्निपातिकके लक्षण।

सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च।
सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिडिकान्वितौ॥ ६॥

सन्निपातसे होठ कभी काले, कभी पीले, उसी प्रकार कभी सफेद तथा अनेक प्रकारकी फुन्सियोंसे व्याप्त होयँ॥

रक्तजके लक्षण।

खर्जूरफलवर्णाभिः पिडिकाभिर्निपीडितौ।
रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ॥ ७॥

रुधिरसे होठ खर्जूरफलके वर्णके समान फुन्सियोंसे पीडित होयँ, रक्तसे दोनों होठ दूषित हों, उनमेंसे रुधिर गिरे तथा वे होठ रुधिरके समान लाल होयँ ॥

मांसजके लक्षण।

मांसदुष्टौ गुरू स्थूलौ मांसपिण्डवदुद्गतौ।
जन्तवश्चात्र मूर्च्छंति नरस्योभयतो मुखात् ॥ ८ ॥

मांस दुष्ट होनेसे होठ भारी मोटे होते हैं, मांसपिंडके समान ऊंचे उठे हुए होयँ। इस रोगवाले मनुष्यके मुखको छोडकर दोनों होठोंके प्रांतभागमें कीडे पड जावें ॥

मेदोजके लक्षण।

सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कण्डुरौ गुरू।
स्वच्छं स्फटिकसंकाशमास्रावं स्रवतो भृशम् ॥
तयोर्व्रणो न संरोहेन्मृदुत्वं च न गच्छति ॥ ९ ॥

मेदसे होठ घृतके ऊपरके स्वच्छ भागके सदृश खुजली संयुक्त तथा भारी होयँ तथा उनमेंसे स्फटिकके समान निर्मल स्राव बहुत होयँ इसमें भथा व्रण भरे नहीं है तथा उसमें मृदुता नहीं होती है ॥

अभिघातजके लक्षण।

ओष्ठौ पर्यवदीर्येते पीडचेते चाभिघाततः।
ग्रथितौ च तदा स्यातां कण्डूक्लेदसमान्वितौ ॥ १० ॥

अभिघातसे (चोट लगनेसे) होठ सर्वत्र चिरजायँ, पीडा होय, उसमें गांठ होजाय तथा उसमें खुजली चलते समय पीब बहे। कोई कहते हैं कि, अभिघातके ओष्ठरोगमें केवल ऊपरका होठ फटता है, इसरोगमें भी कफ पित्त सहायक जानने, सो भोजने कहा भी है ॥

दन्तमूलगत १९ रोग।

शीतादके लक्षण।

शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्त्तते।
दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥ ११ ॥
दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचंति च परस्परम्।
शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसंभवः ॥ १२ ॥

---

१ क्षतावभिहतौ चापि रक्तावोष्ठा सवेदनौ। भवतः सपरिस्रावौ कफरक्तप्रदूषिताविति ॥ वातजः केवलः स्वकारणकुपितः अत्र तु वायुः अभिघाताल्लभ्यते।

जिसके मसूढोंमेंसे अकस्मात् रुधिर बहे और दांतोंका मांस दुर्गंधियुक्त काला पीवसहित तथा नरम होकर गिरे और एक दांतका मसूढा पकनेसे वह दूसरे मसूढेको पकावे, यह कफ रुधिरसे प्रगट व्याधिको शीतादनाम कहते हैं ॥

दन्तपुप्पुटके लक्षण।

दन्तयोस्त्रिषु वा यस्य श्वयथुर्जायते महान्।
दन्तपुप्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥ १३ ॥

जिसके दो अथवा तीनों दांतोंकी जडमें महान् सूजन होय, उसको दंतपुप्पुट नाम कहते हैं, यह व्याधि कफरक्तसे होती है, परन्तु आगे जो शौषिर रोग कहेंगे उससे यह भिन्न है क्योंकि इसमें पीडा और लारका टपकना नहीं होता है ॥

दन्तवेष्टके लक्षण।

स्रवन्ति पूयं रुधिरं चला दन्ता भवन्ति च।
दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभवः ॥ १४ ॥

रुधिर दुष्ट होनेसे दांतोंमेंसे रुधिर तथा राध बहे, तथा दांत हिलने लगें उसको दन्तवेष्टरोग कहते हैं ॥

शौषिरके लक्षण।

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान्कफरक्तजः।
लालास्रावी स विज्ञेयः शौषिरो नाम नामतः ॥ १५ ॥

कफ रुधिरसे दातोंकी जडमें सूजन होय, उसमें पीडा होय और स्राव होय उसको सौषिर रोग कहते हैं। पूर्वोक्त दन्तपुप्पुटमें पीडा और स्राव नहीं होय है इसीसे यह पृथक् है ॥

महाशौषिरके लक्षण।

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते।
यस्मिन्स सर्वतो व्याधिर्महाशौषिरसंज्ञकः ॥ १६ ॥

इस त्रिदोष व्याधिसे मसूढेके समीप दांत हालें, तालुएमें छिद्र पडे, चकारसे दांत और होंठ भी फटजायँ उसको महाशौषिररोग कहते हैं। यह रोग मनुष्यको सात दिनमें मारता है. सो भोजने कहाभी है परन्तु गदाधर कहते हैं कि, शौषिरमें जो भोजने लक्षण कहे हैं सो होयँ तो उसीको महाशौषिर कहते हैं ॥

---

१ सदाहो दंतमूलेषु शोथः पित्तकफानिलात्। जातः कफं क्षपयति क्षीणे तस्मिन्सशोणितम् ॥ विवृद्धमनिशं दंतास्ताल्वोष्ठमपि दारयेत्। महाशौषिरमित्येतत्सप्तरात्रान्निहंत्यसून् ॥

परिदरके लक्षण ।

दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन्ष्ठीव्यति चात्यसृक् ।
पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः ॥ १७ ॥

इस रोगकरके दांतोंका मांस विखर जाय और थूकनेसे रुधिर गिरे, इस व्याधिको परिदर कहते हैं यह रोग पित्तरुधिरकफसे होय है ॥

उपकुशके लक्षण ।

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलंति च ।
अवाक्कृताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनाः ॥ १८ ॥
आध्मायन्ते स्रुते रक्ते मुखे पूतिश्च जायते ।
यस्मिन्नुपकुशोनाम पित्तरक्तकृतो गदः ॥ १९ ॥

जिसके मसूढोंमें दाह होकर पाक और दांत हलने लगें, मसूढोंके घिसनेसे रुधिर मन्द पीडाके साथ निकले, रुधिर निकलनेके पिछाडी फिर मसूढे फूल आवें और मुखमें वास आवे इस पित्तरक्तकृत विकारको उपकुश कहते हैं ॥

वैदर्भके लक्षण ।

घृष्टेषु दन्तमूलेषु संरम्भो जायते महान् ।
भवंति चपला दन्ताः स वैदर्भोऽभिघातजः ॥ २० ॥

मसूढे रगडनेसे सूजन बहुत होय और दांत हलने लगें, उसको वैदर्भरोग कहते हैं। यह रोग चोटके लगनेसे होय है ॥

खल्लीवर्धनके लक्षण ।

मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः ।
खल्लीवर्द्धनसंज्ञो वै जाते रुक्च प्रशाम्यति ॥ २१ ॥

वादीके योगसे दांतके ऊपर दूसरा दांत ऊगे, उस समय पीडा होय, जब वह दांत ऊग आवे तब पीडा शांत होय उसको खल्लीवर्धन कहते हैं ॥

करालके लक्षण ।

शनैः शनैः प्रकुरुते वायुर्दन्तसमाश्रितः ।
करालान्विकटान्दन्तान् करालो न च सिध्यति ॥ २२ ॥

वादी धीरे धीरे मसूढेका आश्रय लेकर दांतोंको टेढे तिरछे करे उसको कराल रोग कहते हैं। यह रोग साध्य नहीं होय ॥

अधिमांसकके लक्षण।

हानव्ये पश्चिमे दन्ते महाञ्छोथो महारुजः।
लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयो ह्यधिमांसकः॥ २३॥

जिसके पीछेके दाढके नीचे अर्थात् मसूढेमें बहुत सूजन होय और घोर पीडा होय तथा लार बहुत बहे, उसको अधिमांसक कहते हैं। यह कफके कोपसे होय है॥

नाडीव्रणके लक्षण।

दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः॥ २४॥

नाडीव्रणनिदानमें वात, पित्त, कफ, सन्निपात और आगन्तुज ऐसे पांच प्रकारके जो नाडी व्रण कहे हैं वे दन्तमूल (मसूढे) में होते हैं। पहिले ११ और ५ नाडीव्रण ऐसे मिलकर १६ दन्तमूल (मसूढे) के रोग होते हैं परन्तु करालरोग सुश्रुतके मतसे अधिक है तथापि संग्रहकारने अपने ग्रन्थमें लिखा है, इसीसे हमने भी यहां लिखदिया है, ये पांच नाडीव्रण शालाक्य सिद्धान्तके मतसे संख्या पूरणार्थ माधवाचार्यने लिखे हैं॥

दन्तगत ८ रोग।

दालनके लक्षण।

दीर्यमाणेष्विव रुजा यस्य दन्तेषु जायते।
दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः॥ २५॥

जिसके दांतोंमें फोडनेकीसी पीडा होय, उसको दालनरोग कहते हैं, यह रोग वादीसे होय है॥

कृमिदन्तकके लक्षण।

कृष्णाच्छिद्रश्चलस्रावी ससंरम्भो महारुजः।
अनिमित्तरुजो वातात्स ज्ञेयः कृमिदन्तकः॥ २६॥

वादीके योगसे दांतोंमें काले छिद्र पड जायँ, हलने लगे, उनमेंसे स्राव होय, शोथयुक्त पीडा होनेवाला और कारण बिना दूखनेवाला ऐसा होय उसको कृमिदन्तरोग कहते हैं। यहां काले छिद्र पडनेका यह कारण है कि, दुष्ट रुधिरसे कृमि (कीडे) पैदा होकर दांतोंमें छिद्र करते हैं॥

भञ्जनकके लक्षण।

वक्रं वक्रं भवेद्यस्य दन्तभङ्गश्च जायते।
कफवातकृतो व्याधिः स भंजनकसंज्ञितः॥ २७॥

जिस व्याधिकरके मुख टेढा होकर दांत फूटने लगे वह भञ्जनक व्याधि कफ-वातकरके होय, दांत भंगकारी दोषके प्रभावसे मुख भी टेढा होय है ॥

दन्तहर्षके लक्षण ।

शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजाः ।
पित्तमारुतकोपेन दन्तहर्षः स नामतः ॥ २८ ॥

दांत शीतल, रूक्ष, खटाई इत्यादि पदार्थ और पवन इनके लगनेको जो नहीं सहिसके, उसको दन्तहर्ष कहते हैं, वह रोग पित्तवायुके कोपसे होय है । इस रोगको वातज होनेपर भी उष्ण (गरमी) को नहीं सहिसके, यह व्याधिका स्वभाव है । इस जगह दूसरा जो पाठ है वह नीचे लिखा है ॥

दन्तशर्कराके लक्षण ।

मलो दन्तगतो यस्तु पित्तमारुतशोषितः ।
शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥ २९ ॥

दांतोंका मल पित्तवायुके प्रभावसे सूखकर रेतके समान खरदरा स्पर्श मालूम होय, उस रोगको दन्तशर्करा कहते हैं। इस श्लोकमें " सा दंताना गुणहरा" ऐसा भी पाठ है, इसका यह अर्थ हुआ कि, दांतोंके गुण शुक्ल और दृढादि उनको दूर करे॥

कपालिकाके लक्षण ।

कपालेष्विव दीर्णेषु दन्तानां सैव शर्करा ।
कपालिकेति सा ज्ञेया सदा दन्तविनाशिनी ॥ ३० ॥

कपाल कहिये मिट्टीके घडा आदिके जैसे टूक होय हैं ऐसे दांत मल करके सहित हो जायँ तो उसे पूर्वोक्त दन्तशर्कराको कपालिका ऐसे कहते हैं । यह रोग दांतोंका सदा नाश करता है,॥

श्यावदन्तके लक्षण ।

योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दन्तस्त्वशेषतः ।
श्यावतां नीलतां वापि गतः स श्यावदन्तकः ॥ ३१ ॥

जो दांत रुधिरसे मिले, पित्तसे जलेके समान सब काले हो जायँ उनको श्यावदन्त कहते हैं ॥

---

१ शीतमुष्णं च दशनाः सहन्ते स्पर्शनं न च । यस्य दन्तं च हर्षं तु विद्यात्पित्तसमीरणात् ॥

हनुमोक्षके लक्षण ।

वातेन तैस्तैर्भावैस्तु हनुसंधिर्विसंहतः ।
हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरर्दितलक्षणः ॥ ३२ ॥

बादीके योगसे तिस तिस अभिघातादिक करके हनुसन्धि (ठोडी) में चोट लगनेसे दांत चलायमान हो जायँ उसको हनुमोक्ष कहते हैं, इसके लक्षण अर्दित-रोग जो वातव्याधिमें कहि आये हैं उस प्रकारके होयँ । सुश्रुतने इस रोगको दाँतोंके समीप होनेसे दन्तरोग कहा है, परन्तु संग्रहकारने मुख्य दन्तरोग न होनेसे नहीं लिखा । इसको संग्रहकारने भोजके कहे अनुसार वातव्याधिमें लिखा है इसीसे हनुमोक्ष रोगका पाठ किसी पुस्तकमें लिखा है और किसीमें नहीं लिखा ॥

जिह्वागत ५ रोग ।

वातजके लक्षण ।

जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ।

बादीसे जीभ फटीसी, प्रसुप्त (रसका ज्ञान जाता रहै) और शाकवान् वृक्षके पत्र समान कांटेयुक्त खरदरी हो ॥

पित्तजके लक्षण ।

पित्तेन पीता परिदह्यते च दीर्घैः सरक्तैरपि कण्टकैश्च ॥ ३३ ॥

पित्तसे जीभ पीली हो, उसमें दाह हो उसमें लम्बे तांबेके समान कांटे होयँ इस रोगको लौकिकमें जाली कहते हैं अथवा जोडी कहते हैं ॥

कफजके लक्षण ।

कफेन गुर्वी बहलाचिता च मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकण्टकाभैः॥३४॥

कफसे जीभ मोटी भारी होय है और उसमें सेमरके कांटेके समान मांसके अंकुर होयँ ॥

अलासके लक्षण ।

जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः ।
जिह्वां स तु स्तंभयति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम्॥३५॥

जीभके नीचे कफ रुधिरसे प्रगट ऐसी भयंकर सूजन होय उसको अलास कहते हैं, उसके बढनेसे स्तंभ होय तथा जीभके मूलमें अत्यन्त पाक होता है, यह रोग असाध्य है ॥

उपजिह्वाके लक्षण ।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तमूर्तिः ।
लालाकरः कण्डुयुतः सचोषः सा तूपजिह्वा कथिता भिषग्भिः ३६

कफरुधिरसे जिह्वाग्रके समान (जैसा जीभका आगेका भाग होय है) ऐसी सूजन जीभको नीची दबाकर उत्पन्न होय, उसके योगसे लार बहुत बहे और उसमें खुजली चले, तथा दाह होय (दाह इसमें रक्तमें स्थान पित्तका है उसके होय है) इस रोगको वैद्य उपजिह्वा रोग कहते हैं ॥

तालुगत ९ रोग ।

कण्ठशुण्डीके लक्षण ।

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो दीर्घः शोथो ध्मातबास्तिप्रकाशः ।
तृष्णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति व्याधिं वैद्याः कण्ठशुण्डीति नाम्ना ३७

कफरुधिरसे तालुके मूलमें फूली बस्तिके समान भारी सूजन होय, इसके प्रभावसे प्यास, खांसी, श्वास ये होते हैं। इस रोगको वैद्य कण्ठशुंडी कहते हैं ॥

तुण्डिकेरीके लक्षण ।

शोथः शूलस्तोददाहप्रपाकी प्रागुक्ताभ्यां तुण्डिकेरी मता तु ।

कफरक्तसे तालुएमें बनकपासके फलके समान सूजन होय और उसमें पीडा सुईके छेदनेकासा दुःख और दाह होकर पके उसको तुंडिकेरी कहते हैं ॥

अध्रुषके लक्षण ।

शोथः स्तब्धो लोहितस्तालुदेशे रक्तो ज्ञेयः सोऽध्रुषो रुग्ज्वरश्च॥ ३८

रुधिरसे तालुएमें लाल स्तब्ध (लठर) ऐसी सूजन होय, उसमें पीडा और ज्वर होय, उसको अध्रुष कहते हैं ॥

कच्छपके लक्षण ।

कूर्मोत्सन्नोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा वा ।

कफसे तालुएमें कछुएकी पीठके समान ऊंची सूजन होय, उसमें पीडा थोडी होय, देरसे प्रगट होनेवाला, वह शीघ्र बढे नहीं, उसको कच्छपरोग कहते हैं ॥

अर्बुदके लक्षण ।

पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिङ्गम्॥ ३९ ॥

रुधिरसे तालुएम कमलकी कर्णिकाके समान सूजन होय, इसके लक्षण अर्बुद निदानमें जो रक्तार्बुदके कहे हैं उसके प्रमाण जानने ॥

मांससंघातके लक्षण।

दुष्टं मांसं नीरुजं तालुमध्ये कफाच्छूनं मांससङ्घातमाहुः।

कफकरके तालुएमें मांस दुष्ट होकरके जो सूजन होय और वह दूखे नहीं उसको मांससंघात कहते हैं॥

तालुपुप्पुटके लक्षण।

नीरुक्स्थायी कोलमात्रः कफात्स्यान्मेदोयुक्तः पुप्पुटस्तालुदेशे॥४०॥

मेदयुक्त कफकरके तालुएमें पीडारहित और स्थिर तथा बेरके समान सूजन होय उसको तालुपुप्पुट कहते हैं॥

तालुशोषके लक्षण।

शोषोऽत्यर्थं दीर्यते चापि तालु श्वासश्चोग्रस्तालुशोषोऽनिलाच्च।

वादीसे तालु अत्यन्त सूखकर फट जाय, तथा भयंकर श्वास होय उसको तालु-शोष कहते हैं॥

तालुपाकके लक्षण।

पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येवं तालुपाकं वदंति॥४१॥

पित्त कुपित होकर तालुएमें अत्यन्त भयंकर पाक (पकी फुन्सी) उत्पन्न करे उसको तालुपाक कहते हैं॥

कण्ठगत १७ रोग।

तिनमें पांच रोहिणीकी सामान्य सम्प्राप्ति।

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम्।
गलोपसंरोधकरैस्तथांकुरैर्निहंत्यसून्व्याधिरयं हि रोहिणी॥४२॥

गलेमें वायु पित्त और कफ ये दुष्ट होकर मांसको तथा रुधिरको दूषित कर गलेमें अंकुर (कांटे) उत्पन्न करे हैं, उनसे गला रुकजाय, यह रोहिणीनामक व्याधि प्राणनाशक है। सब रोहिणी सन्निपातसे प्रगट होती हैं। उत्कर्षके वास्ते वात-आदिका व्यपदेश है इस सबका असाध्यत्व भोजने पृथक् लिखा है॥

वातजाके लक्षण।

जिह्वासमन्तादृभृशवेदनास्तु मांसाङ्कुराः कण्ठनिरोधना ये।
सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता॥४३॥

जीभके चारों ओर अत्यन्त वेदनायुक्त जो मांसांकुर उत्पन्न होयँ, उनसे कंठका अवरोध होय, तथा कम्प, विनाम, स्तम्भादि वातके उपद्रव होयँ॥

---

१ सद्यस्त्रिदोषजं हन्ति त्र्यहाच्छ्लेष्मसमुद्भवा। पंचाहात्पित्तसंभूता सप्ताहात्पवनोत्थिता॥इति॥

पित्तजाके लक्षण।

क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजाता।

पित्तसे प्रगटभई रोहिणी शीघ्र बढे, शीघ्र ही पके, उसके योगसे तीव्र ज्वर होय ॥

कफजाके लक्षण।

स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका स्थिराङ्कुरा या कफसंभवा सा ॥४४॥

जो रोहिणी कण्ठके मार्गको रोध करे (रोक दे) तथा हौले हौले पके तथा जिसके अंकुर कठिन होयँ वह कफजन्य जाननी ॥

त्रिदोषजाके लक्षण।

गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिङ्गा त्रितयोत्थिता सा।

त्रिदोषसे उत्पन्न भई रोहिणी गंभीरपाकिनी (जिसमें राध बहुत हो) तिसमें औषधिका प्रभाव नहीं चले और तीन दोषोंके लक्षणोंसे युक्त होय, यह तत्काल प्राणोंका हरण करे ॥

रक्तजाके लक्षण।

स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गा साध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मका तु॥४५॥

रुधिरकी रोहिणी पित्तरोहिणीके समान, फोडोंसे व्याप्त होय। यह साध्य है ॥

कण्ठशालूकके लक्षण।

कोलास्थिमात्रः कफसंभवो यो ग्रन्थिर्गले कण्टकशूकभूतः।
खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति ॥४६॥

कफसे गलेमें बेरकी गुठलीके समान गांठ होय, उसमें बारीक कांटे (शूक) तारके छेदनकीसी पीडा होय अथवा कांटे और शूकके सदृश गलेमें मालूम होय तथा खरदरी और कठिन होय, यह रोग शस्त्रोंसे साध्य होय, इस रोगको कंठशालूक कहते हैं ॥

अधिजिह्वके लक्षण।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वोपरिष्टादपि रक्तमिश्रात्।
ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ ४७ ॥

रक्तमिश्रित कफसे जीभके अग्रभाग सदृश जीभमें सूजन होय, इसको अधिजिह्व कहते हैं। यह पकनेसे असाध्य जानना ॥

वलयके लक्षण।

बलास एवायतमुन्नतं च ग्रन्थिं करोत्यन्नगतिं निवार्य।
तं सर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यं विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥ ४८ ॥

कफसे ऊंची और लम्बी गांठ कंठमें उत्पन्न होय उसके योगसे कंठमें प्राप्त ग्रास (गस्मा) उतरे नहीं, तथा उसमें कोई उपाय नहीं चले, इस रोगको वलय कहते हैं। इसको वैद्य त्याग देय ॥

बलासके लक्षण।

गले तु शोथं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम्।
मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहुर्बलाससंज्ञं निपुणा विकारम् ॥ ४९ ॥

कुपित भये जो कफ वायु सो गलेमें सूजन उत्पन्न करें उससे श्वास होय तथा कंठ दूखे, इस मर्मभेद करनेवाले दुस्तर व्याधिको वैद्य बलास कहते हैं॥

एकवृंदके लक्षण।

वृत्तोन्नतोऽन्तः श्वयथुः सदाहः सकण्डुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च।
नाम्नैकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ॥५०॥

गलेमें गोल, ऊंची, किंचित् दाहयुक्त, खुजानेवाली ऐसी सूजन होय, वह किंचित् पके और कुछ नरम होय, तथा भारी होय इसका नाम एकवृन्द है। यह व्याधि कफरक्तसे होय है॥

वृन्दके लक्षण।

समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्दमुदाहरन्ति।
तं चापि पित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात्सतोदं पवनात्मकं तु ॥ ५१ ॥

गलेमें गोल ऊंची तीव्रदाह तथा ज्वरयुक्त जो सूजन होय उसको वृन्द कहते हैं, यह भी रक्त पित्तके कोपसे होय है, इसमें वायुके संबंध होनेसे सुईके नोचनेकीसी पीडा होय। शंका–क्यों जी! कंठके १७ रोग कहे हैं और वृन्दको मिलायकर अठारह रोग हुए तो कहिये कि, सत्रहकी संख्यामें भेद हुआ? उत्तर–तुमने कहा सो ठीक है परन्तु तुल्यस्थान आकृति होनेसे एकवृन्दका ही भेद वृन्दरोग जानना ऐसे माननेसे संख्यामें विरोध नहीं पडे, यद्यपि एकवृन्द कफरक्तज है और वृन्दरोग पित्तरक्तज कहा है, तथापि जैसे वृन्दको चोंटनी होने करके वातात्मकत्व कहा है तो भी एकवृन्दकी अवस्थाविशेष होनेसे वृन्दको एकवृन्दके साथ ग्रहण करा है, जैसे कामलाके लक्षणसे भिन्न भी है तथापि हलीमक कामलाकाही भेद जानना और भोजने भी इसको एकवृन्दका ही भेद कहा है। गदाधर कहता है कि, छंदोनुरोधके निमित्त एकवृन्द शब्दके एक शब्दका लोप कर वृन्दशब्दही मूलमें धरा इससे वृन्द और एक वृन्द ये दोनों एकही हैं॥

---

१ श्लेष्मरक्तसमुत्थानमेकवृन्दं विभावयेत्। तुल्यस्थानाकृतिर्वृंदो वृंदजो रक्तपित्तजः॥ इति॥

शतघ्नीके लक्षण ।

वर्तिर्घना कण्ठनिरोधिनी या चिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः ।
अनेकरुक् प्राणहरी त्रिदोषा ज्ञेया शतघ्नी तु शताघ्निरूपा ॥ ५२ ॥

कंठमें लम्बी और कठिन सूजन होयँ तथा उसमें तोद (चोंटनी) दाह खुजली आदि अनेक वेदना होयँ, यह प्राण हरनेवाली सूजनको शतघ्नी (लंबे लंबे कांटे जिसमें होयँ ऐसे शस्त्र अथवा तोप) के समान होय इसीसे रोगको यह संज्ञा दी है ॥

गिलायुके लक्षण ।

ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रःस्थिरोऽल्परुक्स्यात्कफरक्तमूर्तिः ।
संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च स शस्त्रसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः ॥ ५३ ॥

कफरक्तके कोपसे गलेमें आंवलेकी गुठलीके बराबर गांठ उत्पन्न होवे, वह गांठ कठिन, मन्द पीडावाली हो, इसके होनेसे अन्न गलेमें अटकतासा मालूम देवे । यह रोग शस्त्रके द्वारा अर्थात् शस्त्रसे काटनेसे साध्य होय इसको गिलायु कहते हैं ॥

गलविद्रधिके लक्षण ।

सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोथो रुजः सन्ति च यत्र सर्वाः ।
स सर्वदोषो गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥ ५४ ॥

जो सूजन सब गलेमें व्याप्त होवे तथा जिसमें सर्व प्रकारकी पीडा होय वह विद्रधिनिदानमें जो त्रिदोषकी विद्रधि कही है उसके समान गलविद्रधिके लक्षण जानना ॥

गलौघके लक्षण ।

शोथो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता ।
कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिकीर्त्यतेऽसौ ॥ ५५ ॥

रक्तयुक्त कफसे गलेमें भारी सूजन होय, उसके योगसे कण्ठमें अन्न जलका अवरोध (रुकावट) होय तथा वायुका संचार होय नहीं, इसको वैद्य गलौघ कहते हैं ॥

स्वरघ्नके लक्षण ।

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः ।
कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु ज्ञेयः स रोगः श्वसनात्स्वरघ्नः ॥ ५६ ॥

वायुका मार्ग कफसे लिप्त होनेसे बारबार नेत्रोंके आगे अन्धकार आकर जो पुरुष श्वासको छोडे अथवा मूर्च्छा आकर जिसकी श्वास निकले, जिसका भिन्न स्वर होय, कण्ठ सूखे और 'विमुक्त' कहिये कण्ठ स्वाधीन न हो अर्थात् थोडा भी अन्न खाया हो तथापि कण्ठसे नीचे न उतरे, इस वातज रोगको स्वरघ्न कहते हैं ॥

मांसतानके लक्षण।

प्रतानवान् यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण।
स मांसतानेति बिभर्ति संज्ञां प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः॥ ५७॥

जो सूजन गलेमें उत्पन्न होकर क्रमसे फैलकर गलेको रोक ले तब बहुत कष्ट हो। इस त्रिदोष विकारको मांसतान कहते हैं। यह विकराल रोग प्राणोंका नाश करनेवाला है॥

विदारीके लक्षण।

सदाहतोदं श्वयथुं सुतीव्रमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम्।
पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते॥ ५८॥

पित्तसे गलेमें सूजन होवे तिस करके दाह होय, चबक होय, तथा दुर्गंधियुक्त सडा मांस गिरे और रोगी जिस करवट सोवे उसी तर्फ वह रोग होता है मांसके विदारण करनेसे यह विदारी कहलाता है॥

मुखपाक।

सर्वसर (मुखपाक मुख आना) तीन प्रकारका है।

वातजके लक्षण।

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ताद्यस्याचितं सर्वसरः स वातात्।

वादीके योगसे मुखमें सर्वत्र छाले होजायँ वह चिनमिनावें, मुख जिह्वा गला होंठ मसूढे दांत तालु इन सबमें व्याधि होनेसे इस रोगको सर्वसर कहते हैं॥

पित्तजके लक्षण।

रक्तैः सदाहैः पिडकैः सपीतैर्यस्याचितं चापि स पित्तकोपात्॥५९॥

पित्तसे मुखमें लाल तथा पीले छाले होयँ और दाह होवे॥

कफजके लक्षण।

अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णैर्यस्याचितं चापि स वै कफेन॥ ६०॥

कफसे मुखमें मन्दपीडा और त्वचाके समान वर्ण जिनका ऐसे छाले सर्वत्र होयँ॥

असाध्य मुखरोगके लक्षण।

ओष्ठप्रकोपे वर्ज्याः स्युर्मांसरक्तप्रकोपजाः।
दन्तमूलेषु वर्ज्यौ तु त्रिलिंगगतिशौषिरौ॥ ६१॥
दन्तेषु न च सिध्यन्ति श्यावदालनभञ्जनाः।
जिह्वागले बलासश्च ताल्व्येष्वर्बुदं तथा॥ ६२॥

स्वरघ्नो वलयो वृन्दो बलासश्च विदारिका ।
गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले ॥ ६३ ॥
असाध्याः कीर्तिता ह्येते रोगा नव दशैव तु ।
तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ ६४ ॥

ओष्ठरोग (होठके रोगों) में मांसज, रक्तज और त्रिदोषज असाध्य हैं, मसूढोंके रोगोंमें सन्निपात, नाडी और शौषिर, दांतोंके रोगोंमें श्याव, दालन और भञ्जन, जिह्वाके रोगोंमें बलास और तालुएके रोगोंमें अर्बुद, तथा गलेके रोगोंमें स्वरघ्न, वलय, वृन्द, बलास, विदारिका, गलौघ, मांसतान, शतघ्नी और रोहिणी ये उन्नीस रोग असाध्य हैं, इनपर चिकित्सा करनेवाले वैद्यको प्रत्याख्यान (नटकर) अर्थात् असाध्य कहकर औषध देनी, क्योंकि इसकी मृत्यु निश्चय होय और कदाचित् बच भी जाय ऐसे विचारकर औषधी तो देनी ही चाहिये ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां मुखरोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ कर्णरोगनिदानम् ।

कर्णशूलके लक्षण ।

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथा चरन् समंततः शूलमतीव कर्णयोः ।
करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः स कर्णशूलः कथितो दुरासदः ॥ १ ॥

कानमें वायु दोषोंकरके (कफ पित्त रुधिरसे) आवृत होकर कानोंमें उलटी फिर तब अत्यन्त शूल (दरद) होय इस रोगको कर्णशूल कहते हैं । यह रोग कष्टसाध्य है, कर्णशूलके उपद्रव विदेहने इस प्रकार लिखे हैं—"मूर्च्छा दाहो ज्वरः कासः क्लमोऽथ वमथुस्तथा । उपद्रवाः कर्णशूले भवंत्येते भविष्यतः ॥" इति ॥

कर्णनादके लक्षण ।

कर्णस्रोतःस्थिते वाते शृणोति विविधान्स्वरान् ।
भेरीमृदंगशंखानां कर्णनादः स उच्यते ॥ २ ॥

वायु कानके छिद्रमें स्थित होनेसे अनेक प्रकारके स्वर तथा भेरी मृदंग और शंख इनके शब्द सुनाई देवे, इस रोगको कर्णनाद कहते हैं ॥

---

१ कर्णशब्देन च कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नमदृष्टोपगृहीतं श्रोत्रमुच्यते ।

बाधिर्य (बहरा) के लक्षण ।

यदा शब्दवहं वायुः स्रोत आवृत्य तिष्ठति ।
शुद्धश्लेष्मान्वितो वापि बाधिर्यं तेन जायते ॥ ३ ॥

जिस समय केवल वायु अथवा कफयुक्त वायु शब्द बहानेवाली नाडियोंमें स्थित होय, तब उस पुरुषके शब्द सुनाई नहीं देय अर्थात् बहरा हो जाय ॥

कर्णक्ष्वेडके लक्षण ।

वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषसमं स्वनम् ।
करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स उच्यते ॥ ४ ॥

पित्तादि दाहकरके युक्त वायुसे कानोंमें वेणु (बंसी) का शब्द सुनाई देता है उसको कर्णक्ष्वेड कहते हैं ॥

कर्णस्रावके लक्षण ।

शिरोऽभिघातादथ वा निमज्जतां जले प्रपाकादथवापि विद्रधेः ।
स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलार्दितः स कर्णसंस्राव इति प्रकीर्तितः ॥५ ॥

शिरमें किसी प्रकारकी चोट लगनेसे अथवा पानीमें गोता मारनेसे अथवा कानमें विद्रधि पकनेसे वायु कुपित होकर कानोंसे राध बहे उसको कर्णस्राव कहते हैं ॥

कर्णकण्डूके लक्षण ।

मारुतः कफसंयुक्तः कर्णकण्डूं करोति च ।

कफसे मिला वायु कानोंमें खुजली उत्पन्न करता है ॥

कर्णगूथके लक्षण ।

पित्तोष्मशोषितः श्लेष्मा जायते कर्णगूथकः ॥ ६ ॥

पित्तकी गरमीसे कफ सूखकर कानमें मैल जमे, उसको कर्णगूथ कहते हैं ॥

कर्णप्रतिनाहके लक्षण ।

स कर्णगूथो द्रवतां यदा गतो विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते ।
तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽर्द्धभेदकृत् ॥ ७ ॥

वही कानका मैल पतला होनेसे, अथवा स्नेह स्वेदादिकोंकरके पतला होकर मुख और नाकमें प्राप्त होय, तब उसको कर्णप्रतिनाह कहते हैं, इस रोगसे अर्द्धशिर (आधासीसीका) विकार होता है ॥

क्रमिकर्णके लक्षण ।

यदा तु मूर्च्छा त्वथवापि जन्तवः सृजन्त्यपत्यान्यथवापि मक्षिकाः ।
तदंजनत्वाच्छ्रवणो निरुच्यते भिषग्भिराद्यैः कृमिकर्णको गदः ॥८॥

जिस समय कीडे पडजायँ, अथवा मक्खी अण्डा धरे, कृमिलक्षण होनेसे श्रवण कहते हैं और इसी रोगको द्वितीय पर्यायवाची शब्द कृमिकर्ण कहते हैं ॥

कानमें पतंगादि कीडा धरनेके कारण ।

पतङ्गाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि ।
अरतिं व्याकुलत्वं च भृशं कुर्वंति वेदनाम् ॥ ९ ॥
कर्णो निस्तुद्यते तस्य तथा फुरफुरायते ।
कीटे चरति रुक्तीव्रा निस्पन्दे मन्दवेदना ॥ १० ॥

पतंग, कनखजूरा, गिजाई आदि कानमें घसनेसे बेचैनी होय, जीव व्याकुल होय और कानमें पीडा होय, तथा कानमें नोचनेकीसी पीडा होय और वह कीडा, कानके भीतर फडके और फिरे उस समय घोर पीडा होय और जब वह बन्द हो तब पीडा बन्द होवे ॥

विविधकर्णविद्रधिके लक्षण ।

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः ।
स रक्तपीतारुणरक्तमास्रवेत्प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥ ११ ॥

कानमें खुजानेसे व्रण हो जाय, चोट लगनेसे कानमें व्रण होकर विद्रधि होय उसी प्रकार वातादिदोषों करके दूसरे प्रकारकी विद्रधि होय है, जब वह फूटे तब उसमेंसे लाल पीला रुधिर बहे, नोचनेकीसी पीडा होवै, धुआंसा निकलता मालूम होवै, दाह होवै, चूसनेकीसी पीडा होवै ॥

कर्णपाकके लक्षण ।

कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्लेदकृद्भवेत् ।
कर्णे विद्रधिपाकाद्वा जायते चाम्बुपूरणात् ॥ १२ ॥

पित्तसे अथवा कान पकनेसे कानमें पानी जानेसे कर्णपाक रोग होवे उस करके कान सडजावे और गीला रहै ॥

पूतिकर्णके लक्षण ।

पूयं स्रवति वा पूति स ज्ञेयः पूतिकर्णकः ।

जिसके कानमें राध निकले वा बास आवे, उसको पूतिकर्ण कहते हैं ॥

कर्णशोथ कर्णार्बुद कर्णार्शका हवाला देते हैं-

कर्णशोथार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तलक्षणैः ॥ १३ ॥

कानकी सूजन, कानका अर्बुद और कानकी अर्श (बवासीर) ये रोग होयँ तो इनके लक्षण इसी २ निदानके द्वारा जानले, कुछ थोडेसे यहां लिखभी देते हैं-कर्णशोथ चार प्रकारका है-वात, पित्त, कफ, रक्तजके भेदसे । इसी प्रकार कर्णार्श कानकी बवासीर भी चार ही प्रकारकी है, चारसे विशेष शोथ अर्शका होना असम्भव है इससे चारही हैं । कर्णार्बुदरोग सात प्रकारका है-वात, पित्त, कफ, रुधिर, मांस, मेदा और शिरा इनके भेदसे ॥

अब कहते हैं कि, कर्णरोग सुश्रुतके मतसे २८ प्रकारका है परन्तु चरकके मतसे उसके चारही भेद हैं, उनको कहते हैं-

वातजके लक्षण ।

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्य शोषः स्रावस्तनुश्चाश्रवणं च वातात् ।

बादीसे कानमें शब्द होय, पीडा होय, कानका मैल सूख जाय, पतला स्राव होय, सुनाई नहीं देवे अर्थात् बहरा हो जाय ॥

पित्तजके लक्षण ।

शोथः सरागो दरणं विदाहः सपीतपूतिस्रवणं च पित्तात् ॥ १४ ॥

पित्तसे कानमें सूजन हो, कान लाल हो, दाह हो, चिरासा हो जाय तथा किंचित् पीला दुर्गन्धयुक्त स्राव होय ॥

कफजके लक्षण ।

वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोथशुक्ला स्निग्धा स्रुतिः श्लेष्मभवेऽतिरुक् च ।

कफके प्रभावसे विरुद्ध सुनना, खुजली चले, कठिन सूजन होय, सफेद और चिकना ऐसा स्राव होय ॥

सन्निपातजके लक्षण ।

सर्वाणि रूपाणि च सन्निपातात्स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः ॥ १५ ॥

सन्निपातसे सब लक्षण होयँ, स्राव होय वा जौनसा दोष अधिक होय वैसाही दोषानुसार वर्णका स्राव होय ॥

कर्णपालीके रोग ।

कर्णशोथके लक्षण ।

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसापि प्रवर्धिते ।
कर्णशोथो भवेत्पाल्यां सरुजः परिपोटवान् ॥ १६ ॥

सुकुमार स्त्री अथवा बालक कानकी लौरको एक साथ बहुत बढावे तौ कानकी पाली (लौर) में सूजन होकर फूल जावे और दूखे ॥

परिपोटकके लक्षण।

कृष्णारुणनिभः स्तब्धः स वातात्परिपोटकः॥ १७॥

वादीसे काला लाल और कठिन ऐसा फूल जाय, उसको परिपोटक कहते हैं॥

उत्पातके लक्षण।

गुर्वाभरणसंयोगात्ताडनाद्घर्षणादपि।
शोथः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुजान्वितः॥
रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदो मतः॥ १८॥

कानमें भारी आभरण (गहना) पहननेसे अथवा चोटके लगनेसे अथवा कानको खींचनेसे रक्तपित्त कुपित्त होकर कानकी पालीमें हरी नीली अथवा लाल सूजन होय उसमें दाह होवे, पीडा होवे और रक्त बहे, इस रोगको उत्पात कहते हैं॥

उन्मन्थके लक्षण।

कर्णं बलाद्वर्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति॥ १९॥
कफं संगृह्य कुरुते सशोफं स्तब्धवेदनम्।
उन्मन्थकः सकण्डूको विकारः कफवातजः॥ २०॥

कानको बलपूर्वक बढानेसे पाली (लौर) में वायु कुपित होकर कफको संग लेकर कठिन तथा मन्द पीडायुक्त सूजनको प्रगट करे, उसमें खुजली चले, इस कफवातजन्य विकारको उन्मन्थक कहते हैं॥

दुःखवर्द्धनके लक्षण।

संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहरुजान्वितः।
शोफो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्द्धनः॥ २१॥

दुष्टरीतिकरके कानको छेदनेसे तथा बढानेसे खुजली दाह पीडायुक्त ऐसी सूजन होय, वह पकजाय, उसको दुःखवर्द्धन कहते हैं॥

परिलेहीके लक्षण।

कफासृक्कृमिसंभूतः स विसर्पन्नितस्ततः।
लिहेच्च शष्कुलीं पालिं परिलेहीत्यसौ स्मृतः॥ २२॥

कफ रक्त कृमिसे उत्पन्न भई तथा सर्वत्र विचरनेवाली ऐसी जो सूजन कानकी पालीमें होय, वह कानकी पालीको खाय जाय अर्थात् उसका मांस झरने लगे उसको परिलेही कहते हैं॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां कर्णरोगनिदानं समाप्तम्॥

अथ नासारोगनिदानम्।

पीनसके लक्षण।

आनह्यते यस्य विशुष्यते च प्रक्लिद्यते धूप्यति चैव नासा।
न वेत्ति यो गंधरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येत्स तु पीनसेन॥
तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं ब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिंगम्॥ १॥

जिसकी नाक रुकजाय, वात शोषित कफसे नाक भीतरसे सूखीसी गीली रहे धूआंसा निकले, जिसकी नाकमें सुगंध दुर्गन्ध मिष्ट रसादिककी गन्ध मालूम न हो, उसके पीनस प्रगट भई जाननी, इस वातजन्य विकारको प्रतिश्याय (पीनस) कहते हैं॥

पूतिनस्यके लक्षण।

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले संमूर्च्छितो यस्य समीरणस्तु।
निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां तं पूतिनस्यं प्रवदंति रोगम्॥ २॥

गले और तालुएमें दुष्ट भये पित्तरक्तादि दोषकरके वायु मिश्रित होकर नाक और मुखके मार्गोंसे दुर्गन्ध निकले, इस रोगको पूतिनस्य कहते हैं॥

नासापाकके लक्षण।

घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्याद्यस्मिन्विकारे बलवांश्च पाकः।
तन्नासिकापाकमिति व्यवस्येद्विक्लेदकोथावथ वापि यत्र॥ ३॥

जिसकी नाकमें पित्त दूषित होकर फुन्सी प्रगट करे और नाक भीतरसे पकजाय, उसको नासिकापाक कहते हैं, इसमें नाकसे राध बहे और दुर्गंध आवे॥

पूयरक्तके लक्षण।

दोषैर्विदग्धैरथवापि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः।
नासा स्रवेत्पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम्॥ ४॥

दोष दुष्ट होनेसे अथवा कपालमें चोट लगनेसे नाकमेंसे राध बहे और रुधिर बहे इस रोगको पूयरक्त कहते हैं॥

क्षवथु (छींक) के लक्षण।

घ्राणाश्रिते मर्मणि संप्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकया निरेति।
कफानुयातो बहुशोऽतिशब्दं तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः॥ ५॥

नासिकाश्रित मर्म (शृङ्गाटकमर्म) के विषे वायु दुष्ट होकर कफसहित भारी शब्दको नासिकाके बाहर निकाले उसको क्षवथु (छींक) कहते हैं॥

आगन्तुजक्षवथुके लक्षण ।

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावान्कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा ।
सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थिमर्मण्युद्घाटितेऽन्यः क्षवथुर्निरेति ॥ ६ ॥

तीखे राई आदि पदार्थ खानेसे, अथवा कडुवा खानेसे, मिरचआदि तीखी वस्तुओंके अत्यन्त सूंघनेसे, सूर्यके देखनेसे, अथवा कपडेकी बत्ती बनाकर नाकमें तरुणास्थि मर्म (फणामर्म) में लगानेसे आगन्तुज क्षवथु (छींक) आती है । आगन्तुज और दोषज छींक एक ही है ॥

भ्रंशथुके लक्षण ।

प्रभ्रश्यते नासिकया हि यस्य सांद्रो विदग्धो लवणः कफश्च ।
प्राक्संचितो मूर्द्धनि सूर्यतप्ते तं भ्रंशथुं व्याधिमुदाहरन्ति ॥ ७ ॥

सूर्यकी गरमी करके मस्तक तप्त होनेसे पूर्व संचितभया विदग्ध गाढा खारी ऐसा कफ नाकसे गिरे उस व्याधिको भ्रंशथुरोग कहते हैं ॥

दीप्तके लक्षण ।

घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिश्चरेद्धूम इवेह वायुः ।
नासा प्रदीप्तेव च यस्य जन्तोर्व्याधिं तु तं दीप्तमुदाहरन्ति ॥८॥

नाक अत्यन्त दाहयुक्त होनेसे उसमें वायु धूएँके सदृश विचरे और नाक प्रदीप्त होवे अर्थात् गरम होवे इस रोगको दीप्त कहते हैं ॥

प्रतिनाहके लक्षण ।

उच्छ्वासमार्गं तु कफः सवातो रुंध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ।

वायुसहित कफ श्वासके मार्गको बन्द करे, तब नाकका स्वर अच्छी रीतिसे चले नहीं, इसको प्रतिनाह कहते हैं ॥

नासास्रावके लक्षण ।

घ्राणाद्घनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः स्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम् ॥ ९ ॥

नाकसे गाढा पीला अथवा सफेद पतला दोष (कफ) स्रवे, उसको स्राव कहते हैं ॥

नासापरिशोषके लक्षण ।

घ्राणाश्रिते स्रोतसि मारुतेन गाढं प्रतप्ते परिशोषिते च ।
कृच्छ्राच्छ्वसेदूर्ध्वमधश्च जंतुर्यस्मिन्स नासापरिशोष उक्तः ॥१०॥

वायुसे नासिकाका द्वार अत्यन्त तप्त होकर सूखजाय तब मनुष्य बडे कष्टसे ऊपर नीचेको श्वास लेय, उस रोगको नासापरिशोष कहते हैं ॥

चिकित्साभेदार्थ पीनसके आमपक्कके लक्षण ।

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनुः स्वरः ।
क्षामः ष्ठीवेत्तथाऽभीक्ष्णमामपीनसलक्षणम् ॥ ११ ॥
आमलिंगान्वितः श्लेष्मा घनश्चाप्सु निमज्जति ।
स्वरवर्णविशुद्धिश्च पक्कपीनसलक्षणम् ॥ १२ ॥

शिरमें भारीपन, अन्नमें अरुचि, नासिकासे गरम गरम जलका झरना आवाज कुछ मन्दी हो और शरीरका कृश होना, बारबार थूकना, यह आम (कच्चे) पीनसके लक्षण हैं और जिसमें इसी पूर्वोक्त आम पीनसके भी लक्षण हों और कफ गाढा हो गया हो और जलमें गेरनेसे डूबजाय और मुखसे साफ आवाज निकले और मुखका रंग (रूहानी) अच्छा होय तो जानना कि, यह पीनस पक गया है ॥

प्रतिश्यायकी संप्राप्ति ।

सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाष्यक्रोधर्त्तुवैषम्यशिरोभितापैः ।
प्रजागरातिस्वपनाम्बुशीतावश्यायतो मैथुनबाष्पधूमैः ॥ १३ ॥
संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेच्च ॥ १४ ॥

वेगोंके रोकनेसे, अजीर्ण कारक पदार्थोंके खानेसे, रज (धूल) के नासिकाके भीतर जानेसे, अत्यन्त भाषण (अत्यन्त पढने) से और अत्यन्त गुस्सा करनेसे तथा ऋतुविपर्यय अर्थात् एक ऋतुमें दूसरे ऋतुके लक्षण होनेसे, शिरोभिताप अर्थात् ग्रीष्म ऋतुमें शिरसे अत्यन्त धूप सेवन करनेसे, रात्रिमें जागनेसे, दिनमें विशेष सोनेसे और शीत पदार्थोंके अधिक सेवन करनेसे इसी तरह कोहरके खानेसे अत्यन्त मैथुन करनेसे, पसीना अथवा आसुओंके रुकनेसे अथवा नासिकामें धूआँ रुकनेसे शिरमें दोष इकठे हों फिर वायु वृद्धिगत होकर प्रतिश्याम रोग (जुकाम) उत्पन्न करे ये कारण सद्योजनक अर्थात् तत्काल पीनस करनेवाले हैं ॥

चयादिक्रमसे इसका दूसरा निदान ।

चयं गता मूर्द्धनि मारुतादयः पृथक्समस्ताश्च तथैव शोणितम् ।
प्रकुप्यमाना विविधैः प्रकोपनैस्ततः प्रतिश्यायकरा भवंति ॥ १५ ॥

मस्तकमें पृथक्र् वातादि दोष तथा सर्व दोष उसी प्रकार रुधिर संचय होकर अनेक प्रकारके कारणों (बलवानसे वैर करना दिवास्वापादि) से कुपित होकर प्रतिश्याय उत्पन्न करें ॥

पूर्वरूपके लक्षण।

क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽतिपूर्णता स्तम्भोऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता।
उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराःस्मृताः॥१६॥

छींकका आना, मस्तकका भारी होना, अंगोंका जकड जाना तथा अंगोंका टूटना, रोमांचं अवमंथसे आदि ले और धूंमादिक तत्काल होनेवाला उपद्रव होय, जब जुकाम होनेहारी होती है तब ये लक्षण होते हैं॥

वातिकप्रतिश्यायके लक्षण।

आनद्धा पिहिता नासा तनुस्रावप्रसेकिनी।
गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शङ्खयोरपि।
भवेत्स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मजे॥ १७॥

जिसकी नाकका मार्ग रुकजाय, आच्छादित होजाय और उसमेंसे पतला पानी निकले, गला तालू होठ ये सूखजायँ और कनपटी दूखे, गला बैठजाय ये वातके जुकामके लक्षण हैं॥

पैत्तिकप्रतिश्यायके लक्षण।

उष्णः सपीतकः स्रावो घ्राणात्स्रवति पैत्तिके॥ १८॥
कृशोऽतिपाण्डुः सन्तप्तो भवेदुष्णाभिपीडितः।
सधूममग्निं सहसा वमतीव च नासया॥ १९॥

जिसकी नाकसे दाह और पीला स्राव होवे, वह मनुष्य कृश और पीला होजाय, उसका देह गरम रहे, नाकसे अग्निके समान धुआं निकले यह पित्तकी पीनसके लक्षण हैं॥

श्लैष्मिकके लक्षण।

घ्राणात्कफः कफकृते श्वेतः पीतः स्रवेद्बहुः।
शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरुशिरा नरः॥ २०॥
कण्ठताल्वोष्ठशिरसां कण्डूभिरभिपीडितः॥ २१॥

नाकसे सफेद पीला बहुत कफ गिरे, उसकी देह सफेद हो जाय, नेत्रोंके ऊपर सूजन होय और मस्तक भारी रहे और गला तालु होठ और शिर इनमें खुजली विशेष चले ये कफकी पीनसके लक्षण हैं॥

---

१ पूर्वरूपाणि दृश्यंते प्रतिश्याये भविष्यति। घ्राणधूमायनं मन्थक्षवथुस्तालुदालनम्॥ कंठे ध्वंसो मुखे स्रावः शिरस्यापूरणं तथा॥

सान्निपातिकके लक्षण ।

भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो यस्याकस्मान्निवर्त्तते ।
स पक्को वाप्यपक्को वा स तु सर्वभवः स्मृतः ॥ २२ ॥

जिसकी नाकमें पूर्वोक्त कहे सो सर्व लक्षण मिलें, तथा वह पीनस बारबार होकर पककर, अथवा बिना पके नष्ट हो जाय, उसको सन्निपातकी पीनस कहते हैं। यह विदेह आचार्यके मतसे असाध्य है ॥

दुष्टप्रतिश्यायके लक्षण ।

प्रक्लिद्यते पुनर्नासा पुनश्च परिशुष्यति ।
पुनरानह्यते चापि पुनर्विव्रीयते तथा ॥ २३ ॥
निश्वासो वाति दुर्गन्धो नरो गन्धं न वेत्ति च ।
एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात्कृच्छ्रसाधनम् ॥ २४ ॥

बारबार जिसकी नाक झडाकरे और सूखजाय और नाकसे अच्छी तरह श्वास नहीं आवे, नाक रुकजाय और फिर खुलजाय, श्वास लेनेमें बास आवे तथा उस रोगीको सुगंध दुर्गंधका ज्ञान जाता रहे, ऐसे लक्षण होनेसे इसको दुष्टप्रतिश्याय कहते हैं, यह कष्टसे साध्य होती है । यह पीनस पांच पीनसोंके अंतर्गत जाननी इनका ही भेद है यह छठी नहीं हैं ॥

रक्तप्रतिश्यायके लक्षण ।

रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्तते ।
ताम्राक्षश्च भवेज्जन्तुरुरोघातप्रपीडितः ॥ २५ ॥
दुर्गन्धोच्छ्वासवदनो गन्धानपि न वेत्ति सः ॥ २६ ॥

रुधिरके पीनसमें नाकसे रुधिर गिरे, नेत्र लाल होयँ, उरःक्षतकी पीडाके सदृश पीडा होय, श्वास अथवा मुखमें बास आवे, सुगंध दुर्गंधका ज्ञान नहीं होय। उरःक्षतके लक्षण ग्रन्थान्तरमें लिखे हैं सो जानने । किसी पुस्तकमें-"पित्तप्रतिश्यायकृतैर्लिङ्गैश्चापि समन्वितः" ऐसा पाठ है। इसका अर्थ यह है कि, जिसमें पित्तकी पीनसके लक्षण मिलते हों ॥

---

१ नृणां दुष्टप्रतिश्यायः सर्वजश्च न सिद्ध्यति । इति विदेहः ।

२ उरःक्षतं गुरुस्तम्भः पूतिकर्णकफो रसः । सकासः सज्वरो ज्ञेय उरोघातः सपीनसः ॥ अत्र पित्तप्रतिश्यायलिंगान्यपि बोद्धव्यानि, तुल्यत्वात् पित्तरक्तयोः ॥

असाध्य लक्षण ।

सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः ।
दुष्टतां यान्ति कालेन तदाऽसाध्या भवन्ति च ॥ २७ ॥
मूर्च्छन्ति कृमयश्चात्र श्वेताः स्निग्धास्तथाऽणवः ।
कृमिजो यः शिरोरोगस्तुल्यं तेनास्य लक्षणम् ॥ २८ ॥

सर्व पीनस औषधी न करनेसे असाध्य होते हैं, इसमें नाकमें कीडे पड जायँ वे कृमि सफेद और चिकने और बारीक होते हैं । कृमिज शिरोरोगोंके सदृश लक्षण होयँ, कृमिज शिरोरोगके लक्षण शिरोरोगमें कह आये हैं ॥

प्रतिश्याय और विकारोंको भी करता है, उनको कहते हैं—

बाधिर्यमान्ध्यमघ्रत्वं घोरांश्च नयनामयान् ।
शोथाग्निसादकासादीन् वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥ २९ ॥

पीनस बढनेसे बहरा होजाय, मन्द दीखे, बास आवे नहीं, भयंकर नेत्र रोग होय, सूजन मंदाग्नि खांसी इत्यादि विकार होते हैं ॥

सुश्रुतमें नासिकाके ३१ रोग कहे हैं और इस जगह पीनससे लेकर प्रतिश्यायपर्यन्त १५ रोग कहे हैं, बाकी १६ रोगोंको संख्यापूरणके वास्ते लिखते हैं ॥

अर्बुदं सप्तधा शोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम् ।
चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदुः ॥ ३० ॥

सात प्रकारके अर्बुद रोग, चार प्रकारके शोथ (सूजन), चार प्रकारके अर्श और चार प्रकारके रक्तपित्त ये पूर्वोक्त कहे रोग सोलह होते हैं । वात, पित्त, कफ, रुधिर, मांस, मेदकरके छः हुए और सातवां शालाक्यसिद्धांतके मतसे सन्निपातका ऐसे सात प्रकारके अर्बुदरोग हुए । वात पित्त कफ सन्निपातके भेदसे चार प्रकारकी, (सूजन) भई तथा वात पित्त कफ सन्निपातके भेदसे चारही प्रकारकी अर्श (बवासीर) और चारही प्रकारका रक्त रक्तपित्तकी समानतासे एक ही जानना पूर्वोक्त पीनससे लेकर प्रतिश्यायपर्यन्त १५ भये और अर्बुदादि १६ हुए ऐसे सब मिलकर नासिकारोग ३१ हुए ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां नासिकारोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ नेत्ररोगनिदानम्।

नेत्ररोगका कारण।

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद्दूरेक्षणात्स्वप्नविपर्ययाच्च।
स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्च छर्देर्विघाताद्वमनातियोगात्॥ १॥
द्रवान्नपानातिनिषेवणाच्च विण्मूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च।
प्रसक्तसंरोदनशोककोपाच्छिरोभिघातादतिमद्यपानात्॥ २॥
तथा ऋतूनां च विपर्ययेण क्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च।
बाष्पग्रहात्सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकाराञ्जनयंति दोषाः॥ ३॥

गरमीसे तप्त होकर जलमें प्रवेश (स्नानादि करना ऐसा करनेसे शीतलतासे शरीर व्याप्त होकर शरीरकी गरमी ऊपर चढकर नेत्रके तेजको पराभव करनेसे नेत्ररोग उत्पन्न होता है), दूरकी वस्तुको देखनेसे, दिनमें सोने और रात्रिमें जागनेसे नेत्रमें पसीना जानेसे, बाफ लगनेसे, नेत्रोंमें धूल जानेसे, धुआं जानेसे, वमनके वेगको रोकनेसे, बहुत वमन (रद्द) होनेसे, पतले अन्नपानके अत्यन्त सेवन करनेसे, विष्ठा, मूत्र और अधोवायु इनके वेगको धीरे २ निग्रह (कहिये वेग धारण करने) से, निरन्तर रुदन करनेसे, शोकसे, कोपसे, मस्तकमें चोट लगनेसे, अतिमद्य पान करनेसे, इसी प्रकार ऋतुमें विपर्यय अर्थात् शीत कालमें गरमी और गरमीमें शीतकाल होनेसे, क्लेश कहिये कामादिक दुःख उससे, अभिघात कहिये दुःख होनेसे, अतिमैथुन करनेसे, अश्रुपातके वेग धारण करनेसे और सूक्ष्म पदार्थके अवलोकन करनेसे वातादिदोष नेत्रोंमें रोग पैदा करते हैं॥

सुश्रुतमें नेत्ररोगकी सम्प्राप्ति इस प्रकार लिखी है—

शिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्ध्वमाश्रितैः।
जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः॥ ४॥

---

१ षट्सप्ततिर्नेत्ररोगा भवन्ति, यदाह सुश्रुतः—तताश्चिभिर्त्रिशदुक्तास्ते कफेनाधिकास्त्रयः। रक्तजाः षोडश प्रोक्ताः सर्वजाः पंचविंशतिः। बाह्यौ पुनर्द्वौ च तथा रोगाः षट्सप्ततिः स्मृताः॥ नेत्रप्रमाणं च सुश्रुतेनोक्तम्—विद्यादृद्व्यंगुलबाहुल्यं स्वांगुष्ठोदरसम्मितम्। द्व्यंगुलं सर्वतः सार्धं भिषङ्नयनबुद्बुदम्॥

कुपित हुए वातादि दोष नेत्रोंकी नसोंमें प्राप्त हो नेत्रोंका भाग व्याप्त करनेसे उनमें भयंकर रोग उत्पन्न होता है, ये वात पित्त कफ रुधिर सन्निपात और आगन्तुक इनसे होनेवाले ऐसे नेत्ररोग (७६) हैं ॥

नेत्ररोगमें प्रायः अभिष्यंद (नेत्र आना) होता है इसीसे प्रथम उसको कहते हैं–

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः ।
प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रामयाकरः ॥ ५ ॥

वात पित्त कफ और रुधिर इनसे चार प्रकारका अभिष्यन्दरोग होता है। इसकी पीडा नष्ट नहीं होय तथा यह अभिष्यन्दरोग सर्व नेत्ररोगों (अधिमंथादिक) का उत्पत्तिस्थान जानना । सो सुश्रुतमें लिखा है । (इस रोगको भाषामें नेत्र दुखना कहते हैं अथवा आंखआई कहते हैं) ॥

वाताभिष्यन्दके लक्षण ।

निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसङ्घर्षपारुष्यशिरोभितापाः ।
विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ६ ॥

वादीसे नेत्र दूखने आये होयँ उनमें सुई चुभानेकीसी पीडा हो, नेत्रोंके स्तम्भन (ठहरजाना), रोमांच नेत्रोंमें रेत गिरनेके समान खटके तथा रूक्ष होय, मस्तकमें पीडा हो, नेत्रोंसे पानी गिरे परन्तु नेत्र सूखेसे रहें और नेत्रोंसे आँसू गिरे वह शीतल हो ॥

पित्ताभिष्यन्दके लक्षण ।

दाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दा धूमायनं बाष्पसमुच्छ्रयश्च ।
उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ७ ॥

पित्तसे नेत्र दूखने आनेसे उनमें बहुत दाह हो, नेत्र पकजायँ, उनमें शीतल पदार्थ लगानेकी इच्छा हो, नेत्रोंसे धूआं निकले अथवा नेत्रोंमें धूआं जानेकीसी पीडा हो, तथा नेत्रोंसे गरम अश्रु (आंसू) बहुत पडें, आंख पीलीसी मालूम पडें ॥

कफजाभिष्यन्दके लक्षण ।

उष्णाभिनन्दा गुरुताभिशोथः कण्डूपदेहावतिशीतता च ।
स्रावो बहुः पिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ८ ॥

कफसे नेत्र दूखने आये हों उसको गरम वस्तु नेत्रोंमें लगानेसे आराम मालूम हो अर्थात् नेत्रमें सेकसा मालूम हो तथा नेत्र भारी होयँ, सूजन हो, खुजली चले, कीचडसे नेत्र दूषित हों, शीतल हों उनमेंसे स्राव होय, सो गाढा और बहुत होय ॥

---

१ प्रायेण सर्वे नयनामयास्ते भवंत्यभिष्यन्दनिमित्तमूलाः । इति ॥

रक्ताभिष्यन्दके लक्षण।

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समन्तादतिलोहिताश्च।
पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ९ ॥

रक्ताभिष्यन्दसे नेत्रोंसे लाल पानी गिरे, नेत्र लाल होंय, नेत्रोंमें आस पास रेखासी लाललाल दीखे, जो पित्ताभिष्यन्दके लक्षण कहे वे सब लक्षण होवें ॥

अभिष्यन्दसे अधिमन्थकी उत्पत्ति होती है, सो कहते हैं-

वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम्।
तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः ॥ १० ॥

इस अभिष्यन्दमें औषधोपचार न करनेसे यह बढकर उतनेही (चार) अभिष्यन्दरोग नेत्रोंमें प्रगट होयँ, इससे नेत्रोंमें तीव्र पीडा होय, यह अधिमन्थके सामान्य लक्षण हैं। वेदनाशब्द इस जगह व्यथामात्रका वाचक है, इससे यह प्रगट हुआ कि, वातके अभिष्यन्दसे वातिक अधिमन्थ प्रगट होय, उसमें तीव्र वातज सर्व निस्तोदादि पीडा युक्त होयँ, इसी प्रकार पित्तकेसे, कफकेसे, रुधिरकेसे पित्त कफरुधिरके अधिमन्थ स्वलक्षण करके जानने ॥

उत्पाटयत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा।
शिरसोऽर्धं च तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः ॥ ११ ॥

दूसरे सामान्य लक्षण-आधे शिरमें उपाडनेकीसी पीडा होय अथवा तोडनेकीसी तथा मथनेकीसी पीडा होय, व्याधिके प्रभावसे आधे शिरमें पीडा हो इसे अधिमन्थ कहते हैं इनके लक्षण वातज अभिष्यन्दके समान जानने ॥

दोषभेदसे कालमर्यादाके लक्षण।

हन्याद्दृष्टिं श्लैष्मिकः सप्तरात्राद्योऽधीमन्थो रक्तजः पंचरात्रात्।
षड्रात्राद्वा वातिको वै निहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकः सद्य एव ॥ १२ ॥

कफका अधिमन्थ सात दिनमें दृष्टिका नाश करे, रक्तज अधिमन्थ पांच दिनमें, वातिक अधिमन्थ छः दिनमें और पैत्तिक अधिमन्थ मिथ्योपचारसे तत्काल (तीन दिनमें) दृष्टिका नाशकरे अर्थात् आंख जाती रहे। इस जगह जो कालकी अवधि कही है सो व्याधिके स्वभावसे तथा लंघन प्रलेपादि क्रिया करके तथा अञ्जनानिषेधके निमित्त कही है ॥

नेत्ररोगके सामान्य लक्षण।

उदीर्णवेदनं नेत्रं रागोद्रेकसमन्वितम्।
घर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितं विदुः ॥ १३ ॥

जिस नेत्ररोगमें पीडा विशेष होय, लाली बहुत होकर चमका चलें, तथा उसमें घर्ष (रेत गिरनेसे जैसी पीडा होती है वैसी पीडा) होय और अर्थात् करकण होय, सुई चुभानेकीसी पीडा होय, शूलसा चले और स्रावयुक्त होवे, उन नेत्रोंको आमयुक्त जानना ॥ अंजन लगानेसे तथा हलका अन्न खानेसे ये लक्षण कहे हैं ॥

निरामके लक्षण।

मन्दवेदनता कण्डूः संरम्भाश्रुप्रशान्तता।
प्रसन्नवर्णता चाक्ष्णोः संपक्कं दोषमादिशेत् ॥ १४ ॥

नेत्रोंमें पीडा कम होवे, खुजली चले, सूजन मन्द होय, आंसुओंका गिरना होय नेत्रोंका वर्ण स्वच्छ होय, ये दोष पक्क होनेके लक्षण हैं ॥

शोथसहित नेत्रपाकके लक्षण।

कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्कोदुम्बरसन्निभः।
संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाकः स शोफजः।
शोथहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोथजे ॥ १५ ॥

नेत्रोंमें खुजली तथा लेप और आंसुओंसे युक्त हो और पके गूलरके समान लाल होयँ, ये लक्षण शोथसहित नेत्ररोगके हैं और शोथ (सूजन) के विना जो नेत्रपाक होय, उसमें शोथको छोडकर सब लक्षण होयँ, यह व्याधि त्रिदोषजन्य होय ॥

हताधिमन्थके लक्षण।

उपेक्षणादक्षि यदाऽधिमन्थो वातात्मकः सादयति प्रसह्य।
रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष हताधिमन्थः खलु नेत्ररोगः ॥ १६ ॥

वातज अधिमन्थकी उपेक्षा करनेसे वह नेत्रोंको सुखाय देवे, सो मनुष्यके नेत्रोंमें तोद (सुईके चुभानेकीसी पीडा), दाहादि भारी पीडा होय, यह हताधिमंथ नामक नेत्ररोग असाध्य है। इसी रोगको विदेह दृष्ट्युत्क्षेपण[1] कहते हैं। अथवा दृष्टिनिर्गम तथा सकलाक्षिशोष[2] भी जानना। यही सुश्रुतकाभी मत है इस रोगसे नेत्र सूखे कमलके समान हो जाते हैं ॥

---

१ अन्तर्गतः शिराणां तु यदा तिष्ठति मारुतः। स तदा नयनं प्राप्य शीघ्रं दृष्टिं निरस्यति॥ तस्यां निरस्यमानायां निर्मथन्निव मारुतः। नयनं निर्वमत्याशु शूलतोदादिमन्थनैः ॥
२ अन्तःशिराणां श्वसनः स्थितो दृष्टिं च प्रक्षिपन्। हताधिमन्थं जनयेत्तमसाध्यं विदुर्बुधाः ॥

वातपर्ययके लक्षण।

वारं वारं च पर्यैति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः।
रुजश्च विविधास्तीव्रा स ज्ञेयो वातपर्ययः॥ १७॥

वायु क्रमसे कभी कभी भृकुटीमें प्राप्त हो कभी कभी नेत्रोंमें प्राप्त होकर और अनेक प्रकारकी तीव्र पीडा करे उसको वातपर्यय कहते हैं॥

शुष्काक्षिपाकके लक्षण।

यत्कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म सन्दह्यते चाविलदर्शनं च।
सुदारुणं यत्प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि॥ १८॥

जो नेत्र खुले नहीं अर्थात् संकुचित हो जायँ, जिनकी बाफणी कठिन और रूक्ष होय, जिसकी नेत्रोंमें दाह विशेष होय, यथार्थ दीखे नहीं, जो खोलनेमें बहुत दुःख होय, उन नेत्रोंको शुष्काक्षिपाकनामक रोगसे पीडित जानना। यह रोग रक्तसहित वादीसे होता है सो करालाचार्यने लिखा है॥

अन्यतोवातके लक्षण।

यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाप्यनिलोऽन्यतो वा।
कुर्याद्रुजं वै भ्रुवि लोचने च तमन्यतोवातमुदाहरन्ति॥ १९॥

घाटी (धार) कान, मस्तक, ठोढी, मन्या, नाडी इनमें अथवा इतर ठिकाने स्थित जो वायु भ्रुकुटी (भौंह) वा नेत्रोंमें तोद भेदादि पीडा करे, इस रोगको अन्यतोवातरोग कहते हैं अर्थात् अन्य स्थानोंमें स्थित होकर अन्य स्थानोंमें पीडा करे इसीसे इसको अन्यतोवातरोग कहते हैं सो विदेहका मत भी है॥

अम्लाध्युषितके लक्षण।

श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वं चाक्षि प्रपच्यते।
सदाहशोथं सास्रावमम्लाध्युषितमम्लतः॥ २०॥

मध्यमें कुछ नीलवर्ण और आसपास लाल भरा हो ऐसे सर्व नेत्र पकजायँ और उनमें पीले रंगकी फुन्सी होयँ, उनमें दाह होकर सूजन होय, तथा नेत्रोंसे पानी झरे, यह रोग अम्ल खटाई आदि खानेसे होता है। सुश्रुतके मतसे यह रोग पित्तसे होता है, इसको अम्लाध्युषित कहते हैं॥

---

१ अथवा शोषयेदक्ष्णोः क्षीणात्तेजोबलादयम्। तत्पद्ममिव संशुष्कमवसीदति लोचनम्॥ २ कुणितः खरवर्त्माक्षिकृच्छ्रो मीलाविलेक्षणम्। सदाहमसृजो वाताच्छुष्कपाकान्वितं वदेत्। ३ मन्यानामन्तरे वायुरुत्थितः पृष्ठतोऽपि वा। करोति भेदं निस्तोदं शंखं चाक्ष्णोः स्वरतथा॥ तमाहुरन्यतोवातरोगं दृष्टिविदो जनाः॥ इति॥

शिरोत्पातके लक्षण ।

अवेदना वापि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः ।
मुहुर्विरज्यन्ति च याः सदा दृग्व्याधिः शिरोत्पात इतिप्रदिष्टः ॥२१॥

जिसके नेत्रकी नस पीडासहित अथवा पीडारहित तांबेके समान लाल रंगकी होजायँ और वे सब बराबर अधिकाधिक (जियादहसे जियादह) लाल होजायँ, इस रोगको शिरोत्पात (सबलवायु) कहते हैं। यह रोग रक्तजन्य है ॥

शिराहर्षके लक्षण ।

मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगस्तु शिराप्रहर्षः ।
ताम्राभमस्रं स्रवति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुं च ॥ २२ ॥

अज्ञानकरके शिरोत्पात (सबल वायु) की उपेक्षा करनेसे अर्थात् इलाज न करनेसे शिराप्रहर्षरोग होता है उसमें नेत्रोंसे लाल स्वच्छ ऐसे आंसू गिरें और उस रोगीको नेत्रोंसे कुछ दिखाई न देवे ॥ इति सर्वनेत्रगता रोगाः॥

कृष्णज रोग ।

अब नेत्रोंके काले रंगका होनेवाले रोग कहते हैं-

सव्रणशुक्र लक्षण ।

निमग्नरूपं तु भवेद्धि कृष्णे सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद्वै ।
स्रावं स्रवेदुष्णमतीव यच्च तत्सव्रणं शुक्रमुदाहरंति ॥ २३ ॥

नेत्रके काले भागमें शुक्र कहिये फूलसा हो जाय और वह भीतरसे गडासा हो जाय, उसमें सुई चुभानेकीसी पीडा होवे तथा नेत्रोंसे अति गरम और बहुतसा स्राव होवे, इस रोगको सव्रणशुक्र कहते हैं, इसमें पीडा बहुत होती है, क्षतमें पीडा होना ठीकही है और नेत्रसरीखे सुकुमार ठिकानेपर तो विशेष पीडा होती है ऐसे भोजविदेहादिकोंका मत है ॥

सव्रणशुक्रके साध्यासाध्य लक्षण ।

दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यत्तु न चावगाढं न च संस्रवेद्धि ।
अवेदनं वा न च युग्मशुक्रं तत्सिद्धिमायाति कदाचिदेव ॥ २४ ॥

जो शुक्र (फूल) दृष्टिके समीप होय नहीं और एक त्वचामें होय, बहुत स्रवे (झरे) नहीं, जिसम पीडा न होय और एकही स्थानमें दो बूंद (फूल)

न होयँ ऐसा शुक्र कदाचित् अच्छा भी हो जाय परन्तु इनसे विपरीत लक्षण दृष्टिके समीप होना, दूसरी त्वचामें होय, बहुत स्रवे, पीडा होय, एक स्थानमें दो बूंद होयँ यह शुक्र अच्छा नहीं होय ॥

अव्रणशुक्र लक्षण।

स्यन्दात्मकं कृष्णगतं सचोषं शंखेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम्।
वैहायसाभ्रप्रतनु प्रकाशमथाव्रणं साध्यतमं वदंति ॥ २५ ॥

अभिष्यन्दसे उत्पन्न होकर नेत्रोंके काले भागमें चोष कहिये सींग तुमडीकी पीडा युक्त, शंख, चन्द्र, कुन्दपुष्प इनके समान सफेद, आकाशके समान पतला ऐसा जो व्रणरहित शुक्र होय उसको सुखसाध्य कहते हैं ॥

अव्रणशुक्र अवस्थाविशेष करके साध्य होय है, सो कहते हैं-

गम्भीरजातं बहलं च शुक्रं चिरोत्थितं वापि वदंति कृच्छ्रम् ॥ २६ ॥

जो शुक्र गंभीर हो अर्थात् दो तीन त्वचाके भीतर हुआ हो तथा मोटा हो उसको कृच्छ्रसाध्य कहते हैं ॥

अव्रण अवस्थाभेद करके असाध्य होता है, उसको कहते हैं-

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं शिरासूक्ष्ममदृष्टिकृच्च।
द्वित्वग्गतं लोहितमन्ततश्च चिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ॥ २७ ॥

जो शुक्रके बीचका मांस गिर जाय, इसीसे शुक्रके स्थानमें गडेला हो जाय अथवा इसके विपरीत कहिये पिशितावृत अर्थात् उसके चारों ओर मांस होय, चंचल कहिये एक ठिकाने न रहे, शिराओं करके व्याप्त हों, बारीक हो गया हो, दृष्टि नाश करनेवाला यह 'दृष्टेःसमीपेन भवेत्' इसका उलटा है, दो पटल कहिये पर-दोंके भीतर भया हो, चारों ओरसे लाल हो और बीचमें सफेद और बहुत दिनका शुक्र हो ऐसेको वैद्य त्याग दे ॥

दूसरे असाध्य लक्षण।

उष्णाश्रुपातः पिडिका च नेत्रे यस्मिन्भवेन्मुद्गनिभं च शुक्रम्।
तदप्यसाध्यं प्रवदंति केचिदन्यच्च यत्तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥ २८ ॥

जिसके नेत्रोंसे गरम अश्रुपात (आँसू) गिरकर पिडिका उत्पन्न होवे (दो पटलमें शुक्र जानेसे ये लक्षण होते हैं) तथा जिसमें मूंगकी बराबर शुक्र होवे ऐसा नेत्रका शुक्र असाध्य है और जो तीतरके पंखके समान (काले रंगका) होवे उसकी भी कोई २ असाध्य कहते हैं ॥

अक्षिपाकात्ययके लक्षण।

श्वेतः समाक्रामति सर्वतो हि दोषेण यस्यासितमण्डलं तु।
तमक्षिपाकात्ययमक्षिपाकं सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः॥ २९॥

नेत्रके कृष्णभागमें दोषोंके योगसे चारों ओर सफेद (शुक्र) फैल जावे यह सन्निपातजन्य अक्षिपाकात्ययनामक रोग त्याज्य है ऐसा कहा है॥

अजकाजातके लक्षण।

अजापुरीषप्रतिमो रुजावान् सलोहितो लोहितपिच्छिलाश्रु।
विगृह्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति तच्चाजकाजातमिति व्यवस्येत्॥३०॥

काले भागमें बकरीके शुष्क विष्ठाके समान, दूखनेवाली, लाल हो और गाढा कुछ कालेंसे आंसू वहे उसको अजकाजात ऐसे जानना चाहिये॥ इतिकृष्णजरोग॥

दृष्टिके रोग।

पहले पटलमें दोष जानेसे उसके लक्षण।

प्रथमे पटले यस्य दोषो दृष्टिं व्यवस्थितः।
अव्यक्तानि च रूपाणि कदाचिदथ पश्यति॥ ३१॥

प्रथम पटलमें दोष स्थित होनेसे वह पुरुष अव्यक्तरूप (घटपटादि पदार्थ) देखे।

दृष्टिका प्रमाण सुश्रुतमें कहा है, यथा–

मसूरदलमात्रं तु पंचभूतप्रसादजम्।

आधे मसूरदलके समान पञ्चभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) से प्रगट है। शंका–इस श्लोकमें तो मसूरदलके समान लिखा है फिर आधे मसूरके समान ऐसा अर्थ आपने कैसे किया ? उत्तर–तुमने कहा सो ठीक है परन्तु यह अर्थ हमने निमि आचार्य्यके मतसे लिखा है। यथा–" पंचभूतात्मिका दृष्टिर्मसूरार्द्ध-दलोन्मिता " इति।

अब कहते हैं कि मण्डल चार हैं सो सुश्रुतमें लिखा है, यथा–

तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत्पिशिताश्रितम्।
मेदस्तृतीयं पटलमाश्रितं त्वस्थि चापरम्॥
पञ्चमांशसमं दृष्टेस्तेषां बाहुल्यमिष्यते॥ ३२॥

---

१ अजकाजातका भेद विदेह दूसरा कहता है। यथा–कृष्णैरक्ष्णोर्भवेच्छुक्रं छगलीविट्-समप्रभम्। सांद्रपिच्छिलरक्तास्रत्रित्वग्गा त्वजकेति सः॥

प्रथम पटल रुधिर और जलाश्रित है, दूसरा पटल पिशित (मांस) के आश्रित है, तीसरा पटल मेदके आश्रित है, चौथा पटल अस्थि (हड्डी) के आश्रित है, इन चारों पटलोंकी बहुलता दृष्टिके पञ्चमभागके समान होती है ॥

द्वितीयपटलस्थित दोषके लक्षण।

दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते।
मक्षिका मशकान्केशाञ्जालकानि च पश्यति ॥ ३३ ॥
मण्डलानि पताकाश्च मरीचीन्कुण्डलानि च।
परिप्लवांश्च विविधान्वर्षमभ्रं तमांसि च ॥ ३४ ॥
दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते स समीपतः।
समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥
यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीपाशं न पश्यति ॥ ३५ ॥

दूसरे पटलमें दोषके जानेसे दृष्टि विह्वल होजाय अर्थात् पदार्थोंके देखनेमें असमर्थ होय, उसी प्रकार नेत्रोंके आगे मक्खी मच्छर बाल जाली मंडल पताका किरण कुण्डल मंडूक आदि अनेक प्रकारके जलके समूह वर्षा मेघ (बादल) अन्धकार ये नहीं दीखें, ये दृष्टि विह्वल होनेसे होते हैं और विषयभ्रान्तिसे दूरकी वस्तु समीप दीखे समीपकी दूर दीखे अनेक यत्न करनेसेभी सुईका छिद्र न दीखे ॥

तृतीयपटलगत दोषके लक्षण।

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते ॥ ३६ ॥
महांत्यपि च रूपाणि च्छादितानीव चांबरैः।
कर्णनासाक्षिहीनानि विकृतानि च पश्यति ॥ ३७ ॥
यथादोषं च रज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि।
अधःस्थे तु समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते ॥ ३८ ॥
पार्श्वस्थिते पुनर्दोषे पार्श्वस्थं नैव पश्यति।
समंततः स्थिते दोषे सङ्कुलानीव पश्यति ॥ ३९ ॥
दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्‍ ह्रस्वं च पश्यति।
द्विधा स्थिते द्विधा पश्येद्बहुधा वाऽनवस्थिते ॥
दोषे दृष्टिस्थिते तिर्यगेकं वै मन्यते द्विधा ॥ ४० ॥

तीसरे पटलमें दोष जानेसे ऊपरकी वस्तु दीखे, नीचेकी वस्तु नहीं दीखे, जो वस्तु बडी और भव्य होवे, वह वस्त्रसे ढकीसी दीखे, कान नाक और नेत्र इन करके रहित पुरुषोंको देखें, टेढे बांके दीखे और जिस वातादि दोषका रुधिर मांस मेदादिकोंके सहाय होनेसे उनमें जो दोष बलवान् होय उसका जैसा रूप (रंग) होवे उसी प्रकारका दीखे अर्थात् जिस जिस दोषका जैसा वर्ण होय वैसा दीखे, दोष नीचे स्थित होयँ सो समीपस्थ वस्तु नहीं दीखे और ऊपर दोष स्थित होयँ तो दूरकी वस्तु न दीखे और दोष पार्श्व (पसवाडे) में स्थित होनेसे पसवाडेकी वस्तु नहीं दीखे और दोष दृष्टिमें सर्वत्र स्थित होवें तो उस पुरुषको सब चीज मिलीसी दीखे, दृष्टिके मध्यमें दोष जानेसे बडी वस्तु छोटी दीखे, दो ठिकाने दोष रहनेसे एक वस्तुकी दो दीखे और दोष अव्यवस्थित अर्थात् एकही स्थानमें स्थित न होनेसे एक वस्तुके दो टुकडेसे दिखलाई देवें, दृष्टिगत दोष तिरछे स्थित होनेसे एक वस्तुके दो टुकडे दिखाई देवे यह स्वरूपोंका दीखना तीसरे (पटल) से प्रारम्भ होता है सो विदेहने लिखा भी है ॥

चतुर्थपटलगत तिमिरलक्षण ।

तिमिराख्यः स वै रोगश्चतुर्थपटलं गतः ॥ ४१ ॥
रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाशमतः परम् ।
अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे ॥ ४२ ॥
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावन्तरिक्षे च विद्युतः ।
निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनि च पश्यति ॥ ४३ ॥

वह तिमिररोग चौथे पटल (परदे) में पहुँचनेसे दृष्टिको चारों ओरसे रोकदे इसको कोई आचार्य लिंगनाश कहते हैं और कोई तिमिर कहते हैं । यह अन्धकार-मय रोग अति बढजाय तब उस मनुष्यको आकाशमें चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, बिजली और निर्मल तेज भी यथार्थ नहीं दीखे, तेजके पुंजसे दीखे, लिंगनाशकी निरुक्ति- “ लिंग्यते ज्ञायते अनेनेति लिंगमिन्द्रियशक्तिस्तस्य नाशो यस्मिन्निति लिंगनाशः ” अर्थात् जिसकरके जाने सो कहिये लिंग (इन्द्रिय) उसका नाश जिसमें होय उसको लिंगनाश कहते हैं और इसीरोगको लौकिकमें मोतियाबिंदु भी कहते हैं ॥

तृतीयपटलाश्रित काचदोषकी दूसरी संज्ञा ।

स एव लिंगनाशस्तु नीलिकाकाचसंज्ञितः ।

---

१ यथास्व रज्यते दृष्टिर्दोषैस्त्रिपटलस्थितैः । चतुर्थं पटलं प्राप्य मण्डलं रज्यते तु तैः ॥ इति ॥

तीसरे पटलगत काच (मोतियाबिन्दुकी) उपेक्षा करनेसे वही फिर चौथे पटलमें पहुँचता है, तब उसे लिंगनाश और नीलिका कहते हैं, यह रोग असाध्य है, सो निमिआचार्य लिखते हैं, परन्तु गदाधर आचार्य कहते हैं कि, विशेष काचको नीलिकाकाच कहते हैं ॥

दोषविशेषकरके रूपका दीखना कैसा होता है ?

तत्र वातेन रूपाणि भ्रमन्तीव हि पश्यति ।
आविलान्यरुणाभानि व्याविद्धानीव मानवः ॥ ४४ ॥
पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गुणान् ।
नृत्यतश्चैव शिखिनः सर्वं नीलं च पश्यति ॥ ४५ ॥
कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च ।
सलिलप्लावितानीव परिजाड्यानि मानवः ॥ ४६ ॥
पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च ।
ससितान्यथ कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः ॥ ४७ ॥
सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानि च पश्यति ।
बहुधा च द्विधा वापि सर्वाण्येव समंततः ॥
हीनांगान्यधिकांगानि ज्योतींष्यपि च पश्यति ॥ ४८ ॥

वादीसे रोगीको मलीन, कुछ लाल, तिरछी और भ्रमती ऐसी वस्तु दीखे । पित्तसे सूर्य, खद्योत (पटबीजना) इन्द्रधनुष, बिजली इनको और नाचनेवाले मोर तथा सर्व वस्तु नीली दीखे। कफसे चिकना और सफेद तथा पानीमें डुबोया हुआ निकालनेके समान और भारी ऐसा रूप दीखे । रुधिरसे लाल और अनेकप्रकारका अन्धकार तथा किंचित् सफेद काली और पीली ऐसी वस्तु दीखे ।सान्निपातसे अनेक प्रकारके विपरीत अर्थात् एककी अनेक तथा दो अथवा अनेक प्रकारके रूप दीखें, हीन अंगके अथवा अधिक अंगके रूप रोगी देखे और ज्योतिस्वरूपसे सब पदार्थ दीखे॥

पित्तसे दूसरा परिम्लायिसंज्ञक तिमिर होय है ।

पित्तं कुर्यात्परिम्लायि मूर्च्छितं रक्ततेजसा ।
पीता दिशस्तथोद्‍द्योतान्नवीनापि स पश्यति ।
विकीर्यमाणान्खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव च ॥ ४९ ॥

---

१ काच इत्येष किजयो याप्यस्त्रिपटलस्थितैः । चतुर्थपटलं प्राप्तो लिङ्गनाशः स उच्यते ॥

रक्तके तेजसे मिश्रित हुए परिम्लायीरोग होय, इसके योगसे रोगीको दिशा आकाश और सूर्य ये पीले दीखें और सर्वत्र सूर्य ऊगेसे दीखे तथा वृक्ष भी तेजस्वरूपसे दीखे, परिम्लायी पित्तको नील कहते हैं सो सात्यकिने लिखा है, इस रोगको कोई आचार्य रक्तपित्तसे होता है ऐसे कहते हैं सो भी लिखा है ॥

रागभेदसे लिंगनाशको षड्विधत्व कहते हैं–

वक्ष्यामि षड्विधं रागैर्लिङ्गनाशमतः परम् ॥ ५० ॥
रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात् ।
कफात्सितः शोणितजः सरक्तः समस्तदोषप्रभवो विचित्रः ॥ ५१ ॥

इसके अनन्तर रागभेदसे छः प्रकारका लिंगनाश होता है, सो इस प्रकार है–वातजन्य रंग लाल होय है, पित्तसे म्लायी पीला, नीला अथवा नीलाही रंग होय, कफसे सफेद और रुधिरसे लाल तथा सब दोषोंसे अनेक प्रकारका रंग होता है ॥

वातिकरोगके विशेष लक्षण।

अरुणं मण्डलं दृष्ट्यां स्थूलकाचारुणप्रभम् ।
परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लायि नीलं च मण्डलम् ॥
दोषक्षयात्कदाचित्स्यात्स्वयं तत्र प्रदर्शनम् ॥ ५२ ॥

परिम्लायि रोगमें दृष्टिके ऊपर मोटा काचके समान लाल मण्डल होता है, वह म्लान लाल पीला अथवा नील होता है, उसमें दोष घटनेसे कदाचित् देखनेकी शक्ति होय। इस जगह दोषशब्दकरके कोई कर्मका ग्रहण करते हैं ॥

दृष्टिमण्डलगत रोगके लक्षण ।

अरुणं मण्डलं वाताच्चंचलं परुषं तथा ।
पित्तान्मण्डलमानीलं कांस्याभं पीतमेव च ॥ ५३ ॥
श्लेष्मणा बहलं स्निग्धं शंखकुन्देन्दुपाण्डुरम् ।
चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवांभसः ॥ ५४ ॥
मर्द्यमाने च नयने मण्डलं तद्विसर्पति ।
प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ॥ ५५ ॥

---

१ एवमेव तु विज्ञेया नीलाः पित्तसमुद्भवाः । रक्तपित्तोत्थिताः पीताः ॥ इति ॥
२ विदधाति परिम्लायि पित्तं रक्तेन संगतम् । तेन पीता दिशः पश्येदुद्यन्तमिव भास्करम् ॥ इति ॥

दृष्टिरागो भवेच्चित्रो लिंगनाशे त्रिदोषजे।
यथास्वं दोषलिङ्गानि सर्वेऽष्वेव भवंति हि ॥ ५६ ॥

वादीसे दृष्टिमण्डल लाल, चञ्चल और खरदरा होता है। पित्तसे दृष्टिमण्डल किञ्चित् नीला तथा काँसेके समान पीला होवे। कफसे भारी चिकना शंख कुन्द-फूल और चन्द्र इनके समान सफेद होय और उसके नेत्रनें हलनेवाली कमलपत्रके ऊपर पानीकी बूँदके समान टेढी तिरछी सफेद बून्द फैलीसी दिखलाई दे। रुधिरसे दृष्टिमण्डल मूँगाके समान अथवा लाल कमलके समान लाल होवे और त्रिदोषज लिंगनाशमें तरह तरहके मण्डल होयँ तथा सर्व दोषोंके लिंगमण्डलमें वातादि दोषोंके न्यारे २ लक्षण होयँ ॥

आगे कहेगये और पीछे कहे ऐसे दृष्टिरोगोंकी संख्या।

षड्लिङ्गनाशाः षडिमे च रोगा दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव च स्युः ५७

पूर्व कहे लिंगनाश रोग छः और आगे विदग्धदृष्ट्यादि कहे गये वे छः ऐसे मिलकर बारह दृष्टिरोग होते हैं ॥

पित्तविदग्धके लक्षण।

पित्तेन दुष्टेन गतेन वृद्धिं पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः।
पीतानि रूपाणि च तेन पश्येत्स वै नरः पित्तविदग्धदृष्टिः ॥ ५८ ॥

पित्त दुष्ट होकर बढनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि पीली होय तथा उसके योगसे उस मनुष्यको सब पदार्थ पीले रंगके दीखें, उस दृष्टिको पित्तविदग्ध कहते हैं ॥

दिवांध्यके लक्षण।

प्राप्ते तृतीयं पटलं च दोषे दिवा न पश्येन्निशि वीक्षते सः।
रात्रौ स शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्ताल्पभावादपि तानि पश्येत् ॥ ५९ ॥

तीसरे पटलमें दोष (पित्त) जानेसे दिनमें रोगीको नहीं दीखे, रात्रिमें शीतलताके कारण पित्त कम होनेसे दीखे ॥

कफविदग्धदृष्टिके लक्षण।

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि हि मन्यते तु।

इसी प्रकार कफविदग्ध पुरुषको सफेद रूप दीखे ॥

नक्तांध्य (रतोंध) के लक्षण।

त्रिषु स्थितो यः पटलेषु दोषो नक्तांध्यमापादयति प्रसह्य।
दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः पश्येत्तु रूपाणि कफाल्पभावात् ॥ ६० ॥

जो दोष (कफ) तीनों पटलोंमें रहे वह नक्तांध्य (रतोंध) उत्पन्न करे वह कफ दिवस (दिन) में सूर्यके तेजसे कम होनेसे दीखे ॥

धूमदर्शीके लक्षण ।

शोकज्वरायासशिरोऽभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः ।
धूम्रांस्तथा पश्यति सर्वभावान्स धूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः ॥ ६१ ॥

शोक, ज्वर, परिश्रम और मस्तकताप इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर जिसकी दृष्टिमें विकार होवे उससे उस मनुष्यको सर्व पदार्थ धूएँके रंगके दीखें, इस रोगको धूमदर्शी वा शोकविदग्धदृष्टि कहते हैं, इसमें दिनको धूएँके रंगके पदार्थ दीखें, इसका कारण यह है कि, रात्रिमें पित्तका तेज घटनेसे निर्मल दीखे ॥

ह्रस्वदृष्टिके लक्षण ।

यो ह्रस्वजाड्यो दिवसेषु कृच्छ्राद्
ह्रस्वानि रूपाणि च तेन पश्येत् ॥ ६२ ॥

जो ह्रस्वजाड्य पुरुष होता है उसको दिनमें बडे पदार्थ छोटे दीखें इसका कारण यह है कि उस समय दृष्टिके मध्यगत दोष होता है, यह रोग भी पित्तजन्य है ॥

नकुलांध्यके लक्षण ।

विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत् ।
चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत्स वै विकारो नकुलांध्यसंज्ञः ॥ ६३ ॥

जिस पुरुषकी दृष्टि दोषोंसे व्याप्त होकर नौलेकी दृष्टिके समान चमके वह पुरुष दिनमें अनेक प्रकारके रूप देखे, इस विकारको नकुलांध्य कहते हैं ॥

गम्भीरदृष्टिके लक्षण ।

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा संकोचमभ्यंतरतश्च याति ।
रुजावगाढं च तमक्षिरोगं गम्भीरिकेति प्रवदंति तज्ज्ञाः ॥ ६४ ॥

जो दृष्टि वायुसे विकृत होकर भीतरको संकुचित होवे तथा उसमें पीडा होवे, उसको गम्भीरदृष्टि कहते हैं ॥

आगन्तुज लिंगनाशके लक्षण ।

बाह्यौ पुनर्द्वाविह संप्रदिष्टौ निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च ।
निमित्ततस्तत्र शिरोऽभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यंदनिदर्शनः सः ॥ ६५ ॥

अभिघातज लिंगनाश दो प्रकारका है—एक निमित्तजन्य, दूसरा अनिमित्तजन्य, तिनमें शिरोभितापकरके (विषवृक्षके फलसे मिले पवनका मस्तकमें स्पर्श होनेसे) होय उसको निमित्तजन्य कहते हैं, इसमें रक्ताभिष्यंदके लक्षण होते हैं ॥

अनिमित्तके लक्षण।

सुरर्षिगंधर्वमहोरगाणां सन्दर्शनेनापि च भास्करस्य।
हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य स लिङ्गनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः॥
तत्राक्षि विस्पष्टमिवावभाति वैदूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः॥ ६६॥

देव, ऋषि, गंधर्व, महासर्प और सूर्य इनके संमुख दृष्टिको लगाकर (टकटकी लगाकर) देखनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि नष्ट होय, उसको अनिमित्तलिंगनाश कहते हैं, इस रोगमें नेत्र स्वच्छ दीखते हैं और दृष्टि वैदूर्यमणिके समान स्वच्छ कहिये श्यामवर्ण होय। अब कहते हैं कि, देवादिक भौतिक इन्द्रियोंको नहीं बिगाडें, परन्तु उनकी शक्तिका नाश करते हैं, सो चरकमें लिखा है ॥

अर्मरोग ५ प्रकारका है।

प्रस्तार्यर्म तनु स्तीर्णं श्यावं रक्तनिभं सिते।
सश्वेतं मृदु शुक्लार्म शुक्ले तद्वर्द्धते चिरात्॥ ६७॥
पद्माभं मृदु रक्तार्म यन्मांसं चीयते सिते।
पृथु मृद्वधिमांसार्म बहलं च यकृन्निभम्।
स्थिरं प्रस्तारि मांसाढ्यं शुष्कं स्नाय्वर्म पंचमम्॥ ६८॥

नेत्रोंके सफेद भागमें पतला विस्तीर्ण श्यामवर्ण तथा लाल ऐसा जो मांस बढे उसको प्रस्तारि अर्मरोग कहते हैं। शुक्लभागमें सफेद मृदुमांस बहुत दिनमें बढे उसको शुक्लार्म कहते हैं। कमलके समान लाल तथा मृदु मांस जो बढे उसको रक्तार्म कहते हैं। जो मांस विस्तीर्ण स्थूल कलेजाके समान (कुछ काला लाल) दीखे उसको अधिमांसार्म कहते हैं। जो कठिन तथा फैलनेवाले स्रावरहित मांस बढे, उसको स्नाय्वर्म कहते हैं। विदेहने कहा भी है ॥

---

१ देवादयोऽष्टौ हि महाप्रभावा न दूषयेयुः पुरुषस्य देहम्। विशंत्यदृश्यास्तरसा यथैव च्छाया तयोर्दर्पणसूर्यकांतौ॥ २ प्रस्तारिणोऽर्मणः स्रावं निरुणद्धि यथाऽनिलः। विना स्रावं विशुष्यं यत्स्नाय्वर्मेतीति तद्विदुः॥

शुक्तिरोगके लक्षण।

श्यावाः स्युः पिशितनिभास्तु बिंदवो ये
शुक्त्याभाः सितनियताः स शुक्तिसंज्ञः ॥

नेत्रके सफेद भागमें श्यामवर्ण मांसतुल्य सीपीके समान जो बिन्दु होय उसको शुक्ति कहते हैं ॥

अर्जुनके लक्षण।

एको यः शशरुधिरोपमश्च बिन्दुः
शुक्लस्थो भवति तदर्जुनं वदंति ॥ ६९ ॥

शुक्लभागमें शश (खरगोश) के रुधिरके समान जो बिन्दु (बून्द) नेत्रमें उत्पन्न होय उसको अर्जुन कहते हैं ॥

पिष्टकके लक्षण।

श्लेष्ममारुतकोपेन शुक्ले मांसं समुन्नतम् ।
पिष्टवत्पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसन्निभम् ॥ ७० ॥

कफ वायुके कोपसे शुक्लभागमें पिष्ट (पिसासा) जो मांस बढे उसको पिष्टक कहते हैं, वह मलसे मिले आदर्श (ऐनक) के समान होता है ॥

जालके लक्षण।

जालाभः कठिनशिरो महान् सरक्तः
संतानः स्मृत इह जालसंज्ञितस्तु ॥

नेत्रके सफेद भागमें शिरा (नस) का समूह जालीके समान होय और वह कठिन तथा रुधिरके समान लाल होवे उसको जाल कहते हैं ॥

शिराजपिडिकाके लक्षण।

शुक्लस्थाः सितपिडिकाः शिरावृता या-
स्ता ब्रूयादसितसमीपजाः शिराजाः ॥ ७१ ॥

नेत्रके शुक्लभागमें शिरा (नसों) से व्याप्त ऐसी सफेद फुन्सी होय, उसको शिराजपिडिका कहते हैं वह कृष्णभागके समीप होती है ॥

बलासके लक्षण।

कांस्याभोऽमृदुरथ वारिबिन्दुकल्पो
विज्ञेयो नयनसिते बलाससंज्ञः ॥ ७२ ॥

---

१ मरुता पीडितः श्लेष्मा शुक्लभागे व्यवस्थितः। जलबिन्दुरिवोच्छूनोऽमृदुः स कफसम्भवः॥ बलासग्रथितं नाम व शाक वृत्तमादिशेत् ॥

नेत्रके शुक्लभागमें कांसेके समान कठिन अथवा पानीकी बूँदके समान ऊंची जो गांठ होय उसको बलास कहते हैं ॥ इति शुक्लजरोग ॥

नेत्रकी सन्धिके रोग।

पूयालसके लक्षण।

पक्वः शोथः संधिजो यः सतोदः स्रवेत्पूयं पूति पूयालसाख्यः।

नेत्रकी सन्धिमें सूजन होवे और पककर फूट जाय, उसमेंसे दुर्गन्धि राध बहे तथा तोद (सुई छेदनेकीसी पीडा) होय, उसको पूयालस कहते हैं ॥

उपनाहके लक्षण।

ग्रंथिर्नाल्पो दृष्टिसंधावपाकी कंडूप्रायो नीरुजस्तूपनाहः ॥ ७३ ॥

नेत्रकी संधिमें बडी गांठ होवे, वह थोडी पके, उसमें खुजली बहुत हो, दूखे नहीं उसको उपनाह कहते हैं ॥

स्राव अथवा नेत्रनाडीके लक्षण।

गत्वा संधीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्रावाँल्लक्षणैः स्वैरुपेतान्।
तं हि स्रावं नेत्रनाडीति चैके तस्या लिङ्गं कीर्तयिष्ये चतुर्धा ॥७४॥

वातादि दोष अश्रुमार्गसे सन्धियोंमें प्राप्त होकर स्वकीयलक्षणयुक्त स्राव उत्पन्न करे उस स्रावको कोई नेत्रनाडी कहते हैं। यह रोग चार प्रकारका है, उसके लक्षण कहते हैं। शंका—क्योंजी ! वातका स्राव क्यों नहीं कहा ? उत्तर—वातमें स्राव नहीं होता है इसीसे विदेहने चारही प्रकारके स्राव कहे हैं ॥

पाकः संधौ संस्रवेद्यस्तु पूयं पूयास्रावोऽसौ गदः सर्वजस्तु।
श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं संस्रवेद्धि श्लेष्मास्रावोऽसौ विकारो मतस्तु॥७५॥
रक्तास्रावः शोणिताद्यो विकारः स्रवेदुष्णं तत्र रक्तं प्रभूतम्।
हारिद्राभं पीतमुष्णं जलं वा पित्तास्रावः संस्रवेत्संधिमध्यात् ॥ ७६ ॥

पूयास्राव नेत्रकी संधिमें सूजन होकर पके तथा उसमेंसे राध बहे, यह रोग सन्निपातात्मक[1] है। श्लेष्मास्राव जिसमें सफेद, गाढी और चिकनी राध बहे। रक्तास्राव—जिस विकारमें विशेष गरम रुधिर बहे उसको रक्तास्राव कहते हैं। पित्तास्राव—जिसकी सन्धिमें हलदीके समान पीला गरम जल बहे उसको पित्तास्राव कहते हैं ॥

---

१ सन्निपातात्कफाद्रक्तात्पित्तात्स्रावोऽक्षिसंधिषु ॥ इति।

पर्वणी व अलजीके लक्षण ।

ताम्रा तन्वी दाहपाकोपपन्ना ज्ञेया वैद्यैः पर्वणी वृत्तशोथा।
जाता सन्धौ शुक्लकृष्णेऽलजी स्यात्तस्मिन्नेव ख्यापिता पूर्वलिंगैः७७

नेत्रकी सफेद काली सन्धियोंमें तांबेके समान छोटी गोल जो फुन्सी होवे और वह फुन्सी दाह होकर पके उसको पर्वणी कहते हैं और उसी ठिकाने पूर्वरूप संयुक्त बडी फुन्सी उठे उसको अलजी कहते हैं। पर्वणी और अलजीमें इतनाही अन्तर है कि, अलजी बडी फुन्सी होती है और पर्वणी छोटी फुन्सी होती है यह विदेहका मत है ॥

कृमिग्रन्थिके लक्षण ।

कृमिग्रंथिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कण्डूं कुर्युः कृमयः संधिजाताः।
नानारूपा वर्त्मशुक्लांतसंधौ चरंत्यंतर्नयनं दूषयंतः ॥ ७८ ॥

जिसके नेत्रके शुक्लभागकी संधिमें और पलकोंकी संधिमें उत्पन्न हुई अनेक प्रकारकी कृमि खुजली और गांठ उत्पन्न करे और नेत्रके पलक और सफेदी भागकी संधिमें प्राप्त होकर नेत्रके भीतरके भागको दूषित करे, भीतर फिरे, उसको कृमिग्रन्थि कहते हैं; यह सन्निपातात्मक कहते हैं, सो विदेहका भी मत है ॥

वर्त्म (मर्मस्थान) के रोग।

उत्संगपिडिकाके लक्षण ।

अभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मतश्च या।
सोत्संगोत्संगपिडिका सर्वजा स्थूलकण्डुरा ॥ ७९ ॥

नेत्रके ढकनेवाली बाफणी अर्थात् कोएमें फुन्सी होय और उसका मुख भीतर होय वह बडी तथा लाल खुजली संयुक्त होय उसको उत्संगपिडिका कहते हैं यह सन्निपातसे होती है। गदाधर और विदेहके मतसे पलकोंके कोएके बाहर भी यह रोग होता है। इस श्लोकमें ' च ' लिखा है उसका यह प्रयोजन है कि, इस जगह भी मुर्गीके अंडेकासा रस स्राव जानना ॥

---

१ पर्वणोपिडिका तत्र जायते त्वंकुरोपमा । शुक्लकृष्णांतसंधौ च जनयेद्रोस्तनाकृतिम् । पिडिकामलजीं तां तु विद्धि तोदाश्रुसंकुलाम् ॥ २ ततः पूयमसृक्कृष्णाः पतंति कृमयस्तथा। लक्षणैर्विविधैर्युक्ताः सन्निपातसमुत्थिताः ॥ कृमिग्रंथिं तु तं विद्याद्देहिनां नेत्रदूषणम् ॥ इति ॥ ३ वर्त्मोत्संगादधो जन्तोः सन्निपातात्प्रजायते । अभ्यन्तरमुखी स्थूला बाह्यतश्चापि दृश्यते॥ पिडिका पिडिकाभिश्च चितान्याभिः समन्ततः। उत्संगपिडिका नाम कठिना मन्दवेदना॥इति॥

कुंभिकाके लक्षण।

वर्त्मान्ते पिडिका ध्माता भिद्यन्ते च स्रवंति च।
कुंभीकबीजसदृशाः कुंभीकाः सन्निपातजाः॥ ८०॥

पलकोंके समीप कुंभिकाके बीजके समान अर्थात् जमालगोटेके समान फुन्सी होय वह पककर फूटकर बहे उसको कुंभिका कहते हैं। कोई आचार्य कहते हैं कि, कच्छदेशमेंके दाडिम (अनार) के बीजके आकार कुंभिका होती है॥

पोथकीके लक्षण।

स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्निभाः।
रुजावन्त्यश्च पिडिकाः पोथक्य इति कीर्तिताः॥ ८१॥

जिसके कोएमें लाल सरसोंके समान रुधिरस्राव हो, खुजलीसंयुक्त भारी तथा पीडासंयुक्त फुन्सी होय, उसको पोथकी कहते हैं॥

वर्त्मशर्कराके लक्षण।

पिडिका या खरा स्थूला सूक्ष्माभिरभिसंवृता।
वर्त्मस्था शर्करा नाम स रोगो वर्त्मदूषकः॥ ८२॥

जिसके कोएमें जो पिडिका कठिन और बडी होकर सर्वत्र छोटी २ फुन्सियोंसे व्याप्त होय, उसको वर्त्मशर्करा कहते हैं, इससे कोए बिगड जाते हैं॥

अर्शोवर्त्मके लक्षण।

उर्वारुबीजप्रतिमाः पिडिका मंदवेदनाः।
श्लक्ष्णाः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते॥ ८३॥

ककडीके बीजके बराबर, मन्द पीडा पृथक् २ कठिन ऐसी फुन्सी कोएमें उठें उनको अर्शोवर्त्म कहते हैं। निमि (विदेह) के मतसे यह सन्निपातात्मक है॥

शुष्कार्शके लक्षण।

दीर्घाङ्कुरः खरः स्तब्धो दारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः।
व्याधिरेषोऽतिविख्यातः शुष्कार्शो नाम नामतः॥ ८४॥

नेत्रके कोएमें लंबे खरदरे कठिन दुःखदायक ऐसे जो मांसांकुर होयँ उस व्याधिको शुष्कार्श कहते हैं, यह भी सन्निपातज है॥

अंजनाके लक्षण।

दाहतोदवती ताम्रा पिडिका वर्त्मसंभवा।
मृद्वी मंदरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साऽञ्जननामिका॥ ८५॥

१नीरुजा कठिना वर्त्मपक्ष्मान्तर्बाह्यतोऽपि वा। पिडिका सन्निपातेन तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते॥ इति॥

दाह तोद (चोटनी) संयुक्त, लाल, नरम, छोटी, मन्द पीडा करनेवाली ऐसी फुन्सी नेत्रके कोएमें होय, उसको अंजना कहते हैं, यह भी सन्निपातज है ॥

बहलवर्त्मके लक्षण ।

वर्त्मोपचीयते यस्य पिडिकाभिः समंततः ।
सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्बहलवर्त्म तत् ॥ ८६ ॥

जिसके नेत्रका कोया त्वचाके समान वर्ण तथा कठिन फुन्सियोंसे व्याप्त होय उसको बहलवर्त्म रोग कहते हैं, यह भी सन्निपातज है ॥

वर्त्मबन्धके लक्षण ।

कण्डूमताऽल्पतोदेन वर्त्मशोथेन यो नरः ।
न संप्रच्छादयेदक्षि यत्रासौ वर्त्मबंधकः ॥ ८७ ॥

जिसके नेत्रके कोयोंमें सूजनसे नेत्रके बराबर सूजन आय जावे, उससे उस मनुष्यको कुछ नहीं दीखे, इस रोगको वर्त्मबन्ध कहते हैं। इस सूजनमें खुजली चले तथा तोद (चोटनी) होय, यह रोग त्रिदोषज है ॥

क्लिष्टवर्त्मके लक्षण ।

मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च ।
अकस्माच्च भवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्मेति तद्विदुः ॥ ८८ ॥

नेत्रके नीचे ऊपरके दोनों कोए नरम अल्प पीडा तांबेके वर्ण होकर अकस्मात् लाल हो जायँ तो इस रोगको क्लिष्टवर्त्मरोग कहते हैं, यह रोग कफरक्तज है यही मत विदेहका है ॥

वर्त्मकर्दमके लक्षण ।

क्लिष्टं पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद्यदा ।
ततः क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमः ॥ ८९ ॥

क्लिष्टवर्त्म फिर पित्तयुक्त रुधिरको दहन करे, तब वह दही दूध माखनके समान गीला होजाय, अतएव इस व्याधिको वर्त्मकर्दम कहते हैं, यह पित्ताधिक सन्निपातात्मक है ॥

श्याववर्त्मके लक्षण ।

वर्त्म यद्बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम् ।
तदाहुः श्याववर्त्मेति वर्त्मरोगविशारदाः ॥ ९० ॥

---

१ श्लेष्मा दुष्टेन रक्तेन क्लिष्टमांसमतः समम् । बंधुजीवनिभं वर्त्म क्लिष्टमांसं तदुच्यते ॥

जिसके नेत्रके कोएके बाहर अथवा भीतर काली सूजन होय तथा पीडा होय उसको वर्त्मरोगके जाननेवाले श्यावंवर्त्म कहते हैं, वह वाताधिक त्रिदोषजन्य है विदेहने लिखा भी है ॥

प्रक्लिन्नवर्त्मके लक्षण।

अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य हि।
प्रक्लिन्नवर्त्म तद्विद्यात् क्लिन्नमत्यर्थमंततः ॥ ९१ ॥

जो कोया अलपपीडा तथा बाहरसे सूजा हुआ अत्यन्त कीचडसे व्याप्त हो उसको प्रक्लिन्नवर्त्म कहते हैं, यह कफज विकार है ॥

अक्लिन्नवर्त्मके लक्षण।

यस्य धौतान्यधौतानि संबध्यंते पुनः पुनः।
वर्त्मान्यपरिपक्वानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत् ॥ ९२ ॥

जिसके नेत्रके पलक धोनेसे अथवा नहीं धोनेसे बारंबार चिपक जावें कोएँ पककर राधसे नहीं चिकटें तो इस रोगको अक्लिन्नवर्त्म कहते हैं, इस रोगको विदेह पिल्लाख्या कहते हैं ॥

वातहतवर्त्मके लक्षण।

विमुक्तसंधि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य न मील्यते।
एतद्वातहतं वर्त्म जानीयादक्षिचिन्तकः ॥ ९३ ॥

जिसके नेत्रके पलक पृथक् पृथक् होयँ तथा जिसके पलक मिचें और खुले नहीं ऐसे नेत्रके कोए मिले नहीं उसको वातहतवर्त्म शालाक्यसिद्धान्तवाला कहता है ॥

अर्बुदके लक्षण।

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम्।
आचक्षतेऽर्बुदमिति सरक्तमविलंबितम् ॥ ९४ ॥

नेत्रके कोएके भीतर गोल मन्दवेदनायुक्त कुछ लाल जल्दी बढनेवाली ऐसी जो गांठ होय उसको अर्बुद कहते हैं, यह भी सन्निपातज है ॥

निमेषके लक्षण।

निमेषिणीः शिरा वायुः प्रविष्टो वर्त्मसंश्रयः।
प्रचालयति वर्त्मानि निमेषं नाम तं विदुः ॥ ९५ ॥

१-दुष्टं श्लेष्मानिलात्पित्तं वर्त्मनोऽश्नीयते यदा।
अग्निदग्धनिभं श्यावं श्याववर्त्मेति तद्विदुः ॥ इति ॥

वर्त्माश्रित (कोएमें स्थित) जो वायु, सो निमेष (पलकके उघाडने मूंदनेवाली नस) में प्रवेश होकर बारंबार पलकोंको चलायमान करे, उसको निमेष (नेत्रका मिचकाना) कहते हैं, विदेहने भी लिखा है । यह रोग भी सन्निपातज है ॥

शोणितार्शके लक्षण ।

वर्त्मस्थो यो विवर्द्धेत लोहितो मृदुरंकुरः ।
तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं छिन्नं प्रवर्द्धते ॥ ९६ ॥

रुधिरके सम्बन्धसे नेत्रके कोएके भीतर भागमें लाल तथा नरम अंकुर बढे उसको शोणितार्श कहते हैं, उसको जैसे जैसे काटे तैसे २ बढता है इस रक्तज व्याधिको विदेहे आचार्य असाध्य कहते हैं ।

लगणके लक्षण

अपाकी कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवोऽरुजः ।
सकण्डूः पिच्छिलः कोलसंस्थानो लगणस्तु सः ॥ ९७ ॥

नेत्रके कोएमें बेरके समान बडी कठिन खुजलीसंयुक्त चिकनी गांठ होय उसको लगण कहते हैं । यह रोग कफजन्य है, इसमें पीडा और पकना नहीं होय ॥

बिसवर्त्मके लक्षण ।

त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनोः ।
प्रस्रवत्यंतरुदकं बिसवद्बिसवर्त्म तत् ॥ ९८ ॥

तीनों दोष कुपित होकर नेत्रके कोएको सुजाय देवें तथा उनमें छिद्र होजाय, उन कोयोंमेंसे कमलतन्तुके समान भीतरसे पानी झरे, इस रोगको बिसवर्त्म कहते हैं ॥

कुञ्चनके लक्षण ।

वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयंति यदा मलाः ।
तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुंचनं नाम तद्विदुः ॥ ९९ ॥

वातादिदोष जब कोएके मार्गको संकुचित करें तब मनुष्य नेत्रको उघाड कर नहीं देखसके, इस रोगको कुञ्चन कृच्छ्रोन्मीलन कहते हैं, यह रोग सुश्रुताचार्यने नहीं लिखा, माधवाचार्यने ही लिखा है ॥

---

१ निमेषिणीः शिरा वायुः प्रविश्य व्यवतिष्ठते । अत्यर्थं चलते वर्त्म निमेषः स न सिध्यति ॥
२ वायुः शोणितमादाय शिराणां प्रमुखे स्थितः । जनयत्यंकुरं ताम्रं वर्त्मनि च्छिन्नरोहणम् ॥ तच्छोणितार्शोऽसाध्यं स्याद्रक्तास्राव्यथ रक्तजम् ॥

पक्ष्मकोपके लक्षण ।

प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षि विशंति हि।
घृष्यंत्याक्षि मुहुस्तानि संरम्भं जनयान्ति च॥ १०० ॥
असिते सितभागे च मूलकोशात्पतत्यंपि।
पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः॥ १०१ ॥

वादीसे चलायमान कोएके बाल नेत्रमें प्रवेश करे और वह वारंवार नेत्रसे रगडे जायँ, इसीसे नेत्रके काले वा सफेद भागमें सूजन होय, यह केश (बाल) जडसे टूट जावें, अतएव इस व्याधिको पक्ष्मकोप अथवा उपपक्ष्म कहते हैं। यह बडा दुःखदायक है॥

पक्ष्मशातके लक्षण ।

वर्त्म पक्ष्माशयगतं पित्तं रोमाणि शातयेत्।
कण्डूं दाहं च कुरुते पक्ष्मशातं तमादिशेत्॥ १०२ ॥

पलकोंकी जडमें रहनेवाला पित्त कुपित होकर नेत्रोंके बाल जिनको वरुनी अथवा बाफणी कहते हैं उनका नाश करे तथा नेत्रोंमें खुजली चले, दाह होय उसको पक्ष्मशात कहते हैं। इस रोगको भी सुश्रुतने संख्या बढनेके भयसे नहीं लिखा, माधवाचार्यने अन्य ग्रन्थोंके मतसे लिखा है॥ इति वर्त्मजानिदानम्॥

नेत्ररोगोंकी संख्या ।

नव संध्याश्रयास्तेषु वर्त्मजास्त्वेकविंशतिः।
शुक्लभागे दशैकश्च चत्वारः कृष्णभागजाः॥ १ ॥
सर्वाश्रयाः सप्तदश दृष्टिजा द्वादशैव तु।
बाह्यजौ द्वौ समाख्यातौ रोगौ परमदारुणौ॥
भूय एतान्प्रवक्ष्यामि संख्यारूपचिकित्सितैः॥ २ ॥

सन्धिमें होनेवाले नेत्ररोग ९ प्रकारके हैं और कोएमें होनेवाले रोग २१ हैं और नेत्रके सफेद भागमें होनेवाले रोग ११ हैं और काले भागके ४ हैं और सर्व-सर अर्थात् सर्व नेत्रमें होनेवाले रोग १७ हैं और दृष्टिके रोग १२ हैं और नेत्रके बाहरके रोग २ हैं (ये हमने संगृहीत श्लोकमें लिखे हैं)॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां नेत्ररोगनिदानं समाप्तम्॥

अथ शिरोरोगनिदानम् ।

शिरोरोगाश्च जायन्ते वातापित्तकफैस्त्रिभिः ।
सन्निपातेन रक्तेन क्षयेण कृमिभिस्तथा ॥ १ ॥
सूर्यावर्त्तानंतवातार्धावभेदकशंखकैः ।
एकादशप्रकारस्य लक्षणं संप्रवक्ष्यते ॥ २ ॥

वात पित्त कफ इनसे ३, सन्निपातसे १, रुधिरसे १, क्षयसे १, कृमिसे १, सूर्यावर्त १, अनंतवात १, अर्धावभेदक १ और शंखक १ सब मिलकर ११ प्रकारके शिरोरोग (मस्तकशूल) होते हैं। उनके लक्षण आग कहेंगे ॥

वातजके लक्षण ।

यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम् ।
बन्धोपतापैः प्रशमश्च यत्र शिरोभितापः स समीरणेन ॥ ३ ॥

जिसका मस्तक अकस्मात् दुखे और रात्रिमें विशेष दुखे, बांधनेसे अथवा सेकनेसे शांति हो, उसका वातज शिरोरोग जानना चाहिये ॥

पैत्तिकके लक्षण ।

यस्योष्णमङ्गारचितं तथैव भवेच्छिरो दह्यति वाऽक्षिनासम् ।
शीतेन रात्रौ प्रशमं च याति शिरोभितापः स तु पित्तकोपात् ॥ ४ ॥

जिसका मस्तक अंगारसे तपायेके समान गरम होवे और नेत्रमें तथा नाकमें दाह होय शीतल पदार्थसे रात्रिमें शांति होय, उस मस्तकशूलको पित्तकोपका जानना ॥

श्लैष्मिकके लक्षण ।

शिरो भवेद्यस्य कफोपदिग्धं गुरु प्रतिस्तब्धमतो हिमं च ।
शूनाक्षिकूटं वदनं च यस्य शिरोभितापः स कफप्रकोपात् ॥ ५ ॥

जिसका मस्तक भीतरसे कफकरके लिप्त (लिहसासा) होवे, भारी बँधासा शीतल होवे तथा नेत्रके कोये सुजाकर मुखको सुजाय देवे, इस मस्तकरोगको कफके कोपका जानना चाहिये ॥

सान्निपातिकके लक्षण ।

शिरोभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिंगानि समुद्भवंति ।

त्रिदोषसे उत्पन्न मस्तकरोगमें तीनों दोषोंके सब लक्षण होते हैं ॥

रक्तजके लक्षण।

रक्तात्मकः पित्तसमानलिंगः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च।

रक्तजन्य मस्तकरोगमें पित्तकृत मस्तकरोगके सब लक्षण होते हैं तथा मस्तकके स्पर्श सहा नहीं जाय, यह विशेष होता है॥

क्षयजके लक्षण।

असृग्वसाश्लेष्मसमीरणानां शिरोगतानामिह संक्षयेण॥ ६॥
क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम्।
संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति॥ ७॥

मस्तकके रुधिर वसा कफ और वायु इनके क्षय होनेसे अत्यन्त भयंकर मस्तकशूल होता है, छींक बहुत आवें, मस्तक गरम होवे, कष्ट होय, अत्यन्त कठिन (असह्य) पीडा होय, उसमें स्वेदन, वमन, धूमपान, नस्य, रुधिर निकालना ये उपद्रव करनेसे मस्तकशूल वृद्धिको प्राप्त होता है, इसको क्षयज मस्तकशूल कहते हैं॥

कृमिजके लक्षण।

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं संभक्ष्यमाणं स्फुरतीव चान्तः।
घ्राणाच्च गच्छेद्रुधिरं सपूयं शिरोभितापः कृमिभिः स घोरः॥ ८॥

जिसके मस्तकमें सुईके चुभनेके समान पीडा होवे, तथा कृमि मस्तकको खा रही हो तथा मस्तकके भीतरमें फडकता हुआ मालूम हो तथा नाकमें रुधिर राध और कीडे पडें यह कृमिरोग बडा भयंकर है॥

सूर्यावर्तके लक्षण।

सूर्योदयं या प्रति मन्दमन्दमाक्षिभ्रुवं रुक्समुपैति गाढा।
विवर्द्धते चांशुमता सहैव सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च॥ ९॥
शीतेन शांतिं लभते कदाचिदुष्णेन जंतुः सुखमाप्नुयाद्वा।
सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्यापवर्तं तमुदाहरंति॥ १०॥

सूर्यके उदय होनेसे धीरे धीरे मस्तक दुखनेका आरंभ होय और जैसे जैसे सूर्य चढे तैसे तैसे वह शूल नेत्र और भृकुटी (भौंह) इनमें दो पहर दिन चढे तक बढता जाय और सूर्यके साथ बढकर फिर जैसे २ सूर्य अस्त होय तैसे २ पीडा मन्द होती जाय, शीतल और गरम उपचार करनेसे मनुष्यको सुख होय, इस सान्निपातिक विकारको सूर्यावर्त्त कहते हैं॥

अनंतवातके लक्षण।

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां संपीडच्य गाढं सरुजां सुतीव्राम्।

कुर्वंति साक्षिभ्रुवि शंखदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥ ११ ॥
गण्डस्य पार्श्वे च करोति कम्पं हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान् ।
अनन्तवातं तमुदाहरंति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥ १२ ॥

तीनों दोष (वात पित्त कफ) दुष्ट होकर मन्यानाडीको पीडित कर नेत्र भौंह कनपटी इनमें घोर पीडा करें तथा गंडस्थलके समीपमें कंप होय, ठोडी जकडजाय, नेत्ररोग होयँ, इस त्रिदोषजन्य मस्तकरोगको अनंतवात कहते हैं, सुश्रुतने अनंतवातरोगको छोडकर मस्तकरोग १० ही कहे हैं ॥

अर्धावभेदक (आधासीसी) के लक्षण ।

रूक्षाशनात्यध्यशनप्राग्वातावश्यमैथुनैः ।
वेगसंधारणायासव्यायामैः कुपितोऽनिलः ॥ १३ ॥
केवलः सकफो वाऽर्द्धं गृहीत्वा शिरसो बली ।
मन्याभ्रूशंखकर्णाक्षिललाटेऽर्धेऽतिवेदनाम् ॥ १४ ॥
शस्त्रारणिनिभां कुर्यात्तीव्रां सोऽर्धावभेदकः ।
नयनं वाऽथवा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥ १५ ॥

रूखे अन्नसे, अत्यन्त भोजन, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), पूर्वदिशाकी पवन सेवन करनेसे, बर्फसे, मैथुनसे, मलमूत्रादिका वेग धारण करनेसे, परिश्रम और दंडकसरत करनेसे इन कारणोंसे कुपित भई जो केवल वायु अथवा कफयुक्त वायु सो आधे मस्तकको ग्रहण कर मन्यानाडी, भृकुटी, कनपटी, कान, नेत्र, ललाट ये सब एक ओरसे आधे दूखें, कुलहाडीसे घाव करनेकीसी अथवा अरणी (आंच निकालनेके) काष्ठके मथनेकीसी पीडा होय, उसको अर्धावभेदक (आधासीसी) कहते हैं। यह रोग जब बहुत बढजाता है तब एक ओरके कानसे बहरापन होजाता है अथवा एक ओरकी आंख मारी जाती है। जिस ओरको पीडा होय उधर ये उपद्रव होते हैं। सुश्रुतने इस रोगको त्रिदोषज कहा है ॥

शंखकके लक्षण ।

पित्तरक्तानिला दुष्टाः शङ्खदेशे विमूर्च्छिताः ।
तीव्ररुग्दाहरागं हि शोथं कुर्वन्ति दारुणम् ॥ १६ ॥
स शिरो विषवद्वेगी निरुध्याशु गलं तथा ।

१-स्यादुत्तमांगं रुजतेऽर्द्धमात्रं सतोदभेदभ्रममोहशूलैः ।
पक्षाद्दशाहादथवाप्यकस्मात्स्यादर्द्धभेदे त्रितयाद्व्यवस्येत् ॥

त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शङ्खको नाम नामतः ।
त्र्यहाज्जीवति भेषज्यं प्रत्याख्यायास्य कारयेत् ॥ १७ ॥

दुष्टभये जो पित्त रक्त और वायु (इस जगह कफको भी दुष्ट हुआ जानना यह सुश्रुतने कहा है) सो विशेष बढकर नेत्रोंमें भयंकर सूजन उत्पन्न करे और इसमें घोर पीडा होय, घोर दाह होय तथा नेत्र लाल बहुत हों और यह विषके वेगके समान बढकर गलेमें जाकर गलेको रोक दे, इस शंखरोगसे रोगीके तीन दिनमें प्राणोंका नाश होय, इन तीन दिनमें कुशलवैद्यकी औषधि पहुँचनेसे रोगी बचे, परन्तु बचे या न बचे ऐसा निश्चय करके चिकित्सा करना ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां
शिरोरोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ प्रदररोगनिदानम् ।

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च ।
यानाध्वशोकादतिकर्शनाच्च भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च ॥
तं श्लेष्मपित्तानिलसन्निपातैश्चतुष्प्रकारं प्रदरं वदंति ॥ १ ॥

विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि), मद्य, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), अजीर्ण, गर्भपात, अतिमैथुन, अति गमन (बहुत चलना), अतिशोक, उपवासादि करके कर्शन अर्थात् व्रतके करनेसे सूखजाना, भारके वहनेसे अर्थात् भारीवस्तु उठाकर चलनेसे, चोटके लगनेसे, दिनमें सोनेसे इन कारणोंसे कफ पित्त वायु और सन्निपात इन भेदोंसे चार प्रकारका प्रदररोग होता है ॥

प्रदररोगके सामान्यरूप ।

असृग्दरं भवेत्सर्वं सांगमर्दं सवेदनम् ॥ २ ॥

सब प्रदरोंमें अंगोंका टूटना तथा हाथ पैरोंमें पीडा होती है ॥

उपद्रवके लक्षण ।

तस्यातिवृद्धौ दौर्बल्यं श्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा ।
दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तंद्रा रोगाश्च वातजाः ॥ ३ ॥

जब यह प्रदर बहुत बढ जाता है तब दुर्बलता होय, थकजाय, मूर्च्छा आवे, मस्तपन, प्यास, दाह, प्रलाप (बकना), देह पीला होजाय, तन्द्रा और वातजरोग (आक्षेप अपतान कम्पादिक) होते हैं ॥

श्लैष्मिकके लक्षण ।

आमं सपिच्छप्रतिमं सपांडु पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु ।

कफसे आमरस (कच्चा रस) संयुक्त, चिकना, किंचित् पीला, मांसके धुले जलके समान स्राव होय, इसको श्वेत प्रदर अथवा सोमरोग कहते हैं ॥

पैत्तिकके लक्षण ।

सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्त्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात् ॥ ४ ॥

किंचित् पीला, नीला, काला, लाल, गरम ऐसा प्रदर बहै, उसमें पित्तसे दाह चिमचिमादि पीडा होय तथा उसका वेग अत्यन्त होय ॥

वातिकके लक्षण ।

रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातार्त्ति वातात्पिशितोदकाभम् ।

वातसे रूक्ष, लाल, झागसे युक्त मांसके और सफेद पानीके समान थोडा थोडा प्रदर बहे उसमें बादी (आक्षेपकादि) की पीडा होय है ॥

त्रिदोषजके लक्षण ।

सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जाप्रकाशं कुणपं त्रिदोषम् ।
तच्चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वीत भिषक् चिकित्साम् ॥५॥

जो प्रदर शहद, घृत, हरिताल इनके रंगके समान, चर्बीके समान तथा मुर्देकीसी दुर्गंध युक्त होय उसको त्रिदोषप्रदर जानना, यह असाध्य है अर्थात् इसकी वैद्य चिकित्सा न करे ॥

विशुद्धार्त्तवके लक्षण ।

मासान्निष्पिच्छदाहार्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च ।
नैवातिबहुलं नाल्पमार्तवं शुद्धमादिशेत् ॥ ६ ॥
शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् ।
तदार्तवं प्रशंसन्ति यच्चाप्सु न विरज्यते ॥ ७ ॥

जो आर्त्तव (रजोदर्शनका रुधिर) चिकना नहीं होवे तथा जिसमें दाह शूलादिक न हों, तथा जिसका अनुबन्ध महीनेमें पांच दिवसपर्यन्त होय तथा बहुत न निकले और थोडा भी न होय (मध्यम प्रमाणका होय) उसको शुद्ध आर्तव जानना चाहिये और जो आर्तव खरगोशके रुधिरके समान होवे अथवा लाखके रंगकासा लाल होवे और जिससे रंगे कपडेको जलमें डालनेसे वर्ण नहीं पलटे, उसको शुद्ध आर्तव कहते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां प्रदररोगानिदानं समाप्तम् ॥

अथ योनिव्यापत्तिनिदानम्।

विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टा रोगसंग्रहे।
मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्त्तवेन च ॥ १ ॥
जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक्।

रोगसंग्रहमें योनिके वीस रोग हैं वह मिथ्या आहार और मिथ्या विहार करके तथा दुष्ट आर्त्तवसे, बीजदोषसे और दैवकी इच्छासे स्त्रियोंके होते हैं, उनके लक्षण पृथक् पृथक् कहताहूं सुनो ॥

सा फेनिलमुदावर्त्ता रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति ॥ २ ॥
वन्ध्यां नष्टार्तवां विद्याद्विप्लुतां नित्यवेदनाम्।
परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मेण रुग्भृशम् ॥ ३ ॥
वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता।
चतसृष्वपि चाद्यासु भवन्त्यनिलवेदनाः ॥ ४ ॥

जिस योनिसे झाग मिला रुधिर बडे कष्टसे बहे उसको उदावर्त्ता योनि कहते हैं और जिसका आर्त्तव नष्ट हो उसको वंध्या कहते हैं, जिसके निरंतर पीडा हो उसको विप्लुता कहते हैं, जिसके मैथुन करनेमें अत्यन्त पीडा हो उसको परिप्लुता कहते हैं, जो योनि कठोर स्तब्ध होकर शूलतोदयुक्त होवे उसको वातला कहते हैं। स्वस्वलक्षणसंयुक्ता पित्तला श्लेष्मला योनि भी जाननी चाहिये और पहले जो चार योनि (उदावर्त्ता, वंध्या, विप्लुता, परिप्लुता) कही हैं इनमें वातकी पीडा होती है और वातलामें वातकी पीडा विशेष होती है ॥

सदाहं क्षीयते रक्तं यस्याः सा लोहितक्षया।
सवातमुद्गिरेद्बीजं वामिनी रजसान्वितम् ॥ ५ ॥
प्रस्रंसिनी भ्रंशते तु क्षोभिता दुष्प्रजायिनी।
स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंक्षयात् ॥ ६ ॥
अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता।
चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ ७ ॥

जिस योनिसे दाहयुक्त रुधिर बहे उसको लोहितक्षया कहते हैं, जिसमेंसे रजोयुक्त शुक्र वायु बराबर बहे उसको वामिनी कहते हैं। जो योनि स्थानभ्रष्ट होय उसको प्रस्रंसिनी कहते हैं, जिसमें अंग बाहर निकल आवे और यह विमर्दित करनेसे प्रसव योग नहीं होय हैं, जिस योनिमें रुधिरक्षय होनेसे गर्भ न रहे उसको पुत्रघ्नी कहते हैं, जो योनि अत्यन्त दाह पाक (पकना) और ज्वर इन लक्षणों करके संयुक्त होय उसको पित्तला कहते हैं, इनमें पहली जो चार (रक्तक्षया वामिनी प्रस्रंसिनी और पुत्रघ्नी) इनमें पित्तके लक्षण अधिक होते हैं और पित्तलामें पित्तके विशेष लक्षण होते हैं और पित्तलामें जो ज्वर, दाह, पाक कहे हैं सो उपलक्षमात्र हैं अर्थात् इनमें नील पीला सफेद आर्तव बहता है यह जानना सो तन्त्रान्तरोंमें लिखा है॥

---

१ व्यापल्लवणकट्वम्लक्षाराद्यैः पित्तजा भवेत्। दाहपाकज्वरोष्णार्तिनीलपीतसितार्तवा॥

यवनशास्त्रानुसारेण स्त्रीरोगाः।

रिहमगर्भाऽऽशयस्तस्य हारं सुयुल्लभिजाजतः। वारिदस्तवयाविस्वा हेतवः प्रतिवन्धकाः॥१॥
तत्रापि द्विविधः सादे माद्दीति परिकीर्तितः। तत्र योगं प्रतीकारं तत्र वैद्यः समाचरेत्॥ २॥
गर्भेरिहमकोष्ठस्था सौदी संगमवर्तिनी। गिल्जतसौदत्तर्देहज हिर्कत् चषि भृशं भवेत्॥ ३॥
सभवैरि बकतूदर आमदम् हैज एव च। दाहत्मविश्व शैत्यत्वं लिंगनिर्देश इत्यसौ॥ ४॥
यकसतसंभवेमुष्मिन्वरांगे शोषणं रजः। सूक्ष्मं प्रवर्तते शीतं परं सौदाप्रकोपजम्॥ ५॥
रतूवतप्रभवेत्वीस्मिन्मैलानारिहमुद्भवेत् । हेइद्रारहेजनामैयंगर्भास्थितिविघातका॥ ६॥
कदाचिद्दैवयोगेन सम्भवेद्गर्भलक्षणम्। मासत्रयोत्तरं पातो रतूवत्संगतो ध्रुवम्॥ ७॥
मनीतिनाशयनव विशोत्तिप्येन संयुता। सुरतावसरे तत्र वेदना विन्नकृद्भवेत्॥ ८॥
सम्भोगानन्तरं नारी वेगादुत्तिष्ठते द्रुतम्। रिहम्मुखान् मनीयातो बहिरेवम्भवेत्पुनः॥ ९॥
अकरत् वंध्यत्वमाख्यातं मिथुनः स्याद्भिषग्वरैः। परीक्षणीयं सद्रीत्या प्रतिकार्यं यथायथम्॥१०॥
मनो हैज क्षिपदप्सु भिन्नं भिन्नं च संतरेत्। दूषितं तद्विजानीयात् तहन् शीननदोषलम्॥११॥
रिहवदूप्ममयो दोषः प्रदराख्यां दृढां रुजम्। औषधीकीचवदनी द्विविधात्रिविधात्यथम्॥१२॥
कस्याश्चिदंगनायास्तु प्रसवे संकटं भवेत्। अष्टमान्मासतस्तस्यै क्षीरं पातुं दिशेद्भिषक्॥ १३॥
परिपाकाऽनुरूपं तद्रजसोद्रेककृन्न च। तद्विकृत्यारिहं दर्दे भवेदुष्णेन वारिणा॥ १४॥
जरायुसुयुकबंधेन मृतिर्भ्रूणस्य योदरे। जमीनमौत तत्प्रोक्तं शूल्यं तुल्यं विघातकृत्॥ १५॥
अचलं जडवत्तिष्ठेन्नार्यसाक्षयकारकम्। इर्वाजस्तस्य कर्त्तव्यो वनिताशर्मणे शनैः॥ १६॥
हिमहस्तपदं तस्या शीतबाधा भवेद्भृशम्। मन्दाग्निबलहानिश्चानुत्साहः श्वाससंभवः॥ १७॥
व्यथा गर्भाशयस्था तु मैथुनाऽतिशयात्तथा। भवेद्रजोविकाराच्च प्रसूतेः प्रागनन्तरम्॥ १८॥
दुष्टोपारदुखारोस्याऽऽमभ्रूणं पातयत्यधः। समग्रविग्रहा भावमकालेऽपि च कल्पयेत्॥ १९॥
द्वहतवा सूतममुख्यं इस्तिस्कांश्रान्तिरेव च। अबलौ द्वौ हृदाऽऽभावो भवेद्गर्भसमाकृतिः॥२०॥
प्रदरोन्यः समाख्यातोऽसमयेर्वाक्स्वमासतः। हजजारी शवद्रक्तः पीतवर्णं विमिश्रितम्॥ २१॥
अन्तर्मुखो व्रणो घोरः सर्तानिरिहमत्स्मृतःकर्काकारः कठोरः स्याच्छोथतः सचिरंतनात्॥२२॥
अन्येऽप्यत्र विकारस्य तन्केयाखिन्नकोपजत्। तकियतचापि तबई विधेया विविधाऽगदैः॥२३॥
इति (एते श्लोकाः शुद्धा वा अशुद्धा वेति न शक्ता विवेक्तुं वयम्।)

अत्यानन्दा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति।
कर्णिन्यां कर्णिकायोनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते ॥ ८ ॥
मैथुनाचरणात्पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते।
बहुशश्चातिचरणा तयोर्बीजं न विन्दति ॥ ९ ॥
श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूयुक्ताऽतिशीतला।
चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ १० ॥

जो योनि अति मैथुनसे भी सन्तोषको प्राप्त न होवे, उसको अत्यानन्दा कहते हैं, जिसमें कफ रुधिर करके कर्णिका (कमलके भीतर जो होता है ऐसा मांसकन्द) हो, उसको कर्णिनी कहते हैं, जो योनि थोडे मैथुनसे पहले स्रवे उसको चरणा कहते हैं अर्थात् जबतक पुरुषको सुख नहीं हो उसके पहलेही द्रवीभूत होकर वीर्यका ग्रहण नहीं करे, जो योनि बहुवार मैथुन करनेसे पुरुषके पीछे द्रवे (छूटे) उसको अतिचरणा योनि कहते हैं यह कफजनित है ॥

स्राव और पातके लक्षण।

आचतुर्थात्ततो मासात्प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः।
ततः स्थिरशरीरः स्यात्पातः पञ्चमषष्ठयोः ॥ ११ ॥

पांच मास पर्य्यन्त गर्भ पतली अवस्थामें होनेसे जो स्रवे उसे स्राव कहते हैं और चौथे महीनेसे लेकर पांचवें छठे महीनेपर स्राव और शरीर बननेपर निकले उसे पात कहते हैं ॥

गर्भ अकालमें कैसे गिरे ? इस विषयमें निदानपूर्वक दृष्टान्त।

गर्भोऽभिघातविषमाशनपीडनाद्यैः पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन।

अभिघात (चोट), विषमाशन (विषमभोजन), पीडनादिक इन कारणोंसे जैसे पकाहुआ फल वृक्षसे चोट लगनेसे क्षणभरमें गिरजाता है इसी प्रकार गर्भ अभिघातादि कारणोंसे गिरता है ॥

प्रसूत होते समय मूढगर्भ कैसे होता है ? उसके लक्षण।

मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं शूलं च योनिजठरादिषु मूत्रसंगम् १२

मूढ (कुंठितगति) वायु गर्भको मूढ (टेढा) कर दे और योनि तथा पेट इनमें शूल तथा मूत्रोत्संग उत्पन्न करे (धीरे धीरे पीडासहित मूत निकले) ॥

मूढगर्भकी आठ प्रकारकी गति ।

भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः संख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम् । द्वारं निरुध्य शिरसा जठरेण कश्चित्कश्चिच्छरीरपरिवर्तितकुब्जदेहः ॥ १३ ॥ एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तिर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः । पार्श्वप्रवृत्तगतिरेति तथैव कश्चिदित्यष्टधा गतिरियं ह्यपरा चतुर्धा ॥ १४ ॥ संकीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ बीजस्तेषूर्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च योनिम् । सङ्गी च यो भवति कीलकवत्सकीलो दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरः स हि कायसंगी ॥ १५ ॥ गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो योनौ स्थितः स परिघः परिघेण तुल्यः ॥ १६ ॥

विगुण वायुसे गर्भ विपरीत (टेढा) होकर अनेक प्रकार करके योनिके द्वारमें आकर अडजाय है, उसकी आठ प्रकारकी संज्ञा है, सो इस प्रकार है—१ कोई गर्भ मस्तकसे योनिके द्वारको बन्द कर देय है, २ कोई पेटसे योनिके मार्गको रोक देय, ३ कोई शरीरके विपरीतपनेसे योनिके मार्गको रोक दे, ४ कोई एक हाथसे योनिके मार्गको रोक दे, ५ कोई मूढगर्भ दोनों हाथोंको बाहर निकालकर योनिके द्वारको रोक दे, ६ कोई गर्भ तिरछा होकर योनिके मार्ग रोक दे, ७ कोई गर्भ मन्यानाडीके मुडनेसे नीचेको मुख होय, वह योनिके द्वारको रोक दे, ८ उसी प्रकार कोई पार्श्वभंग (पसवाडेका भंग) होनेसे योनिके द्वारको रोक दे, इस प्रकार मूढगर्भके आठ प्रकारकी गति है। दूसरी चार प्रकारकी गति और होती है, उसको कहते हैं—१ संकील, २ प्रतिखुर, ३ परिघ, ४ बीज, इनमें जो गर्भ हाथ पैर ऊपरको कर मस्तकसे योनिको कीलके समान रोक दे उसको संकीलक कहते हैं, जिस गर्भके हाथ पैर खुरके सदृश बाहर निकल आवें और शरीर योनिके भीतर अटका रहे उसको प्रतिखुर कहते हैं, जो गर्भ दोनों हाथ और मस्तक आगे करके अटक जाय उसको बीजक कहते हैं और परिघ (आगड) के समान योनिमें गर्भ अटक जाए उसको परिघ कहते हैं ॥

असाध्य मूढगर्भ और गर्भिणीके लक्षण ।

अपविद्धशिरा या तु शीतांगी निरपत्रपा ।
नीलोद्धतशिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा ॥ १७ ॥

जिस गर्भिणीका मस्तक नीचेको हो जाय, देह शीतल होय तथा लज्जा जाती रहै और जिसकी कोखमें हरी नीली शिरा (नस) उठ खडी होयँ तो वह गर्भिणी उस गर्भको और गर्भ उस गर्भिणीको अन्योन्य नाश करते हैं ॥

मृतकगर्भके लक्षण ।

गर्भास्पन्दनमाधीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता ।
भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूनतांतर्मृते शिशौ ॥ १८ ॥

गर्भ हले चले नहीं, प्रसव वेदना (पीडा) बन्द होजाय, देह हरी नीली होय और जिसकी श्वासमें दुर्गंध आवे और पेटके भीतर सूजन होय अर्थात् पेटमें आंतोंके फूलनेसे पेट सूज जाय ये गर्भमें बालक मरजाय उसके लक्षण हैं ॥

गर्भमरण हेतु ।

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः ।
गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥ १९ ॥

माताके मानसिक तथा आगन्तुक दुःखसे अथवा रोगोंसे गर्भको पीडा हो वह बालक गर्भाशयमें मरजाय ॥

गर्भिणीके दूसरे असाध्य लक्षण ।

योनिसंवरणं संगः कुक्षौ मक्कल्लमेव च ।
हन्युः स्त्रियं गूढगर्भो यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ २० ॥

वायुके योगसे योनिका संकोच, गर्भका अटकना और मक्कलशूल (वातरक्तकी पीडा) तथा आक्षेपक, खांसी, श्वासादिक उपद्रव होनेसे वह गर्भिणी बचे नहीं अथवा योनिसंवरणनाम रोग ग्रन्थान्तरोंमें लिखा है सो होय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां योनिव्यापत्तिनिदानं समाप्तम् ॥

---

१ वातलान्यन्नपानानि ग्राम्यधर्म प्रजागरम् । अत्यर्थं सेवमानायां गर्भिण्यां योनिमार्गजः ॥ मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृतिम् । कुरुते रुद्धमार्गत्वात्पुनरंतर्गतोऽनिलः ॥ निरुणद्धयाशयद्वारं पीडयन् गर्भसंस्थितम् । निरुद्धवदनोच्छ्वासो गर्भश्चाशु विपद्यते ॥ विपन्नशूनसर्वाङ्गः सर्वाण्यवयवानि च । उच्छ्वासरुद्धहृदयां नाशयत्याशु गर्भिणीम् ॥ योनिसंवरणं नाम व्याधिमेनं प्रचक्षते । अन्तकप्रतिमं घोरं नारभेत चिकित्सितम् ॥ इति ॥

अथ सूतिकारोगनिदानम् ।

अंगमर्दो ज्वरः कंपः पिपासा गुरुगात्रता ।
शोथः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥ १ ॥

अंगोंका टूटना, ज्वर हो, कंप, प्यास, अंगोंका भारी होना, सूजन तथा शूल और अतिसार ये सूतिकारोगके लक्षण होते हैं ॥

प्रसूतिरोगकी उत्पत्ति ।

मिथ्योपचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात् ।
सूतिकायाश्च ये रोगा जायन्ते दारुणास्तु ते ॥ २ ॥

जिस स्त्रीके बालक प्रगट हो चुका हो ऐसी स्त्रीके मिथ्या उपचार करनेसे अथवा संक्लेश (दोषजनक अन्नपानका सेवन अथवा अत्यन्त कोप) अथवा विषमाशन अजीर्ण भोजनादिक करनेसे प्रसूतिरोग होता है वह घोर दुःखदायक है ॥

असाध्य लक्षण ।

ज्वरातिसारशोथाश्च शूलानाहबलक्षयाः ।
तन्द्रारुचिप्रसेकाद्याः कफवातामयोद्भवाः ॥ ३ ॥
कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलाग्नितः ।
ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥ ४ ॥

ज्वर, अतिसार, सूजन, शूल, अफरा और बलक्षय तथा कफ, वातजन्य रोगसे उत्पन्न होनेवाले तन्द्रा, अन्नद्वेष और मुखसे पानीका गिरना इत्यादि विकार, अशक्तता, अग्नि मंद होनेसे कृच्छ्रसाध्य होता है, इन सब ज्वरादिकोंको प्रसूतिरोग कहते हैं । इन सबमें एक रोग प्रधान होता है बाकीके उपद्रवरूप कहलाते हैं ॥

इति श्रीपंडित दत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां
सूतिकारोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ स्तनरोगनिदानम् ।

सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा दोषः प्राप्य स्तनौ स्त्रियाः ।
प्रदूष्य मांसरुधिरे स्तनरोगाय कल्पते ॥ १ ॥
पञ्चानामपि तेषां हि रक्तजं विद्रधिं विना ।
लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ २ ॥

वातादि दोष गर्भिणी अथवा प्रसूता स्त्रीके सदुग्ध अथवा अदुग्ध स्तनोंमें प्राप्त हो मांस रक्तको दुष्ट करके स्तनरोग उत्पन्न करे । स्तनरोग वात, पित्त, कफ, सन्निपात, आगंतुजके भेदसे पांच प्रकारके हैं । इन पांचोंके लक्षण रक्तविद्रधिको त्याग कर बाह्यविद्रधिके समान होते हैं, सो विद्रधिनिदान जो पीछे कह आये हैं उससे जानलेना चाहिये ॥

स्तन्य (दूध) के रोग ।

गुरुभिर्विविधैरन्नैर्दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम् ।
क्षीरं धात्र्याः कुमारस्य नानारोगाय कल्पते ॥ ३ ॥

गुर्वादिक अनेक प्रकारके अन्नसे दोष (वात पित्त कफ) दुष्ट होकर माताके दूधका नाश करे, उस दुष्टदूधसे बालकके नाना प्रकारके रोग होते हैं ॥

वातादिकसे दूषित दूधके लक्षण ।

कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम् ।
कट्वम्ललवणं पीतराजिमत्पित्तसंज्ञितम् ॥ ४ ॥
कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति सुपिच्छिलम् ।
द्विलिङ्गं द्वंद्वजं विद्यात्सर्वलिङ्गं त्रिदोषजम् ॥ ५ ॥

जो दुग्ध कसैला अथवा पानीके ऊपर तैरनेवाला होय, उसको वातदूषित जानना तथा जो कडुआ, खट्टा और खारी होकर जिसमें पीली रेखासी प्रतीत होवे उसको पित्तदूषित जानना और जो दूध सघन, चिकनासा होवे और पानीमें डालनेसे नीचेको बैठ जाय, उसको कफसे दुष्ट जानना चाहिये । दो दोषोंके लक्षण जिसमें मिले उसे द्वंद्वज जाने और जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलें उसे त्रिदोषदूषित जाने ॥

शुद्धदूधके लक्षण ।

अदुष्टं चाम्बुनि क्षिप्तमेकीभवति पाण्डुरम् ।
मधुरं चाविवर्णं च तत्प्रसन्नं विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥

जो दूध पानीमें डालनेसे मिलजाय तथा जो दूध कुछ पीला हो और मीठा होकर बेरंगका न हो उसको शुद्ध जानना ॥

अब कहते हैं कि, स्त्रियोंके दूध दीखे नहीं परंतु होता है, क्योंकि बालक पिया करते हैं, इस बातको शुक्र (वीर्य) का दृष्टान्त देकर कहते हैं—

विशस्तेष्वपि गात्रेषु यथा शुक्रं न दृश्यते ।
सर्वदेहाश्रितत्वाच्च शुक्रलक्षणमुच्यते ॥ ७॥

जैसे सर्व पुरुषोंके देहमें व्याप्त भी है परन्तु देहके काटनेसे भी शुक्र दीखता नहीं है, उसी प्रकार सब स्त्रियोंके देहाश्रित जो दुग्ध है सो भी नहीं दीखता है परन्तु निःसन्देह है सही ॥

" तदेव चेष्टयुवतेर्दर्शनात्स्मरणादपि ।
शब्दसंश्रवणात्स्पर्शात्संहर्षाच्च प्रवर्त्तते ॥ ८ ॥
सुप्रसन्नं मनस्त्वेवं हर्षणे हेतुरुच्यते ।
आहाररसयोनित्वादेवं स्तन्यमपि स्त्रियाः ॥ ९ ॥
तदेवाऽपत्यसंस्पर्शाद्दर्शनात्स्मरणादपि ।
ग्रहणाच्च शरीरस्य शुक्रवत्संप्रवर्त्तते ॥
स्नेहो निरन्तरस्तत्र प्रसवे हेतुरुच्यते ॥ १० ॥

वही शुक्र इष्ट (प्रिय) स्त्रीके देखनेसे, उसका स्मरण (याद) करनेसे उसकी वाणी सुननेसे, स्पर्श (आलिंगन) से भया जो आनन्द उस आनन्दसे प्राप्त होय है, इस जगह मनका प्रसन्न होना यही आनन्दका कारण है । शुक्रकी उत्पत्ति आहारसे होती है, सो हेतु स्तन्य (दूध) का जानना, अर्थात् दूध भी जब स्त्री अपने बालकका स्पर्श करे, देखे, उसका स्मरण करे तथा बालकको गोदमें लेनेसे दूध शुक्रके सदृश बढता है, इस जगहभी दूधके उतरनेमें स्नेह (प्यार) ही कारण है " यह श्लोक संगृहीत है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीभाषाटीकायां स्तनरोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ बालरोगनिदानम्।

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्तनः।
स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसंभवः॥ १॥

दूध पीनेवाला और अन्न खानेवाला और दूध अन्न दोनों खानेवाला ऐसे तीन प्रकारके बालक होते हैं, यदि वह अन्न और दूध दुष्ट न होयँ तो बालक निरोग रहे और ये दोनों दुष्ट होयँ तो अनेक रोग होते हैं।

वातदूषित दूधके रोग।

वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन् वातगदातुरः।
क्षामस्वरः कृशांगः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः॥ २॥

जो बालक वातदूषित दूधको पीता है उसके वातके रोग होते हैं, उसका शब्द क्षीण होजाय, शरीर कृश होय और मलमूत्र तथा अधोवायु नहीं उतरे॥

पित्तदूषित दूधके रोग।

स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान्।
तृष्णालुरुष्णसर्वांगः पित्तदुष्टं पयः पिबन्॥ ३॥

जो बालक पित्तदूषित दूधको पीवे उसके पसीना आवे, मल पतला हो जाय, कामलारोग होय तथा पित्तके और भी रोग होयँ, प्यासका लगना, सर्वांगमें दाह आदि अनेक रोग होयँ॥

कफदूषितदूधके रोग।

कफदुष्टं पिबन् क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान्।
निद्रार्दितो जडः शूनः शुक्लाक्षश्छर्दनः शिशुः॥ ४॥

जो बालक कफदूषित दूधको पीवे उसके मुखसे लार बहुत गिरे तथा कफके रोग होयँ, निद्रा आवे, अंग भारी होय, सूजन होय, वमन होय, खुजली चले॥

बालकोंकी अन्तर्गत पीडा जाननेका उपाय।

शिशोस्तीव्रामतीव्रां च रोदनाल्लक्षयेद्रुजम्।
स यं स्पृशेद्भृशं देशं यत्र च स्पर्शनाक्षमः॥ ५॥
तत्र विद्याद्रुजं मूर्ध्नि रुजं चाक्षिनिमीलनात्।
कोष्ठे विबंधवमथुस्तनदंशांत्रकूजनैः॥ ६॥

आध्मानपृष्ठनमनजठरोन्नमनैरपि ।
बस्तौ गुह्ये च विण्मूत्रसङ्गत्रासदिगीक्षणैः ॥
स्रोतांस्यंगानि संधींश्च पश्येद्यत्नान्मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥

बालकोंके रुदन (रोने) से उसके थोडी वा बहुत पीडा जाननी । यह बालक जिस ठिकाने बारंबार हाथ लगावे उस ठिकाने और जिस जगह औरके हाथको न लगाने दे उस ठिकाने उसके पीडा जाननी चाहिये । नेत्रोंके मूँदनेसे मस्तक पीडा जाने, मलावरोध, वमन, स्तन, (छातीको) चबाना तथा पेटका गूंजना, पेटका फूलना तथा पेटका उछलना इन लक्षणोंसे बालकके पेटमें पीडा जाननी । मलमूत्रके रुकने तथा डरनेसे और सर्वत्र देखनेसे इन लक्षणोंसे उसकी बस्ति (मूत्र-स्थान) और गुदामें पीडा जाननी, वैद्य बालकके स्रोत (नाक मुख कान आदि छिद्रों) को, हाथ पैरसे आदिले अवयवों और सन्धियोंको बारम्बार देखे तो रोगका यथार्थ ज्ञान होय ॥

"द्वन्द्वज और सन्निपातज दूषित दुग्धके रोग ।

द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं विद्यात्सर्वलिङ्गं त्रिदोषजे ।

पूर्वोक्त जो वातादिदूषित दुग्धके लक्षण कहे हैं उनमें दोषके लक्षण मिलनेसे द्वंद्वज रोग जानना और त्रिदोषके लक्षण मिलनेसे सन्निपातका रोग जानना, यह श्लोक प्रक्षिप्त है माधवाचार्यका नहीं है ॥"

कुकूणकके लक्षण ।

कुकूणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामक्षिवर्त्मनि ।
जायते तेन नेत्रं च कण्डूरं च स्रवेन्मुहुः ॥ ८ ॥
शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासाविघर्षणम् ।
शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्मोन्मीलनक्षमः ॥ ९ ॥

कुकूणक यह रोग बालकोंके दूधके दोषसे होता है, इस रोगके होनेसे बालकके नेत्रके कोएमें सूजन, नेत्र खुजावे और पानी बहे, नेत्रोंमें कीचड आनेस वह ललाट, नेत्र और नाकको रगडे, धूपके सामने देखा न जाय, उसके नेत्र खुले नहीं, इसको लौकिकमें कोथस्राव कहते हैं, यह रोग बालकोंके ही होता है सो वाग्भटमें लिखा है ॥

---

१ कुकूणकः शिशोरेव दंतोत्पत्तिनिमित्तजः ।

पारिगार्भिकके लक्षण।

मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तनं प्रायः पिबन्नपि।
कासाग्निसादवमथुतंद्राकार्श्यारुचिभ्रमैः ॥ १० ॥
युज्यते कोष्ठवृद्ध्या च तमाहुः पारिगर्भिकम्।
रोगं परिभवाख्यं च दद्यात्तत्राग्निदीपनम् ॥ ११ ॥

बालकके गर्भिणी माताका दूध पीनेसे खांसी, मंदाग्नि, वमन, तन्द्रा, अरुचि, कृशता और भ्रम ये होयँ और उसके पेटकी वृद्धि होय, इस रोगको वैद्यगण पारिगार्भिक अथवा परिभव कहते हैं। इस रोगमें अग्निदीपनकर्ता औषधि बालकको देनी चाहिये ॥

तालुकंटकके लक्षण।

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकंटकम् ॥ १२ ॥
तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते।
तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद् द्रवम्।
तृडक्षिकंठास्यरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः ॥ १३ ॥

तालुके मांसमें कफ कुपित होकर तालुकंटक रोगको करे, उसके होनेसे तालुके ऊपरका भाग नीचा हो जाय, तथा भीतरसे बालकका तालुआ बिंधजाय, इसीसे बालक स्तन (छाती) को नहीं दाबे और पीवेभी तो बडे कष्टसे पीवे, पतला मल होजाय, प्यास लगे, नेत्र कंठ मुख इनमें पीडा होय, लार गिर पडे और जो दूध पीवे उसे डाल दे ॥

महापद्मविसर्पके लक्षण।

विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो बस्तिशीर्षजः ॥ १४ ॥
पद्मवर्णो महापद्मो रोगो दोषत्रयोद्भवः।
शंखाभ्यां हृदयं याति हृदयाद्वा गुदं व्रजेत् ॥ १५ ॥

बालकोंके जो मस्तक और वस्ती (मूत्रस्थान) में विसर्प होय है वह बालकका प्राणनाशक जानना, जो विसर्प कमलके पत्रके समान लाल होय है वह महापद्म रोग त्रिदोषज है, यह कनपटीमें उत्पन्न होकर हृदय पर्यन्त जाता है अथवा हृदयमें होकर गुदापर्यन्त जाता है ॥

और विकार जो बालकोंके होते हैं उनको कहते हैं—

क्षुद्ररोगे च कथिते अजगल्ल्यहिपूतने।

ज्वराद्या व्याधयः सर्वे महतां ये पुरेरिताः ॥
बालदेहेऽपि ते तद्वद्विज्ञेयाः कुशलैः सदा ॥ १६ ॥

क्षुद्ररोगनिदानमें जो अजगल्ली और अहिपूतना कही हैं सो और ज्वरादिक सर्व रोग जो बडे मनुष्योंके होते हैं अर्थात् जिन रोगोंको पूर्व कहि आये हैं वे सब रोग बालकोंके देहमें भी होते हैं, ऐसे कुशल वैद्योंको जानना चाहिये ॥

सामान्य ग्रहजुष्टके लक्षण ।

क्षणादुद्विजते बालः क्षणात्त्रस्यति रोदिति ॥ १७ ॥
नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च ।
ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान् खादेत्कूजति जृम्भते ॥ १८ ॥
भ्रुवौ क्षिपति दंतोष्ठं फेनं वमति चासकृत् ।
क्षामोऽतिनिशि जागर्ति शूनांगो भिन्नविट्स्वरः ॥ १९ ॥
मांसशोणितगन्धिश्च न चाश्नाति यथा पुरा ।
सामान्यग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ॥ २० ॥

कभी क्षणभरमें बालक विह्वल हो जाय कभी क्षणभरमें डरे, रोवे, नख और दांतोंसे अपने शरीर और माताको खसीटे, ऊपरको देखे, दांतोंको चबावे, किल-कारी मारे, जंभाई लेय, भ्रुव (भौंह) को तिरछी करे, दांतोंसे होठोंको खाय, बारंबार मुखसे झाग डाले, वह अत्यन्त क्षीण होय, रात्रिमें सोवे नहीं, सूजन होय, मल पतला होय, स्वर बैठ जाय, उसके देहमें रुधिर मांसकीसी बास आवें जितना पहिले खाता होय उतना नहीं खाय, ये सामान्य ग्रहव्याप्त बालकके लक्षण हैं । अब कहते हैं कि, स्कन्दादिक ग्रह पूजाके अर्थ बालकोंको मारे हैं सो चरकमें लिखा है ॥

स्कन्दग्रहगृहीतबालकके लक्षण ।

एकनेत्रस्य गात्रस्य स्रावः स्पन्दनकंपनम् ।
अर्द्धदृष्ट्या निरीक्षेत वक्रास्यो रक्तगंधिकः ॥ २१ ॥
दंतान् खादति वित्रस्तः स्तन्यं नैवाभिनंदति ।
स्कंदग्रहगृहीतानां रोदनं चाल्पमेव च ॥ २२ ॥

---

१ धात्रीमात्रोः प्राक्प्रदिष्टोपचाराच्छौचभ्रंशान्मंगलाचारहीनान् ।
क्लिष्टांस्त्वांस्तांस्तर्जितांस्ताडितांश्च पूजाहेतोर्हिंस्युरेते कुमारान् ॥

बालकके एक नेत्रसे पानी गिरे और अंगमें स्राव (पसीना) बहे, एक ओरका अंग फडके तथा थर थर कांपे, वह बालक आधी दृष्टिसे देखे, मुख टेढा होजाय, रुधिरकीसी दुर्गंध आवे, वह बालक दाँतोंको चबावे, अंग शिथिल होजाय, स्तनको नहीं पीवे और थोडा रोवे, ये स्कन्दग्रह लगे बालकके लक्षण हैं। इस जगह स्कन्दग्रह करके शिवजीके प्रगट करे जो ग्रह हैं उनमेंसे, श्रीशिवपुत्र स्वामिकार्तिकका ग्रहण न करना चाहिये ॥

स्कन्दापस्मारके लक्षण ।

नष्टसंज्ञो वमेत्फेनं संज्ञावानतिरोदिति ।
पूयशोणितगन्धित्वं स्कंदापस्मारलक्षणम् ॥ २३ ॥

बालक बेसुधि होय, मुखसे झाग डाले, जब होश हो तब रोवे, उसकी देहमें रुधिरकीसी दुर्गंधि आवे इन लक्षणों करके स्कन्दापस्मारके लक्षण जानने ॥

शकुनिग्रहके लक्षण ।

स्रस्तांगो भयचकितो विहंगगन्धिः संस्रावव्रणपरिपीडितः समन्तात् ।
स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या॥

शकुनिग्रहसे पीडित बालकके अंग शिथिल होयँ, भयसे चकित होयँ, उसके अंगमें पक्षीके अंगके समान बास आवे, घाव होकर उसमेंसे लस बहे, सर्व अंगोंमे फोडे उत्पन्न होयँ और ये पकें तथा दाह होय ॥

रेवतीग्रहके लक्षण ।

व्रणैः स्फोटैश्चितं गात्रं पंकगंधमसृक्स्रवेत् ।
भिन्नवर्चा ज्वरो दाहो रेवतीग्रहलक्षणम् ॥ २५ ॥

रेवतीग्रहसे पीडित बालकके अंगमें घाव और फोडे होयँ, उनमेंसे रुधिर बहे, उनमें कीचकीसी बास आवे, दस्त होय, ज्वर होय और अंगमें दाह होय ॥

पूतनाग्रहके लक्षण ।

अतिसारो ज्वरस्तृष्णा तिर्यक्प्रेक्षणरोदनम् ।
नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नः स्रस्तः पूतनया शिशुः ॥ २६ ॥

पूतना ग्रहकी पीडासे बालकको दस्त, ज्वर, प्यास होय, टेढी दृष्टिसे देखे, रोवे, सोवे नहीं, व्याकुल होय, शिथिल होजाय ये लक्षण होते हैं ॥

अंधपूतनाग्रहके लक्षण ।

छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णा वसागंधोऽतिरोदनम् ।
स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्चाप्यंधपूतनया भवेत् ॥ २७ ॥

---

१ तदुक्तं हिरण्याक्षेण—संस्रावदाहपाकाद्यैश्चितः स्फोटैर्भयाऽन्वितः ।
स्रस्तांगो विस्रगंधिः स्याच्छकुन्या पीडितः शिशुः ॥

अंधपूतना ग्रहकी पीडासे बालकके वमन होय, खांसी, ज्वर, प्यास, चर्बीकीसी दुर्गंध, बहुत रोना,स्तन्य (छातीको) मुखसे दाबे नहीं, अतिसार यह लक्षण होते हैं॥

शीतपूतनाग्रहके लक्षण ।

वेपते कासते क्षीणो नेत्ररोगो विगंधिता ।
छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनया शिशुः ॥ २८ ॥

शीतपूतना ग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी कांति क्षीण होजावे, उसके नेत्ररोग होय, देहमें दुर्गंध आवे, वमन होय और दस्त होयँ ॥

मुखमण्डिकाग्रहके लक्षण ।

प्रसन्नवर्णवदनः शिराभिरिव संवृतः ।
मूत्रगन्धिश्च बह्वाशी मुखमण्डिकया भवेत् ॥ २९ ॥

मुखमंडिका ग्रहकी पीडासे बालकक मुखकी कांति सुंदर होय और देहकी कांति श्रेष्ठ होय, शिराओंमें बँधा देह होजाय, उसके देहमें मूत्रकीसी दुर्गंध आवे यह बालक बहुत भक्षण करे ॥

नैगमेयग्रहके लक्षण ।

छर्दिस्यन्दनकण्ठास्यशोषमूर्च्छाविगन्धिताः ।
ऊर्ध्वं पश्येद्दशेद्दन्तान्नैगमेयग्रहं वदेत् ॥ ३० ॥

वमन, कफ, कंठ-मुखका सूखना, मूर्च्छा, दुर्गंध, ऊपरको देखे, दांतोंको चबावे इन लक्षणोंसे नैगमेयग्रहकी बाधा जाननी ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थदीपिकायां माथुरीभाषाटीकायां बालरोगनिदानं समाप्तम् ॥

अथ विषरोगनिदानम् ।

स्थावरं जंगमं चैव द्विविधं विषमुच्यते ।
मूलात्मकं तदाद्यं स्यात्परं सर्पादिसम्भवम् ॥ १ ॥

विष दो प्रकारका है-स्थावर और जंगम, तथा मूलात्मक स्थावर और सर्पादिकोंसे जो प्रगट हो वह जंगम विष होता है ॥

दशाधिष्टानमाद्यं तु द्वितीयं षोडशाश्रयम् ।

आद्य अर्थात् स्थावर विष दश जगह रहता है और जंगम विष सोलह जगह रहता है ॥

मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वक्क्षीरं सार एव च।
निर्यासा धातवश्चैव कन्दश्च दशमः स्मृतः॥ २॥

जड, पात, फल, फूल, छाल, दूध, रस, गोंद, धातु और कन्द ये दश स्थावर विष हैं। तहां मूलविष आठ—क्लीतक, अश्वमार गुंज, सुगंध, गर्गर, छकरघाट, विद्युच्छिखा और विजिया ये हैं। विषपत्रिका, लम्बावर, दारुक, करम्भ, महाकरंभ ये पांच पत्रविष हैं। कुमुद्वती, वेणुका, करम्भ, महाकरंभ, कर्काटक, रेणुक, खद्योतक, चमरी, इभगंधा, सर्पघाती, नन्दन, सारपाकिनी ये बारह फलविष हैं। पत्र, कदंब, वाल्लिज, करम्भ, महाकरम्भ ये पांच पुष्पविष हैं। अंत्रपाचक, कर्तरीय, सौरीय, ककरघाट, करम्भ, नन्दन, वराटक ये सात त्वचारस (गोंद) के विष हैं, कुमुदघ्नी, स्नुही जालक्षीरी ये तीन दूधके विष हैं। फेणाश्मभस्म और हरिताल ये धातुविष हैं। कालकूट, वत्सनाभ, सर्षपक, पालक, कर्दमक, वैराटक, पुस्तक, भृंगीविष प्रपौंडरीक, मूलक, हलाहल, महाविष कर्कट ये तेरह कन्दविष हैं। सब मिलकर स्थावर विष पचपन (५५) हैं॥

विषके स्थान।

जंगमस्य विषस्योक्तान्याधिष्ठनानि षोडश।
समासेन मया यानि विस्तरस्तेषु वक्ष्यते॥ ३॥

जंगम विषके स्थान सोलह हैं, सो मैंने संक्षेपसे कहे हैं, अब विस्तारसे कहता हूँ—दृष्टि, श्वास, दांत, नख, मूत्र, विष्ठा, शुक्र, लार, आर्तव, मुख, संदंश, विशर्द्धित (पादना), गुदा, हड्डी, पित्त, शूकशव ये सोलह स्थान हैं। तहां दृष्टि, निश्वास विष दिव्य है सो दिव्य सर्पादिकका जानना। भीम विष दंष्ट्राविष है, बिलाव, कुत्ता, बन्दर, मगर, मेंढक, मच्छी, जलगोधिका, शंबूक (शीप), पचालक, छिपकरी, मोहारकी मक्खी, पीली मक्खी, ततैया इनसे आदि ले ये जनावर दंष्ट्रा और नख विषवाले हैं। चिंपिठ, पिच्चटक, कषाय, वासिग, सर्षप, तोटववर्च, कोडकौटिल्यक इन जानवरोंके विष्ठा और मूत्रमें विष होता है। इनको लोकप्रसिद्ध नामसे जानना। मूसेके शुक्रमें विष होता है। मकरी आदि जो कीट है सो लूता कहे जाते हैं। इनके लार, मूत्र, विष्ठा, मुख, नख, शुक्र, आर्तव इनमें विष होता है। बिच्छू, विश्वंभर, ततैया, राजिलमछली, चिटिंग, समुद्रका बिच्छू इनकी पूंछमें जो कांटा होता है उसमें विष होता है। चित्रशिर, शरावकुर्दि, शतदारुक, आदिमेदक, शारिकामुख, मुखदंशक इनके मूत्रपुरीषमें विष जानना। मक्खी कणव जोंक इनके मुख और काटनेमें विष है। विषसे मरेहुएकी हड्डी, सर्पकी हड्डी विषेली

मछली इनकी हड्डीमें विष है । शकुली नामकी मछली रक्तराजी और चरकी नामकी मछली इनके पित्तसें विष हैं । सूक्ष्मतुंड, चेंटि, बहर, कनखजूरा, शुक, मोर, तोता इनके तुंड अर्थात् मुखके अग्रभागमें विष है । कीट और सर्प इनके मरे देहमेंही विष है और जिनकी गणना यहां नहीं की उनको मुखके संदंशवालोंमें जानना । ये जंगमविषके स्थान हैं ॥

जंगमविषके सामान्य लक्षण ।

निद्रा तन्द्रा क्लमं दाहमपाकं रोमहर्षणम् ।
शोथं चैवातिसारं च कुरुते जंगमं विषम् ॥ ४ ॥

निद्रा, तन्द्रा, क्लम, दाह, अन्नका न पचना, रोमाञ्च, शोथ और अतिसार ये लक्षण जंगमविषके हैं ॥

स्थावरविषके सामान्य लक्षण ।

स्थावरं तु ज्वरं हिक्कां दंतहर्षं गलग्रहम् ।
फेनच्छर्द्यरुचिश्वासं मूर्च्छां च कुरुते भृशम् ॥ ५ ॥

स्थावरविषसे ज्वर, हिचकी, दांतोंका घिसना, गलेका घिरना, झागसे मिली रद्द, अरुचि, श्वास और अत्यन्त मूर्छा ये लक्षण होते हैं ॥

राजा किंवा कोई दूसरा बडा सेठ साहूकार जिसको समीपके रहनेवाले किसी नौकर चाकरने विष मिलाकर अन्न दिया हो उस विष देनेवालेके ढूंढनेके निमित्त कुछ लक्षण कहता हूँ-

इंगितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः ।
जानीयाद्विषदातारमेतैर्लिङ्गैश्च बुद्धिमान् ॥ ६ ॥
न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षुर्मोहमेति च ।
अपार्थं बहुसंकीर्णं भाषते चापि मूढवत् ॥ ७ ॥
हसत्यकस्मात्स्फोटयत्यंगुलीं विलिखेन्महीम् ।
वेपथुश्चास्य भवति त्रस्तश्चान्योन्यमीक्षते ॥ ८ ॥
विवर्णवक्त्रा क्षामश्च नखैः किंचिच्छिनत्त्यपि ।
आलभेतासनं दीनः करेण च शिरोरुहम् ॥
वर्तते विपरीतं च विषदाता विचेतनः ॥ ९ ॥

मनुष्यके अभिप्राय जाननेवाले बुद्धिमान् वैद्य बोलने चालने तथा मुखकी चेष्टा इनसे तथा आगे जो कहते हैं इन लक्षणोंसे विषके देनेवाले मनुष्यको जान ले ।

सो इस प्रकार—जो मनुष्य विष दे उससे कोई बात पूछे तो वह उत्तर न दे और जब बोले तब मोहको प्राप्त हो अर्थात् घबडा जावे तथा कदाचित् बोले भी तो निरर्थक और बहुत अस्पष्ट बोले तथा अकस्मात् हँसे, हाथकी उंगली चटकावे, पृथ्वीमें रेखा काटे, भयसे कांपे और डरकर चारों ओर वारंवार सबकी तरफ देखे, मुखकी चेष्टा जाती रहे और काला होजाय, नखोंसे कुछ तिनका आदि तोडे, गरीबके समान एकही स्थानपर बैठा रहे, माथेपर हाथ फेरे, वारंवार इधर उधर डोल कर बैठजाय, उसका चित्त ठिकाने न रहे तथा उसका चित्त भागनेको चाहे। ये लक्षण विष देनेवालेके जानने और यही लक्षण घोर अपराध करनेवालेके राजा जान लेवे ॥

मूलादिविषोंके लक्षण।

उद्वेष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च।
जृम्भणं वेपनं श्वासो मोहः पत्रविषेण तु ॥ १० ॥
मुखशोथः फलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष एव च।
भवत्युपविषैश्छर्दिराध्मानं श्वास एव च ॥ ११ ॥
त्वक्सारनिर्यासविषैरुपयुक्तैर्भवंति हि।
आस्यदौर्गंध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसंस्रवाः ॥ १२ ॥
फेनागमः क्षीरविषैर्विड्भेदो गुरुजिह्वता।
हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि।
प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत् ॥ १३ ॥

मूलविषसे रोगीके हाथ पैरोंमें पीडा और मोह होवे। पत्रविषसे जम्भाई, कंप श्वास और मोह होवे। फलविषसे मुखपर सूजन, दाह, अन्नमें अरुचि होवे। पुष्पविषसे वमन, अफरा और श्वास होवे। छाल, रस, गोंद—इनसे मुखमें दुर्गन्ध, अंगमें खरदरापन, मस्तकशूल और मुखके मार्ग कफ गिरे। दुग्धविषसे मुखमें झाग आवे, दस्त होय और जीभ जकड जावे। धातुविषसे हृदयमें पीडा होय, मूर्च्छा आवे, तालुएमें दाह होय ये विष बहुधाकरके कालान्तरमें मारनेवाले हों ॥

विषलिप्तशस्त्रहतके लक्षण।

सद्यः क्षतं पच्यते तस्य जंतोः स्रवेद्रक्तं पच्यते चाप्यभीक्ष्णम्।
कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूति क्षतान्मांसं शीर्यते यस्य चापि ॥ १४ ॥
तृष्णा मूर्च्छा ज्वरदाहौ च यस्य दिग्धाहतं मनुजं तं व्यवस्येत्।
लिंगान्येतान्येव कुर्यादमित्रैर्व्रणे विषं यस्य दत्तं प्रमादात् ॥ १५ ॥

जिस पुरुषका जखम तत्काल पकजावे तथा उसमेंसे रुधिर बहै और वारंवार पके तथा उस जखममेंसे काला सडा दुर्गंधयुक्त ऐसा मांस निकले तथा जिसमें प्यास, मूर्च्छा, ज्वर, दाह ये होवें उसके विषमें बुझे वा लिप्त शस्त्रकी जखम लगी जानना चाहिये। शत्रुओंने कपट करके जिसके व्रणमें विष डालदिया हो उसके भी येही लक्षण हैं॥

स्थावरविषको कहकर जंगममें सर्पविष ये अतितीक्ष्ण हैं.
इससे प्रथम सर्पोंकी जाति कहते हैं–

वातपित्तकफात्मानो भोगिमण्डलिराजिलाः।
यथाक्रमं समाख्याता द्व्यन्तरा द्वंद्वरूपिणः॥ १६॥

भोगी मण्डली और राजिल ये सर्प अनुक्रमसे वात, पित्त, कफप्रकृतिके हैं और जो द्व्यंतर अर्थात् दो जातिके सर्प और सर्पिणीसे प्रगट हैं वे द्व्यंतर कहाते हैं। उनकी प्रकृति द्वंद्वज है अर्थात् जिस जिस प्रकारके सर्प सर्पिणसे प्रगट हैं उसी उसी प्रकारकी प्रकृति उनकी होती है, जिनके मस्तकपर चक्र, हल, छत्र, स्वस्तिक (सतिया), अंकुश इनका चिह्न हो और जिनका फण करछीके समान चौडा हो और जल्दी चलनेवाले हों उनको भोगी अथवा राजिल सर्प कहते हैं और जो अनेक प्रकारके चकत्तोंसे चित्रविचित्र हों तथा मोटे और मन्द चलनेवाले तथा अग्नि और सूर्यकासा प्रकाश जिनका उनको मण्डली सर्प कहते हैं और जो चिकने और अनेक प्रकारकी रेखा उनके ऊपर नीचे विद्यमान हों उनको राजिल सर्प कहते हैं। इन सर्पोंकी चार जाति हैं। जिनमें मोती, चांदी, सुवर्णकीसी प्रभा होवे और जो नम्र तथा जिनकी देहमें सुगंध आवे वे ब्राह्मण जातिके सर्प हैं और जिनका स्वच्छवर्ण, क्रोधी और जिनके मस्तकपर सूर्य चन्द्रके समान छत्र तथा कमलका चिह्न होवे वे क्षत्रिय जातिके सर्प हैं। काले और हीरेके समान तथा लोहेके वर्ण हों और जिनकी धूआं और कबूतरके समान प्रभा हो वे वैश्यजातिके सर्प हैं। जिनकी देह भैंसा, चीतेके समान हो और जिनकी त्वचा कठोर हो तथा अनेक प्रकारका जिनका वर्ण होवे वे शूद्र-जातिके सर्प हैं। रात्रिके पिछले प्रहरमें राजिल जातिके सर्प विचरते हैं और रात्रिके पहिले तीन पहरोंमें मण्डली जातिक सर्प विचरते हैं और दिनमें दर्वीकर जातिके सर्प बहुधा विचरते हैं। इनमें दर्वीकर जातिके सर्प तरुण हैं और मंडली जातिके वृद्ध, राजिलजातिके मध्यम अवस्थाके हैं। इतनी जातिके सर्प निर्विष जानने। जो नोलेसे हत हैं और बालक तथा जलसे ताडित हैं और कृश, वृद्ध तथा जिनकी कांचली छूट रही हो और डररहे हों ऐसे सर्प विषरहित होते हैं॥

अब सर्पोंके भेद कहते हैं–

तहां प्रथम दर्वीकर सर्पोंके भेद कहते हैं–कृष्णसर्प, महाकृष्ण, कृष्णोदर, श्वेतकपोल, बलाहक, महासर्प, शंखपाल, लोहिताक्ष, गवेधुक, परीसर्प, खंडफण, ककुद्पद्म, महापद्म, दर्भपुष्प, दधिमुख, पुंडरीक, भ्रकुटीमुख, विष्किर, पुष्पाभिकीर्ण, गिरिसर्प, ऋतुसर्प, श्वेतोदर, महाशिरा, अलगर्द, आशीविष ये दर्वीकर जातिके सर्प हैं। आदर्शमंडल, श्वेतमण्डल, रक्तमण्डल, चित्रमण्डल, पृषत, रोध्रपुष्प, मिलिंदक, गोनस, वृद्धगोनस, पनस, महापनस, वेणुपत्रक, शिशुक, बभ्रु, कषाय, कलुष, पारावत, हस्ताभरण, चित्रक, एणीपद ये मण्डली जातिके सर्प हैं। पुण्डरीक, राजिचित्र, अंगुलराजि, बिन्दुराजि, कर्दमक, तृणतोषक, संसर्पक, श्वेतहनु, दर्भपुष्प, शक्रक, गोधूमक, किक्कसाद ये राजिल जातिके सर्प हैं। गुलगोली, शूकपत्र, अजगर, दिव्यक, वर्षाहिक, पुष्पशकली, ज्योतीरथ, क्षीरिक, पुष्पक, अहिपतानक, अन्धाहिक, गौराहिक, वृक्षेशय इतने सर्प हीनविष जानने। अब कहते हैं कि, द्वयंतर (वर्णसंकर) सर्पभी तीन प्रकार हैं–माकुली, पोटगल, स्निग्धराजि। तहां कृष्णसर्प जातिकी सर्पिणी और गोनसजातिके सर्पसे जो प्रगट हो वह माकुली कहाता है। इसी प्रकार राजिलसर्प और गोनसी जातिकी सर्पिणीसे जो प्रगट सो पोटगलसर्प कहाता है। इसी प्रकार कृष्णसर्प और राजपती जातिकी सर्पिणीसे जो प्रगटहुए सर्प उनको स्निग्धराजी कहते हैं। तहां नाकुलीसर्पमें पिताकासा विष (जहर) होय है और पोटगल स्निग्धराजी इन दोनोंमें माताकासा विष होता है। इन तीनोंके विपरीततासे दिव्येलक, लोध्रपुष्पक, राजिचित्रक, पोटगल, पुष्पाभिकीर्ण, दर्भपुष्प, वेल्लितक इन सात जातिके सर्प प्रगट होते हैं। इनमें भी प्रथमके तीन सर्पोंमें राजिल सर्पोंकासा विष होता है और शेषोंमें मण्डली सर्पोंकासा जानना। ऐसे सब मिलाकर अस्सी प्रकारके सर्प हैं। इनमें भी जिनके नेत्र, जीभ, मुख, शिर, बडे हों वह पुरुष जानने और छोटे होयँ वह स्त्री जाननी और जिनमें दोनों स्त्री पुरुषके लक्षण मिलते होयँ तथा मन्द विषवाले क्रोधरहित हों उनको नपुंसक जानना॥

भोगिप्रभृतिसर्पके काटनेपर वातादिकोंके लक्षण।

दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकारकृत्।
पीतो मण्डलिजः शोथो मृदुः पित्तविकारवान्॥ १७॥
राजिलोत्थो भवेद्दंशः स्थिरशोथश्च पिच्छिलः।
पाण्डुः स्निग्धोऽतिसान्द्रासृक् सर्वश्लेष्मविकारवान्॥ १८॥

भोगी अथवा राजिल दर्वीकर सर्पके काटनेसे काटनेकी ठौर काली हो और सर्व वातके विकार करे। इसके सुश्रुतमें अवगुण लिखे हैं। मण्डली सर्पके काटनेकी ठौर

पीली सूजनयुक्त और नरम और पित्तके विकार करें और राजिलका दंश चिकना पीले रंगका वा गाढा तथा उसकी सूजन कठोर होय, उसमें गाढा रुधिर निकले तथा सब प्रकारके कफविकार हों ये लक्षण राजिलसर्पके काटनेके हैं ॥

विशिष्टदेशमें तथा विशिष्टनक्षत्रमें काटनेके असाध्य लक्षण ।

अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसंध्यासु चतुष्पथेषु ।
याम्ये च दष्टाः परिवर्जनीया ऋक्षे शिरामर्मसु ये च दष्टाः ॥ १९ ॥

पीपलके वृक्षके नीचे, देवताओंके मन्दिरमें, मसानमें, बँमईमें सन्ध्याकाल (प्रातः और सायंकालकी सन्धि), चौराहेमें, भरणी नक्षत्रमें, चकारसे आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, मघा, कृत्तिका ये नक्षत्रोंमें शिरानाडीके मर्ममें सर्पके काटनेसे मनुष्य बचे नहीं ॥

गर्मी होनेसे विषका जोर होता है उसके लक्षण ।

दर्वीकराणां विषमाशु हंति सर्वाणि चोष्णे द्विगुणीभवन्ति ।

दर्वीकर (नाग) का विष तत्काल प्राणनाश करे और विष गर्मीके योगसे दुगुना जोर करते हैं ॥

अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालेषु वृद्धेषु बुभुक्षितेषु ।
क्षीणक्षते मेहिनि कुष्ठदुष्टे रूक्षेऽबले गर्भवतीषु चापि ॥ २० ॥

अजीर्ण पित्त और सूर्यकी घाम इनसे पीडित, बालक, वृद्ध, भूखा, क्षीण होगया हो, उरःक्षती, प्रमेहवाला, कोढी, रूखा, निर्बल और गर्भिणी इनको सर्पके काटनेसे तत्काल मृत्यु हो ॥

सर्पके काटनेसे असाध्य लक्षण ।

शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमस्ति राज्यो लताभिश्च न सम्भवंति ।
शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ॥ २१ ॥

जिसको विषका अमल चढ गया हो उसके शस्त्रके घाव करनेसे रुधिर निकले नहीं अथवा चाबुक मारनेसे अंगमें उपडे नहीं अथवा शीतल पानी अंगपर डालनेसे रोमांच न हों उस मनुष्यका जहर उतारनेका उद्योग न करै ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

जिह्मं मुखं यस्य च केशशातो नासावसादश्च सकंठभंगः ।
रक्तः सकृष्णः श्वयथुश्च दंशे हन्वोः स्थिरत्वं च विवर्जनीयः ॥ २२ ॥

जिसका मुख टेढा और स्तब्ध हो जाय, केश (बाल) स्पर्श करनेसे टूट २ कर गिर पडें, नाककी हड्डी टेढी हो जाय, नाड नीचेको झुक पडे, ऊंची न होय और

काटनेकी जगह सूजन होय तथा वह दंश स्थान लाल अथवा काला होय तथा स्थिर होय उस रोगीको त्यागदेय ॥

वर्तिर्घना यस्य निरेति वक्राद्रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य।
दंष्ट्राभिघाताश्चतुरस्य यस्य तं चापि वैद्यः परिवर्जयेत्तु ॥ २३ ॥
उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं चाप्यथवा विवर्णम्।
सारिष्टमत्यर्थमवेगिनं च जह्यान्नरं तत्र न कर्म कुर्यात् ॥ २४ ॥

जिसके मुखसे गाढी लारकी बत्ती गिरे और नाक मुखके मार्ग तथा गुदाके मार्गसे रुधिर निकले और जिसके चार दांत लगे होयँ उसको त्याग देय, अत्यन्त उन्मत्त हो गया हो अथवा ज्वर अतिसार आदि उपद्रवोंकरके पीडित हो, बोलनेमें असमर्थ हो जिसके देहका वर्ण काला हो गया हो, नासाभंगादि अरिष्टयुक्त, जिसका वेग (लहर) आवे नहीं, ऐसा अथवा विष्ठा मूत्रादि वेगरहित ऐसे विषवाले पुरुषको त्याग देय अर्थात् उसका उपचार चिकित्सा न करे ॥

दूषित विषके लक्षण।

जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा।
स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥ २५ ॥

जो विष पुराना हो गया हो अथवा विषकी नाशक औषधसे हतवीर्य होनेसे अथवा दावाग्नि, वायु, गरमी, अग्नि इनसे सूखी हुई अथवा जो स्वभावसे गुणरहित हैं ऐसे स्थावर जंगमात्मक विष दूषीविषताको प्राप्त होते हैं ॥

दूषीविषके उपद्रव।

वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्कफान्वितं वर्षगणानुबंधि।
तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो विगंधिवैरस्ययुतः पिपासी ॥ २६ ॥
मूर्च्छां भ्रमं गद्गदवाग्वमित्वं विचेष्टमानोऽरतिमाप्नुयाद्वा ॥ २७ ॥

वे दूषीविष अल्पवीर्य होनेसे मारक नहीं होते, किन्तु कफसम्बन्ध होनेसे उष्णादि गुण मन्द होकर बहुत वर्षपर्यंत गर (विष) रूप होकर रहते हैं। उस विषसे पीडित हुए पुरुषके दस्त होते हैं उसका वर्ण पलट जाय, उसके मुखसे बुरी दुर्गंध निकले, उसके मुखका स्वाद जाता रहे, प्यास लगे, मूर्च्छा आवे, भ्रम होय, वह बोलते समय अक्षर चबावे, वमन करे, विरुद्ध चेष्टा करे और उसको चैन नहीं पडे ॥

स्थानभेदकरके उसके विशिष्ट लक्षण।

आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्काशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ।
भवेत्समुद्धस्तशिरोरुहांगो विलूनपक्षस्तु यथा विहंगः ॥ २८ ॥

पूर्वोक्त विष आमाशयमें स्थित होनेसे कफवातजन्य रोग होय और पक्काशयमें आनेसे वातपित्तजन्य विकार होय तथा उस रोगीके मस्तकके और सब देहके बाल उडकर पंखरहित पक्षी (पखेरू) के समान हो जाय ॥

निद्रा गुरुत्वं च विजृम्भणं च विश्लेषहर्षावथवांगमर्दः ।
ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मण्डलकोठजन्म ॥ २९ ॥
मांसक्षयं पादकरप्रशोथं मूर्च्छां तथा छर्दिमथातिसारम् ।
दूषीविषं श्वासतृषौ च कुर्याज्ज्वरप्रवृद्धिं जठरस्य चापि ॥ ३० ॥
उन्मादमन्यज्जनयेत्तथान्यद्दाहं तथान्यत्क्षपयेच्च शुक्रम् ।
गाद्गद्यमन्यज्जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान्विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥ ३१ ॥

दूषीविषके प्रभावसे निद्रा, भारीपन, जंभाई, अंग शिथिल, रोमांच, अंगोंका टूटना ये प्रथम होकर तदनन्तर भोजनके उपरांत हर्ष होना, अन्न पचे नहीं, अरुचि, देहमें चकत्ते तथा गांठ उठें, मांसक्षय, हाथपैरोंमें सूजन, मूर्च्छा, वमन, दस्त, श्वास, प्यास, ज्वर, उदररोग ये विकार होयँ तथा अनेक प्रकारके रोग होयँ सो इस प्रकार–किसीसे उन्माद रोग होय और किसीसे दाह होय, कोई नपुंसकत्व करे और कोई गद्गदवाणी करे, कोई कुष्ठरोग करे और विसर्प विस्फोट आदि अनेक प्रकारके रोग होयँ ॥

दूषीविषकी निरुक्ति ।

दूषितं देशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः ।
यस्मात्संदूषयेद्धातूंस्तस्माद्दूषीविषं स्मृतम् ॥ ३२ ॥

देश काल और अन्न और दिवा निद्रा इनसे वारंवार दूषित हुए विष धातुओंको दुष्ट करे, इसीसे इसको दूषीविष कहते हैं । दूषीविष दो प्रकारका है–एक कृत्रिम और दूसरा गरसंज्ञक । जो विष पदार्थोंसे बनाया जाय वह कृत्रिम और निर्विष द्रव्योंके संयोगसे होय उसको गर कहते हैं । सो वृद्धकाश्यपने[1] और चरकने[2] लिखा है ॥

---

१ वृद्धकाश्यपः–संयोगजं तु द्विविधं तृतीयं विषमुच्यते। गरः स्यादविषस्तत्र सविषं कृत्रिमं मतः ॥ २ चरकः–दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे । इति ॥

इन दोनों विषोंका लक्षण।

सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदरजोनानांगजान्मलान्।
शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान्प्रयच्छंत्यन्नमिश्रितान्॥ ३३॥
तैः स्यात्पाण्डुः कृशोऽल्पाग्निर्ज्वरश्चास्योपजायते।
मर्मप्रधमनाध्मानं हस्तयोः शोथलक्षणम्॥ ३४॥
जाठरं ग्रहणीदोषो यक्ष्मगुल्मक्षयज्वराः।
एवंविधस्य चान्यस्य व्याधेर्लिङ्गानि निर्दिशेत्॥ ३५॥

घरका अधिकार स्वाधीन करनेको दुष्ट जनोंके कहनेसे पतिको वशीकरण करनेके निमित्त स्त्री अपने पतिको पसीना, आर्तव (रजोदर्शनका रुधिर) तथा अपनी देहके अनेक अंगोंका मैल अन्नमें मिलाकर खिलाती हैं। अथवा शत्रुकृत विषके प्रयोग अर्थात् वैरी विष अथवा विषके अन्न तथा जलमें मिलाकर खवाय देय, इससे मनुष्य पीला और कृश होय, उसकी अग्नि मन्द होय, सब मर्मोंमें पीडा, पेट फूलजाय, हाथोंमें सूजन, उदररोग, ग्रहणीरोग, राजयक्ष्मा, गुल्म, क्षय, ज्वर इन रोगोंके तथा इसी प्रकारके रोगोंके लक्षण होते हैं।

दूषीविषके साध्यादि लक्षण।

साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोषितम्।
दूषीविषमसाध्यं तु क्षीणस्याहितसेविनः॥ ३६॥

दूषीविष पेटमें जानेसे तत्काल उपाय करनेसे और रोगी पथ्यसे रहनेसे साध्य है। और वर्ष दिन व्यतीत हो जाय तो याप्य जानना। और क्षीण तथा अपथ्य सेवन करनेवालेके असाध्य होय॥

लूताविषकी उत्पत्ति।

यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिंदवः।
तस्माल्लूताः प्रभाष्यन्ते संख्यया तास्तु षोडश॥ ३७॥

विश्वामित्रराजा वसिष्ठकी कामधेनु जबरदस्ती लेकर चला, उस समय वसिष्ठजीको क्रोध आया, उससे ललाटमें पसीनेके बिंदु निकले, सो समीप जो कटे तृण गौके चरनेके अर्थ पडे थे उनपर वे बिंदु पडे, इसीसे लूता (मकडी) प्रगट हुई, इन मकडियोंकी सोलह जाति हैं। इन सोलहोंके भी दो भेद हैं एक कृच्छ्रसाध्य दूसरी असाध्य॥

उनके काटनेके सामान्य लक्षण।

ताभिर्दष्टे दंशकोथः प्रवृत्तिः क्षतजस्य च।
ज्वरो दाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः॥ ३८॥
पिडिका विविधाकारा मण्डलानि महांति च।
शोथा महान्तो मृदवो रक्तश्यावाश्चलास्तथा॥
सामान्यं सर्वलूतानामेतद्दंशस्य लक्षणम्॥३९॥

उन मकडियोंके काटनेसे वह स्थान सडे और उसमेंसे रुधिर बहे, ज्वर, दाह अतिसार और त्रिदोषज तथा अनेक प्रकारके फोडे, बडे बडे चकत्ते नरम लाल काली नीली और चञ्चल ऐसी सूजन होय इत्यादि लक्षण होते हैं, इस प्रकार सब लूताओंके सामान्य लक्षण जानने॥

दूषीविषलूताके काटनेके लक्षण।

दंशमध्ये तु यत्कृष्णं श्यावं वा जालकावृतम्॥ ४०॥
ऊर्ध्वाकृति भृशं पाकं क्लेदकोथज्वरान्वितम्।
दूषीविषाभिर्लूताभिस्तं दष्टमिति निर्दिशेत्॥ ४१॥

जिस दंशका मध्यभाग काला अथवा नीला अथवा हरा तथा जालके सदृश ऊंचा होकर शीघ्र पके तथा उसमेंसे दुर्गंधयुक्त लस बहे, उसमें ज्वर होय उसको दूषीविष अथवा लूताका काटा हुआ जानना।

प्राणहरलूताके लक्षण।

सर्पाणामेव विण्मूत्रशवकोथसमुद्भवाः।
दूषीविषाः प्राणहरा इति संक्षेपतो मताः॥ ४२॥
शोथाः श्वेताऽसिता रक्ताः पीताः सपिडिका ज्वराः।
प्राणान्तिकाभिर्जायन्ते दाहहिक्काशिरोग्रहाः॥ ४३॥

सर्पोंके मलमूत्रसे अथवा मरे हुए सर्पके सडजानेसे जो दूषीविषके कीडे उत्पन्न होयँ वे प्राण हरनेवाले होते हैं, उनका काटा हुआ स्थान सूज जावे तथा वह सफेद काला लाल पीला होय और फुन्सी हो जायँ और रोगीको ज्वर आवे, दाह होय, हिचकी आवे, मस्तकमें शूल होय॥

दूषीविषाखुलक्षण।

आदंशाच्छोणितं पाण्डु मण्डलानि ज्वरोऽरुचिः।
लोमहर्षश्च दाहश्चाप्याखुदूषीविषार्दिते॥ ४४॥

विषैले आखु (मूसे) के काटनेसे पीला रुधिर निकले, देहमें गोल चकत्ते उठें, ज्वर होय, अरुचि होय, रोमांच और दाह होय, ये मूसेके काटनेके विषपीडित मनुष्यके लक्षण हैं ॥

प्राणहरमूषकविषके लक्षण।

मूर्च्छाऽङ्गशोथो वैवर्ण्यं क्लेदो मन्दश्रुतिर्ज्वरः।
शिरोगुरुत्वं लालासृक्छर्दिश्चासाध्यमूषकैः ॥ ४५ ॥

जिस मूसेके काटनेसे मूर्च्छा, मूसेके आकार सूजन, देहमें विवर्णता, क्लेद, मन्द सुनाई दे, ज्वर, मस्तक भारी, लार और रुधिर इनकी रद्द होय ये लक्षण प्राणहर्ता मूसेके असाध्य हैं ॥

कृकलास (सरट) के काटेके लक्षण।

कार्ष्ण्यं श्यावत्वमथवा नानावर्णत्वमेव च।
व्यामोहो वर्चसो भेदो दष्टे स्यात्कृकलासकैः ॥ ४६ ॥

सरटके काटनेसे देहका वर्ण काला अथवा नीला हरा तथा अनेक प्रकारका होय तथा उस रोगीको भ्रांति और अतिसार होय ॥

वृश्चिकविषके लक्षण।

दहत्यग्निरिवादौ तु भिनत्तीवोर्ध्वमाशु वै।
वृश्चिकस्य विषं याति पश्चाद्दंशेऽवतिष्ठति ॥ ४७ ॥

बिच्छूके काटनेसे उस स्थानमें प्रथम अग्निसी चले पीछे ऊपरको चढे पीछे काटनेकी जगह फटनेकीसी पीडा होय ॥ अब कहते हैं कि, बिच्छू मन्दविष, मध्यविष, महाविषके भेदसे तीन प्रकारका है। तिनमें जो गौके गोवरसे प्रगट होय वह मन्दविष हैं और काठ ईंट इनसे प्रगट होय वह मध्यविष हैं और जो सर्पकी सडी देहसे प्रगट होय वह अथवा अन्य विषवाली वस्तुओंसे प्रगट होय वह बिच्छू महाविषवाला होता है, मन्दविषवाले बारह प्रकारके हैं और मध्यविषवाले तीन प्रकारके हैं और महाविषवाले पंद्रह प्रकारके हैं, ऐसे सब मिलकर तीस प्रकारके बिच्छू हैं। कोई आचार्य २७ प्रकारके कहते हैं। कृष्ण, श्याव, कर्बुर (विचित्रवर्ण), पीत, गोमूत्राभ, कर्कश, मेचक, श्वेत, लाल, रोमश, शाद्वलाभ, रक्त ये बारह मन्दवीर्य हैं, इनके काटनेसे पीडा, कंप, देहका स्तंभ, काले रुधिरका निकलना इत्यादि रोग होते हैं। रक्तोदर, पित्तोदर, कपिलोदर ये तीन मध्य विषवाले बिच्छू हैं, इनके काटनेसे जीभमें सूजन, भोजनका न होना, घोर मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं। श्वेत, चित्र, श्यामल, लोहिताभ, रक्त, श्वेत, रक्तोदर, नीलोदर, रक्त, पीत, नीलपीत, रक्तनील,

नीलशुक, रक्तवस्त्र, एकपर्वा, उपपर्वा ये घोर विषवाले १९ बिच्छू हैं। इनके काटनेसे सर्पके समान वेग, फोडोंकी उत्पत्ति, भ्रांति, दाह, ज्वर, नाक कान आदिके छिद्रोंसे काला रुधिर निकले इसीसे शीघ्र प्राणत्याग होवे ॥

वृश्चिकविषके असाध्य लक्षण ।

दष्टोऽसाध्यस्तु हृद्घ्राणरसनोपहतो नरः ।
मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनार्तो जहात्यसून् ॥ ४८ ॥

हृदय, नाक, जीभ इनमें बिच्छूके काटनेसे मांस गले, अत्यन्त वेदना होकर मनुष्य मरे ॥

कणभदष्टके लक्षण ।

विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छर्दिरथापि वा ।
लक्षणं कणभैर्दष्टे दंशश्चैवं विशीर्यते ॥ ४९ ॥

कणभ एक जातिका कीडा होता है उसके काटनेसे विसर्प, सूजन, शूल, ज्वर, वमन ये लक्षण होते हैं और वह काटनेका स्थान गलजाय ॥ अब कहते हैं कि, त्रिकंटक, कुणी, हस्तीकक्ष, उपराजित ये कणभकीडाके चार भेद हैं। इनके काटनेसे पूर्वोक्त रोग होयँ और अंगोंका टूटना, देहमें भारीपन और काटनेकी ठौर काली होजाय ये लक्षण विशेष होयँ ॥

उच्चिटिंग (झींगर) विषके लक्षण ।

हृष्टरोमोच्चिटिंगेन स्तब्धलिंगो भृशार्तिमान् ।
दष्टः शीतोदकेनेव सिक्तान्यंगानि मन्यते ॥ ५० ॥

उच्चिटिंगनामक बिच्छूके काटनेसे देहमें रोमांच होय, लिंग जकड जाय, घोर पीडा होय और सब देहपर शीतल जल मानो डाल दिया है, उच्चिटिंगको सुश्रुतवाला झींगर कहता है और कोई उष्ट्रधूम कहते हैं परन्तु आतंकदर्पण टीकाकारने बिच्छूका भेद माना है ॥

मंडूक (मेंडक) विषके लक्षण ।

एकदंष्ट्रार्दितः शूनः सरुजः पीतकः सतृट् ।
छर्दिर्निद्रा च सविषैर्मंडूकैर्दष्टलक्षणम् ॥ ५१ ॥

विषैले मेंडकके काटनेसे उसको एक दांत लगे, उस ठिकाने पीली सूजन होय, दूखे, प्यास, वमन और निद्रा ये लक्षण होयँ ॥ अब कहते हैं कि कृष्णसार, कुहक, हरित, रक्त, यववर्णाभ भृकुटी, कोटिक इन भेदोंसे मेंडक आठ प्रकारका है इनके काटनेसे पूर्वोक्त लक्षण होयँ और खुजली, मुखमें पीले झाग आना, इन

आठमें भी भ्रुकुटी और कोटिक इन दोनों मेंडकोंके काटनेसे पूर्वोक्त लक्षण होयँ और दाह, मूर्च्छा अत्यन्त होय ये विशेष लक्षण हैं ॥

विषैले मत्स्य (मछली) के विषके लक्षण ।

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोथं रुजं तथा ।

विषैले मछलीके काटनेसे दाह, सूजन और शूल ये होयँ, विषैले मछलीके सत्ताईस भेद हैं उनके नाम नहीं लिखे इस लिये कि मिले नहीं ॥

सविषजलौका (जोंक) के विषके लक्षण ।

कण्डूं शोथं ज्वरं मूर्च्छां सविषास्तु जलौकसः ॥ ५२ ॥

विषैले जोंकके काटनेसे खुजली, सूजन, ज्वर और मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं। विषैले जोंक काली, विचित्रवर्णकी, जलगर्दा, इन्द्रायुधा, सामुद्रिका, गोचन्दना इन भेदोंसे छः प्रकारकी है। इनमें भी अंजनचूर्णवर्णा और पृथुशिराके भेदसे काली जोंक दो प्रकारकी है। बर्म्मि मछलीके समान लम्बी छिन्नोन्नत कुक्षिके भेदसे विचित्रवर्णकी जोंक दो प्रकारकी है। रोमशा, महापार्श्वा, कृष्णमुखी इन भेदोंसे अलगर्दा जोंक तीन प्रकारकी है-इन्द्रधनुषके समान ऊपरसे विचित्र होयँ वह इन्द्रायुधा जोंक है, कुछ सफेद और पीला तथा विचित्रपुष्पके समान चित्रित ये दो भेद सामुद्रिका जोंकके हैं और बैलके अंडकोशके समान नीचेसे दो भाग होवें उसको गोचन्दना कहते हैं ॥

गृहगोधिका (छिपकली) के विषके लक्षण ।

विदाहं श्वयथुं तोदं स्वेदं च गृहगोधिका ।

छिपकलीके विषसे दाह होय, सूजन, नोंचनेकीसी पीडा और पसीना आवे कोई गृहगोधिकाको भाषामें विषखपरा कहते हैं ॥

शतपदी (कानखजूरा) के विषके लक्षण ।

दंशे स्वेदं रुजं दाहं कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ ५३ ॥

कानखजूरेके काटनेसे स्थानमें पसीना आवे, शूल होय और दाह होय ॥ अब जानना चाहिये कि, परुषा, कृष्णा, चित्रा, कपीलिका, पित्तिका, रक्ता, श्वेता, अग्निप्रभा ये शतपदीके आठ भेद हैं। इनमेंसे छः तो पूर्वोक्त लक्षण करती हैं और श्वेता तथा अग्निप्रभा दो जातिकी शतपदीके काटनेसे दाह और मूर्च्छा अधिक होय ये विशेष लक्षण जानना ॥

मशक (मच्छर वा डांस) के विषके लक्षण ।

कण्डूमान्मशकैरीषच्छोथः स्यान्मन्दवेदनः ।

मच्छर अथवा डांसके काटनेसे किंचित् सूजन होय उसमें खुजली चले तथा

थोडी पीडा होय, सामुद्र, परिमण्डल हस्तिमस्तक, कृष्णा, पार्वतीय ये पांच भेद मच्छरोंके हैं ॥

असाध्य मशकक्षतके लक्षण।

असाध्यकीटसदृशमसाध्यमशकक्षतम् ॥ ९४ ॥

पर्वतके ऊपर रहनेवाले मच्छर अथवा डांसके काटनेके क्षत असाध्य कीटके समान असाध्य है। असाध्य कीटके विषके लक्षण सुश्रुतमें लिखे हैं सो जान लेने ॥

सविषमक्षिका (मक्खी) दंशके लक्षण।

सद्यः प्रस्राविणी स्याद्वा दाहमूर्च्छाज्वरान्विता।
पिडिका मक्षिकादंशे तासां तु स्थविकाऽसुहृत् ॥ ९५ ॥

विषैले मक्खीके काटनेके ठिकाने काली फुन्सी प्रगट होय, वह तत्क्षण बहने लगे, उस ठिकाने दाह होय और मूर्च्छा, ज्वर होय। इनमें स्थविका नाम मक्खी प्राण-हर्त्री जाननी। मक्खीके छः भेद हैं—जैसे कान्तारिका, कृष्णा, पिंगलिका, मधूलिका, काषायी और स्थविका, इनमें काषायी और स्थविका दो असाध्य हैं ॥

चतुष्पादादिकोंके विषके साधारण लक्षण।

चतुष्पद्भिर्द्विपद्भिर्वा नखदन्तविषं च यत्।
पूयते पच्यते चापि स्रवति ज्वरयत्यपि ॥ ९६ ॥

व्याघ्रआदि चतुष्पाद और वनमनुष्यादि वानरादि द्विपाद इनके नखदांतोंके विषसे सूज आवे, पकजावे, बहे तथा इसके योगसे ज्वर आवे ॥ अब कहते हैं कि, श्रीमाधवाचार्यने विश्वंभरा, अहिंडुका, कण्डूमका, शुक्रवृन्तादि, पिपीलिका, गोधेरका और सर्षपिका इनके विषका निदान नहीं लिखा परन्तु इनका निदान सुश्रुतमें कहा है सो ग्रन्थकी परिशिष्टमें लिखेंगे ॥

विष उतरगया हो उसके लक्षण।

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकांक्षं सममूत्रविट्कम्।
प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥ ९७ ॥

जिस पुरुषके वातादि दोष निर्मल होयँ, रस रक्तादि धातु निरोग अवस्थामें जैसे होते हैं वैसेही होयँ, अन्न खानेकी इच्छा होय, मलमूत्र जैसे होते हैं वैसे होय शरीरका वर्ण, इन्द्रिय मन और व्यापार (देहकी चेष्टा) ये जिसके शुद्ध होयँ उसका विष उतरगया ऐसे वैद्य जाने ॥

इति श्रीमाथुरकुलकमलप्रकाशकश्रीमत्कन्हैयालालपाठकतनयदत्तरामानिर्मित-माधवभावार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां विषरोगनिदानं समाप्तम् ॥

इति माधवनिदानं समाप्तम् ॥

श्रीः ।

परिशिष्ट (ग्रंथशेष) ।

विदित हो कि माधवाचार्य भिषकशिरोमणिजीने बहुतसे रोगोंके निदान स्वग्रन्थमें नहीं लिखे परन्तु उन रोगोंके निदानोंसे बहुधा वैद्योंको काम पडता है, इसी कारण उन निदानोंको अन्य ग्रन्थोंसे संग्रह करके इस जगह लिखते हैं। प्रथम क्लीब (नपुंसक) का निदान चरकसे लिखते हैं ॥

क्लीबके लक्षण ।

रेतोदोषोद्भवं क्लैब्यं यस्माच्छुद्धचैव सिध्यति ।
अतो वक्ष्यामि ते सम्यगग्निवेश यथातथम् ॥ १ ॥
बीजध्वजोपघाताभ्यां जरया शुक्रसंक्षयात् ।
वैक्लव्यसम्भवस्तस्य शृणु सामान्यलक्षणम् ॥ २ ॥

क्लैब्य (नपुंसक होना) केवल वीर्यके दोषसे होता है, वीर्य शुद्ध होनेसेही उसकी शुद्धि है इसी कारण हे अग्निवेश ! मैं तेरे आगे क्लीबका लक्षण कहता हूं। नपुंसक चार प्रकारके होते हैं, उनको कहते हैं-१ बीजके उपघातसे, २ ध्वजोपघातसे, ३ बुढापेसे और ४ शुक्र (वीर्य) के क्षय होनेसे जो नपुंसकता प्राप्त होती है उसके सामान्य लक्षणको तू सुन ॥

क्लैब्यके सामान्य लक्षण ।

संकल्पप्रवणो नित्यं प्रियां वश्यामथापि वा ।
न याति लिङ्गशैथिल्यात्कदाचिद्याति वा पुमान् ॥ ३ ॥
श्वासार्तः स्विन्नगात्रांसो मोघसंकल्पचेष्टितः ।
म्लानशिश्नश्च निर्बीजः स्यादेतत्क्लैब्यलक्षणम् ॥ ४ ॥

प्रिय और वशीभूत स्त्रीको भी प्राप्त होकर जो पुरुष लिंगकी शिथिलता होनेसे नित्य विषय न करे और कदाचित् करे तो जब कभी करे, वह पुरुष श्वाससे व्याकुल हो, देहमें पसीना होय, निष्फलमनोरथ और चेष्टा (विषयादि) होय, लिंग जिसका ढीला और बीजरहित होय ये नपुंसकके सामान्य लक्षण हैं ॥

बीजोपघात क्लीबके लक्षण ।

सामान्यलक्षणं ह्येतद्विस्तरेण प्रवक्ष्यते । शीतरूक्षाम्लसंक्लिष्टविषमासात्म्यभोजनात् ॥ ५ ॥ शोकचिन्ताभयत्रासात्स्त्रीणां चात्यर्थसेवनात् । अभिचारादविस्रम्भाद्रसादीनां च संक्षयात् ॥ ६ ॥ वातादीनां च वैषम्याद्विरुद्धाध्यशनाच्क्रमात् ।

नारीणामनभिज्ञत्वात्पंचकर्मापचारतः ॥ ७ ॥ बीजोपघातो भवति पाण्डुवर्णः सुदुर्बलः । अल्पप्रजोऽल्पहर्षश्च प्रमदासु भवेन्नरः॥ ८॥ हृत्पांडुरोगतमककामलाश्रमपीडितः । बीजोपघातजं क्लैब्यं ध्वजभंगकृतं शृणु ॥ ९ ॥

प्रथम जो कहे वे नपुंसकके सामान्य लक्षण हैं, अब उनको विस्तारसे कहता हूं–शीतल, रूक्ष, थोडा खटाई मिलाहुआ तथा विषम असात्म्य (अहितकारी) अन्न इत्यादि पदार्थोंके भोजन करनेसे, आदिशब्दसे खट्टा, चरपरा, कसैला पदार्थ खानेसे, शोक (सोच), चिन्ता, भय और त्रास तथा अत्यन्त स्त्रीरमण करनेसे, किसी शत्रुका अभिचार (जादू टोना) से तथा किसीका विश्वास न करनेसे रसादि धातुओंके क्षीण होनेसे, वातादि दोषोंके बढनेसे, उसी प्रकार विरुद्ध (क्षीर मत्स्यादि) भोजन, उपवास (व्रतादि) और श्रम करनेसे स्त्रीसुखके न जाननेसे, पञ्चकर्म (वमन विरेचनादि) के अपचारसे, बीजोपघात अर्थात् बीजमें किसी प्रकारका विकार होता है उसके होनेसे, बीजका वर्ण पीला होता है तथा देह दुर्बल होजाय, उस पुरुषके सन्तान थोडी हो तथा स्त्रीगमनमें इच्छा न होना, हृदयरोग और पांडुरोग होय, तमक श्वास कामला अनायास श्रम इनसे पीडित होय ये लक्षण बीजोपघात क्लीबके हैं ॥

ध्वजभंगक्लीबकी उत्पत्ति ।

अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धाजीर्णभोजनात् । अत्यम्बुपानाद्विषमपिष्टान्नगुरुभोजनात् ॥ १० ॥ दधिक्षीरानूपमांससेवनादतिकर्शनात् । कन्यानां चैव गमनादयोनिगमनादपि ॥ ११ ॥ दीर्घरोम्नीं चिरोत्सृष्टां तथैव च रजस्वलाम् । दुर्गंधां दुष्टयोनिं च तथैव च परिस्रुताम् ॥ १२ ॥ नरस्य प्रमदां मोहादतिहर्षात्प्रगच्छतः । चतुष्पदाभिगमनाच्छेफसश्चाभिघाततः ॥ १३ ॥ अधावनाद्वा मेढ्रस्य शस्त्रदंतनखक्षतात् । काष्ठप्रहारनिश्शेषशूकानां चातिसेवनात् ॥ रेतसश्च प्रतीघाताद्ध्वजभङ्गः प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥

अत्यन्त खट्टा, नोनका खार, विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि), अपक्व अन्न भोजन करनेसे तथा बहुत जल पीनेसे, विषमान्न और भारी ऐसे पदार्थोंके खानेसे, दही, दूध, जलसमीप रहनेवाले पक्षीका मांस खानेसे, व्याधिकरके कृश होनेसे, कन्याके साथ गमन करनेसे, जिसके योनि नहीं ऐसी स्त्रीके साथ गमन करनेसे अथवा

अयोनि कहिये गुदाभंजन करनेसे तथा जिसकी योनिपर बडे बाल हों और जिस स्त्रीने बहुत दिनोंसे मैथुन करना छोडदिया हो तथा रजस्वला और जिसकी योनिमें दुर्गंधि आती हो तथा दुष्टयोनि और जिसकी सोमादिरोगोंसे योनि चुचाती हो ऐसी स्त्रियोंसे मैथुन करनेसे तथा उन्मत्त होकर गमन करनेसे और अतिहर्षसे गमन करनेसे तथा चतुष्पाद (बकरी कुतिया आदि) से गमन करनेसे तथा लिंगमें किसी प्रकारकी चोट लगनेसे तथा लिंगके न धोनेसे तथा शस्त्र, दांत, नख इन करके घाव होनेसे, लकडी आदिकी चोट लगनेसे, लिंगके पिसजानेसे तथा लिंगके मोटे करनेके निमित्त शूकादि प्रयोग करनेसे अर्थात् इनका अत्यन्त सेवन करनेसे तथा वीर्यके बिगडनेसे मनुष्यके ध्वजभंग अर्थात् लिंग खडा होकर तुरंत मुरझाय यह रोग होता है ॥ इसके लक्षण आगे कहते हैं—

ध्वजभंगके लक्षण।

श्वयथुर्वेदना मेढ्रे रागश्चैवोपलक्ष्यते ॥ १५ ॥ स्फोटाश्च तीव्रा जायन्ते लिङ्गपाको भवत्यपि ॥ मांसवृद्धिर्भवेच्चापि व्रणाः क्षिप्रं भवंत्यपि ॥ १६ ॥ पुलाकोदकसंकाशः स्रावः श्यावारुणप्रभः । वलयीकुरुते चापि कठिनं च परिग्रहम् ॥ १७ ॥ ज्वरस्तृष्णा भ्रमो मूर्च्छा च्छर्दिश्चास्योपजायते । रक्तं कृष्णं स्रवेच्चापि नीलमाविललोहितम् ॥ १८ ॥ अग्निनेव च दग्धस्य तीव्रो दाहः सवेदनः । बस्तौ वृषणयोर्वाऽपि सेवन्यां वंक्षणेषु च ॥ १९ ॥ कदाचित्पिच्छिलो वापि पाण्डुस्रावश्च जायते । श्वयथुश्च भवेन्मंदस्तिमितोऽल्पपरिस्रवः ॥ २० ॥ चिरात्स पाकं व्रजति शीघ्रं वाथ प्रपद्यते । जायन्ते कृमयश्चापि क्लिद्यते पूतिगंधि च ॥ २१ ॥ प्रशीर्यंते मणिश्चास्य मेढ्रं मुष्कावथापि च । ध्वजभंगकृतं क्लैब्यमित्येतत्समुदाहृतम् । एवं पंचविधं केचिद् ध्वजभंगं वदंत्यपि ॥ २२ ॥

ध्वजभंगवाले मनुष्यके लिंगपर सूजन हो और लिंगमें पीडा हो तथा लाल हो, उसके ऊपर घोर फोडे होते हैं, तथा लिंगमें पाक हो, मांसकी वृद्धि हो लाल होय तथा लिंगमें फोडे होयँ उसमें चावलके मांडके समान और काला लाल स्राव होय कंकणके समान गोल लपेटा होय और उसकी जड कठिन होय, तथा उस पुरुषको ज्वर, प्यास, भ्रम, मूर्च्छा, वमन ये रोग हों तथा लिंगमेंसे काला नीला लोहित और

दुष्ट रुधिर निकले उसका लिंग अग्निसे दग्धके समान होजाय, मूत्राशय अंडकोश ऊरुकी सन्धियोंमें घोर दाह और पीडा होय, कभी कभी गाढा और पीला स्राव होय, सूजन मन्द और गीली होय, तथा थोडा स्राव होय देरमें पके, अथवा शीघ्रही पक जावे, उसके लिंगमें कीडे पडजायँ, क्लेदयुक्त और दुर्गंध आवे, लिंगके ऊपरकी सुपारी गलजाय, तथा लिंग और अंडकोश दोनों गलकर गिरजायँ, यह ध्वजभंग-नपुंसकके लक्षण कहे हैं॥

कोई सुश्रुतादिक आचार्य इस ध्वजभंग नपुंसकके ईर्ष्यक, सौगन्धिक, कुंभिक, आसेक्य और महाषंढ इन भेदोंसे पांच प्रकारका बतलाते हैं ॥ उनको भी प्रसंग-वशसे इस जगह सुश्रुतसे लिखते हैं।

तहां प्रथम आसेक्य नपुंसकके लक्षण।

पित्रोरत्यल्पवीर्यत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत्।
स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम्॥ १॥

मातापिताके अत्यल्पवीर्यसे जो गर्भ रहे वह पुरुष आसेक्यनाम नपुंसक होता है, वह पुरुष अन्य पुरुषसे अपने मुखमें मैथुन कराकर उसके वीर्यको खा जाय तब उसको चैतन्य अर्थात् लिंग सतर हो तब स्त्रीसे मैथुन करे इसका दूसरा नाम मुखयोनि है॥

सौगन्धिकनपुंसकके लक्षण।

यः पूतियोनौ जायेत स सौगन्धिकसंज्ञितः।
स योनिशेफसोर्गन्धमाघ्राय लभते बलम्॥ २॥

जो पुरुष दुष्टयोनिसे उत्पन्न होय, उसको योनि तथा लिंगके सूंघनेसे चैतन्यता प्राप्ति होय, उसको सौगंधिक कहते हैं, इसका दूसरा पर्यायवाचक नाम नासायोनि है॥

कुम्भिक नपुंसकके लक्षण।

स्वगुदेऽब्रह्मचर्याद्यः स्त्रीषु पुंवत्प्रवर्तते। कुम्भिकः स तु विज्ञेयः-

जो पुरुष पहले अपनी गुदा भंजन करावे तब उसको चैतन्यता प्राप्त होय तब स्त्रीके विषयपुरुषके समान प्रवृत्त होय, उसको कुम्भिक नपुंसक कहते हैं। कोई आचार्य इसका और प्रकारसे अर्थ करते हैं अर्थात् जो पुरुष लौंडेबाजी करते हैं वे प्रथम स्त्रीके पीछे बैठकर पशुके समान शिथिल लिंगसेही उसकी गुदाभंजन करें, इस प्रकार करनेसे जब चैतन्यता प्राप्त होती है तब मैथुन करें, उसका नाम कुम्भिक कहते हैं और गुदायोनी यह इसका पर्यायवाचक नाम है। इसकी उत्पत्ति काश्यपने इस प्रकार लिखी है कि, ऋतुकालमें अल्परजस्क स्त्रीसे श्लेष्म रेतवाले पुरुषके सम्भोग करनेसे उस स्त्रीका कामदेव शान्त न हो इस कारण उस स्त्रीका मन अन्य पुरुषसे सम्भोग करनेकी इच्छा करे तब उसको कुम्भिकनामक नपुंसक होता है॥

ईर्ष्यकनपुंसकके लक्षण।

—ईर्ष्यकं शृणु चापरम् ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः प्रवर्तते।
ईर्ष्यकः स तु विज्ञेयो दृग्योनिरयमीर्ष्यकः ॥ ४ ॥

जो मनुष्य दूसरेको मैथुन करते देख आप मैथुन करे उसको ईर्ष्यक नपुंसक कहते हैं। दूसरा पर्यायवाचक नाम दृग्योनि है। कोई 'दृग्योनिरयमीर्ष्यकः' इस जगह 'षण्ढकं शृणु पञ्चमम्' ऐसा पाठ कहते हैं अर्थात् षण्ढक जो पञ्चम नपुंसक उसके लक्षण सुन ॥

महाषण्ढनपुंसक लक्षण।

यो भार्यायामृतौ मोहादंगनेव प्रवर्तते।
ततः स्त्रीचेष्टिताकारो जायते षण्ढसंज्ञितः ॥ ५ ॥

जो पुरुष ऋतुकालमें मोहसे स्त्रीके सदृश प्रवृत्त होय अर्थात् आप नीचेसे सीधा हो ऊपर स्त्रीको चढाकर मैथुन करे उससे जो गर्भ रहे वह पुरुष स्त्रीकीसी चेष्टा करे और स्त्रीकी आकार होय, स्त्रीकी चेष्टा करे (आप स्त्रीके समान नीचे होकर अन्य पुरुषसे अपने लिंगके ऊपर वीर्य पतन करावे) ॥

नारीषण्ढनंपुसकके लक्षण।

ऋतौ पुरुषवद्वापि प्रवर्त्तेताङ्गना यदि।
तत्र कन्या यदि भवेत्सा भवेन्नरचेष्टिता ॥ ६ ॥

ऋतुसमय यदि स्त्री पुरुषके सदृश प्रवृत्त होय अर्थात् पुरुषको नीचे सुलाय उसके ऊपर चढ पुरुषके समान मैथुन करे, उस मैथुनसे जो कन्या प्रगट हो वह पुरुषकेसे आकारवान् होय और पुरुषकीसी चेष्टा करे (अर्थात् स्वयं स्त्रीरूप भी होकर दूसरी स्त्रीके ऊपर पुरुषके समान उसकी योनिसे अपनी योनि घर्षण करे) ये षण्ढनपुंसकके दोनों भेद हैं। इससे पांच प्रकारके ही ध्वजभंग नपुंसक जानने परन्तु चरकके मतसे नपुंसक स्त्री पुरुषके भेदसे दो प्रकारका है और जितने पुरुषके नपुंसक भेद हैं उतनेही स्त्रीके जानने ॥

उक्त श्लोकोंका संग्रह।

आसेक्यश्च सुगंधी च कुम्भिकश्चैर्ष्यकस्तथा।
सरेतसस्त्वमी ज्ञेया अशुक्रः षण्ढसंज्ञितः ॥ ७ ॥

आसेक्य, सुगन्धी, कुंभिक और ईर्ष्यक ये चारों प्रकारके नपुंसक शुक्र (वीर्य) सहित जानने और षण्ढसंज्ञक नपुंसकके वीर्य नहीं होता है वह वीर्यरहित जानना ॥

कोई शंका करे कि जब वीर्य सहित है तब आप उसको नपुंसक कैसे कहते हो ? इस वास्ते कहते हैं—

अनया विप्रकृत्या तु तेषां शुक्रवहाः शिराः।
हर्षात्स्फुटत्वमायान्ति ध्वजोच्छ्रायस्ततो भवेत् ॥ ८ ॥

इनकी विरुद्ध चेष्टाके करनेसे उनके शुक्रके बहनेवाली जो नाडी हैं सो हर्ष (आनन्द) से फूलती हैं, इससे उनको चैतन्य (लिंग सतर होना) होता है वीर्यके प्रभावसे नहीं होता, ये ध्वजभंग नपुंसकके पांच भेद हैं ॥

जरासम्भवनपुंसकके लक्षण।

क्लैब्यं जरासम्भवं हि प्रवक्ष्याम्यथ तच्छृणु।
जघन्यमध्यप्रवरं वयस्त्रिविधमुच्यते ॥ २३ ॥
अथ च प्रवरे शुक्रं प्रायशः क्षीयते नृणाम्।
रसादीनां संक्षयाच्च तथैवावृष्यसेवनात् ॥ २४ ॥
बलवर्णेन्द्रियाणां च क्रमेणैव परिक्षयात्।
परिक्षयादायुषश्चाप्यनाहाराच्छ्रमात्क्रमात्।
जरासम्भवजं क्लैब्यमित्येतैर्हेतुभिर्नृणाम् ॥ २५ ॥

अब मैं जरा (बुढापे) में नपुंसक होनेके लक्षण कहता हूँ, उनको सुन। अवस्था तीन—जघन्य (छोटी) और मध्यम, तथा प्रवर (बडी) इन तीनोंमें प्रवर अर्थात् वृद्ध अवस्थामें बहुधा करके शुक्र (वीर्य) क्षीण होता है। उसके हेतु ये हैं—रसादि धातुओंके क्षीण होनेसे, तथा वृष्य (वीर्यकर्ता) औषधिके न खानेसे, बल वर्ण इन्द्रिय इनके क्रमसे क्षीण होनेसे, आयु (अवस्था) के घटनेसे, भूखा रहनेसे, श्रम (मेहनत) के करनेसे इन कारणोंसे जरासम्भव नपुंसक होता है ॥

जायते तेन सोऽत्यर्थं क्षीणधातुः सुदुर्बलः ॥ २६ ॥
विवर्णो विह्वलो दीनः क्षिप्रं व्याधिमथाश्नुते।
एतज्जरासम्भवं हि चतुर्थं क्षयजं शृणु ॥ २७ ॥

पूर्वोक्त जरासम्भवक्लीबके होनेसे मनुष्य धातुक्षीण, दुर्बल, देहका हीनवर्ण विह्वल, दीन ऐसा हो जाय और वह शीघ्रही व्याधि (रोग) को प्राप्त होय, यह जरासम्भवके लक्षण कहे, अब चतुर्थ क्षयजक्लीबके लक्षण सुनो ॥

क्षयजक्लीबके लक्षण।

अतिप्रचिन्तनाच्चैव शोकात्क्रोधाद्भयादपि। ईर्ष्योत्कण्ठा-

त्तथोद्वेगात्सदा विंशतिको नरः ॥ २८ ॥ कृशो वा सेवते रूक्ष-मन्नपानमथौषधम् । दुर्बलप्रकृतिश्चैव निराहारो भवेद्यदि ॥ २९ ॥ अथाल्पभोजनाच्चापि हृदये यो व्यवस्थितः । रस-प्रधानधातुर्हि क्षीयेताशु नरस्ततः ॥ ३० ॥

अत्यन्त चिन्ता, अतिशोक, अतिक्रोध, अतिभय, ईर्ष्या, उत्कण्ठा, उद्वेग और जो पुरुष वीस वरसका होय, तथा जो पुरुष कृश होकर अन्नपानकी वस्तु तथा रूखी औषधियोंका सेवन करे और दुर्बल प्रकृति होकर निराहार रहे अथवा थोडा भोजन करे वह भी हृदयमें ही स्थितरहे इन कारणोंसे रस है प्रधान जिनमें ऐसी जो धातु क्षीण होयँ, इसी कारणसे वह मनुष्य क्षीण होता जाय ॥

रक्तादयश्च क्षीयन्ते धातवस्तस्य देहिनः । शुक्रावसानास्तेभ्यो हि शुक्रं धाम परं मतम् ॥ ३१ ॥ चेतसो वापि हर्षेण व्यवायं सेवते तु यः । शुक्रं तु क्षीयते तस्य ततः प्राप्नोति संक्षयम् ॥ ३२ ॥ घोरं व्याधिमवाप्नोपि मरणं वा समृच्छति । शुक्रं तस्माद्विशेषेण रक्ष्यमारोग्यमिच्छता ॥ एवं निदान-लिङ्गाभ्यामुक्तं क्लैब्यं चतुर्विधम् ॥ ३३ ॥

उस पुरुषके रक्तादि धातु क्षीण होयँ उन धातुओंकी शुक्र अवसान (मर्यादा) है क्योंकि सबका शुक्रही धाम (ठिकाना) है, चित्तके हर्षसे जो मैथुन करे, तब उसका शुक्र क्षीण होय, तदनन्तर संक्षयको प्राप्त होय, जब मनुष्यका शुक्र क्षीण हो जाता है तब घोर व्याधि इस मनुष्यको प्राप्त होती है और मरण होता है, अतएव आरोग्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य शुक्र (वीर्य) की जरूर रक्षा करे यह निदान और चिह्नोंसे नपुंसक चार प्रकारका कहा है ॥

केचित्क्लैब्ये त्वसाध्ये द्वे ध्वजभङ्गक्षयोद्भवे ।
वदन्ति शेफसश्छेदाद्वृषणोत्पाटनेन वा ॥ ३४ ॥

कोई आचार्य लिंग और अंडकोशोंके गिरनेसे ध्वजभंग और क्षयज इन दोनों नपुंसकोंको असाध्य कहते हैं ॥

मातापित्रोर्बीजदोषादशुभैश्चाकृतात्मनः ॥ ३५ ॥ गर्भस्थस्य यदा दोषाः प्राप्य रेतोवहाः शिराः । शोषयन्त्याशु तन्नाशां-द्रेतश्चाप्युपहन्यते ॥ ३६ ॥ तत्र संपूर्णसर्वाङ्गः स भवत्यपुमान् पुमान् । एते त्वसाध्या व्याख्याताः सन्निपातसमुच्छ्रयात् ॥ ३७ ॥

गर्भमें नपुंसक कौन कारणसे होता है ऐसे कोई प्रश्न करे उसके निमित्त कहते हैं–माता पिताके बीजदोषसे, पूर्वजन्मके पापोंसे, गर्भमें रेत (वीर्य) के वहनेवाली नाडियोंमें दोष प्राप्त होकर उन नाडियोंको सुखाय देवे, जब रेतके बहनेवाली नाडी सूख जावें तब वीर्यका क्षय हो इससे बालक जो प्रगट होय उसके सर्व अंग यथाय होयँ, परन्तु लिंग नहीं होवे, सन्निपातके बढनेसे ये असाध्य हैं ॥

शुक्रार्तवदोषनिदान ।

शुक्रं पौरुषमित्युक्तं तस्माद्वक्ष्यामि तच्छृणु । यथा हि बीजं कालाम्बुकृमिकीटाग्निदूषितम् ॥ १ ॥ न विरोहति सन्दुष्टं तथा शुक्रं शरीरिणाम् । अतिव्यवायाद्व्यायामादसात्म्यानां च सेवनात् ॥ २ ॥ अकाले चाप्ययोनौ वा मैथुनं चैव गच्छतः । रूक्षातिक्तकषायातिलवणाम्लोष्णसेवनात् ॥ ३ ॥ मधुरस्निग्धगुर्वन्नसेवनाज्जरया तथा । चिन्ताशोकादिविस्र-म्भाच्छस्त्रक्षाराग्निभिस्तथा ॥ ४ ॥ भयात्क्रोधादभीचारा-द्व्याधिभिः कर्शितस्य च । वेगाघातात्क्षयाच्चापि धातूनां सप्तदूषणात् ॥ ५ ॥ दोषाः पृथक्समस्ता वा प्राप्य रेतोवहाः शिराः । शुक्रं संदूषयन्त्याशु तद्वक्ष्यामि विभागशः ॥ ६ ॥

पूर्व नपुंसकके निदानमें यह कह आये हैं कि, मनुष्यमें पुरुषार्थ केवल वीर्यका ही है इसी कारण अब मैं वीर्यका वर्णन करता हूं, उसको सुन–जैसे काल (समय) जल, कृमि, कीट, अग्निसे दूषित बीज नहीं हरा होवे उसी प्रकार मनुष्यका दूषित वीर्य गर्भप्रद नहीं होता है । अत्यन्त मैथुन करनेसे, दण्ड कसरत करनेसे, अपनी प्रकृतिके विरुद्ध भोजन करनेसे, कुसमय और दुष्टयोनि (गर्मी रोग आदिसे दूषित) में विषय (गमन) करनेसे, बैठे रहनेसे, मधुर, रूक्ष, कडुवा, कषैला, अति-नोनका, खट्टा, गरम ऐसे पदार्थके सेवन करनेसे मधुर, चिकने, भारी अन्नके भोजन करनेसे, वृद्ध अवस्थाके होनेसे, चिन्ता, शोक, अविश्वास, शस्त्र, खार और अग्निके प्रयोगसे, भय, क्रोध, क्षयी तथा धातुओंके दूषित होनेसे पृथक् २ दोष अथवा सर्व दोष (वीर्य) के बहनेवाली नाडीमें प्रवेश होकर शुक्रको दूषित करते हैं । उस दूषितशुक्रके लक्षण क्रमसे न्यारे २ कहता हूं ॥

दूषितशुक्रके भेद ।

फेनिलं तनु रूक्षं च विवर्णं पूति पिच्छिलम् । अन्यधातूपसंसृष्टमवसादि तथाष्टमम् ॥ ७ ॥

दुष्ट शुक्र आठ प्रकारका है—फेनिल अर्थात् झागवाला, पतला, रूखा, विवर्ण, (खोटे रंगका) पूति (सडा), पिच्छिल (गाढा) और धातुके साथ मिला भया तथा अवसादि ये आठ भेद हुए॥

वातदूषित शुक्रके लक्षण।

वातेन फेनिलं शुष्कं कृच्छ्रेण पिच्छिलं तनु।
भवत्युपहतं शुक्रं न तद्गर्भाय कल्पते॥ ८॥

वादीसे शुक्र झागवाला, सूखा, कुछ गाढा और थोडा तथा क्षीण हो। यह गर्भके अर्थका नहीं है॥

पित्तदूषित शुक्रके लक्षण।

सनीलमथवा पीतमत्युष्णं पूतिगंधि च।
दहेल्लिङ्गं विनिर्याति शुक्रं पित्तेश्च दूषितम्॥ ९॥

पित्तसे दूषित शुक्र नीला, अत्यन्त गरम होता है उसमें बुरी वास आवे और जब निकले तब लिंगमें दाह होवे॥

कफदूषित शुक्रके लक्षण।

श्लेष्मणा रुद्धमार्गं तु भवत्यत्यर्थपिच्छिलम्।

कफसे शुक्र शुक्रवहा नाडियोंके मार्ग रुकनेसे अत्यन्त गाढा होजाता है॥

स्त्रियमत्यर्थगमनादभिघातात्क्षयादपि।
शुक्रं प्रवर्तते जन्तोः प्रायेण रुधिरान्वयम्॥ १०॥

अत्यन्त स्त्रीगमन करनेसे, चोट लगनेसे, मनुष्यके रुधिरसंयुक्त वीर्य निकलता है॥

कृच्छ्रेण याति ग्रथितमवसादि तथाष्टमम्।
इति दोषाः समाख्याताः शुक्रस्याष्टौ सलक्षणाः॥ ११॥

अष्टम जो अवसादि शुक्र है सो बडी कठिनतासे गांठके समान निकलता है, शुक्रके आठ दोष कहे हैं॥

शुद्धशुक्रके लक्षण।

स्निग्धं घनं पिच्छिलं च मधुरं चाविदाहि च।
रेतः शुद्धं विजानीयात्स्निग्धं स्फटिकसन्निभम्॥ १२॥

सचिक्कण, गाढा, पिच्छिल (मलाईके समान), मीठा, दाहरहित और जो स्निग्ध स्फटिक मणिके समान होय ये शुद्धवीर्यके लक्षण हैं॥

सुश्रुतसे—शुक्रदोषनिदान।

वातपित्तश्लेष्मशोणितकुणपगंध्यनलपग्रंथिपूतिपूयक्षीणरेतसः

प्रजोत्पादने न समर्थाः ॥ १२ ॥ तत्र वातवर्णवेदनं वातेन । पीतवर्णवेदनं पित्तेन । श्लेष्मवर्णवेदनं श्लेष्मणा । शोणितवर्णपित्तवेदनं रक्तेन । कुणपगन्ध्यनल्पं च रक्तेन पित्तेन च । ग्रंथिभूतं श्लेष्मवाताभ्यां पूयनिभं पित्तवाताभ्यां क्षीणं शुक्रं प्रागुक्तं पित्तवाताभ्यां मूत्रपुरीषगंधि सर्ववर्णवेदनं सन्निपातेनेति तेषु कुणपग्रंथिपूयक्षीणरेतसः कृच्छ्रसाध्या मूत्रपुरीषरेतसोऽसाध्याः ॥

वात, पित्त, कफ, रुधिर इनसे दूषित हुआ शवगंधि और वहुत दुर्गंध युक्त तथा राधके समान ऐसा जिस पुरुषका रेत (वीर्य) होय उसके सन्तान नहीं होय, जिसका वीर्य वादीसे दुष्ट होय उसका वर्ण काला, लाल होय । तथा उसमें तोदादिक पीडा होय । पित्तसे दुष्टहुए शुक्रका वर्ण पीला, नीला इत्यादि वर्णोंका होय तथा उसमें चोषादि पीडा होय । कफसे दुष्टहुए शुक्रका वर्ण श्वेत होय, तथा उसमें मन्द पीडा होय, रुधिरसे दुष्ट हुए शुक्रका वर्ण लाल होवे उसमें चोषादि (चूसनेकीसी पीडा होय) तथा रुधिरसे दूषित शुक्रमें मुर्देकीसी बास आवे और विशेष ऐसा हो-कफसे दूषित हुआ शुक्र गांठदार होय, पित्त कफसे दूषित शुक्रमें राधकीसी वास आवे । पित्तवातसे शुक्र क्षीण होता है । सन्निपातसे दूषितभये शुक्रमें पूर्वोक्त सब वर्ण होयँ और पीडा होय तथा उसमें मूत्र और विष्ठाकीसी बास आवे, इनमें कुणप, ग्रांथि, पूय, क्षीणरेतस ये चार कृच्छ्रसाध्य हैं और पुरीष (विष्ठा) रेतस असाध्य और बाकीके सब साध्य हैं ॥

आर्त्तवदोषके लक्षण ।

आर्तवमपि त्रिभि र्दोषैः शोणितचतुर्थैः पृथग्द्वन्द्वैः समस्तैश्चोपसृष्टमबीजं भवति । तदपि दोषवर्णवेदनाभिर्ज्ञेयम् । तेषु कुणपग्रंथिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषप्रकाशमसाध्यम् ॥

आर्त्तव अर्थात् स्त्रियोंका रज वातादि पृथक् दोष, रक्त, द्वंद्व और सन्निपात इनकरके दुष्ट होनेसे गर्भ धारणके अयोग्य होय तिन दोषोंकरके वर्ण और वेदना जाननी चाहिये । तिनमें कुणप, पूति, पूय, क्षीण मलमूत्रके समान जो होय सो असाध्य हैं, बाकीके साध्य जानने ॥

विष्टम्भगर्भके लक्षण ।

गर्भिणीके कुसमय भोजन करनेसे अथवा रूक्षादि पदार्थ खानेसे, वायुसे कुपित होकर गर्भ शुक्र शुष्य करे अर्थात् गर्भको सुखाय देवे, इसीसे उस गर्भका हलना चलना बढना बन्द होय और समय पाकर उसका वादीकी पीडा होकर स्राव होय॥

उपविष्टगर्भके लक्षण।

गर्भिणी स्त्रीके अत्यन्त दाहकर्ता पदार्थ खानेसे रुधिरका स्राव बहुत होय इसीसे वह गर्भ पीछे बढता न दीखे, उसका हलना चलनामात्र होय ऐसे गर्भको उपविष्ट कहते हैं। यह विष्टम्भ गर्भकाही भेद है॥

मंथरज्वर (मोतीज्वर) के लक्षण।

(योगरत्नसे)

ज्वरो दाहो भ्रमो मोहो ह्यतीसारो वमिस्तृषा।
अनिद्रा मुखशोषश्च तालु जिह्वा च शुष्यति॥ १॥
ग्रीवायां परिदृश्यन्ते स्फोटकाः सर्षपोपमाः।
घृताशनात्स्वेदरोधान्मंथरो जायते नृणाम्॥ २॥

अधिक घृत खानेसे, अथवा पसीना रोकनेसे, मनुष्यको मंथनज्वर (मोतीज्वर) आता है। इसके लक्षण कहते हैं-ज्वर, दाह, भ्रम, मूर्च्छा, अतीसार, वमन, प्यास, निद्रानाश, मुख तालु और जीभ इनका सूखना, कंठमें सरसोंके समान सफेद मोतीके आकार फोडे होयँ, इस ज्वरको माधवने पित्तज्वरके अन्तर्गत माना है इसीसे इसको पृथक् नहीं कहा, परन्तु व्यवहारमें इसको पृथक् मानते हैं तथा बहुतसे ग्रंथकारोंने इसका नाम जुदा कहकर चिकित्सा भी पृथक् कही हैं॥

अलर्क (कुत्ते) के विषनिदान।

(वाग्भट्टसे)

शूनः श्लेष्मोल्बणा दोषाः संज्ञां संज्ञावहाश्रिताः।
मुष्णन्तः कुर्वते क्षोभं धातूनामतिदारुणम्॥ १॥
लालावानन्धबधिरः सर्वतः सोऽभिधावति।
स्रस्तपुच्छहनुस्कंधः शिरोदुःखी नताननः॥ २॥

कुत्तेके कफादिक दोष संज्ञाके बहानेवाले स्रोतों (छिद्रों) में प्रवेश करके संज्ञा नाशके सदृश करे और उसकी धातुओंका क्षोभ करे इस योगसे उस कुत्तेके मुखसे लार बहे, तथा वह अंधा बहरा होकर इधर उधर दौडने लगे, उसकी पूंछ सीधी हो जाय और थोडी कंधा ढीले हो जायँ, इसको बावला कुत्ता कहते हैं॥

उसके काटनेके लक्षण।

दंशस्तेन विदष्टस्य सुप्तः कृष्णं सरत्यसृक्।
हृच्छिरोरुग्ज्वरस्तम्भस्तृष्णा मूर्छोद्भवोऽनु च॥ ३॥

उस बावले कुत्तेके काटनेसे काटनेकी जगह शून्य हो जाय, उसमेंसे काला रुधिर

बहे, तथा उस मनुष्यका हृदय और मस्तक दूखे, ज्वर होय, देह जकड जाय, प्यास लगे तथा मूर्च्छा आवे ॥

अनेनान्येऽपि बोद्धव्या व्याला दंष्ट्राप्रहारिणः ।
शृगालाश्वतराश्वर्क्षद्वीपिव्याघ्रवृकादयः ॥ ४ ॥

इस प्रकार डाढा प्रहार करनेवाले सर्प, स्यार, खच्चर, घोडा, रीछ, चीता, वाघ, भेडिया, आदिशब्दसे सिंह वानर आदि इनके लक्षण भी कुत्तेके समान जानने ॥

सविष निर्विषदंशके लक्षण ।

कण्डूनिस्तोदवैर्ण्यसुप्तिक्लेदज्वरभ्रमाः । विदाहरागरुक्पाक-
शोफग्रंथिविकुंचनम् ॥ ५ ॥ दंशावदरणं स्फोटाः कर्णिका
मण्डलानि च । सर्वत्र सविषे लिंगं विपरीतं तु निर्विषे ॥ ६ ॥

खुजली, नोचनेकीसी पीडा, वर्णका वदलना, शून्यता, क्लेद, ज्वर, भ्रम, दाह लाली, दर्द, पकना, सूजन, गांठ, चोंटनी, काटनेकी जगह चीरा पडे, फोडा, कर्णिका मण्डल असाध्य ये लक्षण सविष दांतके होते हैं । इसके पिपरीत लक्षण निर्विषके जानने ॥

असाध्य लक्षण ।

दष्टो येन तु तच्चेष्टां रुदन् कुर्वन्ति नश्यति ।
पश्यंस्तमेव चाकस्मादादर्शसलिलादिषु ॥ ७ ॥

जिस प्राणीका काटा हुआ मनुष्य उसी प्राणीकी सब चेष्टा करे और रुदन करे तथा आदर्श (शीसा) पानी आदि पदार्थोंमें उसी प्राणीका प्रतिबिंब देखे वह रोगी मरजाय ॥

जलसंत्रासनामाके लक्षण ।

योऽद्भ्यस्त्रस्येददष्टोऽपि शब्दसंस्पर्शदर्शनैः ।
जलसन्त्रासनामानं दष्टं तमपि वर्जयेत् ॥ ८ ॥

पुरुष पानीके शब्द स्पर्श और अवलोकन (देखने) से डरपे उसको जल-संन्त्रासनामा कहते हैं । उसको भी वैद्य त्याग देवे ॥

कोई शंका करे कि, जल विना देखे कैसे मनुष्य डरता है इसवास्ते कहते हैं–

अदृष्टस्यापि जन्तोर्हि जलत्रासो भवेद्यदि ।
तस्यारिष्टं हि विषजं ब्रुवते विषचिन्तकाः ।
जलं विना जलत्रासो जायते श्लेष्मसंचयात् ॥ ९ ॥

जिस मनुष्यको जलके बिना देखे भय भी लगे, उसको विषज्ञवैद्य विषजरोग कहते हैं । यह जल विना जलसे त्रास कफके सञ्चयसे होता है सो लिखते हैं ॥

बुद्धिस्थानं यदा श्लेष्मा केवलं प्रतिपद्यते ॥ १० ॥
तदा बुद्धौ निरुद्धायां श्लेष्मणाधिष्ठितो नरः ।
जाग्रत्सुप्तोऽथ वात्मानं मज्जन्तमिव मन्यते ॥
सलिलत्रासदा तन्द्रा जलत्रासं तु तं विदुः ॥ ११ ॥

जिस समय कफ केवल बुद्धिके स्थानमें जाकर प्राप्त होता है तब इस पुरुषकी कफकरके बुद्धि आच्छादित होनेसे जागते सोते अपने आपको जलमें डूबा हुआ जाने, इसी कारण वह मनुष्य जलसे डरता है, इसीसे इसको जलत्रास जानना ॥

अब विषनिदानमें कह आये हैं कि, विश्वंभरा, अहिंडूका, कण्डूमका, शूकवृन्तादि, पिपीलिका, गौधेरका और सर्षपिका इनका निदान परिशिष्टके अन्तमें लिखेंगे सो यहां सुश्रुतसे लिखते हैं—

गौधेरकदंशके लक्षण ।

प्रतिसूर्यः पिंगभासो बहुवर्णो महाशिराः। तथा निरुपमश्चापि पंच गौधेरकाः स्मृताः ॥ १२ ॥ तैर्भवन्तीह दष्टानां वेगज्ञानानि सर्पवत् । रुजश्च विविधाकारा ग्रन्थयश्च सुदारुणाः ॥१३॥

प्रतिसूर्य, पिंगभास, बहुवर्ण, महाशिरा, निरुपम ये पांच प्रकारके गौधेरक (गौहेरा) होते हैं । इनके काटनेके वेग और ज्ञान सर्पके समान जानना और अनेक प्रकारके रोग तथा दारुण गांठ प्रगट होंय, गौधेरककी उत्पत्ति ग्रन्थान्तरोंमें लिखीहै ॥

सर्षपिकादंशके लक्षण ।

गलगोली श्वेतकृष्णा रक्तराजी तु मण्डला ॥ १४ ॥ सर्वश्वेता सर्षपिकेत्येवं षट् । ताभिर्दष्टे सर्षपिकावर्ज्यं दाहशोफक्लेदा भवन्ति । सर्षपिकया हृदयपीडातिसारश्च ॥ १५ ॥

गलगोली, श्वेतकृष्णा, रक्तराजी, रक्तमण्डला, सर्वश्वेता, सर्षपिका इस प्रकार सर्षपिकाके छः भेद हैं । इनमें सर्षपिकाको छोडकर बाकी गलगोली आदिके काटनेसे दाह, सूजन और क्लेद होय और सर्षपिकाके काटनेके पूर्वोक्त लक्षण होवें और हृदयमें पीडा तथा अतिसार होय ॥

विश्वभंरादष्टके लक्षण ।

विश्वम्भराभिर्दष्टे दंशः सर्षपिकाकाराभिः ।
पिडिकाभिश्चीयते शीतज्वरार्त्तश्च पुरुषो भवति ॥ १६ ॥

---

१ कृष्णसर्पेण गोधायां भवेज्जन्तुश्चतुष्पदः । सर्पो गौधेरको नाम तेन दष्टो न जीवति ॥

विश्वंभराके काटनेकी ठौर सरसोंके समान फुन्सियोंसे व्याप्त हो और शीत ज्वर-करके रोगी व्याकुल होय ॥

अहिंडुकादष्टके लक्षण ।

अहिंडुकाभिर्दष्टे तोददाहकण्डूश्वयथुका मोहश्च ।

अहिंडुकाके काटनेकीसी पीडा, दाह, खुजली, सूजन, मोह होय ॥

कण्डूमकादष्टके लक्षण ।

कण्डूमकादिभिर्दष्टे पीतांगच्छर्द्यतीसारज्वरादिभिर्हन्यते ॥ १७ ॥

कण्डूमका कीडोंके काटनेसे देह पीली हो जाय, वमन, अतिसार और ज्वरादि-रोगोंसे मनुष्य पीडित होय ॥

शूकवृन्तादिदष्टके लक्षण ।

शूकवृन्तादिभिर्दष्टे कण्डूकोठाः प्रवर्द्धन्ते शूकश्चात्र लक्ष्यते ।

शूकवृन्तादि कीडोंके काटनेसे खुजली, चकत्ता और शूकरोग हों ॥

पिपीलिकादंशलक्षण ।

पिपीलिका। स्थूलशीर्षा संवाहिका ब्राह्मणिकांगुलिका कपि-लिका चित्रवर्णेति षट् । ताभिर्दष्टे दंशे श्वयथुरग्निस्पर्शवद्दा-हशोफौ भवतः ॥ १८ ॥

स्थूलशीर्षा, संवाहिका, ब्राह्मणिका, अंगुलिका, कपिलिका, चित्रवर्णा ये छः प्रकारकी पिपीलिका (चेंटी) हैं इनके काटनेकी जगह सूजन, अग्निस्पर्शके समान दाह और चकत्ते और सूजन होवें ॥

स्नायुके निदान ।

शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत् । भिनत्ति तक्षते तत्र सोष्मा मांसं विशोष्य च ॥ १ ॥ कुर्यात्तन्तुनिभं जीवं वृत्तं सितद्युतिं बहिः । शनैः शनैः क्षताद्याति च्छेदात्कोप-मुपैति च ॥ २ ॥ तत्पाताच्छोफशान्तिः स्यात्पुनः स्थाना-न्तरे भवेत् । स स्नायुकेति विख्यातः क्रियोक्ता तु विसर्पवत् ॥ ३ ॥ बाह्वोर्यदि प्रमादेन जंघयोस्तुद्यते क्वचित् । संकोचं खंजतां चैव छिन्नो जन्तुः करोत्यसौ ॥ ४ ॥

हाथ पैरोंमें दोष कुपित होकर विसर्पके सदृश सूजन होय, वह सूजन फूट कर घाव पडजावे और उसमें आभ्यंतरीय अग्नि, मांसके शुष्क करके सूतके समान गोल सफेद जीव डोरके सदृश बाहर निकले वह जीव धीरे धीरे घावसे

बाहर निकले समय टूट जावे तो बहुत दुःख देता है, यदि वह समग्र बाहर निकल आवे तो सूजन जाती रहे और उसमेंसे कुछ टुकडा बाकी रहजावे तो वह फिर दूसरे स्थानपर निकले। उस रोगको स्नायुक (नहरुआ) कहते हैं, इसपर चिकित्सा विसर्परोगकीसी कही है, कदाचित् हाथ वा पैरोंमें नहरुआ होकर टूट जावे तो पैरसे टोंटा अथवा लूला होजाय ॥

ध्वजभंगके संगृहीत श्लोक।

यौवनेऽनङ्गवेगेन शिशुना केलिमाचरेत्। गुह्यदोषेण तल्लिंगे शैथिल्यमुपजायते। स्वगुदोत्पाटनं बाल्ये परैः कारयति स्वयम्। कुरुते तेन दोषेण ध्वजभङ्गोऽभिजायते। अथवा यो भवेन्मर्त्यः करमैथुनलम्पटः। तस्य नूनं प्रजायेत ध्वजभंगे सुदुर्जयम् ॥ 'करमैथुनं' हथरस इति प्रसिद्धः ॥

रोगानुक्रमणिका।

ज्वरोऽतिसारो ग्रहणी अर्शोऽजीर्णो विषूचिका। अलसश्च विलम्बी च क्रमिरुक् पाण्डुकामलौ ॥ १ ॥ हलीमकं रक्तपित्तं राजयक्ष्मा उरःक्षतम्। कासो हिक्का सहश्वासैः स्वरभेदस्त्वरोचकम् ॥ २ ॥ छर्दिस्तृष्णा च मूर्च्छाद्या रोगाः पानात्ययादयः। दाहोन्मादावपस्मारः कथितोऽथाऽऽनिलामयः ॥ ३ ॥ वातरक्तमुरुस्तम्भ आमवातोऽथ शूलरुक्। पित्तजं शूलमानाह उदावर्त्तोऽथ गुल्मरुक् ॥ ४ ॥ हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातस्तथाश्मरी। प्रमेहो मधुमेहश्च पिटिकाश्च प्रमेहजाः ॥ ५ ॥ मेदस्तथोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगंडकः। गण्डमालाऽपचीग्रन्थिरर्बुदं श्लीपदं तथा ॥ ६ ॥ विद्रधिर्व्रणशोथश्च द्वौ व्रणौ भग्ननाडिके। भगन्दरोपदंशौ च शूकदोषस्त्वगामयः ॥ ७ ॥ शीतपित्तमुदर्दश्च कोठश्चैवाम्लपित्तकम्। विसर्पश्च सविस्फोटः सरोमान्त्यो मसूरिकाः ॥ ८ ॥ क्षुद्राऽऽस्यकर्णनासाऽक्षि शिरः स्त्रीबालकग्रहाः। विषं चेत्ययमुद्देशो रुग्विनिश्चयसंग्रहे ॥ ९ ॥

अर्श (बवासीर), छर्दी (रद्द), मूर्च्छाद्या (मूर्च्छा भ्रम तन्द्रा निद्रा संन्यास पानात्यय मदात्यय), अपस्मार (मृगी), अनिलामय (वातव्याधि), आनाह (अफरा), गुल्म (गोलेका रोग), अश्मरी (पथरी), वृद्धि (अंडवृद्धि), ग्रन्थि (गांठ), त्वगामय (कोढरोग), आलस्य (मुखरोग), ग्रह (पूतनादिबालग्रह) ये हमने कठिन शब्दोंके अर्थ लिख दिये हैं, रोगानुक्रमणिका लिखनेका यह प्रयोजन है कि इतने रोग इस ग्रन्थमें कहे हैं इससे विशेष रोग प्रक्षिप्त जानने ॥

टीकाकर्ताकी वंशावली।

श्रीमन्माथुरमण्डले द्विजकुले श्रीमाथुराणां कुले
घासीराम इति प्रथामधिगतो जातः सतां मोदकृत्।
श्रीचन्द्रः किल रामचन्द्रविबुधो जातो हरिश्चन्द्रकः
पुत्रास्ते त्रितयीव धर्मनिपुणा सर्वे नृपैः पूजिताः ॥ १ ॥

श्रीमान् माथुरमण्डल द्विजकुल श्रीमाथुर (चौबे) नके कुलमें श्रीघासीराम इस नामसे प्रसिद्ध सज्जन मनुष्योंको आनन्दकर्त्ता प्रगट भये उनके श्रीचन्द्र और परम बुद्धिमान् रामचन्द्र और हरिश्चन्द्र ये तीन पुत्र वेदत्रयी (ऋक् साम यजुष) के समान और सर्व राजमान्य प्रगट भये ॥

तेषां हरिश्चन्द्रसमानकीर्तिर्जातो हरिश्चन्द्रगुणाभिरामः।
बभूव तस्मात्किल कृष्णलालः संगीतशास्त्रार्थविचारदक्षः ॥ २ ॥

तिन घासीरामके तीन पुत्रोंमें हरिश्चन्द्रके समान कीर्ति जिनकी ऐसे हरिश्चन्द्र भये, तिनके संगीतशास्त्र (गानविद्या)के अर्थ विचारमें कुशल कन्हैयालाल प्रगट होते भये॥

तस्य पुत्रस्त्वहं जज्ञे दत्तरामो विमूढधीः।
भाषायां माधवस्यार्थो यथामति मयोरितः ॥ ३ ॥

तिन कन्हैयालालका पुत्र मैं तुच्छ बुद्धिवाला दत्तराम प्रगट हुआ, मैं अपनी बुद्धिके अनुसार माधवनिदानका अर्थ भाषामें निरूपण किया ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

Printed by Shri Sanjay Bajaj for M / s Khemraj Shrikrishnadass proprietors Shri Venkateshwar press Bombay-400 004. at their Shri Venkateshwar press, 66, Hadapsar Industrial Estate, Pune-411013.

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४१०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०१०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS